।। श्रीदामोदरदासजी-श्रीकृष्णदास मेघनजी ।।
वार्ताविवेचना

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : गोस्वामी श्याम मनोहर.
६३, स्वस्तिक सोसायटी
४था रस्ता, जुहुस्कीम
विले-पार्ला, मुंबई.४०००५६

प्रकाशनार्थ आर्थिकसहयोग : १.देवांशु शाह, विलेपार्ले, मुंबई-५७
२.वेदान्त शाह, कांदिवली, मुंबई-६७
३.अरुणा पारेख. विलेपार्ले, मुंबई
४.इंदिरा मणीयार, कांदिवली, मुंबई-६७

प्रवचनकार : गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रथमसंस्करण : श्रीमहाप्रभु प्राक्टयोत्सव
श्रीवल्लभाब्द ५४० वि.सं.२०७३

निःशुल्कवितरणार्थ

प्रति : १०००

मुद्रक : पूर्वी प्रेस प्रा.ली.
राजकोट

॥श्रीकृष्णाय नमः॥

॥आचार्यचरणकमलेभ्यो नमः॥

॥ प्राक्कथन ॥

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायाम्।
हस्तौ च कर्मसु मनस् तव पादयोर् नः॥
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे।
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्॥

वल्लभवचनामृतकी प्रवचनमालाके अन्तर्गत प्रस्तुत वचनामृत वि.सं.२०५४ (ई.व.१९९८)में कियो थो. महाप्रभुविरचित साहित्यको विचार करें तो निबन्ध भाष्य व्याख्या प्रकरण और प्रकीर्ण; प्रकीर्णमें भी पुनः भक्त्यंग और वादांग; भक्त्यंगमें नामपाठार्थ, रूपवर्णनार्थ और वादांगमें पत्रावलंबनको विभाजन हम देख सके हें. याके अलावा वैष्णव-वार्तामें आपश्रीकोके विधानात्मक-निषेधात्मक वचन हमकु प्राप्त होवे हें.

८४-वैष्णववार्तामें प्रकट वचनामृतकु देखवेपे अपनेकु ये पता चले के आचार्यचरण वैष्णवनूकु कितनो अपनो मानते हते! जाके कारण उपदेशमुद्रा या कर्तव्यमुद्रा में प्रकट होते इन वचननूमें अपने हृदयको भाव छलक जातो और स्वमार्गीयरहस्य प्रकट हो जातो. जैसे गीतामें प्रभु आज्ञा करे हें **''सर्वसु गुह्यतम मेरो ये वचन पुनः सुन, तु मोकु बहोत प्रिय होवेसु तुम्हारे लिये हितकारक पुनः कहु हुं''** (भग.गीता.१८।६४) वार्ताविवेचनामें ये बात अपन् देख सके हें के कैसे महाप्रभुजीने फलरूप सारगर्भित रहस्य प्रकट कियो हे!

आज-कल जैसे सोशियल् मिडियामें हरदिन एक सुविचार पोस्ट् करवेकी आदत होवे हे, ऐसे अपनी परंपरा रही हे के बड़ेनूकी वाणी जो सूत्रात्मक हे वाकु एक तरहसु संकलित करके वचनामृतके

रूपमें प्रस्तुत करने. ग्रन्थ और वचनामृत में अन्तर ये हे के ग्रन्थ एक सूत्रकु पकड़के लिख्यो जाय. वा सूत्रकु कठोरतासु पकड़के वाके पेहलुनूको खुलासा कियो जाय. 'ग्रथन' यानि बांधनो. विषयकु जो बांधे वाको नाम 'ग्रन्थ' कह्यो जाय. षोडशग्रन्थ भी सोलह विषय हें पर उनकु सजाके जा बखत रख दे तो एक पूरो विषय, जो महाप्रभुजी अपने पुष्टिमार्गीयनूकु केहनो चाहे हें. और वचनामृतकी एक विशेषता के वामें कोई ऐसो एक विचार के सूत्र नहीं होवे क्योंके वचनामृत कोई ग्रन्थके रूपसु नहीं कहे-लिखे गये हे.

वचनामृत विषयबद्ध नहीं होवेसु ग्रन्थसु तरतमताको भाव प्रसक्त नहीं हे. कथ्यको अन्तर हे तथ्यको नहीं. यद्यपि महाप्रभुजीकी वाणी रसात्मक ही हे फिरभी वादग्रन्थमें प्रकट होतो रस विद्वद्जनसुलभ होते भये भी **''ये मेरो सर्वस्व हे याको तु अपनो सर्वस्व करि जानियो''** वचननूमें प्रकट होतो रस, ईक्षुको ही रस हे. ग्रन्थ और वचनामृत के स्वरूपको ख्यालमें रखके वाकी मजा लेनी चहिये. अस्तु

सूत्रकी परिभाषा जैसे करी गयी हे''लघु होते भये सूचितार्थ होय, थोडे अक्षरपदवाले होय और अर्थकी दृष्टिसु हर प्रकारसु सारभूत होय वाकु 'सूत्र' कह्यो जाय.'' (**''लघूनि सूचितार्थानि स्वल्पाक्षरपदानि च. सर्वतः सारभूतानि सूत्राणि आहु मनीषिणः''**). और भाष्यकी परिभाषा यों हे ''जामें सूत्रके अर्थको वर्णन कियो होय और खुदके पदसु सूत्रको अधिक विस्तार कियो होय जो सूत्रके अनुसार होवे वाकु 'भाष्य' कह्यो जाय. (**''सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः, स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः''**) यदि ये दोनों परिभाषासु प्रस्तुत ग्रन्थको विचार करें तो सूत्र-भाष्यको सम्बन्ध वचनामृत और विवेचना के बीच प्रकट होतो दीखे हे.

याके अलावा महाप्रभुजी जैसे आज्ञा करे हें के शास्त्रार्थ, अन्यान्य

शास्त्रकी एकवाक्यतासु होनो चहिये वैसे हि बड़ेनूके वचनामृतको अर्थ प्रकरणादि ग्रन्थनूसु संगति करवेसु ही प्रकट होवे हे. या प्रकारके अवगाहनसु महाप्रभुजीकी उद्धारकता प्रकट होवे हे जो बात श्रीद्वारकेशजी यमुनाष्टककी टीकामें लिखे हें ''**यह नामात्मक ग्रन्थके द्वारा** (षोडशादि ग्रन्थ) **स्वदासनूको उद्धार संभव हे, यासु सर्वप्रयत्नपूर्वक पुष्टिजीवको कर्तव्य हे हि.**'' (अर्थानुसन्धानसहित ग्रन्थको अवबोधन)

प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीदामोदरदासजीकी वार्ताप्रसंगमें मुख्य तीन बातनूको विचार कियो हे. दामोदरदासजीको स्वरूप, ब्रह्मसंबंधको स्वरूप या भगवद्दत्त पुष्टिभक्तिकी साधनाप्रणाली और सेवाको रहस्य.

श्रीदामोदरदासजीके लिये ये मार्ग प्रकट भयो हे ऐसे कंठोक्त वचनके बावजूद दामोदरदासजीने सेवा नहीं करी. ऐसो विचार या प्रश्न जिज्ञासुवृत्ति या सेवाकी अरुचिमें या मार्गद्वेषीकु होनी सहज संभव हे. दामोदरदासजी तो महाप्रभुजीके जीवनसंगी हतें. आप दोनों निरंतर भगवच्चर्चामें रत हतें. अपनी साधनाप्रणालीमें नवधाभक्तिके प्रयोगमें श्रवण-कीर्तन-स्मरण कथाभक्तिके पेहलु हें. श्रवण-कीर्तन ऐसो होनो चहिये जासु अखंड स्मरण सिद्ध होवे. दामोदरदासजीको चरित्र देखें तो ये स्पष्ट ही हे के उनकु अखंड स्मरण सिद्ध हतो यासु उन्होने केवल कृष्णसेवा ही करी हे कृष्णसेवा नहीं करी ये बात गलत हे.

ब्रह्मसंबंधकी अतिशय मननीय ये बात हे के 'ब्रह्मसंबंध करणात्' ये साधनाप्रणालीको अधिकार जो महाप्रभुजीकु प्राप्त भयो वाको ही उत्तराधिकार हमकु मिल्यो हे यासु ही अपन् वल्लभसंप्रदायके हे, वल्लभसाधनाके नहीं. प्रभुने महाप्रभुकु आश्वासन दियो के ''**ब्रह्म-संबंध-करणात् सर्वेषां देह-जीवयोः सर्व-दोष-निवृत्तिः हि...**'' कोई भी दोष सेवामें बाधक नहीं होयेंगे. ब्रह्मसंबंधको प्रयोजन सेवाके

लिये ही होवे. ब्रह्मसंबंधकी भूमि ऐसी उपजाऊ हे जामेंसु भक्तिकी फसल पैदा हो सके हे और वो फसल कृत्रिम खादवाली नहीं होयगी पर जमीनकी अपनी उर्वरा शक्तिसु होती फसल होयगी. ब्रह्मसंबंधके कारण यदि भक्ति पनप रही हे तो वो सद्भक्ति होयगी.

सेवाको रहस्य ये हे के अपनी साधना मूलमें भगवद्दत्त होवेके कारण कुछ वाकी विलक्षणता हे. यामें ब्रह्मसंबंधसु सेवाके क्रमको विचार या तरहको हे. ब्रह्मसु संबंध, परमात्मासु स्नेह, भगवान्की नवधाभक्ति, कृष्णकी कथा और वा कृष्णकी कथाकु जीवेके लिये अपने माथे बिराजते ठाकुरजीकी अपने परिवारजननूके साथ अपने घरमें की जाती तनु-वित्तजा सेवा. ये ब्रह्मसंबंधसु लेके सेवा तकको पुष्टिभक्तिकी साधनाको क्रम हे. ये पुष्टिप्रभुके साथ जीनेकी प्रक्रिया हे. अपने सेव्यस्वरूपकी विराटताकु देखके अपने गार्हस्थ्यकु प्रभुके साथ निभावेको क्रम हे, जाकी आप आज्ञा करे हें ''**एनम् उद्धरिष्यामि तदा मृदादेः प्रादुर्भूतः**'' या प्रकारकी सेवा करते-करते ऐसो अलौकिकसामर्थ्य आ जायगो के वाको हर क्रिया-कलाप सेवासु जुड़्यो भयो रहेगो.

वाके बाद श्रीकृष्णादास मेघनजीकी वार्ता, वार्ताक्रमसु भी और संयोगसु भी क्रममें आ रही हे. वामें सेवा समर्पण और भगवत्सुख को निर्वाह कैसे करनो ये प्रसंग आयो हे, जाके कारण वार्तामें सहज उभयाकांक्षाकी पूर्ति हो रही हे. ''उभयाकांक्षा प्रकरणम्'' या न्यायसु देखवेपे वचनामृतको प्रकरणको रूप प्रकट हो जावे हे.

या वार्तामें मुख्यतया आत्मनिवेदनकी वाणी गोरस हे जाके प्रभु भोक्ता हे, प्रभुकी प्रियताको प्रसंग, अहंता-ममताजन्य क्लेशके कारण प्रभुकी अप्रियताको प्रसंग और क्लेशकु दूर करवेके उपाय, ठाकुरजीकी लीलाको भेद, समर्पणकी प्रक्रियाको विचार कियो हे.

प्रथम वचनामृतमें भोक्ताके विचारमें, प्रभुको भोक्तापनो, भक्तसापेक्ष

हे यासु ब्रह्म परमात्मा में भोक्तापनो प्रासंगिक नहीं हे. भगवान् भी दृष्टिको भोक्ता हे सो मर्यादाकी बात हे. कृष्णलीलामें प्रभु चोरी करके माखन अरोगतें पर महाप्रभुजीने वा पेहलुकु सेवामें नहीं पधरायो पर महाप्रभुजीने अतिसावधानीसु वचन कह्यो हे **''श्रीठाकुरजी उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हे.''** सो आत्मसमर्पणके भावसु धरे भोगकु उत्तम मान रहे हें.

वाणी और व्यवहार में एकार्थता होवे तो भावसिद्धि होवे, अन्यथा अनृत हो जावे. कृष्णदासजीकी वार्तामें आये महाप्रभुजीके वचनको यदि या दृष्टिसु देखें तो **''जो ठाकुरजी...भोक्ता हें''** या अंशमें आत्मनिवेदनकी प्रक्रियाको कायिक पेहलु हे. दूसरे अंशमें **''परन्तु 'गोरस'...अनिर्वचनीय हे.''** वो वाको वाचिक पेहलु हे. समर्पणात्मिका स्नेहभावात्मिका और तत्सुखजनिका वाणी जब प्रकट होवे तो वामें रसरूपता प्रकट होवे. आत्मनिवेदनकी दीक्षामें ये दोनों पेहलुकी एकार्थता प्रकट होवे तो भक्तिभावके कारण भक्तको प्रभाव प्रभुपे पड़े हे, प्रभु सानुभाव जतावे हें जाकु तृतीय अंशमें महाप्रभुजी कहे हें **''और सबन्तें...जाते 'भक्तवत्सल' कहावत हे.''**

वाके बाद **''जो ठाकुरजीकों अप्रिय...भक्तको द्वेषी हे.''** ये वचन आयो. क्योंके अपनी जीवनज्योतिको ईंधन अहंता-ममता होवेसु, धुआँमें वाके गुण अनुगत होनो स्वाभाविक हे जासु तदाश्रय-तदीयत्व के भावसु अहंता-ममताकु मंडित करवेसु धुआँ भी समर्पणकी सुगंध लियो होवेसु प्रभुको अप्रिय नहीं होयगो अन्यथा अप्रिय होयगो. ये सारी बात आपश्रीने यहां विवेक-धैर्य-आश्रयके तात्पर्यसु समझायी हे.

वाके बादमें ये वचन आयो **''भक्त होयके...समर्पण पदार्थको ज्ञान नाहीं.''** वस्तुसिद्धि अविधिसु करनेपर वस्तुसिद्ध नहीं होवे ये तो लोकसिद्ध बात हे. चिकित्सकके द्वारा दिये पथ्यापथ्याके साथ औषधको

सेवन वाको अनुपात और वाकी विधि चिकित्सक तो समझावे हे पर अतत्पर और अश्रद्धा के भावके कारण यथाविध नहीं अनुसरे.

ब्रह्मसंबंधकी या समर्पणकी सौम्यविधिसु भगवान्के साथ अपनी अहंता-ममता जोड़वेसु सृष्टिलीलामें अपनी भक्तिलीला प्रकट हो जावे हे. **''बहु स्यां प्रजायेय''**में भी 'लीला' हेतु हे, भक्तिको हेतु भी 'सेवात्मिका लीला' हो जावे. **''निर्दोषं ही समं ब्रह्म''**के साथ **''सदोषम् अपि समं ब्रह्म''**को सूर उद्बोधित होवे हे. सदोषकु निर्दोषवत् बनावेके लिये समर्पणकी विधि जामें धनादिको कृष्णार्थ योजन और भगवदीयके संगके कारण विषयावेशकी जगह भगवदावेश होयगो. या विधिसु करवेमें **''गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना, गंगात्वेन निरूप्या स्यात् तद्वदत्रापि चैव हि.''** सिद्ध होयगो. समर्पणको त्रिकोण बन जायेगो. **''इह नामात्मकैः ग्रन्थैः स्वदासानां सदोद्धृतिः तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवैः कर्तव्यमेव हि, सेवनं श्रीव्रजेशस्य तद्ग्रन्थानां च पाठनम्''**.

ग्रन्थके प्रथम परिशिष्टमें 'दान बड़ो के दाता' यामें 'दान' या 'दाता' शब्द सापेक्ष होवेके कारण एक-तरफा विचार करवेमें और संदर्भके त्याग करवेसु वाकी सापेक्षता खंड़ित हो जावे हे. संदर्भके परिप्रेक्ष्यके बिना अर्थ, अनर्थ ही होवे हे. ये बात यहां मुख्यतया प्रतिपादित हो रही हे.

द्वितीय परिशिष्ट 'सामग्रीप्रदर्शनोत्सव'में आपश्रीके लेखनकी और एक विधा प्रकट भयी हे. जाकु असंगत-शैली (absurd)कहे हें. बात तो सारी असंबद्ध रीतसु आगे बढ रही लगे हे पर यामें आपश्रीके हृदयको आक्रंद सुनाई पड़ रह्यो हे. पुष्टिमार्गके स्थापककी पहेचान, मार्गकी रीतिके अनभिज्ञ होवेके रूपमें होनी, यासु बड़ी मार्गकी दुरवस्था क्या हो सके हे!!!

इस ग्रन्थप्रकाशनमें सहयोगी श्रीअशोक शर्मा, श्रीअतुल्य शर्मा, श्रीकेतन गांधी, श्रीप्रवीण डढाणिया, श्रीपीयूष गोंधिया, श्रीजगदीश शेठ, श्रीधर्मेन्द्र-श्रीमती पद्मिनी झाला, श्रीअनिल भाटिया एवं श्रीमती ख्याति भुला के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हें.

मनीषा-परेश शाह

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठक्रम
दामोदरदासजीकी वार्ता...	**१-११७**
मंगलाचरण...	१
प्रकरण १ : वचनामृतकी भूमिका और गुरु-शिष्यको विलक्षण संबंध...	**२-२०**
उपक्रम...	२
वचनामृतनूको ग्रथन...	२
वार्ताप्रसंगकी अनिवार्यता-वचनामृतनूके स्वरूप प्रकाशनके लिये वार्ताएं...	३
'ग्रन्थ'को अर्थ...	४
ग्रंथ और वचनामृत को भेद...	४
कृष्णकी नानाभावानुरोधिता...	५
आचार्यचरणकी पुष्टिभक्ति-शरणागतिकी भावानुरोधिता...	८
आचार्यचरण स्वभक्तिके अनुरोध नहीं करे हें...	११
दामोदरदासजीकी परावस्था...	१३
महाप्रभुजीको भाव-कृष्णकु एकान्तिक आराध्य देव माननो हे...	१३
महाप्रभुजीके जीवनसंगी दामोदरदासजी...	१७
जीवसंगीके लिये पुष्टिमार्गको प्राकट्य...	१८
साकारब्रह्मवादी पुष्टिमार्गको रहस्य-ब्रह्मसंबंध...	१९
प्रकरण : २ भगवद्दत्त सांप्रदायिक साधना...	**२१-३९**
महाप्रभुजीको समर्पणको सिद्धान्त भगवद्दत्त...	२१
उपनिषद्में वर्णित समर्पण...	२१
भागवतमें वर्णित समर्पण...	२२
गीतामें वर्णित समर्पण...	२२
धर्मनिरपेक्षताको दूषण...	२३
स्वधर्मनिष्ठाविहीनता...	२३
संप्रदाय और साधना की आस्था खंडित करवेको षडयंत्र...	२६
संप्रदायनूकी साधनाको प्रामाणिक इतिहास...	२८
भागवतकी धर्मदृष्टि...	३१
अपनी भागवतविरोधी धर्मवृत्ति...	३१
विभिन्न आचार्यनूके अनुशासित सांप्रदायिक माद्दा...	३२
महाप्रभुजीकी संप्रदायिक साधना भगवदनुशासित...	३५
'ब्रह्म'संबंधकी महत्ता...	३७
प्रकरण ३ : पुष्टिभक्तिसंप्रदायकी पूर्वावधि...	**४०-६०**
सांप्रदायिक-व्यक्तिगत साधनाके भेद...	४०
संप्रदायको स्वरूप...	४०
संप्रदायकी पूर्वावधि और उत्तरावधि...	४२
महाप्रभुजीके पूर्वज विष्णुस्वामी संप्रदायके...	४३
वल्लभवंशज गुरुद्वार हे...	४४
अपने गुरु महाप्रभुजी...	४५
ब्रह्मसंबंधकी भगवदाज्ञा-संप्रदायकी पूर्वावधि...	४५
महाप्रभुजीको आचार्यपनो पुष्टिसंप्रदायप्रवर्तनके कारण न कि प्रसिद्धिके कारण...	४६
महाप्रभुजीने ठाकुरजी व्यक्तिगत ही पधराये हे सार्वजनिक नहीं...	४७
साधनाप्रणालीकी महत्ता...	५०
ब्रह्मसंबंधसु दोषनिवृत्ति...	५१
सदोषजीवको निर्दोषब्रह्मके द्वारा अंगीकार-ब्रह्मसंबंधसु...	५२
वर्णाश्रमधर्म देहाभिमानमूलक होवे...	५२
भक्ति आत्मधर्ममूलक होवे हे...	५४
ब्रह्मसंबंधको प्रयोजन सेवाके लिये ही होवे...	५६
सेवाव्यतिरिक्त ब्रह्मसंबंधको प्रयोजन संप्रदायकी उत्तरावधि लावेको षड्यंत्र...	५८
सेवार्थ ब्रह्मसंबंधको अधिकार सब जीवनूको...	६०
प्रकरण ४ : ब्रह्मसंबंधको स्वरूप...	**६१-७४**

'ब्रह्मसंबंध' शब्द क्यों कह्यो?... ६१
कृष्णको ही पेहलु ब्रह्म... ६२
कृष्णकी प्राप्ति केवल अनन्यभक्तिसु... ६२
अनवतारकालमें कृष्णको ब्रह्मवालो पेहलु ही उपलब्ध... ६३
'ब्रह्मसंबंध'को विचार... ६४
ब्रह्मके साथ संबंध होयवेपे भी बेध्यानपनेसु असंबंधता... ६४
उपलब्ध सामर्थ्यके बेध्यानपनेसु अनुपलब्धि... ६५
सत्ता चेतना आनंद की हकीकत मानें ब्रह्म... ६६
ब्रह्मकी सत्ता चेतना और आनंद पे ध्यानकी आवश्यकता... ६७
ब्रह्मसंबंधके भावोद्बोधनसु ब्रह्मताकी प्राप्ति... ६९
ब्रह्मसंबंध, नाटक हकीकत और लीला भी हे
-दृष्टिभेदसु भावभेद... ७१
''तासु ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो'' सद्भक्तिको कारण... ७३
प्रकरण : ५ ब्रह्मसंबंधसु निष्काम और सहज भगवद्भक्तिकी यात्रा... **७५-९४**
ब्रह्मके साथ अपनो और जड़ जगत्के संबंधको स्वरूप... ७५
ब्रह्मकी अभिन्ननिमित्तोपादानता... ७६
ब्रह्म और अपनो तादात्म्य संबंध... ७६
स्वयंकी एवं वस्तुमात्रकी चाहनाको कारण ब्रह्म... ७८
'ब्रह्म'संबंधके माहात्म्यसु ही पारमात्मिक निश्छल संबंध... ७९
पुष्टिभक्तिकी साधनाकी दृष्टिसु सकाम स्नेहकी
अपारमात्मिकता... ८०
दुःखकी स्वाभाविकता... ८२
दुःखकी निवृत्ति या कामनापूर्ति के लिये पुष्टिभक्ति नहीं हे... ८२
भक्तिकी पंचमपुरुषार्थता... ८४
तादात्म्यभावमूलक भक्तिकी पंचमपुरुषार्थता... ८४
ब्रह्मकी व्यापकताके कारण वाकी सर्वत्र उपलब्धि... ८५
परमात्मसंबंध... ८६

परमात्माकी परमप्रियतासु प्रकट होती पुष्टिभक्ति... ८८
सोदारूप या सकामभक्ति, पुष्टिभक्ति नहीं हे... ८९
शुद्ध भक्तिमयी सेवा... ९१
सेवामें सहजता... ९३
प्रकरण ६ : सेवाको रहस्य... **९५-११७**
पूर्वोत्तरभाव संगति... ९५
कृष्णके ब्रह्म होवेके पेहलुसु संबंध... ९५
कृष्णके परमात्मा होवेके पेहलुसु संबंध... ९७
कृष्णके भगवान् होवेके पेहलुसु संबंध... ९९
कृष्णके कृष्ण होवेके पेहलुसु संबंध... ९९
कृष्णके घरके ठाकुर होवेके पेहलुसु संबंध... १००
पुष्टिभक्तिसाधनाकी विलक्षणता-व्यापक कृष्णसु व्यक्तिगत
कृष्णके साथ संबंध... १००
संबंधके पेहलुन्की नासमझके कारण होती दुर्गति... १०१
पुष्टिस्थठाकुर पुष्टिस्थजीवकी मर्यादाके अनुरूप बंधे... १०३
असंगीकु जीवनसंगी बनाके जीववेकी पुष्टिभक्तिसाधनाप्रणाली... १०५
निरपेक्षब्रह्मको भक्तसापेक्ष बनावेकी साधनाप्रणाली... १०७
श्रीहरिरायजीके भावप्रकाशकी संगति... १०८
तात्त्विक ब्रह्मसंबंध और साधनात्मक ब्रह्मसंबंध... १०९
वरण और शरण की पूरकता... ११०
सेवाको रहस्य-गीताके एकादश अध्यायमें... १११
कृष्णसेवाके लिये गुरुकी अपेक्षा नहीं के गुरु बनावेके
लिये कृष्णसेवा... ११३
सेवामार्गको शृंगार गुसांईजीके कारण... ११४
शृंगारित सेवामार्गको विकृतरूप... ११६
गुसांईजीके द्वारा सेवाविस्तार भी सेवामें सहजताके
निर्वहनके लिये... ११६

कृष्णदास मेघनकी वार्ता... ११८-३३३
वार्ता प्रसंग, प्रिय-अप्रियताको भेद भक्तिके कारण... ११८
औपक्रमिक ब्राह्मिक एकता... ११८
वाणीके कारण होतो भेद... ११८
भेदात्मक वाणीकी एकता... १२१
ब्रह्ममें प्रिय-अप्रियको अभेद... १२१
ब्राह्मिक आत्मप्रेम ही अंशात्मना जीवमें प्रकट होवे... १२२
प्रियता-अप्रियताको पेहलु विभिन्न प्रसंगमें... १२३
ब्रह्म परमात्मा भगवान् में प्रिय-अप्रियको पेहलु... १२३
ब्रह्मको घरके ठाकुरके पेहलुमें प्रिय-अप्रियताको प्रसंग... १२४
भक्तिमें प्रिय-अप्रियताको पेहलु... १२६
संबंधकी स्पष्टतासु प्रिय-अप्रियता... १२८
ब्रह्मके साथ व्यवहार संभव नहीं... १३०
भावके अनुरूप व्यवहार... १३०
भावानुरूपताके कारण प्रिय-अप्रियको प्रसंग... १३२
प्रहलादकी दृष्टिसु नरसिंहजीकी प्रिय - अप्रियता... १३४
भक्तिके सुरसु भगवान्की प्रिय-अप्रियता... १३५
वार्ता-प्रसंग... १३६
'ठाकुरजी भोक्ता'-स्वरूपविचार... १३६
'भोक्ता'को ब्राह्मिक पेहलु... १४०
मर्यादामें भगवान्को भोक्तापनो दृष्टिसु... १४९
भोक्ताके विचारमें प्रश्नकी भूमिका... १४१
गृहकी मर्यादासु 'भोक्ता'में उत्तम या अनुत्तम... १४४
भोक्ताको पारमात्मिक पेहलु... १४४
मर्यादामें भगवान्को भोक्तापनो दृष्टिसु... १४९
भक्ताधीन भावसु कृष्णको भोक्तापनो... १४९
गृहठाकुरकी दृष्टिसु भोक्तापनो... १५०
गृहठाकुर अन्यकी सत्ताको भोग नहीं करें... १५०

गृहठाकुर तो अपनी सत्ताको भोक्ता... १५१
अपने समर्पणके भावको प्रभु भोक्ता... १५४
सिंहावलोकन... १५५
ब्रह्मसंबंधकी गरिमा और वासु होतो दुर्व्यवहार... १५६
वाणीको गौरव-अगौरव... १६३
समर्पणभावात्मिका वाणी... १६६
स्नेहभावात्मिका वाणी... १६७
वाणीकी रसरूपता स्नेहके कारण... १७०
प्रभु स्नेहको भोग करें, सुविधाको नहीं... १७१
तत्सुखजनिका वाणी... १७३
गोरस=समर्पण+स्नेह+तत्सुख... १७५
''ताको भाव अनिर्वचनीय हे''-वाणीकी
निर्वचनता-अनिर्वचनता... १७६
''... भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे''-भगवान्को
सानुभाव... १८३
''तातें 'भक्तवत्सल' कहावत हे.''-भक्तको प्रभाव... १८८
प्रश्नोत्तर... १८९
धुआँको कारण अहंता-ममता और समर्पणको विवेक... १९५
समर्पणको भाव... १९९
क्लिष्टको असमर्पण, अक्लिष्टको समर्पण... २०१
क्लेशात्मक धुआँन्के प्रकार... २०३
स्नेहको सिद्धान्त... २०५
स्नेहमूलक अहंता-ममताको भक्तिमें विनियोग... २०८
अक्लेशात्मकभावके लिये विवेक-धैर्य-आश्रय... २१३
विवेकसु अक्लेशात्मकभाव... २१४
प्रार्थनात्मक क्लेश... २१७
अभिमानात्मक क्लेश... २२१
हठको क्लेश... २२२

आग्रहको क्लेश... २२३
देवद्रव्य-गुरुद्रव्यको विवेक... २२६
धैर्यसु अक्लेश... २२९
आश्रयसु अक्लेश... २३१
विवेक-धैर्यकी पृथक्ता और अविवेकको स्वरूप... २३२
ब्रह्म-परमात्माके पेहलुमें क्लेशकी अप्रासंगिकता... २३२
भगवान्‌के पेहलुमें अविवेकको प्रसंग... २३३
कृष्णके पेहलुमें अविवेकको प्रसंग... २३४
गृहठाकुरके पेहलुमें अविवेकको प्रसंग... २३४
अहंतासु अविवेक... २३६
अहंतासु जुडे नकारात्मक-सकारात्मक क्लेश... २४०
अधैर्यके कारण क्लेश और धैर्यसु अक्लेश... २४२
शरणभावनासु अक्लेश... २४६
सिंहावलोकन... २४७
कृष्णलीलाकी भावनासु सेवामें अक्लेश... २४८
लीलाभावनारहित क्रियात्मिका सेवाके कारण क्लेश... २४९
भावनात्मकसेवासु या धैर्यसु अक्लेश... २५०
मानसिक अधीरता... २५१
धैर्यकी महत्ता... २५१
विभिन्न स्थितिमें आश्रयको प्रसंग... २५४
शरणं गृहरक्षित्रोः... २६०
विवेक-धैर्यको आदर्शरूप... २६१
आश्रयसु अक्लेश... २६६
भक्ति और पूजा की तरतमता... २७२
माहात्म्यज्ञान और स्नेह को व्यवहारात्मकरूप... २८३
लीला=माहात्म्यज्ञान+स्नेह... २८५
प्रभुको और भक्तको लीलाभाव... २८६
लीलाः एककी अनेकता और अनेककी एकता... २८७

दासत्वको सामान्य प्रकार... २९०
पुष्टिमार्गीय दासत्वको स्वरूप : अंशांशीभाव... २९२
लीलामें पुष्टिमार्गीय दासत्व समर्पणसु... २९५
समर्पणको त्रिकोण... ३०१
अहंता-ममताकु भगवान्‌सु जोड़वेकी सौम्य विधि... ३०३
समर्पणकी सार्थकता... ३१२
प्रश्नोत्तर... ३१३
समर्पित और प्रसादी को विवेक/सिद्धान्त... ३१३
स्नेहमूलक लौकिकी रीति : सेवा... ३२३
उपसंहार... ३३१

परिशिष्ट

१. दान बड़ो के दाता... ३३४-३४३
२. सामग्रीप्रदर्शनोत्सव... ३४४-३४९
अमृतवचनावली... ३५०-३८२
उद्धृतवचनानुक्रमणिका... ३८३

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

※ दामोदरदासजीकी वार्ता ※

(ब्रह्मसंबंधकी सार्थकतासु पुष्टिभक्तिरसकी प्राप्ति)

(मंगलाचरण)

चिन्ता-सन्तान-हन्तारो यत्-पादाम्बुज-रेणवः ॥
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥१॥
यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्-वल्लभ-नन्दनम् ॥२॥
अज्ञान - तिमिरान्धस्य ज्ञानञ्जन-शलाकया ॥
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥
नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धि-शायिनम् ॥
लक्ष्मी-सहस्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥४॥
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा ॥
षड्भिर्विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम ॥५॥

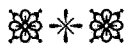

प्रकरण १ : वचनामृतकी भूमिका और गुरु-शिष्यको विलक्षण संबंध

(उपक्रम)

या बखत एक ग्रंथ जो प्रकाशित करनो चाह रह्यो हूँ, वो वचनामृत हे. अपने यहाँ वचनामृतनूकी बड़ी प्राचीन परंपरा रही हे. अखबारनूमें आपने पढ़यो होयगो के जैसे सम्पादकीयके ऊपर एक अमरसूक्ति आवे हे, स्कूलनूमें भी जैसे आजको सुविचार लिख्यो जाय हे, वा ढंगसु. अपने यहाँ भी ऐसी प्राचीन परंपरा रही हे के बड़ेनूकी वाणी जो सूत्रात्मक हे, वाकु एक तरहसु संकलित करके वचनामृतके रूपमें प्रस्तुत करने. वैसे जो भी बोले वो वचनामृत हे पर ग्रंथकी एक विशेषता ये हे के ग्रंथ जब भी लिखे जाय, एक सूत्रकु पकड़के लिखे जाय. जा विचारकु या उपदिष्ट सूत्रकु पूरे ग्रंथमें एकदम कठोरतासु पकड़के चले. जो भी वाके पेहलु हें, धीरे-धीरे उनको खुलासा कियो जाय.

वचनामृतकी ये विशेषता रही हे वामें कोई ऐसे एक विचारके सूत्र नहीं होंवे क्योंके वचनामृत कोई ग्रंथके रूपसु कहे-लिखे गये नहीं हें. उन-उन प्रसंगनूमें जो बड़ेनूने बात कही हे उनकु संकलित कियो गयो हे. या तरीके के वचनामृत बौद्धमतमें भी बहोत हें. अपने यहाँ उपनिषद्में हें, जैननूके यहां भी हें और भी संप्रदायनूमें या प्रकारके वचनामृत अथवा ग्रंथ हें. अपने संप्रदायमें भी वचनामृतनूको प्रारंभसु ही बड़ो उपयोग रह्यो पर सबसु पहले वचनामृत अपने संप्रदायमें श्रीगोकुलनाथजीके हें. जो चौबीस वचनामृत श्रीगोकुलनाथजीके कहे जाय हें वाके बाद अभी तक भी या तरीके के वचनामृतनूके संकलन होते रहे हें. बीस-पच्चीस वर्ष पहले महेसाणाके हरिभाईने दादाजीके भी वचनामृतको संकलन कियो हे. वो छप नहीं पायो.

(वचनामृतनूको ग्रथन)

उन वचनामृतनूके संकलनमें कोई एक बातकु पकड़के नहीं समझायो

जाय हे पर जा बखत, जा प्रसंगमें जो बात बड़ेनूने कहीं, वाकु इकट्ठी कर-करकें, ये वचनामृत बनाये गये. महर्षि अरविन्दोके बहोत सुंदर वचनामृत या ढंगसु मिले हें. मोकु ऐसी इच्छा भई के महाप्रभुजी गुसांईजी के वचनामृत भी अपनूकु संकलित करने चहियें. पर आज अपने पास ऐसी स्थिति तो नहीं हे के वो सारो रॅकोर्ड अपन् लावें. मैंने ये वचनामृत महाप्रभुजीकी चौरासी वैष्णवनूकी वार्ता, गुसांईजीकी दो सो बावन वैष्णवनूकी वार्ता, गृहवार्ता, बैठक वार्तान् सु संकलित किये हें. ऐसी हृदयमें इच्छा हे के या साल या ग्रंथको प्रकाशन करनो. अभी तो पहलो कच्चो ड़ाफ्ट् जो मैंने कम्पोज़् कियो हे, वो किशनगढ़ ले आयो हूँ, देखवेके लिये के कैसो बन्यो हे ये ग्रन्थ. किशनगढ़में मेरी बहोतसी बातनूकी शुरुआत भयी हे. सो लिहाजा ये बात भी किशनगढ़सु ही शुरु हो रही हे. ये मेरे और किशनगढ़ के संबंधको प्रश्न हे.

या वचनामृतनूके संकलनमें मैंने या बातको ध्यान दियो हे के जैसे वार्तानूमेंसु वचनामृत संकलित किये हें, तो कई बखत क्या होवे के वार्तानूके संदर्भमें तो वो वचन बड़े सार्थक लग रहे हें पर खाली वाकु छांटके देखो तो वाको वो स्वरूप नहीं उभरे हे, जैसो वचनामृतको स्वरूप उभरनो चहिये.

(वार्ताप्रसंगकी अनिवार्यता-वचनामृतनूके स्वरूप प्रकाशनके लिये वार्ताएं)

अब क्योंके वार्तानूमेंसु संकलित भये हें तो एक वाकी विवशता हो रही हे के उन वार्तानूकु उतनीसी लेनी जासु वा वचनामृतको संदर्भ ख्यालमें आ जाय. बाकी वार्ताएं; चौरासी दौसो बावन वैष्णवनूकी निजवार्ता घरूवार्ता, वो तो प्रत्येक दो-तीन वर्षके अंतरायसु प्रकाशित होती रहीं हें. उन वार्तानूको पुनः प्रकाशन करवेको यहाँ हेतु नहीं हे. न उन वार्तानूकु संक्षिप्त करवेको यहाँ हेतु हे. जब वचनामृत संकलित करनो हे तो सचमुचमें ये एक लाचारी सी हो जाय हे

के वो वार्ता अपन् नहीं देखें, तो वो वचनामृतको स्वरूप नहीं खुले हे. याके कारण जितनो प्रसंग, वा वचनामृतकी भूमिकाके रूपमें अपेक्षित हे उतनी मैंने वार्ता भी ली हे और प्रयास ऐसो कियो हे के वचनामृत अलग छांटवेके लिये वार्ताकु तिरछे टाइप्में और वचनामृतकु बोल्ड् टाइप्में छापने, जासु अलगसु वापे ध्यान जावे. महाप्रभुजी श्रीविठ्ठलनाथजी और श्रीगोकुलनाथजी को वचनामृत 'वचनामृतसंकलन' नामक ग्रन्थमें प्रकाशित भयो हे. ऐसे ४४ वचनामृत महाप्रभुजीके मिले हें जो अलग-अलग प्रसंगमें महाप्रभुजीने किये हे.

('ग्रन्थ'को अर्थ)

वैसे षोडशग्रंथ भी अपन् देखें तो वो भी छोटे-मोटे वचनामृत जैसे ही हें पर उन सब ग्रंथनूकी खासियत ये हे के उन सबकु एक साथ सजाके रखवेसु उनमें एक क्रमबद्धता आ रही हे. यासु वो एक ग्रंथको रूप ले जाय हे. आज अपन् 'ग्रंथ'को अर्थ ये समझें हें के कोई किताब या कोई पुस्तक कोई आदर्श बात केहती होय तो 'ग्रंथ' हे. जैसे सरदारनूमें गुरुग्रंथसाहिब. ग्रंथको एक अलग स्वभाव हे और वो स्वभाव हे, विषयको जो ग्रथन करे, विषयकु जो बांधे. 'ग्रथन' यानि बांधनो. विषयकु जो बांधे वाको नाम 'ग्रंथ' कह्यो जाय हे. पुराने जमानामें ग्रंथ भी बांधे जाते हते. आजके जैसी ऐसे खुलवेवाली पुस्तकें नहीं हतीं. अलग-अलग छुट्टे पत्ता होते हतें और उनकु बांध्यो जातो हतो वा अर्थमें भी याकु 'ग्रंथ' कह्यो जाय हे. पत्तानूकु बांधनो यह एक बहोत मोटी बात हे पर विषयकु बाधनो ये खास महत्त्वकी बात हे.

(ग्रंथ और वचनामृत को भेद)

अभी हालमें ही हमारे यहाँ एक परिचित आये हते. वो मेरे संग्रहमेंसु कोई किताब उठा रहे हते. बड़ी वजनदार किताब हती. मेरे मुँहसु यों निकल गयो के सावधानीसु उतारियो, वो किताब माथेपे

नहीं पड़ जाय. तो उनने कहीं के सिरपे पड़ गयी तो तो उद्धार हो जायगो. मैंने कहीके सिरपे पड़ी तो उद्धार नहीं, सिर ही फूटेगो. हाँ सिरमें पड़े तो उद्धार हो सके हे. तो थोड़ो सो अंतर हे, सिरपे पड़नो और सिरमें पड़नो. आवश्यकता सिरपे पड़वेकी नहीं हे. न भी पड़े तो काम चलेगो पर सिरमें पड़वेकी आवश्यकता हे. याही तरहसु, आवश्यकता ग्रंथके पन्नानकु बांधवेकी नहीं हे, विषयकु बांधवेकी हे. जब विषय बंध रह्यो हे तो वो ग्रंथ हे. और विषय नहीं बंध पायो तो वो वचनामृत हे.

षोडशग्रंथ क्या हे? वैसे सोलह विषय हें. और हर ग्रंथ अपने आपमें एक छुट्टो विषय हे. पर उनकु जा बखत सजाकें रख दे हें, तो एक पूरो विषय, जो महाप्रभुजी अपन् पुष्टिमार्गीयनकु केहनो चाहे हें, वो बंधके वहाँ आ रह्यो हे. वाके लिये वो षोडशग्रंथ हे, षोडश वचनामृत नहीं हे. और वचनामृत प्राय: ऐसे होते हते के जामें कोई विषय बंधतो नहीं होय. छोटी-छोटी सूक्ति होती हती. तो मूलमें अपनकु ये ग्रंथ और वचनामृत को जो स्वरूप हे वो ख्यालमें रखकें, वाकी मजा लेनी हे. यहाँ बंधके कोई विषय नहीं आयेगो. कभी कोई बात आ रही हे, कभी कोई और बात आ रही हे. जो बात आ रही हे वा बातकी मजा लेनी हे.

जैसे आपकु ख्याल होयगो के चौरासी वैष्णवकी वार्तानमें सबसु पहली वार्ता दामोदरदास हरसानीकी हे. याके कारण प्रथम वचनामृत भी मैंने वामेंसु ही लियो हे. दामोदरदासजी और महाप्रभुजी को संबंध एक अत्यंत विलक्षण प्रकारको संबंध हे.

(कृष्णकी नानाभावानुरोधिता)

जैसे ठाकुरजीके लिये ये कह्यो जाय हे के "**मल्लानाम् अशनि: नृणां नरवर: स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनो असतां क्षितिभुजां**

शास्ता स्वपित्रो: शिशु:. मृत्यु: भोजपते: विराड् अविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवता इति विदितो रङ्गं गत: साग्रज:" (भाग.पुरा.१०।४३।१७) जा बखत मथुरामें ठाकुरजी पधार रहे हें तो पहलवाननकु पहलवान लगे, वसुदेव-देवकीकु एकदम कोमल बालक लगे, आदमीनकु लगे के कोई बहोत श्रेष्ठ व्यक्ति आयो हे, खास तोरपे जो उत्पाती राजा हते, उनकु लग्यो के कोई उनकु भी दंड देवेवालो बड़ो राजा आ गयो हे. हर व्यक्तिकु अपने अधिकारके अनुरूप दर्शन भये. जा व्यक्तिकु अपने अधिकारके अनुरूप दर्शन भये, वा व्यक्तिकु वो ही रूप मुख्य हे. ऐसे ही जैसे नंद-यशोदाकु भगवान् बालक लग रह्यो हे, तो चक्रधारी या शंखधारी कृष्ण नंद-यशोदाके लिए नहीं हे पर माखनधारी वेणुधारी या मयूर पिच्छधारी कृष्ण ही महत्त्वपूर्ण हे. जैसे उनने देख्यो सजायो जान्यो मान्यो चाह्यो वो ही कृष्ण उनके लिए महत्त्वपूर्ण हे दूसरो नहीं. कृष्ण सो ढंगको हो सके. कृष्ण कितने ढंगको हो सके, प्रश्न ये नहीं हे. प्रश्न ये हे के अपन् कृष्णकु कैसे चाह रहे हें, कैसे मान रहे हें, कैसे जान रहे हें, वो सबसु महत्त्वपूर्ण कृष्णको स्वरूप हे!

मैंने शायद पहले भी आपकु बताई होयगी. महाभारत करवेके कारण जैन लोग मानें हें के कृष्णकु साठ हजार बरसकी नरक भयी हे. अभी तो केवल पाँच हजार साल भये हें और पचपन हजार साल बाकी हें. उतने वर्ष कृष्ण नरकमें और रहेंगे, ऐसे वे लोग माने हें. जब बहोत ऐसी बात भई तो एक वैष्णव मेरे पास आयो और कहवे लग्यो के अपनकु याको विरोध करनो चहिये. मैंने कही यामें विरोध जैसो कया हे? अपन् तो कृष्णकु व्यापक माने हें. जो कृष्ण व्यापक हे, वाकु अपन् ना तो नहीं केह सकें के भई तू नरकमें नहीं रेह सके. जैसे हवा व्यापक हे तो रूममें भी होयगी और गटरमें भी होयेगी. पहाड़पे भी होयेगी तो घाटीमें भी होयेगी. बगीचामें भी होयेगी तो नालामें भी होयगी. हवाकु अपन्

कैसे केह सकें के तू यहाँ हो और यहाँ मत हो. ऐसे कृष्णकु जब अपन् व्यापक मान रहे हें तो अपनूकु चिंताकी बात क्या हे? नरकमें साठ हजार साल तो बहोत कम हें, अनादिकालसु कृष्ण तो सर्वत्र हे. सर्वत्र हे तो नरकमें भी हे. अब सवाल ये हे के उनकु नरकमें दीखतो होय तो वो उनको अधिकार हे. अपनूकु वैकुंठमें दीखतो होय तो वो अपनो अधिकार हे. वामें घबरावेकी क्या बात हे? जाने दो उनकी कथा, उनकु कृष्णको स्वरूप जैसो समझातो होय वोही हे. जैसे **"मल्लानाम् अशनिः नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनो असतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः. मृत्युः भोजपतेः विराड् अविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवता इति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः"**. (वहीं)

पहलवाननूकु जैसे बिजलीके जैसो लग्यो. कंसकु तो लग्यो जैसे साक्षात् मृत्यु आयी. अब देखो, जा कृष्णके दरसनसु अमरता प्राप्त होवे, मुक्ति मिले जाकु साक्षात् अपन् परमानंदरूप मान रहे हें, वो कृष्ण यदि कंसकु मृत्युरूप लगतो होय तो वो कृष्ण और कंस को आपसी संबंध हे तो वामें अपन् झगड़ा करवे जांय के नहीं नहीं ये मृत्यु नहीं हे, परमानंदरूप हे. अरे वाके साथ कृष्णको समझोता भयो हे के मैं तोकु मारूँगो और तोकु मृत्युरूप लगूँगो. और कंसको समझोता हतो के मैं तोसु हारूंगो. अब वामें अपन् वाकु समझावे जांय के ये नंदनंदन हें आनंदकंद हें परमानंद हें, पर दोनों पार्टी आपसमें कॉम्प्रोमाइज़् कर गई हें, मियां बीवी राजी तो क्या करेगा काजी! वाकु डरावेके लिए वो राजी हे, डरवेके लिए वो राजी हे. वामें अपनूकु झगड़ा करकें फायदा क्या? ऐसे ही वो जैन राजी हे और समझो के कृष्ण भी याही प्रकारसु उनसु राजी होय तो अपनूकु काहेकु चिंता करनी! आनंदसु रहो न! वे नरकमें कृष्णकु मानें हें तो अपनूकु यासु घबरायवेकी क्या जरूरत हे? अपन् कृष्णकु अपने हृदयमें अपने मस्तकमें मान रहे हें के

नहीं! अपन् कृष्णकु सर्वव्यापी मान रहे हें के नहीं! अपन् कृष्णकु अपने घरमें देख पा रहे हें के नहीं! ये वैष्णवके लिए बड़ी आवश्यक बात हे. तो कृष्ण कहाँ होय, कहाँ नहीं होय वो अलग-अलग वाके लोगनूके अधिकारानुसार एग्रीमेन्ट् हें, समझोता हें. वा तरहसु अलग-अलग कृष्ण अपनो रूप जाकु दिखायगो, वा तरहसु लोग वाकु जानेंगे. जा तरहसु वाकु जानेंगे, वा तरहसु मानेंगे. जा तरहसु मानेगे वा तरहसु चाहेंगे या नहीं चाहेंगे. वामें क्या घबरावेकी बात हे?

(आचार्यचरणकी पुष्टिभक्ति-शरणागतिकी भावानुरोधिता)

ऐसे ही श्रीआचार्यचरणकु भी चौरासी वैष्णव या और भी कितने वैष्णव होंयगे, उनने जा तरहसु जान्यो जा तरहसु देख्यो जा तरहसु मान्यो, वा तरहसु आचार्यचरणको स्वरूप मुख्य ही हें वामें कोई गौणपनेको भाव नहीं हे. जैसे अपन् एक दो सेम्पल्-एक्ज़ाम्पल् लें तो ये बात अपनूकु एकदम साफ हो जाय. जैसे पृथ्वीके दो ध्रुव हें, उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव. जैसे सूरदाजीकु महाप्रभुजीने आज्ञा करी के **"सूर व्हेके काहेकु घिघियात हे, कछु भगवल्लीला गा"** तो भगवल्लीला गावेमें इतने तल्लीन, तन्मय हो गये के महाप्रभुजीके कोई पद ही नहीं किये. छेल्ले जाके जब लोगनूने उनकु पूछी के तुमने कृष्णके इतने पद गाये और महाप्रभुजीको एक भी पद नहीं गायो. तब उनने कही के "मोकु तो कछु ख्याल ही नहीं आयो के कोई दूसरेके पद गा रह्यो हूँ. अच्छा तू, केह रह्यो हे तो चल मैं एक पद महाप्रभुजीको अलगसु बनाकें गाऊँ." कहके उनने **"दृढ़ इन चरनन् केरो"** पद गायो.

एक ध्रुव यह हे के महाप्रभुजीके समझाये ऐसे समझे, कृष्णकी लीला स्वरूप माधुर्य लावण्य में इतने तल्लीन हो गये के महाप्रभुजी तक भी उनकु याद नहीं आये. अब यामें कोई थोड़ी महाप्रभुजीकु

अप्रसन्न करवेकी बात हे! महाप्रभुजीकी परम प्रसन्नता यामें हे के प्रत्येक जीव या तरहसु कृष्णतन्मय हो जाय. एक ये ध्रुव हे.

और दामोदरदासजीको एक ये ध्रुव हे के वो महाप्रभुजीमें इतने तन्मय रहे के न तो उनने सेवा करी, न पद गाये. दामोदरदासजीके बारेमें कोई भी ऐसी बात मिले तो नहीं हे. पर यासु लोगन्में एक भ्रांति हो जाय हे के महाप्रभुजीके प्रथम शिष्य यदि या तरीकाके, और वो प्रथम शिष्य कैसे? जिनके लिए महाप्रभुजी अक्सर ये आज्ञा करें के **''दमला ये मार्ग मैंने तेरे लिए प्रकट कियो हे.''**

जहां लगि श्रीआचार्यजीके मारगकी स्थिति हे तहां तांई दामोदरदासजीकी मारगमें स्थिति गोप्य हे और दामोदरदासने कह्यो **''जो मैंने श्रीठाकुरजीके वचन सुने परि समुझ्यो नाही''** ता समे श्रीआचार्यजीने कह्यो **''अब हु दस जन्मको अन्तराय हे''** वैसे तो भावप्रकाशकारने याके भावको जो प्रकाशन कियो हे वाकूं ठीक तरहसु समझ लें तो आधुनिक पुष्टिमार्गके शरीरमें कॅन्सर्के वायरस्की तरह घुसे (१) वल्लभपंथ और (२) गोस्वामिपंथ, दोनोंकी अप्रामाणिकता उघाडी पड़ जाये.

वल्लभपंथी कहें के जिनके लिये मारग प्रकट कियो ऐसे दामोदरदासजीने श्रीकृष्णसेवा नहीं करी यासू कृष्णसेवा अनावश्यक हे सो या मारगमें वल्लभ ही सर्वस्व हे.

गोस्वामिपंथी कहें के जिन दामोदरदासजीके लिये मारग प्रकट करवेकु प्रथम ब्रह्मसम्बन्ध दियो पर श्रीकृष्णसेवा नहीं पधराई यासू कोई सेवा करे के नहीं सबकु ब्रह्मसम्बन्ध देनो चाहिये.

यामें तथ्य ये हे के श्रीकृष्णभक्तिको मार्ग प्रकट करवेकु, जैसे महाप्रभुने अपने भूतलपे प्रकट बिराजवेके ५२वर्षमेंसु ३०-३३ वर्ष भगवद्

विप्रयोगात्मिका कथाके अवलंबनसु व्यतीत किये गोपिकान्की तरह **''गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः, कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान्....एवं महोदयाः''** (भाग.पुरा.१०।३२।१-२६) ऐसे ही श्रीवल्लभ-दामोदरदासके बीच युगलगीत चलते रहतो हतो. श्रीआचार्यजी श्रीभागवत अहर्निस देखते, कथा कहते और दामोदरदास सुनते और मारगको सब सिद्धान्त, भगवल्लीला को रहस्य श्रीआचार्यजीने दामोदरदासजीके हृदय विषे स्थाप्यो. हृदय विषे मारग स्थापि कितेक दिन पाछे गुसांईजीने अक्काजीसु पूछ्यो ''जो श्रीआचार्यजीने मार्ग प्रकट कियो हे सो उत्सवको कहा प्रकार हे?'' तब अक्काजीने कह्यो ''जो मारग तथा उत्सवप्रकार सब दामोदरदासजीसों कह्यो हें सो उनसो पूछो. तुमसो सब दामोदरदासजी कहेंगे.'' महाप्रभुने स्वमार्गीय सिद्धान्तरहस्य और भगवल्लीलारहस्य ही दामोदरदासजीके हृदयमें स्थापित कियो हतो, स्वमाहात्म्यरहस्य या स्वलीलारहस्य नहीं! ये भी केवल एक जन्मकी अवधिमें सीमित नहीं परन्तु दस जन्मके श्रीकृष्णसेवाके अन्तरायमें भगवद्विप्रयोगात्मिका स्वमार्गसिद्धान्तरहस्य और भगवल्लीला (नकि आचार्यलीला) रहस्यकु हृदयमें संजोये रखके **''भुविभक्तिप्रचारैककृतेस्वान्वयकृत् पिता''** (सर्वो.६२-६३) महाप्रभुके वंशजन्की बाल्यावस्थामें उनकु कृष्णसेवापर दम्भादिरहित भागवततत्त्वज्ञ बनाते रहें, आचार्यचरणके उत्तराधिकारके साथ. जैसे आजकल अपने विल्के एग़्जक्यूटर् एपोइन्ट् करें ऐसे!

वा जन्ममें दामोदरदासजीने प्रभुचरणकु श्रीकृष्णके प्रति समर्पित होवेके सिद्धान्तरहस्य और श्रीकृष्णकी व्रजलीलाके शृंगाररसमंडन आदि कृष्णलीलात्मक ग्रन्थमें वर्णित लीलारहस्य समझाके कितनी सच्चाईसु अपने महाप्रभुके विल्के एग़्जक्यूटर् होवेको रोल् निभाके कियो! यासू केवल दस जन्म अथवा दसगुने दस जन्मके अन्तरायकु भी सहन करके जब भी कोई पुष्टिमार्गीय वैष्णव (वल्लभपंथ या गुसांईपंथके पाषंडमें फंसे बिना) महाप्रभुके वंशज हम गोस्वामिबालकन्कु साकारब्रह्मवादी सिद्धान्तरहस्य और पुष्टिभक्ति प्रकट करवेवालो भगवल्लीलाको रहस्य

समझावेवालो या पुष्टिमार्गके अनुगामीनूके बुद्धि और हृदय महाप्रभु श्रीवल्लभ और दामोदरदास के बीच चलती **''वेणुगीत पुनि युगलगीतकी रसवरखा वर्षाई''** करवातो रहेगो.

ये अभी हो नहीं रही हे याकी गवाही वल्लभपंथ और गुसांईपंथ के पाषंड दे रहे हें! यासु कथापक्षमें विप्रयोगको अनुभव करवेवाले महाप्रभु-दामोदरदासजीकी जोडीके युगलगीत गाते रहवेके निजानुभवके प्रामाण्यके आधारपे महाप्रभुने **''सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिः दृढा भवेत्, यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापि इति मतिः मम''** (भक्तिव.९) आज्ञा करी हे. ऐसो लगे हे के वल्लभपंथ और गुसांईपंथ पुष्टिमार्गके पांचसो बरस पूरे करवेकु ही प्रकट भये हें! इन दोनों पंथनूमें वल्लभपंथी यों माने हें के कृष्णभक्ति करवेसु अन्याश्रय हो जाये यासू केवल वल्लभवाणीको पारायण करते रहनो चहिये. गुसांईपंथी यों माने और बहकावे के ग्रन्थनूकु पढ़वेसु भगवद्विमुखिता बढ़े. यासु कृष्णभक्तिके व्यावसायिक प्रदर्शनार्थ चलती हवेलीनूमें दर्शन भेट-सामग्री मनोरथ और प्रसाद की पंचधा भगतिके अलावा पुष्टिभक्तिमार्गीयनूकु और कुछ कर्तव्य नहीं हे. अपनी दुर्मति ''लोभी गुरु और अन्धे चेला दोनों नरकमें ठेलमठेला'' ही हे!

जाके लिए मारग प्रकट कियो वाने तो सेवा नहीं करी. वो तो महाप्रभुजीके पीछे-पीछे फिरते रहे. जिनकु महाप्रभुजीने ये आज्ञा करी के जब तक पुष्टिमार्ग हे, तब तक तुम प्रकट होते रहोगे, उन दामोदरदासजीने सेवा नहीं करी.

(आचार्यचरण स्वभक्तिके अनुरोध नहीं करे हें)

आप लोगनूके तो सौभाग्य हें के यहाँ ऐसे-ऐसे विचित्र पंथ अभी प्रकट नहीं भये हें पर गुजरातमें प्रकट्यो वल्लभपंथ कहे हे के ''कृष्णकु मत मानों, महाप्रभुजीकु मानों'' वामें कारण क्या? तो कहें के ''दामोदरदास. ये मार्ग दामोदरदासके लिए प्रकट कियो,

और दामोदरदासने कृष्णसेवा नहीं करी तो अपनुकु काहेकु कृष्णसेवा करनी? याके लिए वल्लभ ही सब कछु हे". वामें उनकु पूछें तो यों और केह दे के "वल्लभके तो रोम-रोममें कोटि गोवर्धननाथ" हद हो गई शराफतकी. अरे "वल्लभके रोम-रोममें कोटि गोवर्धननाथ" याको अर्थ हे के वल्लभको रोम रोम गोवर्धननाथमय हे. वाको अर्थ ये नहीं के उस्तरा लेके बस रोमुकु शेव् कर दो. ऐसे-ऐसे बेवकूफ दुनियामें हें. एक खोजो हजार मिलते हें. ऐसे-ऐसे भी पंथ चले जो कहे के कृष्णकु माननो ही नहीं, महाप्रभुजीकु मानों, महाप्रभुजीकी भक्ति करो, कृष्णकी भक्ति करी तो अन्याश्रय हो जायगो!

एक बात समझो के महाप्रभुजीने दामोदरदासकु अपने साथ हर बखत क्यों रख्यो? वार्ता या बातको स्पष्ट प्रमाण हे के महाप्रभुजी लगभग तीस वर्षकी वय तक भारतकी परिक्रमामें हते. घरमें नहीं बिराजते हतें. आप कथाको कल्प करते हतें. वा बखत महाप्रभुजीकी जो जीवनचर्या हती, इन वार्तानुमें वाको वर्णन या ढंगसु आवे हे के आपके पास एक शालिग्रामजी बिराजते हतें, जिनकी आप षोड़शोपचार पूजा करते हतें. एक भागवतजी बिराजते हतें पोथीरूपमें, जाको पारायण और पूजन आपश्री नित्य करतें. क्योंके आप स्वयंपाकी हतें, जो कछु भी सामग्री आप सिद्ध करतें, वाकु शालिग्रामजी और भागवतजी कु भोग धरिके लेते हतें. सेवाको कोई क्रम वा समय आपको हतो नहीं. सेवाको क्रम जब महाप्रभुजीने विवाह कियो, तबसु शुरु भयो. यासु महाप्रभुजीकी वार्तामें स्पष्ट उल्लेख आवे हे के कोई ऐसी शांत जगह खोजनी जहाँ लोगनको ऊधम नहीं होय, धांधल नहीं होय. शांत चित्तसु ठाकुरजीकी सेवा हो सके. क्योंके श्रीनाथजीने आज्ञा करी के विवाह करो और महाप्रभुजीको सिद्धांत हतो के विवाह या लिए नहीं करनो के अपनुकु दाम्पत्य सुख भोगनो हे. विवाह या लिए करनो के कृष्णसेवामें एक जीवनसाथी मिल रह्यो हे. जब वा प्रकारको आपने घर मांड्यो, तब तो घरको ठाकुर होनो ही

चहिये. जैसे सूरदासजीने कही के "**यामें कहा घटेगो तेरो, नंद नंदन कर घरको ठाकुर आप होय रहे चेरो.**" जब आपने घर मांड्यो तब आपने श्रीठाकुरजीकी सेवाको क्रम शुरु कियो. वा दरमियान भी कईयनुकु ठाकुरजी पधराये हतें. कईयनुकु सेवामार्गमें प्रवृत्त भी किये हतें. ब्रह्मसंबंधकी आज्ञाके बाद व्यवस्थित पुष्टिमार्गको प्रचार शुरु भयो. या लिए वार्तामें स्पष्ट ऐसे उल्लेख आवे हे के थोड़ी-थोड़ी देरमें महाप्रभुजी दामोदरदाससु केहते के "**दमला! बहुत अबेर भयी, कछु भगवच्चर्चा करें.**"

(दामोदरदासजीकी परावस्था)

दामोदरदासजी और महाप्रभुजी निरंतर मिलके युगलगीतके जैसी भगवत्चर्चा करते हतें और स्पष्ट याको उल्लेख आवे हे के दामोदरदासजीकु मानसी सिद्ध हो गई हती. वे निरंतर मानसीसेवा तो करते ही हतें. अब बाहर ठाकुरजी नहीं पधराये. यासु अपन् यों समझें के उनने कृष्णसेवा नहीं करी. पर महाप्रभुजीके साथ भगवल्लीला भगवत्कथा भगवत्सेवाकी कथा भगवद्गुणगान करते-करते उनकु मानसी सिद्ध हो गई हती. याके कारण मानसीसेवा करते ही हतें. उनने कृष्णसेवा नहीं करी, ये सोचनो भी गलत हे. ऐसे ऐसे कई उलूल-जुलूल हेतु खोजते रहे हें. संस्कृतमें एक कहावत हे "**शिवद्वेषे तात्पर्यम्**" विष्णुभक्ति नहीं करनी हे, शिवके साथ द्वेष करनो हे. शिवभक्ति नहीं करनी हे, विष्णुके साथ द्वेष करनो हे. आवश्यकता शिव और विष्णु के साथ द्वेष करवेकी नहीं अपितु भक्ति करवेकी हे.

(महाप्रभुजीको भाव कृष्णकु एकान्तिक आराध्य देव माननो हे)

अपने यहाँ जब भी अनन्यभक्तिको उपदेश दियो गयो, तो या लिए नहीं के दूसरे देवके साथ द्वेष करें, पर या लिए के अपन् इष्टदेवमें इतने तन्मय हो जावें के जैसे तन्मय सूरदासजी महाप्रभुजीके समझावेके बाद हो गये. महाप्रभुजीके पद भी गावेकी उनकु याद नहीं आयी. वा तरहकी जो तन्मयता हे "**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां**

ये जनाः पर्युपासते'' (भग.गीता.९।२२) गीताकु देखोगे तो निरंतर भगवान्ने या बातपे सावधानीसु भार दियो हे. प्राचीन कालमें अपने यहाँ पंचदेव सर्वदेव और एकदेव कई तरहकी पूजा हती. इतने प्रकार, देवपूजनके हतें. तो ये तो पूजककु नक्की करनो चहिये के वाकु कौनसो प्रकार पूजनको अपनानो हे. जैसे द्रोपदीकु पांच पति हते पर सुभद्राके हिडंबाके पांच पति नहीं हते. एक ही पति हतो.

वो एकांतिक भक्तिको प्रकार हतो. पांच पांडवकी तरह अपने यहाँ पंचदेव-उपासनाको भी प्रकार हतो के पंचदेवकी उपासना करो. ऐसे एक ब्रह्मके अद्वैतभावसु सर्वदेव-उपासनाको भी प्रकार हतो. अब ये तो उपासककु नक्की करनो हे के कितने देवन्की उपासना करनी हे. जैसे सर्वदेवउपासकके लिए स्पष्ट ऐसो उल्लेख आवे हे के जो श्रौत सर्वदेवके उपासक हते वो स्मार्तदेवन्की उपासना नहीं करते हते. वो गामदेवन्की लोकदेवन्की उपासना नहीं करते हते. ऐसे भी आवे हे के कुछ लोग श्रोतदेव स्मार्तदेव ग्रामदेव कुलदेव सबकी उपासना करते. ये तो उपासककु नक्की करनो हे, द्रोपदीकी तरह के कितने देवकी उपासना करनी हे. एककी दोकी तैतींसकी या तैतीस करोड़की!

कोई एकांतिक रूपसु महाप्रभुजीकी उपासना करे, तो करो भले. कोई एकांतिक रूपसु कृष्णकी उपासना करे, तो करो भले, पर महाप्रभुजीको उपदेश ऐसो कहीं भी नहीं हे के मेरी ही उपासना करो. महाप्रभुजीको उपदेश केवल साफ-सुथरो ये हे के ''**सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन**'' (चतुश्लोकी.१) याके अलावा अपनो कोई धर्म नहीं हे. महाप्रभुजी केह रहे हें 'अपनो' माने कौनको? जिनकु महाप्रभुजी कंठी दे रहे हें. जो कंठी महाप्रभुजीके नामकी बांध रहे हे, उनके लिए यह बात यहाँ कही हे. सारी दुनियाकु, सारे गामकु नहीं क्योंके महाप्रभुजी स्वयं या बातकु जानें हें. अपने यहाँ गुसांईजीकी वार्तामें बहोत सुंदर प्रसंग आवे

हे के जब तुलसीदासजीने कृष्णके पद गाये तब गुसांईजीने उनकु ये बात कही के जैसे तुम कृष्णके पद गा रहे हो, ऐसे तो हमारे यहाँ बहोत हें पर जैसे तुम रामके पद गा रहे हो, ऐसो सारे विश्वमें कोई नहीं हे यासु तुम रामके ही पद गाओ. ये देखो अनन्यभक्तिको उपदेश हे. तुलसीदासजी जैसो बड़ो कवि अपने पास आयो हे, तो चलो उनकु अपने तरफ लेके उनसु कृष्णके पद गवाओ. (छीना-झपटीकी बात नहीं हती) अपने प्राचीन आचार्यन्में ये माद्दा हतो के तुलसीदासजी जैसे रामभक्तकु ये केह सकते हतें के तुम रामके ही पद गाओ. तुम रामके पद गा रहे हो तो रामकी शोभा हे और वा रामकी शोभासु तुम्हारी शोभा हे. व्यर्थमें तुम क्यों अपनी अनन्यासक्ति छोड़ो हो! जब तुमकु इतनी अनन्यासक्ति हे के ''**कहा कहों छबि आजकी, भले बने हो नाथ. तुलसी मस्तक तब नमे धनुष बाण लेऊ हाथ.**''

फिर कृष्णके पद क्यों गाने? क्योंके गाम गा रह्यो हे, तो गाम तो कुछ भी गायेगो. गाम नमाज़ पढ़ रह्यो हे तो कया अपने नमाज़ पढ़नी? गामको सवाल नहीं हे अनन्यासक्तिको भक्तिको सवाल हे. यदि तुलसीदासजी यों केहते के नहीं मैं राम और कृष्ण दोनोंको भक्त हूँ, तो कोई बुरी बात नहीं हे के चलो तुम रामके भी गाओ और कृष्णके भी गाओ.

अपने यहाँ या तरहकी व्यवस्था हती. जैसे महाराष्ट्रमें कुछ पंथ हें, जो 'हरिहरपंथ' केहवावे. मानें जो हरिकी भी उपासना करें और हरकी भी करें. यूपीमें हरिहरक्षेत्र भी हे. ऐसे पंचदेव उपासनाको भी प्रकार हतो. कोई करतो होय तो भले करे पर सिद्धांत अपनो एकदम साफ हे के यदि एकांतिक भक्ति करनी हे तो इष्टदेवता एक ही होनो चहिये. और वा इष्टदेवताके एक होवेके तहत कोई दूसरेको अनादरको भाव नहीं हे. जैसे कृष्ण अपनो इष्टदेव हे, याको

अर्थ यह नहीं हे के शिवको या दूसरे देवको अपन् अनादर करें. वाको अर्थ ये हे कृष्णके अलावा तुमकु कछु सूझनो नहीं चहिये. जब तुमकु कछु सूझ रह्यो हे तो जैसे मीराकी कथामें आवे हे के जब जीव गोस्वामीसु मीरा मिलवे गयी हती और मीराने कही के "मैं दर्शन करवे आनो चाहूँ" और जीव गोस्वामीने कही के "मैं स्त्रीको मुख नहीं देखूँ" तब मीराने एक सटीक बात केह दी के "मैं तो समझती हती के वृंदावनमें कृष्णके अलावा कोई पुरुष हे ही नहीं. तुम दूसरे पुरुष कहाँसु आ गये!" तो कृष्णकु एकांतिक पुरुष मानवेको मीराको जो एक भाव हे, वो वाकी भक्तिको भाव हे. ऐसे ही कृष्णकु ही एकांतिक आराध्य मानवेको अपनो पुष्टिमार्गीय भाव हे. वाके लिए ही महाप्रभुजी यों केह हें **"सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः, स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन"**.

याके तहत महाप्रभुजीने हर समय अपनी बात साफ रखी हे. पर प्रकट सेवा दामोदरदासने नहीं करी, वाको अर्थ ऐसो लेनो के दामोदरदास, जिनके लिए यह मार्ग प्रकट कियो, जब वो सेवा नहीं करते हते तो हम क्यों कृष्णसेवा घरमें करें! ऐसे लफड़ा हम क्यों घरमें घुसावें. तुमकु सेवा नहीं करनी हे तो मत करो पर ये बात अपने मनमें साफ रखो के तुम महाप्रभुजीके उपदेशनको सिद्धांतनको अनुसरण नहीं कर रहे हो. महाप्रभुजीके सिद्धांतनको, षोडशग्रंथ कथित उपदेशनको अनुसरण यदि करनो हे, तो **"सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन."** (चतु.१)

अब ये बात सच हे के वो कृष्णसेवा तनुवित्तजाके रूपमें भी हो सके और मानसीके रूपमें भी हो सके हे. वो कृष्णसेवा कथात्मिका भी हो सके हे और कृष्णसेवाके रूपमें नहीं तो कृष्णकी शरणागतिके रूपमें भी कृष्णके प्रति अपनी अनन्यता निभ सके हे. सेवामें कृष्णकी अनन्यता, भक्तिमें कृष्णकी अनन्यता या शरणागतिमें

कृष्णकी अनन्यता. जाकु गीतामें भगवान् आज्ञा करे हें के **"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज, अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः"** (भग.गीता १८।६६) ये शरणागतिकी अनन्यता हे. ये प्रकार हतो.

(महाप्रभुजीके जीवनसंगी दामोदरदासजी)

दामोदरदासजी या प्रकारके महाप्रभुजीके संगी हतें. वैसे तो महालक्ष्मीजी जीवनसंगिनी हती पर महालक्ष्मीजी यदि जीवनसंगिनी हतें, तो ये जीवनसंगी हतें. वाको स्पष्ट प्रमाण अपनेकु वार्तानमें मिले हे के आचार्यचरणने काशी पधारके जब देहत्यागकी इच्छा प्रकट करवेको संकल्प कियो तब दामोदरदासजीने कही के चलो मैं भी आ रह्यो हूँ. तब महाप्रभुजीने उनकु ना कही के नहीं तुमकु अभी रुकनो हे. क्योंके श्रीगोपीनाथजी श्रीविट्ठलनाथजी बिराज रहे हतें, उनकु मार्गके रहस्य समझाने हते. महाप्रभुजीकी आज्ञासु दामोदरदासजी रुके, वरना दामोदरदासजीको जो स्वरूप हे, वो अपन् या बातसु समझ सकें के भाईयनमें संपत्तिको बंटवारा जा बखत हो रह्यो हतो, वा समय वा बटवारामें कोई भी तरहको रस लिए बिना, दामोदरदासजी झरोखामें बाहरकी ओर झांक रहे हतें. और जब सामनेसु देख्यो के महाप्रभुजी पधारें तो झरोखामेंसु कूदके नीचे पहुंच गये और श्रीमहाप्रभुजीने उनकु कहीं के "तू आ गयो!" कोई अचानक पूछे के "तू आ गयो" मतलब महाप्रभुजी भी तो बाट देख ही रहे हतें के दामोदरदासजी कब आवें! और दामोदरदासजी महाप्रभुजीकी ही बाट देख रहे हतें, सम्पत्तिके बंटवाराकी बाट नहीं देख रहे हते. दोनोंके संबंध कितने घनिष्ठ हतें! दोनों कैसे एक-दूसरेके पूरक हतें! दोनों एक-दूसरेकु कैसे भगवत्कथामें सहायक होते हते!

क्योंके नवधाभक्तिमें, श्रवण कीर्तन और स्मरण, ये तीन कथाभक्तिके पेहलु हें. और पादसेवन अर्चन और वंदन ये सेवाभक्तिके पेहलु हें. भारतवर्षके तीर्थनकी यात्रामें दामोदरदासजी महाप्रभुजीके कृष्णकथारूपा

भक्तिमार्गके यात्रासंगी हते. महालक्ष्मीजीसु गार्हस्थ्य स्वीकारके महाप्रभुजीने अड़ैलमें स्थिरवास कियो वामें महाप्रभुजीकी कृष्णसेवारूपा भक्तिमय जीवनकी जीवनसंगनी हतें. दास्य सख्य और आत्मनिवेदन ये स्नेहात्मिका भक्तिके पेहलु हें. लिहाजा अपन् इनकु वाचिक कायिक और मानसिक, ऐसे तीन रूपसु देख सकें. ऐसे नवधाभक्तिमें प्रथम तीन वाचिकभक्ति हें. 'श्रवण' मानें सुननो. सुननो ही नहीं, केहनो भी. कहनो ही नहीं, स्मरण भी करनो. स्मरण नहीं भयो तो वो कथाभक्ति फलित नहीं भयी. सुननो और केहनो या ढंगसु के अपनकु अखंड स्मरण सिद्ध होवे.

ऐसे ही पादसेवन अर्चन और वंदन करवेकी प्रणाली ही ये हे के अर्चनके पहले और बादमें अपनेमें अखंड दैन्य सिद्ध होवे. और केवल दैन्य ही नहीं पर दास्य सख्य और आत्मनिवेदनात्मक मानसिक वृत्तिएँ भी प्रभुके साथ तन्मय हो जाएं. या तरहसु नवधाभक्तिको प्रयोग हतो. वामें श्रवण-कीर्तनको जो प्रयोग हे, वा प्रयोगमें दोनों कैसे एक-दूसरेके पूरक हतें! कैसे महाप्रभुजी कथा करते और दामोदरदासजी सुनते. कैसे दामोदरदासजी कथा करतें और महाप्रभुजी सुनतें. दोनों ठाकुरजीकी कथा करतें सुनतें, अखिल भारतको भ्रमण करते हतें. घरमें दास्य सख्य और आत्मनिवेदन के भावनसू किये जाते भगवद् अर्चन-पादसेवन-वंदनमें महालक्ष्मीजी पूरक कैसे थी!

(जीवनसंगीके लिये पुष्टिमार्गको प्राकट्य)

या तरीकेकी दोनोंकी घनिष्ठता हती, और वो घनिष्ठताकु लक्ष्यमें रखकें महाप्रभुजीने ये बात कही के **"दमला ये मार्ग मैंने तेरे लिये प्रकट कियो हे"** उनके बारेमें ऐसे सोचनो के उनने सेवा नहीं करी!! उनने केवल कृष्णसेवा ही करी हे. पर मानसी उनकु सिद्ध हती. या श्रवण कथन के कारण उनकु कृष्णको अखंड स्मरण सिद्ध हतो. या दृष्टिसु देखोगे तो बहोत सारी गलत धारणाएं दूर हो जायगी.

(साकारब्रह्मवादी पुष्टिमार्गको रहस्य-ब्रह्मसंबंध)

महाप्रभुजीने गोकुलमें **"श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि, साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते. ब्रह्म-संबंध-करणात् सर्वेषां देह-जीवयोः सर्व-दोष-निवृत्तिः हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः"** (सि.र.१-२) ये जो सिद्धांतरहस्यमें बात बताई. जब प्रभु प्रकट भये, वा समय महाप्रभुजी ये चिंता कर रहे हतें के जीव कुछ न कुछ अपनी खामीनसु भर्यो भयो हे और कृष्ण सर्वथा परिपूर्ण हे. इन दोनोंनकु सेव्य-सेवकभावसु, या प्रिय और प्रेमी के भावसु कैसे जोड़यो जा सके हे. याकी चिंता जब महाप्रभुजीकु भयी तब प्रभुने स्वयं प्रकट होके वाको निराकरण बतायो के आत्मनिवेदनकी प्रक्रिया ऐसी हे, ब्रह्मसंबंधकी प्रक्रिया ऐसी हे के जा प्रक्रियासु जुड़वेपे ये दोष हें, ये मिट जायेंगे के नहीं मिटेंगे, सवाल या बातको नहीं हे, पर ये दोष एक-दूसरेसु जुड़वेमें बाधक नहीं हो सकेंगे. जैसे अपन् लकड़ाके टेबलपे खड़े होकें बिजलीको तार छुएं तो करन्ट् आनो बंद नहीं हो जाय, पर करन्ट् लगनो बंद हो जाय हे. करन्ट् जो आ रह्यो हे सो तो आ ही रह्यो हे. जमीनमें खड़े रहेंगे तो करन्ट् लगेगो और वोही लकड़ाके टेबलपे खड़े होंगे तो लकड़ाके टेबलमें ये खासियत हे के अपनकु करन्ट् लगनो बंद हो जाय हे.

ऐसे आत्मनिवेदनकी या ब्रह्मसंबंधकी प्रक्रिया ऐसी हे के जाके कारण अपने दोष और प्रभुकी निर्दोषता आपसमें जुड़वेमें कोई वस्तु बाधक नहीं होवे हे. या आत्मनिवेदनके कारण प्रभुकी निर्दोषता अपनसु जुड़वेमें और अपनी सदोषता प्रभुसु जुड़वेमें बाधक नहीं होवे हे. अपनसु जुड़वेमें प्रभुकी निर्दोषता खो नहीं जावे. प्रभुसु जुड़वेमें अपनी सदोषता मिट नहीं जावे पर दोनोंके जुड़वेमें ये बाधक नहीं हो रह्यो हे. जैसे पानी पानी हे और आटा आटा हे पर दोनोंनकु जा बखत मिला दो, तो आटामें कुछ पानीको गुण आ जाय और पानीमें आटाको गुण आ जाय. दोनों मिल जाय एक-दूसरेसु, तो उनके मिलवेमें कछु बाधकता नहीं रेह जाय हे. या तरहसु अपन्

यदि बालूकु और पानीकु मिलावें तो मिलेगो नहीं. बालूको आटा गूंथ्यो नहीं जा सके क्योंके आटामें पानीसु मिलवेको और पानीमें आटासु मिलवेको गुण हे, वो बालूमें नहीं हे. थोड़ी देर बालू गीली रहेगी, फिर शालिग्रामजीकी तरह पाछें सूखीकी सूखी रहेगी, ऐसे ब्रह्मसंबंधकी प्रक्रियासु सदोष और निर्दोष, जीवात्मा और परमात्मा, ब्रह्म और जीव आपसमें मिल सके हें. आटा सॉलिड़ हे और पानी लिक्वीड़ हे पर दोनों एक दूसरेसु गूंथे जा सके हें. **"अपनो मन और वा ढोटाको एकमेक करि सान्यो."** आत्मनिवेदनकी प्रक्रियासु दोनोनूकु गूंथ्यो जा सके हे. याके लिए ही प्रभुने आज्ञा करी के तुम उनकु ब्रह्मसंबंध कराओ. ब्रह्मसंबंध करावेसु जैसो भी जीव हे वैसो मेरी सेवाके लिए लायक हो जायेगो. मैं जितनो भी निर्दोष होऊँ, होऊँगो निर्दोष, और वो कैसो भी दोषयुक्त होय, होयगो सदोष, पर वाकी सेवा स्वीकारवेके लिए मैं बंधवेकु तैयार हूँ. मेरी निर्दोषताको विचार मैं या बारेमें नहीं करूँगो.

प्रभु सदोष नहीं होवे जा रहे हें. जीव निर्दोष नहीं हो जा रह्यो हे. पर उनकी निर्दोषता और अपनी सदोषता एक-दूसरेसु जुड़वेमें बाधक नहीं हो रही हे. एक-दूसरेसु जुड़वेमें साधक हो जा रही हे. वा तरीकेको प्रकार ब्रह्मसंबंधको हे. और वो आज्ञा प्रभुने महाप्रभुजीकु करी. **"यातें ही महाप्रभुजीने रातकु अचानक दामोदरदासजीकु पूछ्यो, दमला तें कछु सुन्यो? तब दामोदरदासने कही जो महाराज! मैने ठाकुरजीके वचन सुने तो सही पर समुझ्यो नाहीं. तब महाप्रभुजीने कही, जो मोकों ठाकुरजीने आज्ञा कीनी हे, 'जो तुम जीवनूकु ब्रह्मसंबंध कराओ, तिनको हों अंगीकार करूँगो. और जिनकों तुम नाम देओगे तिनके सकल दोष निवृत्त होयेंगे. तातें ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो'"**

ये एक वचनामृत दामोदरदासजीकी वार्तामेंसु निकलके आ रह्यो हे. यामें एक सूक्ति हे, वा सूक्तिको विचार अपन् या तरहसु करेंगे.

❀✻❀

प्रकरण : २ भगवद्‌दत्त सांप्रदायिक साधना

(महाप्रभुजीको समर्पणको सिद्धान्त भगवतद्‌दत्त)

अपनूने पहले वचनामृतकी भूमिकाके रूपमें दामोदरदासजीसु महाप्रभुजीको ये प्रश्न के **"दमला तें कछु सुन्यो?** तब दामोदरदासने कही के **"महाराज! मैंने सुन्यो तो सही परि समुझ्यो नाहीं"** तब श्रीआचार्यजी आप कहें के **"मोकों श्रीठाकुरजीने आज्ञा दीनी हे के तुम जिन जीवनूकों ब्रह्मसंबंध कराओगे, तिनकों हों अंगीकार करूंगो और जिनकों तुम नाम देओगे, तिनके सकल दोष निवृत्त होयेंगे. तातें ब्रह्मसंबंध अवश्य करनों"** वार्तामें आतो भयो ये पहेलो वचनामृत हे. बहुत छोटो सो वचनामृत हे पर बहुत सारी बातें महाप्रभुजीने यामें प्रकट करी हें.

सबसु पहले तो एक बात के **"मोकु श्रीठाकुरजीने आज्ञा कीनी हे."** दूसरी बात **"जिनकु तुम ब्रह्मसंबंध कराओगे तिनको हों अंगीकार करूँगो."** और तीसरी बात **"जिनकु तुम नाम देओगे, तिनके सकल दोष निवृत्त होंयगे."** ये बात जो ठाकुरजीने आज्ञा करी वाको महाप्रभुजीने निष्कर्ष ये निकाल्यो के **"तातें ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो."** जो कुछ महाप्रभुजीको सिद्धांत हतो, वा सिद्धांतके अनुरूप ही प्रभुकी आज्ञा भई. और कोई ऐसी आज्ञा नहीं भई के जो महाप्रभुजी इतने तीस बरससु अपनी बात समझाते आये, वामें अचानक कोई नयो मोड़ आ गयो होय. भारतभरमें परिभ्रमण करि करिकें महाप्रभुजी जो बात समजाते आये हते वोही बातकु प्रभुकी आज्ञाने थोड़ो सरल, सुगम बनायो हे.

(उपनिषद्‌में वर्णित समर्पण)

ये बात क्या महाप्रभुजी अपनी बुद्धिसु भी समझ सकते हतें! बुद्धिसु समझके भी ब्रह्मसंबंध दे सकते हतें क्योंके ब्रह्मसंबंधके मूलमें जा बातको प्रारंभ हे, वो बात शास्त्रनूमें गीतामें उपनिषद्‌में ब्रह्मसूत्रमें

भागवतमें सब जगह कही ही गयी हे. उपनिषद्में यों कह्यो हे के सब कुछ परमात्माके प्रति समर्पित ही हे. वाको बहोत सुंदर उदाहरण उपनिषद् यों देवे हे के रथके पहियामें जितने आराएं होवें, वो सब अपने केन्द्रकी ओर समर्पित ही होवे हें. ऐसे जीव मात्र परमात्माके प्रति समर्पित हे ही. **''अयम् आत्मा सर्वेषां भूतानाम् अधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा. तद् यथा रथनाभौ रथनेमौ चाराः सर्वे समर्पिताः एवम् अस्मिन् आत्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एत आत्मानः समर्पिताः''** (बृह.उप.२।५।१५)

(भागवतमें वर्णित समर्पण)

भागवत बहोत सुंदर या बातकु समझावे हे. **''कथम् अयथा भवन्ति भुवि दत्त-पदानि नृणाम्''** (भाग.पुरा.१०।८४।१५) जो व्यक्ति पृथ्वीपे खड़ो हे, वो आदमी पूरबमें पश्चिममें उत्तरमें दक्षिणमें, कहीं भी पैर उछाले, पर हर दिशामें उछलो भयो पैर, पाछें पड़ेगो जमीनपे ही. पृथ्वीपे खड़े भये व्यक्तिकु अलग अलग दिशामें पैर उछालवेकी स्वतंत्रता हे. वो स्वतंत्रता प्रभुने अपनकु दी हे. कोई भी दिशामें तुम पैर उछाल सको हो, पर हर उछले भये पैरकु टिकनो तो जमीनपे ही हे. ऐसो नहीं हो सके हे के जमीनके अलावा और कोई दिशामें पैर टिक्यो भयो रेह जाय. समर्पणको मूल सिद्धांत तो ये ही हे और या सिद्धांतसु महाप्रभुजी परिचित नहीं होय ऐसी बात भी नहीं हे. क्योंके महाप्रभुजी भगवानके मुखारविंदके अवतार हें, या बातकु एक बखत अपन् भूल भी जाय पर एक आचार्यके रूपमें, एक वेदके सघन अभ्यास करवेवालेके रूपमें, आपने शास्त्रनको अध्ययन चिंतन अवलोकन मंथन और उनके भाष्यनको निरूपण कियो ही हे. जब अपनकु भी ये बात यदि पता चले हे, तो महाप्रभुजीकु याको ज्ञान होय, यामें आश्चर्यकी बात कुछ नहीं हे.

(गीतामें वर्णित समर्पण)

गीतामें भगवान् आज्ञा करे हें **''यत् करोषि यद् अश्नासि यज्**

जुहोसि ददासि यत् तपस्यसि कौन्तेय! तत् कुरुष्व मदर्पणम्'' (भग.गीता.९।२७) जो कुछ तुम कर रहे हो वो तुम मोकु अर्पित करो. ये वचन महाप्रभुजीसु छिप्यो तो नहीं हो सके हे पर महाप्रभुजीने अपनी समझके आधारपे ब्रह्मसंबंधकी दीक्षा देनी शुरु नहीं करी क्योंके समझ अपनी हे, और अपनी समझके आधारपे व्यक्ति चले, तो चल भी सके हे, वामें कुछ गलत नहीं हे.

(धर्मनिरपेक्षताको दूषण)

पर अपने भारतकी एक प्राचीन प्रणाली रही हे जो अब खंडित होनी शुरु भई हे और खास तोरपे ये धर्मनिरपेक्ष भारत जबसु भयो. अपने संविधानमें वा तरीकाको उल्लेख आ गयो. बच्चानकु स्कूलसु लेके कॉलेजके लेवल् तक लगातार या बातके सिरपे हथौड़ा मारे जाय हें. तो हर व्यक्तिमें, हर संप्रदायके अनुयायीमें धीरे-धीरे धर्मनिरपेक्षताको भाव प्रबल होतो जा रह्यो हे. कोई धंधानिरपेक्ष राजनीतिनिरपेक्ष अर्थनिरपेक्ष कामनिरपेक्ष नहीं होवे. मोक्षकी तो कथा ही अलग हे. पर धर्मनिरपेक्ष सब होनो चाहे हें. ये कोई अपने पुष्टिमार्गकी खासियत हे, ऐसी बात नहीं हे. हर सम्प्रदायमें ये कथा चल रही हे. मैं आपकु एक विलक्षण बात बताऊँ.

(स्वधर्मनिष्ठाविहीनता)

हमारे मुम्बईमें एक दिन दो-चार वैष्णव आये. और उनने मोकु कही के हम हर रविवार सत्संग करे हें और हमारे सत्संग मंडलको वार्षिक उत्सव हे तो आप पधारोगे? भई! वैष्णव आग्रह करे और वो भी सत्संगको वार्षिक उत्सव मनातो होय, वामें ना तो नहीं करी जाय. यासु मैंने उनसु केह दी के आयेंगे. जब मैं वहाँ गयो तो मेरे आश्चर्यको ठिकानो नहीं रह्यो. महाप्रभुजी श्रीनाथजी श्रीयमुनाजी सब अपने पुष्टिमार्गीय चित्र, पर सत्संग चल रह्यो हतो चिन्मयानन्दजीको, गीतापे. मैं गयो तो मोसु कही के आप चिन्मयानन्दजीकु भोग धरो

और प्रसाद सबकु बांटो. मैंने सोची के ये वैष्णवके यहाँ चलतो सत्संग हे के शांकरनूके यहाँ चलतो सत्संग हे? मैंने कही के आप रोज धरो हो तो आपको भाव दृढ़ हे यासु आप ही भोग धरो. मैं यहाँ बैठ्यो हूँ. उनके जो सॅक्रेटरी हते उनने मोसु कही के हमारे गुरुजी ऐसे आज्ञा करे हें के चिन्मयानन्दजीके ग्रंथ पढ़ने, दूसरेके नहीं पढ़ने, पर प्रवचन सबके सुनने, यासु हमने आपकु आमंत्रित कियो. मैंने कही के यमुनाजी महाप्रभुजी गुसांईजी को चित्र दीख रह्यो हे यहाँ, और तुम मोकु दूसरो समझ रहे हो. अब मैं तुमकु अपनो समझूँ के दूसरो, ये मेरी बुद्धिने तो काम करनो ही बंद कर दियो. उनने कही के अब आप प्रवचन करो. सच कहूँ के मैं विषयसुन्न हो गयो के या परिस्थितिमें क्या बोलूँ? पुष्टिमार्ग बोलूं के क्या बोलूँ? लिहाजा मैंने उनकूँ केह दियो के मोकु प्रवचनकी आदत नहीं हे, तुमकु कछु पूछनो होय तो पूछो वाको उत्तर देवेको प्रयास मैं करूँगो. उनने मोकु कही के पूछनो तो हमें कछु नहीं हे. पूछे तो हम अपने गुरुजीसु ही हें, चिन्मयानन्दजीसु. हमारी सारी शंकानूको समाधान हो गयो हे उनके द्वारा. हम तो बस वार्षिक उत्सव मना रहे हते तासु हमने आपकु आमंत्रित कियो हतो. मैंने कही चलो भई आपको बहोत आभार. तुम भी छुट्टे हम भी छुट्टे. उनकी जो कुछ ग्रंथ पढ़वेकी प्रक्रिया हती, वो उनने करी. वाके बाद मोकु विदा कियो. एक आदमीकु कही के महाराजकु पार्ला तक पहुँचाय आओ. मैंने कही "अजब पुष्टिमार्ग हे ये के जामें मैं परायो". घरमें महाप्रभुजी श्रीनाथजी श्रीयमुनाजी के चित्र और सत्संग हो रह्यो हे चिन्मयानन्दजीके ग्रंथको! पाछे दूसरे ग्रंथ पढ़ने ही नहीं और प्रवचन सबके सुनने, ऐसे उनके गुरुजी चिन्मयानन्दजीने आज्ञा करी. जो गाड़ीमें मोकु छोड़वे आये, उनसु मैंने हसके पूछी के आप भी वैष्णव हो? तो उनने कही के नहीं, हम तो जैन हें. फिर तो मेरी बुद्धि और चकरा गई. मैंने कही के आप जैन हो तो आप चिन्मयानन्दजीके सँटर्में क्यों सत्संग करवे आओ हो? आपके

जैन देरासरमें भी तो सत्संग होवे हे. उनने बड़ी अच्छी बात मोकु बतायी "ऐसो हे महाराज! ओफिस्सु जब हम छूटें, तो रस्तामें मैदानमें चिन्मयानन्दजीको प्रवचन होवे हे. एक-दो बखत कानमें मेरे उनके प्रवचन गये तो ऐसी-ऐसी हसवेकी बात वो करे के मजा आ जाय हे." कोई बातपे चिन्मयानन्दजी जोक सुनाते होंयगे अपने कोई केवलाद्वैतवादकु सरल समझायवेके लिए. उनको हेतु कोई चुटकुला सुनानो तो नहीं होयगो. वो कोई मिमक्री करवेवाले तो हते नहीं. वो उत्तम कोटिके विद्वान हते, अपने शांकरमतकी उत्तम कोटीकी सेवा करवेवाले हते. बड़े निष्ठाशील व्यक्ति हते पर दूसरो व्यक्ति वहाँ क्यों जा रह्यो हे याको सवाल हे. वो क्या कर रहे हें, याको सवाल नहीं हे. मैंने उनकु कही के भई चुटकुला तो आपके जैनमुनि भी अपने प्रवचनमें अच्छे सुनाते होंयगे. उनने कही के "महाराज! सुनाते होंयगे हमें क्या पता, हम तो कभी जावे ही नहीं हें." मैंने कही "लो ये और एक चमत्कार. जैन हे और जैन मुनिन्के प्रवचन सुनवे ही नहीं जावे! ये भी पता नहीं हे के जैन मुनि चुटकुला सुनावे के नहीं सुनावे." मैं घबरा गयो और वासु कही के वैसे तो जैनमत भी काफी गंभीर हे और हर जैनकु पढ़नो चहिये. वाने मोसु कही के "देखो महाराज! ये बात तो साफ हे के हमारे जैनमतसु श्रेष्ठ मत कोई दुनियामें हे ही नहीं." मैंने कही "यार अब तो हद हो गई. अब बोलवेको कोई धर्म रह्यो नहीं घर चुपचाप पहुँचवेमें ही भलाई हे." जैनमत सबसु श्रेष्ठ धर्म हे, जाननो नहीं हे जैनमतमें कछु. जानो हे चिन्मयानन्दजीके सत्संगमें. वो पाछें शांकरमत सुनवे-समझवेके लिए नहीं पर चुटकुला सुनवेके लिए और वो सॅन्टर् चल रह्यो हे पुष्टिमार्गीयिन्के घरमें! जहाँ महाप्रभुजी श्रीयमुनाजी श्रीनाथजी के चित्र लगे भये हें. मैंने कह्यो "ये द्रोपदी बहोत लोगन्की हे. जाके पाँच-पाँच पांडव हें. एक-दो नहीं हे. याको अब इलाज क्या?" ये सब धर्मनिरपेक्षताकी वृत्तिके कारण भयी हे. अपन् याकु बहुत सहज लेवे हें क्योंके अपन्के हृदयमें

धर्मकी निष्ठा खतम हो गयी हे.

जैनकु जैनधर्ममें निष्ठा नहीं हे, शैवकु शैवधर्ममें निष्ठा नहीं हे, वैष्णवकु वैष्णवधर्ममें निष्ठा नहीं हे, हिन्दुकु हिन्दुधर्ममें निष्ठा नहीं हे. और वो ही गति मुसलमानन्की हे. मुसलमानकु भी मुसलमानधर्ममें निष्ठा नहीं हे. क्योंके सब धर्मनिरपेक्ष हो गये. सबकु सब जगह जानो हे. जैसे सब सिनेमा अपन् देख सके हें. वामें अपन् यों नहीं सोचें के ये सिनेमा देखनो, ये सिनेमा क्यों नहीं देखनो? हर चलतो सिनेमा देखनो. टी.वी.में आती भयी हर सिरियल् खोलके देखनी. वामें क्या आ रह्यो हे, अच्छो आ रह्यो हे, बुरो आ रह्यो हे, बच्चान्पे वा मारधाड़की सॅक्स्की क्या असर पड़ेगी! वामें अपन् धर्मनिरपेक्ष हो जाय हें. जो दीख रह्यो हे, बस देखते चले जाओ. जो सुनायी दे रह्यो हे बस सुनते चले जाओ. ये एक पद्धति सब संप्रदायन्में विकसित हो गयी हे. अपनो संप्रदाय भी याको शिकार हे. संस्कृतमें एक कहावत हे "तिष्ठन्मूत्रस्य गुरोः धावन्मूत्रानुवर्तिनः" गुरुजी खड़े-खड़े पेशाब कर रहे हते तो चेलान्ने दौड़-दौड़के पेशाब करनो शरु कर दियो. उनने पूछी के तुम दौड़ते-दौड़ते क्यों कर रहे हो? तो कही के गुरुजी खड़े होके करते हते के नहीं! अरे, गुरुजी खड़े होके क्यों करते हते? हो सके उनके घुटनमें बैठवेमें दर्द होतो होयगो. तुमने उनसु पूछी? वा बातको कारण जाने बिना तुमने शरु कर दियो. अपने पुष्टिमार्गमें भी "तिष्ठन्मूत्रस्य गुरोः, धावन्मूत्रानुवर्तिनः" बहोत हें.

(संप्रदाय और साधना की आस्था खंडित करवेको षडयंत्र)

आज अपन्ने साधना और संप्रदायन् के भेदनकु भुला दियो हे. ये पुष्टिमार्गकी बात मैं नहीं कर रह्यो हूँ. भारतकी बात कर रह्यो हूँ. हर व्यक्तिकु साधना और संप्रदाय को भेद भुला गयो हे. वाको दुष्परिणाम ऐसो आयो हे के कोई भी साधना अपन्

स्पष्ट रूपसु कर नहीं सके हें. अब जैसे सामान्य बात आप समझो के होमियोपेथीकी कोईने डिग्री ली हे तो वाकु ॲलोपेथीकी दवा नहीं देनी चहिये. ॲलोपेथीकी यदि डिग्री ली हे तो वाकु आयुर्वेदकी दवा नहीं देनी चहिये. आयुर्वेदकी यदि डिग्री ली हे तो वाकु यूनानी दवा नहीं देनी चहिये. जितनी भी चिकित्साप्रणाली हें, कौन सच्ची हे कौन खोटी हे, ये विषय विवादको हो सके हे, ये विषय अपनी अपनी आस्थाको हो सके हे, ये विषय उन चिकित्सकन्के अनुभवको भी हो सके हे. जो रोगी हे वाकी आस्थाको भी विषय हो सके हे पर ये बात तो साफ हे के जो विषय अपन्ने पढ्यो नहीं, जा विषयकु अपन् जाने नहीं, वाकी चिकित्सा करनो अपन् शरु करें तो आपाधापी फैल जाय. क्योंके अंतमें पेट मॅडिकल् स्टोर् तो नहीं हे के सब दवान्कु पचा जायगो? वामें भी कोई दवाकु पचायवेकी सामर्थ्य हे, पर सब दवाकु पचायवेकी सामर्थ्य नहीं हे.

ऐसे जितने सम्प्रदाय प्रकट भये; क्योंके धर्मनिरपेक्षवालेन्ने गाली दे दी के संप्रदाय सब खोटे हें, उनने कभी दुनियाकु अपनी पार्टी निरपेक्षताकी बात नहीं बताई के ये सब पार्टी खोटी हें. इलेक्शन् लड़वेके लिए ये सब एक-दूसरेकु गाली दे रहे हें. अभी देखो पार्लामेन्टूमें नेतान्को भत्ता बढ़ानो हतो, तो न विरोधीदल विरोधी रेह गये, न सत्तादल. सबने एक मतसु या प्रस्तावकु पारित कर दियो. वामें कोई बखत कोईने कही नहीं के हमारो विरोध हे. वा बखत कोईने ऐसी भी हाय-हत्या मचाई नहीं जैसी रोज वहाँ मचे हे! शांतिसु ये प्रस्ताव पारित हो गयो. जब दूसरी बातें आवें तो सब एक-दूसरेको विरोध करे हें. वो पार्टी दलनिरपेक्षता की कोई बात नहीं करे हे. दलनिरपेक्ष होके भारतको कल्याण करनो ऐसो नहीं कहे हें पर सम्प्रदायनिरपेक्ष होनो, ऐसे सब कहे हें. धर्मनिरपेक्ष होनो, ऐसे सब कहे हें क्योंके धर्ममें उनकी आस्था नहीं हे. अब एक बात समझो के धर्ममें उनकी आस्था नहीं हे क्योंके झगड़ें

आपसमें, एक-दूसरेके प्रति शंकाकुल रहे हें, वामें ही उनकी रोटी सिके हे और याके कारण उनकु उपदेश करनो मिले हे के धर्म सब अलग नहीं होने चहिये. सब संप्रदायके भेद नहीं होने चहिये. सब एक कर दो. एक कर दो कहे हें पर होवे नहीं दे हें. पाछें उनमें झगड़ा भी करवाते ही रहे हें.

(संप्रदायन्की साधनाको प्रामाणिक इतिहास)

ये पद्धति अपनी प्राचीन नहीं हती. प्राचीन भारतको इतिहास यदि अपन् देखेंगे तो एक बात स्पष्ट मिलेगी के राजा चाहे वैष्णव होय या शैव होय. शैव राजाने वैष्णवसम्प्रदायके मंदिर चलवे दिये हते. वैष्णव राजाने शैवसंप्रदायके मंदिर चलवे दिये हते. हिन्दु राजाने मस्जिद चलवे दी हती. मुसलमान राजाने मंदिर चलवे दिये हते. जो बाहरसु आततायी मुसलमान आये हते, उनने अपने मंदिर तोड़े पर जो यहाँ रेह गये, जिनने भारतकी माटीकी सुगंध समझ ली, जो यहाँकी मिट्टीमें पैदा भयो, जाने यहांको अनाज खायो, ऐसे बहोत सारे मुसलमान राजा हते, जो हिन्दु मन्दिर चलवे देते हतें.

एक साधारण उदाहरण बताऊँ तो आपकु ख्याल आयगो. जूनागढ़के नवाब कट्टर मुसलमान हते. कभी उनने मुसलमानधर्म छोड़के हिन्दु बननो नहीं चाह्यो. वाको सीधो सो परिणाम आप देखो के जा दिन हिन्दुस्तानसु पाकिस्तान अलग बन्यो, वा दिन हिन्दुस्तान छोड़के वो पाकिस्तान भग गये. हमारे परिवारके मंदिर वा बखत जूनागढ़में हते. हमारे काका ही वहाँ हते. हमारी सात-आठ पीढ़ीसु जूनागढ़में हते. वहाँ ये परिस्थिति हती के हमारे परिवारकु कोई भी काम जूनागढ़में करवानो होय, तो सरकारी खातामें ॲप्लीकेशन् नहीं देनी पड़ती हती. नवाबकी मनाई हती कि महाराजसु ॲप्लीकेशन् लेनी नहीं. महाराज केवल कोई इन्टीमेशन् भेजें तो वो काम कर दो बस, इतनो व्यवहार हतो. और भागवेके पहले भी, हमारे काकाके

पास नवाब आये हते और हमारे काकाने उनकु कही हती के तुम रहो यहाँ आनंदसु. घबरावेकी कोई बात नहीं हे. तुमकु गलत डरायो जा रह्यो हे. उनने तो यहाँ तक कही के तुम चलो मेरे मंदिरमें आके रहो, डरो नहीं पर उनको दीवान भुट्टोको पिता हतो. उनने वा नवाबकु डरा दियो के महाराज तुमकु मंदिरमें रखकें रातकु कतल करवा देगो. भाग जानो ही बेहतर हे, करके फिर रातोंरात वो प्लेन् लेके जूनागढ़ छोड़के भाग गयो.

पर किशनगढ़में मस्जिद हती के नहीं! किशनगढ़में जैनमंदिर हते के नहीं हते! यहाँ शिवमंदिर, निम्बार्क संप्रदायके मंदिर, बालाजीके, रामके मंदिर हते के नहीं हते! क्या यहाँके राजाएं वा सम्प्रदायके हते? क्या राजाएं धर्मनिरपेक्ष हतें? यहाँके सब राजाएं कट्टर पुष्टिमार्गीय हतें. भारतमें जितने भी पुष्टिमार्गीय राजा भये; उनमें जो दो-चार राजाएं कट्टर पुष्टिमार्गीय राजा हते, उनमेंसु एक नाम किशनगढ़के राजाको आवे हे. ऐसे राजा जो पुष्टिमार्गके आदर्श कहे जा सके हें पर वा आदर्शके कारण उनने कोई दूसरे संप्रदायके मंदिर तोड़े नहीं. दूसरे धर्मसम्प्रदायके ऊपर कभी कोई जजिया बैठायो नहीं. कोई अलग ॲक्ट् बैठायो नहीं. क्यों? क्योंके वो धर्मनिरपेक्ष नहीं हते, धर्मसापेक्ष हते और उनकु ये बात खबर हती के मैं जैसै अपनो धर्म अनुसर रह्यो हूँ, ऐसे मेरी प्रजाकु उनको धर्म अनुसरवेको मौका मिलनो चहिये. ये वृत्ति होय तो कलहको कोई प्रश्न नहीं हे. ये वृत्ति खतम भयी जबसु, भारत सरकारकी राजनीतिके कारण, तबसु हर धर्मसम्प्रदायमें आपसमें बड़ी भारी छीना-झपटी, एक-दूसरेके प्रति शंकाकी दृष्टि और जो ओसतन अनुयायी हे, क्योंके स्कूलके लेवलपे ही हथौड़ा मार-मारके समझा दियो जाय के धर्मनिरपेक्ष हो जाओ, तो हर धर्मके अनुयायीकी अपने-अपने धर्ममें निष्ठा खण्डित हो गयी हे. पर अहंकार कोईको खण्डित नहीं भयो. जैसे वैष्णवको ये अहंकार खण्डित नहीं भयो के हमारो वैष्णव धर्म सबसु अच्छो, कोई मुसलमानकु

ये अहंकार खण्डित नहीं भयो के हमारो मुसलमानधर्म सबसु अच्छो, कोई हिन्दुकु ये अहंकार खण्डित नहीं भयो के हमारो हिन्दुधर्म सबसु अच्छो पर अपने धर्ममें रही भयी अपनी निष्ठा; अपने धर्मकु जीवेकी अनुसरवेकी सच्चाईसु धर्मपालवेकी, खण्डित हो गयी. ये धर्मनिरपेक्षकी राजनैतिक वृत्तिके कारण राज्यकी महती हानि भयी हे.

अपने यहाँ व्यक्तिगत साधनाएं नहीं हती ऐसी कोई बात नहीं हे. बहोत सारे संत भारतमें ऐसे भये हें के जिनने कोई भी संप्रदायके अनुसार साधनाएं नहीं करी. उनने व्यक्तिगत साधनाएं करी. बहोत सारे संप्रदाय भी ऐसे भये हें के उन संतनूको कोई व्यक्तिगत साधनाको सम्प्रदाय चल्यो होय. बहोत सारे सम्प्रदाय ऐसे भी चले हें के जिनने व्यक्तिवादको दावा नहीं कियो. उनने हर समय ये ही बात कही के साधना हमारो वैयक्तिक विषय नहीं हे, हमारो सम्प्रदाय हे.

ये 'सम्प्रदाय'को अर्थ क्या? जाकु अपन् आज निंदाके अर्थमें देखे हें, गाली जैसो समझे हें. जैसे अपन् यों कहें के हम साम्प्रदायिक हें तो लोग अपनूकु अच्छो नहीं समझे हें. कहे हें के संकीर्ण विचारके होओगे. जैसे मैंने आपकु बतायो के किशनगढ़को राजा साम्प्रदायिक हतो, पर ऐसो नहीं हतो के कोई मुसलमानकु मार दे, जैनकु भगा दे या शिवकी या बालाजीकी यहाँ पूजा नहीं करवे दे. ऐसे नहीं हते, साम्प्रदायिक हते. ऐसे एक नहीं अनेक राज्यनूको इतिहास देख लो. जैसे जयपुरके प्रायः पीछेके जितने राजा हतें वे सब चैतन्यसम्प्रदायके अनुयायी हतें. निष्ठासु चैतन्यसम्प्रदायकु अनुसरतें हतें. जैसे अपने किशनगढ़के राजा अपने पुष्टिमार्गकु निष्ठासु अनुसरते हते. वहाँ पुष्टिमार्गकी कितनी सारी निधिएं बिराजती हती!

जा बखत औरंगजेबके डरसु कितने सारे गुसांई परिवार भागके

जयपुर आये तब जयपुरके महाराजने कहीं के मत डरो, मेरे यहाँ बिराजो. अपने सम्प्रदायके अनुसार आनंदसु सेवा करो. गोकुलचंद्रमाजी मदनमोहनजी विट्ठलनाथजी गोकुलनाथजी ये सब वहाँ बिराजते हतें. और भी कई मंदिर वहाँ वा बखतसु चले आ रहे हें. न कभी इन गुसांईयन्ने वाकु पुष्टिमार्गीय बनावेको सोच्यो, न कभी उन राजान्ने अपनो चैतन्यसम्प्रदाय छोड़के वल्लभसम्प्रदायमें आवेकी सोची. हर व्यक्ति एक-दूसरेकु मान्य करतो हतो. अमान्य नहीं करतो हतो और धर्मनिरपेक्ष नहीं हतो. स्वस्थ धर्मसापेक्ष हतो. ये अपनी भारतीय संस्कृतिकी खूबसूरती हती और ऐसी खूबसूरती एक जगह नहीं हती. जैसे अपने जोधपुरके राजा शैव हते और हमारी आठ पीढ़ी वा बखत जोधपुरमें रही. हमारे परिवारन्कु कभी कोई दिक्कत नहीं आयी और न राजाकु हमारे कारण कभी कोई दिक्कत भयी. ऐसी स्थिति अपने यहाँकी हती. हर व्यक्तिमें एक या तरहकी निष्कपटता हती.

(भागवतकी धर्मदृष्टि)

भागवतमें आरंभमें स्पष्ट आवे के **''धर्म प्रोज्झितकैतवो अत्र परमो निर्मत्सराणां सताम्''** (भाग.पुरा.१।१।२) भागवत केह हे जो कुछ धर्म मैं बता रह्यो हूँ या धर्ममें कोई जातको छल-कपट नहीं हे. छल-कपटसु रहित धर्म मैं बतावे जा रह्यो हूँ. कोईकी छीना-झपटीको धर्म नहीं हे. एक-दूसरेपे मात्सर्यभाव रखके कह्यो भयो मेरो धर्म नहीं हे. निर्मलभावसु कह्यो भयो धर्म हे.

(अपनी भागवतविरोधी धर्मवृत्ति)

वो माद्दा अपनेमें आज खो गयो. अपनेमें ये माद्दा आ गयो के अपन् दूसरेके धर्मके प्रति मात्सर्यभाव रखें. अपने धर्मके बारेमें अहंकार रखें पर अपन्में ये माद्दा खो गयो के अपने-अपने धर्मकु सच्चाईसु निष्ठासु अनुसरें. हर जगह चोंचोंके मुरब्बाको सिद्धांत स्थापित हो गयो. ये स्वातंत्र्योत्तर भारतकी नई संस्कृतिकी सबसु बड़ी

विकृति हे. अपनी संस्कृतिकी सबसु बड़ी हानि केह दो तो ये हे. ये कोई नयी संस्कृति, जो पश्चिमी संस्कृतिसु अपनने उधार ली और वाकु भी अपन् सच्चाई और अच्छाई सु नहीं पकड़ पाये. द्विविधामें दोनों गये के न माया मिली न राम. वैसी आजकी परिस्थितिसु अपन् जी रहे हें. वासु कई प्राचीन बातें अपनेकु समझवेमें तकलीफ होवे हें. यासु आजके कई लेखक यों केह हें के ''हम सम्प्रदायमें नहीं माने हें, हम परमात्मामें माने हें'' कई प्रवचनकार यों केह हें के ''हम धार्मिकतामें माने हें, धर्ममें नहीं माने हें क्योंके धर्मसंप्रदाय आदमीकु संकीर्ण बनावे हे. या लिए हम धार्मिकतामें माने हें'' ये सब क्या नाटक हे! गांधीजी जो केहते हते ऐसो चक्कर यामें लगे के कुछ समझ नहीं आवे, क्या हे!

(विभिन्न आचार्यन्के अनुशासित सांप्रदायिक माहा)

पुराने कोई भी आचार्य होय, चाहे वो शंकराचार्य रामानुजाचार्य मध्वाचार्य निम्बार्काचार्य चैतन्य या महाप्रभुजी होंय, वे सब सम्प्रदायके आचार्य हतें, व्यक्ति आचार्य नहीं हते. उनने कभी अपनी वैयक्तिकताको दावा नहीं कियो के ये मेरो व्यक्तिगत सिद्धांत, व्यक्तिगत उपदेश, व्यक्तिगत उपलब्धि या मेरी व्यक्तिगत समझ हे. ऐसो उनने कभी दावा नहीं कियो. वे सब एक अनुशासित संप्रदायके अनुयायी हते.

'संप्रदाय' को मतलब क्या? 'प्रदाय'को अर्थ होवे हे उत्तराधिकार. अपनी परंपरासु चली आती भयी कोई चीज. जैसे कोई घरको वारसदार होवे, कोई संपत्तिको वारसदार होवे, कोई ज्ञानको वारसदार होवे. ऐसे ही अपनकु परंपरासु जो साधनाप्रणाली मिली हे वाको वारसा.

जैसे हर भाषामें भी यही हे. अंग्रेजी स्कूलन्के कारण अपनी दुर्गति ऐसी भई हे के अपनकु अपनी मातृभाषा पढ़नी पड़े हे. अंग्रेजी स्कूल्में जाके अंग्रेजी पहले आ जाय. अंग्रेजी स्कूल्के बहोत

सारे बच्चानूकु मैंने देख्यो के वो केह "चार मानें क्या फोर् न?" अरे मैंने कही के "फोर् मानें चार बोल" अपनूकु अपनी मातृभाषा समझनी पढ़नी पड़े हे. घबराहट हो जाय के ये सब क्या हो गयो? या भारतकु क्या हो गयो के भारतमें पढ़वेवालो बच्चा, चार मानें फोर् पूछे! पूछनो यों चहिये हतो के फोर् मानें चार न! तब तो अच्छी बात हती. फोर् मानें चार समझानो कोई बुरी बात नहीं हे. अपनी मातृभाषाके लिए यदि बच्चा यों पूछनो शरु करे के चार मानें फोर् तो वो बड़ी लज्जाकी स्थिति हे. ऐसी बड़ी लज्जाजनक स्थितिके दौरसु अपन् गुजर रहे हें.

अपनो संप्रदाय भी अमेरिकननूसु पूछनो पड़े. वो केह के "हरे कृष्ण हरे राम" वो गोरे लोग चोटी हिला-हिलाके नाचें तब अपनेकु लगे के ओ हो हो, कृष्णभक्तिको क्या माहात्म्य हे! अरे यार वे नाचें के नहीं नाचें तो क्या अपनेकु छोड़ देनो? सवाल ये हे के क्या अपनेकु कृष्णभक्तिकु छोड़ देनी? क्योंके अपनेकु हर बात वहाँसु उधार ली भयी अच्छी लगे हे करके वहाँकी हर बात अपन् कॉपी करनो चाहे हें. यासु ही आज 'संप्रदाय' अपनूकु गाली लगे हे. अपन् या सम्प्रदायके हें ये केहवेमें अपनो सिर नीचो करके लज्जाको अनुभव होवे हे.

यासु विपरीत पुरानो हर आचार्य; शंकराचार्य उठाके देख लो, या बातको गर्व करतो हतो के हमारो ये सम्प्रदाय हे. हम सम्प्रदायी हें. हमारी कोई व्यक्तिगत साधना या व्यक्तिगत उपदेश नहीं हे. जो परम्परागत आयो भयो उपदेश हे वो ही हे. गीताके बारेमें शंकराचार्यजीने बहोत सुंदर बात बताई हे के जा बखत चोथे अध्यायमें भगवान्ने अर्जुनकु केहनो शरु कियो **"इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहम् अव्ययं विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत् एवं परंपराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः"** (भग.गीता ४।१-२) शंकराचार्य वहाँ भाष्य करते

भये कहे हें के यद्यपि भगवान् वहाँ विद्यमान हें फिर भी भगवान्, भगवान् हे तो भी ये दावा नहीं कर रहे हें के मैं अपनी समझसु तोकु समझा रह्यो हूँ. भगवान् भी ये बात समझा रहे हें के परंपरा सम्प्रदायसु जो उपदेश चल्यो आ रह्यो हे, **"हे अर्जुन! तू मेरो भक्त हे, तू मेरो सखा हे, या लिए तोकु ये समझा रह्यो हूँ. परंपरासु जो चल्यो आ रह्यो हे"** या लिए **"रहस्यं ह्येतद् उत्तमम्"** (भग.गीता ४।३) भगवान् भी या बातमें अपने आपकु सांप्रदायिक केह रहे हें. धर्मनिरपेक्ष नहीं केह रहे हें, संप्रदायनिरपेक्ष नहीं केह रहे हें.

सॅक्युलरिज़मूको अर्थ कर दियो 'धर्मनिरपेक्ष'. कुछ हिन्दु लोगनूने हल्ला मचायो तो केहनो शरु कर दियो संप्रदायनिरपेक्ष. अरे भई जब तुमकु संप्रदायको अर्थ पता नहीं हे, तो तुमकु हिन्दुधर्मके बारेमें बोलवेको अधिकार ही कहाँ रेह गयो! संप्रदाय कोई गाली जैसी चीज नहीं हे. सम्प्रदाय एक परंपरासु आती भयी एक साधनाप्रणाली हे. वा ही तरहसु जैसे आपने यदि सायन्समें ॲडमिशन् लियो हे तो वा कॉलेज्में आर्टस्की क्लास्में नहीं बैठ सको हो. फुरसतके समय घरमें यदि आर्टस्को अध्ययन करनो होय तो करो, वामें कॉलेज मना नहीं करे हें. पर कॉलेज्में ॲप्लीकेशन् दो, ॲडमीशन् लो सायन्स्में और कहोके आर्टस्की क्लास्में हम बैठेंगे तो कोई भी कॉलेज् ॲलाऊ नहीं करेगी. क्योंके आर्टस् सायन्स् कॉमर्स की फॅकल्टी अलग हे. जो विषय आपने लियो हे वा विषयकु निष्ठाके साथ आप अध्ययन करो तब तो वो कॉलेज् आपकु सहायक हो सके और यदि एक ठिकाने आप ॲडमिशन् लो, दूसरे ठिकाने क्लास् अटेण्ड् करो, तीसरे ठिकाने पुस्तकें पढ़ो और परीक्षाके बखत कॉपी करके पास हो जाओ, तो वामें आपको भी बिगड़यो, कॉलेजको भी बिगड़यो और अंतमें सारे समाजको भी बिगड़े हे क्योंके पता ही नहीं चले हे के क्या हो गयो! ये स्थिति अपनी धार्मिकताकी हो गयी हे के अपन् या

बातको गर्व करते हो गये के हम सम्प्रदायमें नहीं माने हें, उनके भेदनमें नहीं माने हें.

(महाप्रभुजीकी सांप्रदायिक साधना भगवदनुशासित)

एक बात समझो के महाप्रभुजी स्वयं अपने आपकु स्पष्ट सांप्रदायिक बतावेके लिए ये केह रहे हें के **''मैं अपने समझकी बात नहीं कह रह्यो हूँ. मोकु श्रीठाकुरजीने आज्ञा करी हे. श्रीठाकुरजीसु मोकु या साधनाप्रणालीको या दीक्षाप्रणालीको उत्तराधिकार मिल्यो हे. जो श्रीठाकुरजीसु मोकु उत्तराधिकार मिल्यो हे, वो मैं तुमकु देनो चाह रह्यो हूँ, तो समझो के मैने कहींसु चोरके नहीं लियो हे, कहींसु कमाके नहीं लियो हे. मोकु उत्तराधिकारके रूपमें श्रीठाकुरजीने दियो हे.'' ''श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि, साक्षाद्भगवता प्रोक्तं, तदक्षरशः उच्यते''** (सि.र.१) जो प्रभुने साक्षात् प्रकट होके मोंसु कही. प्रभुने मोकु प्रकट होके कही वो मैं तुमकु प्रकटतया केहनो चाह रह्यो हूँ. ये केहके महाप्रभुजी अपनो संप्रदाय बतानो चाह रहे हें. ये दावा महाप्रभुजी नहीं कर रहे हें के ''ये मेरी बुद्धिको बहोत बड़ो चमत्कार हे, ये मेरी समझकी, मेरे दर्शनकी उपलब्धि हे, ये मेरे चिंतनकी सामर्थ्य हे, ये मेरी सूझ-बूझ हे.'' ऐसे नहीं, अतिशय दैन्यभावसु केह रहे हें क्योंके यहाँ साधनाको प्रश्न नहीं हे. यहाँ संप्रदायको प्रश्न हे. संप्रदाय मानें वारसाको प्रश्न हे. लावारिस ये साधना नहीं हे, वारसदारकी साधना हे.

या लिए महाप्रभुजीके सबसु प्रथम या वचनामृतके या अंगपे ध्यान दोगे तब पता चलेगो के महाप्रभुजी केह रहे हें के मोकु श्रीठाकुरजीने आज्ञा करी हे. कछु अपने मनसु बात नहीं बता रह्यो हूँ. अब ये सहज संभव बात हो सके हे के जो अपन् महाप्रभुजीकु मान रहे हें, उनकु महाप्रभुजीकी बातपे श्रद्धा होवे. पर मानो के नहीं मानते होंय, तो उनकु लगेगो के महाप्रभुजी झूठ बोल रहे

हें ऐसो हो सके.

जैसे माँ केह रही हे के ''बेटा ये तेरो बाप हे''. बेटाकु यदि श्रद्धा होती होय तो मान सके के ये मेरो बाप हे. पर मानों के बेटाकु मांपे अश्रद्धा हे, तो सोच सके हे के न जाने कौन मेरो बाप हे! तो मत मानो बाप, कोई औरकु बाप मान सके हे. वामें कोई नुकसानकी बात नहीं हे. भई ! आपके पास जानवेको साधन तो मात्र सम्प्रदाय ही हे. वो तो जो बतायगो वो माननो ही पड़ेगो के तेरो ये बाप हे. नहीं तो केसे पता चले के बाप कौन हे? क्योंके जा बखत बाप हतो वा बखत अपन् नहीं हते और जा बखत अपन् हो गये तो वा बखत ये जानवेको उपाय ही नहीं रेह गयो के बाप कौन हे. या बातकु अपनकु समझनी पड़ेगी के महाप्रभुजी क्या बात केह रहे हें. अब महाप्रभुजीपे श्रद्धा नहीं होय तो केह दें के महाप्रभुजीकी बात हम नहीं मान रहे हें पर महाप्रभुजीको या बारेमें जहाँ तक खुदको सवाल हे, वो बिलकुल साफ-सुथरो दृष्टिकोण रखे हें के ये बात मैं अपनी नहीं केह रह्यो हूँ. ये बात प्रभुने मोकु कही हे. प्रभुसु मोकु साधनाप्रणालीको ये उत्तराधिकार मिल्यो हे और वा साधनाप्रणालीको उत्तराधिकार मैं तुमकु सोंप रह्यो हूँ. यासु ही अपन् वल्लभसंप्रदायके हें. ये वल्लभसाधना नहीं हे. मूलमें ये अंतर समझो के वल्लभसाधना और वल्लभसंप्रदाय. अपनकु फितूर चढ़ गयी के हम तो ये ही करेंगे. करो!! यामें अपनेकु कोई हरकत नहीं हे पर संप्रदायकु गालीके तोरपे मत समझो. संप्रदायके अपन् हें, याकु कोई अपनी न्यूनता मत समझो. सीना ठोकके कहो के हाँ हम वल्लभसंप्रदायके हें और निष्ठासु हम वल्लभसंप्रदायकु अनुसरेंगे, जाकी हमने कंठी बंधाई.

जैसे हमारे वो जैन भाई हते, जिनकु जैनधर्म सबसु अच्छो लगे हे, सुनवे जायें चिन्मयानंदजीके लॅक्चर् और सेंटर् पुष्टिमार्गको.

क्या यामें समझनो? खोपड़ी काम करनी बंद हो जाय. ऐसी स्थिति बहोत जगह प्रचलित हो गई हे.

महाप्रभुजीको ये पेहलो वचनामृत हे और ये महाप्रभुजीकी प्रतिबद्धता हे ये पेहली नहीं हे. ये भारतमें चिरकालसु चली आ रही प्रतिबद्धता हे. बात अपनी कल्पनाके फितूरकी नहीं करनी. जो बात अपने संप्रदायके वारसासु उत्तराधिकारसु मिली होय, वो एक अपनो पवित्र उत्तराधिकार हे. वा उत्तराधिकारकु अपन् जी रहे हें. या रूपमें अपन् याकु लेंगे. उत्तराधिकार नहीं चहिये तो छोड़यो जा सके हे. जैसे हमारो बड़े मंदिरमें उत्तराधिकार हतो. हमकु नहीं चाहितो हतो, हमने छोड़ दियो. ऐसे वल्लभाचार्यको उत्तराधिकार लियो भी जा सके, छोड़्यो भी जा सके. गड़बड़ क्या हे के कहींको उत्तराधिकारी, कहींकी संपत्ति भोगनी, कहीं औरको बतानो. यामें तो बहोत कॅओस् हो जाय. ''या इलाही ये माजरा क्या हे, दिले नादान तुझे हुआ क्या हे''

('ब्रह्म'संबंधकी महत्ता)

या बातकु समझावेके लिए श्रीमहाप्रभुजीको पहलो वचनामृत हे के **''मोकुं श्रीठाकुरजीने ये आज्ञा कीनी हे के तुम जीवनकु ब्रह्मसंबंध करवाओ.''** ये बात बहोत ध्यानसु समझवे लायक हे. श्रीठाकुरजीने ये आज्ञा नहीं दी के तुम कृष्णसंबंध करवाओ, परमात्मसंबंध करवाओ, भगवत्संबंध करवाओ, भगवन्मूर्तिको संबंध करवाओ. आज अपन् यों समझे हें के कोई एक खास मूर्तिसु हमारो संबंध दृढ़ होयगो तो भारी काम हमारो बन जायगो. ठाकुरजीने ऐसी आज्ञा नहीं करी. ठाकुरजीने क्या आज्ञा करी, या बातकु ध्यानसु समझो के **''तुम जीवनकु ब्रह्मसंबंध करवाओ.''**

कुछ दिन पहलेकी बात हे. एक पुष्टिमार्गीय छोरी, वाकु ब्रह्मसंबंध

हे, सेवा करे हे. वाके संगसु वाके पतिकु भी कछु भाव जग्यो. एक दिन मेरे पास आयो और कही के मोकु ब्रह्मसंबंध लेनो हे. मैंने कही के ब्रह्मसंबंध तो मैं जरूर देऊँगो पर सवाल ये हे के तुम्हारी पत्नी जो घरमें सेवा करे हे, वामें तुम सहयोग देओगे के नहीं? सेवामें तुम वाकु साथ देनो चाहते तो मैं तुमकु दऊं और केवल वाके लिए ही तुम ब्रह्मसंबंध ले रहे हो तो मैं तुमकु ब्रह्मसंबंध नहीं दे सकु. कोई औरसु लेनो होय तो ले लो. पर अच्छी बात ये होयगी के मत लो क्योंके जा दिन साथ जीवेकी तुम्हारी तैयारी होय वा दिन ब्याह करनो चहिये. जब अपनकु पता हे के हम साथ तो नहीं जी सकेंगे पर अपन् ये जिद्द करके बैठें के ब्याह तो करेंगे. जब तुम्हें साथ जीनो नहीं हे तो शादी करवेसु लाभ क्या? शादी होयवेके बाद कोई कारणसु साथ नहीं रेह पा रहे हो, जैसे कहीं ट्रांसफर् हो जाय, वो कथा निष्ठाहीनताकी नहीं, परिस्थितिकी कथा हे. पर जब अपनी निष्ठा बिल्कुल साफ हे के साथ तो नहीं जी सकेंगे और कहें के शादी तो हमारी करवा दो. तो ऐसी शादी कौन करवायेगो? कोई लड़कीके बापकु जाके कहो कि तुम्हारी लड़कीसु हमकु शादी करनी हे पर बात इतनी सी हे के साथ तो नहीं रहेंगे. तो कोई बाप अपनी लड़की देगो? ऐसी ही बात हमने कही. तो उनने कही के "अच्छा या बातपे हम विचार करके और आपकु बतायेंगे." उनने आपसमें विचार कियो. पत्नीने कही के "ब्रह्मसंबंधके बिना तो तुम्हारो उद्धार होनो नहीं हे और श्याम मनोहरजी तो तुम्हे ब्रह्मसंबंध देगे नहीं. अपने तो श्रीनाथजी सर्वोपरि हें, तुम नाथद्वारा जाके ब्रह्मसंबंध ले आओ." वाने लियो. अब वो कहे के "हमारो तो श्रीनाथजीसु ब्रह्मसंबंध भयो." अरे! श्रीनाथजीसु ब्रह्मसंबंध नहीं भयो. श्रीनाथजीसु संबंध भयो तो जैसे तिलकायत महाराजको वहाँ सेवाको अधिकार हे वैसो तुम्हारो हो सके? कोई घुसवे ही नहीं देगो वहाँ. तुम क्या दावा कर रहे हो के श्रीनाथजीसु ब्रह्मसंबंध भयो हे तुम्हारो!

एक बात समझो के कोई मूर्तिसु ब्रह्मसंबंध नहीं होवे हे. अपनो संबंध ब्रह्मसु होवे हे. मूर्ति जाकु हम 'स्वरूप' कहे हें, गाममें वाकु मूर्ति कहे हें. वो स्वरूप तो सेवाके लिए हे, संबंध तो ब्रह्मसु ही होवे. या बातकु खास समझनो पड़ेगो. ठाकुरजीने श्रीमहाप्रभुजीकु ये आज्ञा नहीं करी के तुम जीवकु मूर्तिसु संबंध करवाओ. चाहे वो कोई भी मूर्ति होय, चाहे श्रीनाथजीकी या मदनमोहनजीकी या अन्य कोई भी. ये बात अपनकु समझनी हे के सेवा कौनकी करनी हे, संबंध कौनसु करनो हे, भक्ति कौनकी करनी हे, कथा कौनकी करनी हे. इन सब पेहलुनकी सूक्ष्मताकु अपन् ठीकसु नहीं समझें तो ब्रह्मसंबंधको अर्थ अपन् ठीकसु समझ नहीं पाये. प्रभुने महाप्रभुजीकु क्या आज्ञा करी ये अपन् समझ नहीं पाये. या विषयकी आगे विवेचना करेंगे के "जीवको ब्रह्मसंबंध करवाओ" ऐसे कहीं, "जीवको परमात्मसंबंध करवाओ" क्यों नहीं कह्यो? "जीवकु कृष्णसंबंध करवाओ" क्यों नहीं कह्यो? और "जीवको स्वरूपसों संबंध करवाओ" क्यों नहीं कह्यो? ठाकुरजीने बहोत साफ सुथरी भाषामें "ब्रह्मसंबंध करवाओ" ऐसे कह्यो. वाको मतलब क्या? ये थोड़े विस्तारकी अपेक्षा रखे हे.

प्रकरण ३ : पुष्टिभक्तिसंप्रदायकी पूर्वावधि

(सांप्रदायिक-व्यक्तिगत साधनाके भेद)

अभी तक अपन्ने या बातको विचार कियो के महाप्रभुजीको आचार्यत्व या पुष्टिभक्तिमार्ग या पुष्टिशरणागति की जो साधना हे, वो वैयक्तिक साधना नहीं हे, साम्प्रदायिक साधना हे. और सम्प्रदायको अर्थ क्या, ये संक्षेपमें कल अपन्ने विचार कियो. कल जैसे मैंने कही हती के वा सम्प्रदायके सम्प्रदायत्वकु बनावेवाली या निभावेवाली जो बात हे वाकु 'दीक्षा' कहे हे. जैसे कल भी मैंने आपकु उदाहरण दियो के अपन्ने सायन्स्में या आर्टस्में या कॉमर्स्में एडमिशन् लियो हे तो वाकी क्लास्में अपन् बैठ सके हें और कोई क्लास्में नहीं बैठ सके हें. याको मतलब दीक्षा हे. व्यक्तिगत साधनाकी प्रणालीमें प्राय: दीक्षाको प्रकार नहीं होवे हे. जाको प्रसिद्ध उदाहरण अपन् मीराके रूपमें जाने हें. मीरा बहोत उद्घोषसु या बातकु कहे के "ना तो मीरा चेला मूंड्या न मैं जाया पूत" क्योंके मीराकी जो साधना हती वो कोई सम्प्रदायकी साधना नहीं हती, वाकी व्यक्तिगत साधना हती. कबीरकी यद्यपि व्यक्तिगत साधना हती पर कबीरको संप्रदाय प्रवर्तित भयो.

कई आचार्यने संप्रदाय प्रवर्तित करनो चाह्यो पर उनको संप्रदाय प्रवर्तित नहीं भयो. उनकी साधना व्यक्तिगत साधना रेह गयी. याकु बहोत सिरियसली लेवेकी जरूरत नहीं हे. याकु अपन् यों समझ सकें के जैसे कोई परिवार, कोई वंश चले हे कोई वंश नहीं चले हे. कोई वंश गोद ले के चलानो पड़े हे दूसरे घरके बालकसु. कोई वंश अपने आप चल पड़े.

(संप्रदायको स्वरूप)

ऐसे साधनाकी प्रणालीमें जा बखत संप्रदाय तत्त्वको निवेश होवे

हे वाको मतलब हे के साधनाप्रणाली वंशानुगत हे. अब वो वंश पुत्रवंश हे के शिष्यवंश हे, दोनों प्रकारके वंश हो सके हें. आज अपनकु ऐसी भ्रमणा हे के वंश मानें पुत्रवंश. प्राचीन कालमें ऐसो नहीं हतो. जितने भी उपनिषद् देखोगे उनमें निश्चित रूपसु याको उदाहरण मिले हे के कोईको पुत्र वाको शिष्य भी केहवायो और कोई पुत्र नहीं हतो और शिष्य हतो वो भी वंश ही केहवायो. ऐसे उपनिषद्में बहोत सारे उदाहरण मिले हें के कौनसे ऋषिके संप्रदायमें क्या हतो. याही तरहसु शंकराचार्य भी अपने भाष्यके आरंभमें बहोत सावधानीसु केह हें "नमोस्तु ब्रह्मवित्संप्रदायकर्तृभ्य:" क्योंके संप्रदायकी धारणा हे.

अपन् याकु यों भी समझ सके हें. जैसे कोई एक तालाब हे, कोई एक कुआ हे. जो तालाब या कुआ हे वो संप्रदाय नहीं हे, व्यक्तिगत हे. जलको एक संकलन हे पर नदीमें ये बात संभव नहीं हे के जो जल भर्यो हे, वो ही जल भर्यो हे. निरंतर बहते भये जलको नाम नदी हे. ये बात ध्यानसु समझवेकी हे के जो यमुनोत्रीसु यमुनाजी शुरु भयी, गंगोत्रीसु जो गंगाजी शुरु भयी, वो धारा बहोत छोटी हे पर कई नदियें वामें मिलती चली जाय. जो-जो नदी यमुनाजीमें मिली, वे 'यमुना' केहवावे. जो जो नदी गंगाजीमें मिली वे सब 'गंगा' केहवावे. अपन् ये बात अच्छी तरह जाने हें के प्रयागमें यमुनाजी गंगाजीमें मिल गयी, तो वहाँसु आगे वो 'यमुना' नहीं कहवावे, 'गंगा' कहवावे हे. अरे भई, दोनों नदी एक-दूसरेसु मिली, वामें ये क्या चक्कर हो गयो? ये देखो याको नाम 'संप्रदाय' हे. गंगाको एक संप्रदाय हे. वो गंगोत्रीसु सागर तक चल रह्यो हे. यमुनाको एक संप्रदाय हे जो यमुनोत्रीसु प्रयाग संगम तक चल रह्यो हे. ये संप्रदायको स्वरूप हे. जो तालाब कुआ हे, वो संप्रदाय नहीं होके व्यक्तिगत जलसंग्रह कह्यो जाय हे. बहतो जल नहीं हे. ये प्रश्न झगड़ाको नहीं हे के नदी अच्छी के कुआ अच्छो

के तालाब अच्छो. सबसु बड़ी बात ये हे के अपने पास जो उपलब्ध हे वो अच्छो. जो अपनुकु उपलब्ध नहीं हे और वाकु अच्छो मानोगे तो, जैसे अपनुकु गंगास्नानकी भावना होय और किशनगढ़के कुआपे बैठकें हर-हर गंगे, हर-हर गंगे केहके अपनेपे पानी डाल दे, तो ये तो भावनाकी बात हो गयी. अब गंगाजल यहाँ आपकु उपलब्ध नहीं हे यहाँ तालाब उपलब्ध हे तो तालाब अच्छो हे. प्रश्न अच्छे-बुरेको नहीं हे पर याके लिए अपन् इनको प्रभेद नहीं समझें के ये गलत हे. प्रभेद तो अपनुकु समझनो ही पड़ेगो के तालाब कुआ अथवा नदी के जलको एक अलग-अलग प्रकार हे. वो सम्प्रदायवालो प्रकार हे. एक निरंतर बहती भयी धारा हे, जो हिमालयसु हजारन् सालसु बह रही हे, हजारन् साल तक बहेगी और गंगासागर तक वो 'गंगा' ही केहलावे हे.

पर बात ध्यानसु देखो तो पता चल जायगोके यमुनाजी गंगामें मिली तो 'गंगा' ही केहवावे हे और गंगाजी सागरमें मिल जाय तो वो 'गंगा' नहीं केहवावे हे 'सागर' ही केहवावे हे. हर संप्रदायकी अपनी एक उत्तरावधि हे जा अवधिके बाद, भले वोकी वोही बात हे, जैसे प्रयागराजके बाद जो कछु बह रही हे नदी, वामें क्या यमुनाको जल नहीं हे पर यमुनाकी अवधि वहाँ पूरी हो गयी जब वो गंगाजीमें मिल गयी. वाके बाद वो 'गंगा' ही केहवावे, 'यमुना' नहीं केहवावे. सागरमें मिल गयी गंगाजी, तो वाकी अवधि पूरी हो गयी, फिर वो 'सागर' ही केहवावे, 'गंगा' नहीं केहवावे हे. फिर अपन् यों केह के गंगाजी तो यामें मिल ही रही हे न! तो ये भी गंगा हे. नहीं, वाकु गंगाजी कैसे केह सकोगे! क्योंके सागरमें तो और भी नदीयाँ मिल रही हें.

(संप्रदायकी पूर्वावधि और उत्तरावधि)

कोई तत्त्व कोई जगह उपलब्ध हे जैसे कृष्णभक्ति कई जगह

उपलब्ध हे. कई संप्रदाय कृष्णभक्तिके हें जैसे चैतन्यसंप्रदाय निम्बार्कसंप्रदाय वल्लभसंप्रदाय कृष्णभक्तिके हें. स्वामीनारायणवाले भी प्रारंभमें कृष्णभक्त हतें. अब कृष्णभक्तिकु नहीं मानें हें पर एक बात समझो के कई संप्रदाय कृष्णभक्तिके हो सके हें. कृष्णभक्तिको जल या कृष्णजल वामें कॉमन् हे यासु संप्रदाय एक नहीं मान्यो जाय हे. जैसे गंगा-यमुनाको जल संगमके बाद एक हे पर यमुनाको (जल) नहीं मान्यो जाय. गंगाको सागरको जल एक हे गंगासागरके बाद, पर वो गंगा नहीं मानी जाय हे. संप्रदायकी कोई एक पूर्वावधि हे, एक उत्तरावधि हे. और प्रत्येक संप्रदायकी पूर्वावधि वाकी दीक्षा हे. जब अपन्ने वा संप्रदायकी विधिसु दीक्षा ली, तो वो संप्रदाय अपनो कायम रह्यो. अपन् समझो के कृष्णभक्ति कर रहे हें, तो वो पुष्टिमार्गीय हो गयो ऐसे मान लेनो, ऐसो नहीं हे. कृष्णभक्ति तो सब ही कर रहे हें. अब रामभक्ति कर रहे हें वासु रामानुज संप्रदायके हो गये, ऐसे मान लेनो ठीक नहीं हे. रामानंद संप्रदाय कब केहलायगो? रामानंद संप्रदायकी पूर्वावधि हे रामानंद संप्रदायकी दीक्षा. ऐसे वल्लभ संप्रदायकी पूर्वावधि हे, वल्लभ संप्रदायकी दीक्षा. निम्बार्क संप्रदायकी पूर्वावधि हे, निम्बार्क संप्रदायकी दीक्षा. ये बात खास समझनी चहिये के जो दीक्षा हे वो वा संप्रदायकी पूर्वावधि हे. 'पूर्वावधि' मानें प्रवेश द्वार और उत्तरावधि क्या? समझो के वाके तत्त्व कोई दूसरे संप्रदायमें जा रहे हें तो उत्तरावधि.

(महाप्रभुजीके पूर्वज विष्णुस्वामी संप्रदायके)

जैसे विष्णुस्वामिसंप्रदाय, एक संप्रदाय हतो. जाकी एक साधनाप्रणाली हती, एक दीक्षाविधि हती. जाकी एक आचार्यपरंपरा हती, एक वंश हतो. अब वो पुत्रवंश न होके शिष्यवंश हतो. वाही शिष्यवंशमें महाप्रभुजी भी प्रकटे. जो विष्णुस्वामीको शिष्यवंश चल्यो वामें महाप्रभुजी प्रकटे. महाप्रभुजीके जितने पूर्वज हतें वे विष्णुस्वामिसम्प्रदायके अनुयायी हतें. वासु बहोत काल तक महाप्रभुजीने अपने आपकु विष्णुस्वामिसंप्रदाय

अनुवर्ती कह्यो. जा दिन भगवान्ने गोकुलमें प्रकट होके उनकु ब्रह्मसंबंध देवेकी आज्ञा करी और नई दीक्षाविधि शुरु भयी वा दिनसु वो विष्णुस्वामिसंप्रदाय अपनेमें मिल गयो. वाके कई सारे ॲलिमॅन्ट् अपनेमें आये हें. नहीं आये हें ऐसी बात नहीं हे पर वा दिनसु विष्णुस्वामिसंप्रदाय अपनो नहीं रेहके, एक नयो पुष्टिभक्तिसंप्रदाय श्रीआचार्यचरणने प्रवर्तित कियो. याही लिए अपन् महाप्रभुजीकु आचार्यरीतसु फिरसु प्रस्थापित करें हें. वासु पहले महाप्रभुजीने भी अपने आपकु एक आचार्यरूपसु घोषित नहीं कियो हतो क्योंके आपकी कोई दीक्षापद्धति हती नहीं. जो विष्णुस्वामिपंथकी दीक्षापद्धति हती, वाहीसु आपने भी दीक्षा ली हती.

जैसे हर ब्राह्मणकु गायत्री लेनी चहिये और उनके कर्मकाण्डको पुरोहित होवे उनसु गायत्रीकी दीक्षा लेवे हे. जाको 'पुरोहित' उपनाम हे. वाके पूर्वजने कभी न कभी पौरोहित्य कियो होयगो. जो ब्राह्मण गायत्रीकी दीक्षा देते हते वो वाके 'गुरु' केहवाते हते. पुरोहित यदि दीक्षा नहीं देते हते, तो प्राचीन पद्धति ऐसी हती के पिताकु अपने पुत्रकु गायत्रीकी दीक्षा देनी चहिये, तो वो देते हते. जब तक पिता गायत्रीकी दीक्षा देतो होय, तब तक दूसरेसु गायत्रीकी दीक्षा लेनी नहीं चहिये. और यदि पिता पुत्रकु नही दे सकतो होय तो पुरोहितसु दिवाते हते. वो 'गुरु' केहवाते पर वो संप्रदाय नहीं केहवातो.

(वल्लभवंशज गुरुद्वार हे)

क्यों संप्रदाय नहीं केहवातो? क्योंके जासु अपन्ने गायत्रीकी दीक्षा ली, वो कोई ऐसो संप्रदाय नहीं हे. वो तो श्रौत संप्रदायमें एक ब्राह्मण कोईकु गायत्रीकी दीक्षा दे रह्यो हे. वो तो सब ब्राह्मणन्को एक कोमन् सम्प्रदाय हे. जो भी ब्राह्मण हे, ब्राह्मण होवेके कारण वो यज्ञोपवित ले रह्यो हे. वो यज्ञोपवित लेवेको एक ब्राह्मणसंप्रदाय हे. मानो के कोई सुरेशने रमेशसु गायत्रीकी दीक्षा ली, तो वो रमेशको संप्रदाय नहीं केहवावे क्योंके रमेशने कोई संप्रदाय प्रवर्तित नहीं कियो

हे. ब्राह्मणको जो प्रवर्तित सम्प्रदाय हे वा संप्रदायमें वो गायत्रीकी दीक्षा दे रह्यो हे. अब जैसे मैं कोईकु ब्रह्मसंबंध दे दऊँ तो वो श्याममनोहरसंप्रदाय नहीं केहवा सके हे. क्यों नहीं केहवा सके? क्योंके मैं जो ब्रह्मसंबंधकी दीक्षा दे रह्यो हूँ वो मेरी दीक्षा नहीं हे. वो दीक्षा वल्लभाचार्यसम्प्रदायकी हे, पुष्टिभक्तिसम्प्रदायकी हे. वामें आचार्यत्व मेरो नहीं हे, आचार्यत्वको द्वार मैं हो सकु. मानें वा बातकु ॲक्जिक्यूट् करवेवालो एक ॲक्जिक्यूटर्. फाउन्डर् 'आचार्य' केहवावे. मैं नहीं केहवा सकु क्योंके मैं अपनी दीक्षा तो कोईको दे नहीं रह्यो हूँ. सम्प्रदायकी दीक्षा दे रह्यो हूँ और आप जो मोसु दीक्षा ले रहे हो, वो वल्लभसंप्रदायकी दीक्षा ले रहे हो, श्याममनोहरकी दीक्षा नहीं ले रहे हो. ये बात अपनेकु साफ होनी चहिये. क्योंके श्याममनोहर और आप इमूमटीरियल् हे. संप्रदाय एक बहती भयी गंगा जैसी हे जो महाप्रभुजीसु लेके जहाँ तक वाकी उत्तरावधि, वाको विचार अभी अपन् नहीं कर रहे हें क्योंके वाको विस्तार हो जायगो और वो अपेक्षित नहीं हे. पर वाकी उत्तरावधि भी आ सके हे. वाको विचार भी अपन् जब आगे विषय बढ़ेगो तब करेंगे.

(अपने गुरु महाप्रभुजी)

वा बहती भयी गंगाकी अपन् एक लहर हें. मैं भी वाकी एक लहर हूँ. आप भी वाकी एक लहर हो. अपनो कोई स्वतंत्र अस्तित्व हे नहीं क्योंके अपन् महाप्रभुजीके वंश हें. ये बात अपन्कु ख्यालमें रखनी चहिये. कोई पुत्रवंश होवे हे, कोई शिष्यवंश होवे हे पर जो भी ब्रह्मसंबंधकी दीक्षा ले रह्यो हे, वो महाप्रभुजीको वंशज हे. यह बात कभी भी भूलनी नहीं चहिये. वो पुत्रवंश नहीं हे तो शिष्यवंश हे. अपन् सब महाप्रभुजीके वंशज हें. अपनो आचार्य महाप्रभु हें.

(ब्रह्मसंबंधकी भगवदाज्ञा-संप्रदायकी पूर्वावधि)

क्योंके वानें ये संप्रदाय प्रवर्तित कियो. वो भी ये दावा वा

ढंगसु नहीं करे हें. वो भी ये बात या ढंगसु केह रहे हें के **''श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते''** (सि.र.१) ये दीक्षा प्रवर्तित करवेकी दीक्षा मोकु स्वयं भगवान्ने दी. भगवान्ने मोकु आज्ञा करी हे **''जा जीवको तुम ब्रह्मसंबंध करवाओगे, तिनकों हों अंगीकार करूँगो और जिनकु तुम नाम देओगे, तिनके सकल दोष दूर होयेंगे.''** ये सम्प्रदायकी पूर्वविधि हे, जाकु अपन् 'गंगोत्री' 'यमुनोत्री' केह हें. देखो! यहाँ अपने संप्रदायकी गंगोत्री और यमनोत्री को वर्णन कियो जा रह्यो हे. ये गंगासागरसंगमकी या प्रयागराजके संगमकी कथा नहीं हे. ये पुष्टिभक्तिकी कथा हे जहाँसु पुष्टिसंप्रदाय प्रवर्तित भयो. ये तो संप्रदाय प्रवर्तकत्वेन महाप्रभुजीको प्राधान्य हे. यासु महाप्रभुजीके ग्रंथनूमें सामान्यतया ऐसो उल्लेख मिले हे के ''इति श्रीवल्लभाचार्य विरचितं श्रीयमुनाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम्'' या ''इति श्रीवल्लभाचार्य विरचितो बालबोधः संपूर्णः'' और शुरुआतके ग्रंथनूमें जब तब आपने दीक्षा स्वयं प्रवर्तित नहीं करी हती तब तक स्पष्ट श्रीमहाप्रभुजी ऐसे लिखे हें के ''वेदव्यास विष्णुस्वामी मतानुवर्ती वल्लभभट्ट इति''

(महाप्रभुजीको आचार्यपनो पुष्टिसंप्रदायप्रवर्तनके कारण न कि प्रसिद्धिके कारण)

या बातसु लोग क्या समझें के जब तक उनकी पॉप्युलारिटी नहीं भयी हती यासु वो अपने आपकु भट्ट केहते हतें बादमें पॉप्युलर् हो गये यासु अपनेकु आचार्य केहवे लग गयें. एक बात ध्यानसु समझो के पॉप्युलेरिटी तो महाप्रभुजीकी भयी हती जब महाप्रभुजी ग्यारह बरसके हते. ग्यारह बरससु लेके तीस बरस तक आपने बहोत प्रदक्षिणा करी और वाके दौरान आप तो पॉप्युलर् भये ही हतें. कितने सेवक भये हते आपके! पॉप्युलेरिटी तो तब ही हो गयी हती आपकी पर क्योंके वा समय तक आपने दीक्षाविधि कोई प्रवर्तित नहीं करी हती. जो विष्णुस्वामीकी दीक्षा हती वो ही दीक्षा आप

देते हतें करके आप अपनेकु वा संप्रदायको अनुगामी मानते हतें. आचार्य नहीं मानते हतें. ये वाकी सूक्ष्मता हे, जाकु समझे बिना लोग यद्वा-तद्वा विधान करते रहे हें के वा बखत तक पॉप्युलर् नहीं हते, तो वल्लभभट्ट केहते हते. पाछें अचानक पॉप्युलर् हो गये तो आचार्य केहवे लग गये अपने आपकु. उन बेवकूफनूकु क्या समझानो? बात पता नहीं हे, इतिहास पता नहीं हे, न संप्रदाय क्या हे यह पता हे. बस जो मनमें बात आ गयी, वो केहनो शुरु कर दे. बात साफ हे के तीस बरसकी उमर तक आपको कोई सम्प्रदायप्रवर्तकत्व नहीं हतो या लिए आप आचार्य नहीं हते. जबरदस्त दार्शनिक हतें और बहोत सारे ग्रंथ आपने वा दरम्यान लिखे हें. अपने सारे ग्रंथनूके मतको प्रतिपादन कियो. आपने कई शास्त्रार्थनूमें विजय वा दरमियान ही पायी हे. वाके बाद आप जब अडेलमें सेटल् हो गये वाके बाद भी शास्त्रार्थ भये हे पर कोई मुख्य शास्त्रार्थ नहीं भये. फिर न तो आप अधिक बाहर पधारते हतें, क्योंके ठाकुरजीकी सेवा करते हतें.

(महाप्रभुजीने ठाकुरजी व्यक्तिगत ही पधराये हे सार्वजनिक नहीं)

आप चौरासी वैष्णवकी वार्ता देखो तो आपकु पता चलेगो के वैष्णव ब्रह्मसंबंध लेते तो वाके बाद आप आज्ञा करते के ''अब तुम घर जायके ठाकुरजीकी सेवा करो.'' तुम एक वार्ता छोड़ो तो दूसरी वार्तामें तो ये बात आ ही जायगी के ''तुम घर जाय के सेवा करो.'' अभी एक भाईने मोसु पूछी तो ये ही बात मैंने उनकु बताई के यदि महाप्रभुजीकु मंदिर खोलने होते तो तीन प्रदक्षिणामें सारे भारतमें जगह-जगह मंदिर खोल सकते हतें. जगह-जगह उनके शिष्य हते. कहीं तो महाप्रभुजीने मंदिर नहीं खोल्यो. घूम-घूमके घर-घरमें सेवकनूके माथे ठाकुरजीकी सेवा पधरायी और एक-एक वैष्णवके घर कई बार तो बिराजके आपने सेवा सिखायी. कैसे सेवा करनी ये बतायो के ''तेरे ठाकुरजीकी सेवा तू कर.'' और वार्ता आप देखोगे

तो विलक्षण बात यहाँ तक मिलेगी के ठाकुरजीकी सेवामें कई बखत ऐसो भी भयो हे के वैष्णवने जा तरहसु सेवा करी, वा बातकु प्रमाण मान्यो गयो और दूसरे प्रकारकु प्रमाण नहीं मान्यो गयो. जाको स्पष्ट उदाहरण अपन् पद्मनाभदासजीकी वार्तामें देखें. मथुराधीशजी जा बखत हमारे घरमें पधारे, वा बखत गिरिधरजीने छप्पनभोग धर्यो पर मथुराधीशजीने कही के वो प्रसन्नता नहीं भयी. तब गिरिधरजीने पूछी के "आप वैसे प्रसन्न क्यों नहीं लग रहे हो?" तब उनने कही "जो पद्मनाभदासके छोलामें बहोत स्वाद हतो." अब देखो ये बात के पद्मनामदासको ठाकुर हे, ठाकुर कितनो व्यक्तिगत हो गयो! वो पद्नाभदासके भावसु भावित ठाकुर हो गयो.

मैं जैसे एक व्यक्तिगत बात बताऊँ. सिद्धांतके साथ याको संबंध नहीं हे. बचपनमें मोकु चायकी आदत नहीं हती. चाय पीवेको प्रसंग ही नहीं आयो हतो. शादीके बाद लक्ष्मी जनानामें चाय पीती हती. बैठकमें तो कोई हमारे चायको प्रसंग ही नहीं हतो. जब बम्बईमें बड़ो मन्दिर छोड़के फ्लॅट्में शिफ्ट् भये, तब जब लक्ष्मी चाय बनावे, तो पूछे के चाय पियोगे? कोई कितनी बखत मना कर सके! तो हमने कही के लाओ चाय. वो लक्ष्मीके भावसु भावित श्याम मनोहर चाय पी रह्यो हे. असल श्याम मनोहरकु तो चाय पीवेकी आदत ही नहीं हती. अब वो आदत हो गयी हे. ऐसे ही पद्मनामदासजीके भावसु भावित मथुराधीश छोला आरोग रह्यो हे. वासु पहले मथुराधीशजीकु छोला आरोगवेकी आदत तो हती नहीं. ये तो जो लाड़ लड़ावे, जा तरहसु लालन-पालन करे, जा तरीकेसु सेवा करे हें, वा तरीकेको अभ्यास स्वभाव प्रभाव बच्चामें भी पड़े हे. ठाकुरजीपे भी पड़े हे. वा तरहसु मथुराधीश पद्मनाभदासको ठाकुर हो गयो. मानें महाप्रभुजीके घरको छप्पनभोग जाकु नहीं भावे ऐसो मथुराधीश हो गयो. ये कैसे भयो? महाप्रभुजीके कारण नहीं, पद्मनाभदासके कारण. ये इतनो व्यक्तिगत ठाकुरजी महाप्रभुजीने पधरायो.

आप याकु या तरहसु भी समझ सको हो के अपन् एक लड़कीकु बड़ी करे हें, और बहोत सारी आदत वाकी पीहरमें पड़ जाय फिर वो ससुराल जावे तो वहाँकी कुछ और आदत वामें आ जाय. वाको मन पीहरमें नहीं लगे क्योंके वाकु ससुरालकी आदत पड़ गयी हे. मथुराधीश भी लौटके हमारे घर पधारे, तो उनकु आदत तो वहाँ पद्नामदासके यहाँकी ही भयी. जहाँ वो रहे, जहाँ वो बिराजे, जहाँ उनने जासु सेवा ली, वा भावसु भावित आपको स्वरूप हो गयो.

हमारे परिवारमें प्रायः जितनी लड़की आवें वो दक्षिणकी ही आवें. कोई भूले-चूके ही यहाँकी आवे. जैसे हम यहाँ माइग्रेट् हो गये ऐसे महाप्रभुजीके साथ पंद्रह परिवार दक्षिणसु यहाँ उत्तरमें आ गये हतें और वो परिवार कुछ बीकानेर जयपुर या यहाँ-वहाँ बिखर गये. दक्षिणकी लड़की आवे तो बिचारी तब तेलुगु बोलती होवे पर हमारे यहाँ आवेके बाद सब ब्रजभाषा बोलती हो जाय हे. हमकु तेलुगु बोलनी नहीं आवे. जबकि माँ दादी सब तेलुगुभाषी. दस तक गिनतीमें ही सारी तेल्गु खतम हो जाय हमारी. वासु ज्यादा तेलुगु आवे नहीं हे. मातृभाषा हमकु नहीं आवे और पच्चीस भाषा आ जाय ऐसी विचित्र बात हे. कोई पूछे के तुम्हारी मातृभाषा क्या हे? तो केहनो पड़े तेल्गु और तेल्गु आवे नहीं. मातृभाषा अपनकु नहीं आवे, पितृभाषा आवे. माँ जो बोले वो नहीं आवे. माँ हमसु वो भाषा बोले ही नहीं हे तो कहाँसु आएगी! ऐसे ही मथुराधीशजीकु छोला भा गये क्योंके पीहरमें भले ही छोला नहीं आरोगते होयेंगे पर ससुरालमें छोला बहोत प्यारसु आरोगे. उनने कही के अब छोला ही भावे, छप्पनभोग नहीं भावे. ये स्वभावको परिवर्तन हे. इतनो व्यक्तिगत ठाकुर के महाप्रभुजीने एक-एक घर जाके वैष्णवनके घरमें पधरायो. ऐसी एक वार्ता नहीं अनेक वार्ता हें जामें या बातको प्रमाण मिले हे के महाप्रभुजीने व्यक्तिगत ठाकुर

पधराये.

(साधनाप्रणालीकी महत्ता)

ये महाप्रभुजीके संप्रदायकी साधनाप्रणाली हती और या साधनाकी प्रणालीमें जो दीक्षा हे वो गंगोत्री हे, वो ब्रह्मसंबंध हे, और **''कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता''** (सि.मु.१) या **''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन''** (चतु.१) या **''बीज-दार्ढ्य-प्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः''** (भ.व.२) ये वाकी बहती गंगा हे. दीक्षाकी गंगोत्रीसु जब तक ये बेह रही हे तब तक वल्लभसंप्रदाय हे और जहाँ वो बहती बंद भयी, तो भले ही कृष्णभक्ति बहती होयगी. ये सारो जो आजकल चल रह्यो हे, वामें कृष्णभक्ति तो बह ही रही हे पर वो वल्लभसंप्रदाय नहीं कह्यो जा सके हे. ये बात अपनेकु साफ-सुथरे तोरपे समझनी चहिये. क्योंके वो वाकी उत्तरावधि आ गयी. जैसे यमुनाजी, गंगाजीमें मिल गयी तो वो यमुनाजी नहीं गंगाजी बह रही हे. कई बातें कोमन् हें जैसे अपनो कृपाको सिद्धांत और मुसलमाननूको कृपाको सिद्धांत कॉमन् हे. वो करीम कहें, रहीम कहें. करम क्या? 'करम' मानें कृपा. करम करे सो 'करीम'. रहम करे सो 'रहीम'. वो कोमन् हे तो क्या अपन् ये कहेंगे के अपन् मुसलमानसंप्रदायके हें? या मुसलमानकु अपन् यों कहेंगे के तुम पुष्टिसंप्रदायके हो क्योंके तुम करीम रहीम मान रहे हो? ये एक बेवकूफीकी बात हे. उनकी एक अलग दीक्षा हे ''ला इलाह इल्लिलाह मोहम्मद रसूल अल्लाह.'' वा दीक्षासु वो मुसलमानधर्मकी गंगोत्री हे और जब तक तोहीद नमाज रोजा हज और जकात, ये उनके पांच कार्य हें वो करें हें तब तक वो मुसलमान धर्म बह रह्यो हे. जहाँ वो रुक्यो, तो भले ही कोई अल्लाह केहतो होय, जैसे कबीर भी भगवानूकु 'अल्लाह' केहतो हतो, तो ऐसे बहोत सारे हें जो भगवानूकु 'अल्लाह' कहे हें, वासु वो मुसलमानसंप्रदायके नहीं हो

जा रहे हें. आपकु ख्याल होय तो ईरानके लोग अल्लाह नहीं कहे हें 'खुदा' कहे हें. हें वे मुसलमान पर 'अल्लाह' नहीं कहे हें. जब तक मुसलमानकी दीक्षाके पांचकर्म, तोहीद रोजा हज नमाज़ और जकात निभा रहे हें तब तक वे मुसलमान हें. चाहे वो 'अल्लाह' न कहके 'खुदा' कहें, तो भी. क्योंके प्रश्न नामको नहीं हे, प्रश्न संप्रदायको हे.

(ब्रह्मसंबंधसु दोषनिवृत्ति)

या तरहसु महाप्रभुजीके संप्रदायमें ब्रह्मसंबंधकी दीक्षा एक तरहकी गंगोत्री हे और या गंगोत्रीके बहते बखत, जैसे भागीरथकु ये आश्वासन दियो हतो के गंगा भूतलपे आके सगरके पुत्रनके पापको नाश कर देगी. ऐसे ही ठाकुरजीने ये महाप्रभुजीकु आश्वासन दियो हे **''ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयो: सर्वदोष निवृत्ति हि दोषा: पंचविधा: स्मृता:''** (सि.र.) ये जो दोष हें ये खतम नहीं होंयगे पर इनमेंसु, कोई भी दोष, या पांच गुना पांच पच्चीस दोष हो जांय पर सेवामें बाधक नहीं होंयगे. इन दोषनके कारण कोई भी पुष्टिमार्गीय सेवाको अनधिकारी नहीं कह्यो जायगो.

आज अपनने कैसी-कैसी क्षुद्रताएं खड़ी करी हें के कुआ नहीं हे तो सेवा नहीं हो सके. इतनो नेग-राग-भोग नहीं हे तो सेवा नहीं हो सके हे. या तरहको शृंगारको सामान नहीं हे, तो सेवा नहीं हो सके. अरे भई! ये सब वल्लभसंप्रदायकी कोई आइटम् ही नहीं हती. वल्लभसंप्रदायकी तो आइटम् ये हती के ''जिनकु तुम ब्रह्मसंबंध करवाओगे, तिनके सकल दोष निवृत्त होयेंगे.'' 'निवृत्त' होयेंगे को मतलब के भगवत्सेवा करवेमें ये दोष कभी आड़े नहीं आयेंगे. जाको मैंने कल आपकु उदाहरण दियो हतो, जैसे बिजलीको करन्ट् तारमें बेह हे वो बहतो बंद नहीं होवे हे पर यदि लकड़ीके पट्टापे खड़े होयेंगे तो वो घातक नहीं रेह जाय हे. तारकु छू

भी लो तो भी वो घातक नहीं हे. वरना तारकु छू लो तो जान जायेगी.

(सदोषजीवको निर्दोषब्रह्मके द्वारा अंगीकार-ब्रह्मसंबंधसु)

ब्रह्मसंबंधसु मूलमें अपनेमें क्या अंतर आवे हे के जीवके जो दोष हें, वे ब्रह्मसंबंधसु प्रभुसेवामें आड़े नहीं आवें हें. महाप्रभुजीकु भी ये ही चिंता हती के जीव दोषनसु भर्यो भयो हे, वाको निर्दोष पुरुषोत्तमके साथ संबंध कैसे होय सके? या चिंताको निवारण श्रीठाकुरजीने प्रकट होयके कियो के जीवकु तुम ब्रह्मसंबंध करवाओ वासु जीवके दोष सेवामें आड़े नहीं आयेंगे. मानें सेवामें कोई व्यक्ति अनधिकारी नहीं रेह जायगो. हर अंगीकृत जीव सेवाको अधिकारी हो जायेगो. जाको अपन् यहाँ प्रमाण हे के मोहनाभंगीने ताजबीवीने ब्राह्मणने शूद्रने हिन्दुने मुसलमानने बनियाने क्षत्रियने भी सेवा करी. कोई वैष्णवकु सेवा करवेके लिए कोई पुरोहित रखवेकी आवश्यकता नहीं हती. शास्त्रीय कर्ममें पुरोहितकी आवश्यकता हे क्योंके पुरोहितके बिना शास्त्रकार्य पूरो नहीं हो सके. शास्त्रीय कर्मकी वो मर्यादा हती. यहाँ एक नयी मर्यादा शुरु भयी जामें भक्त अपने भगवानकी सेवा स्वयं कर सके हे कोईके पौरोहित्यके माध्यमके बिना. देखो! एक नयो फॅक्टर् अपने आपमें इन्ट्रोड्युस् भयो. वार्ता पढ़ोगे तो या बातको स्पष्ट उल्लेख मिले हे के जा बखत ये प्रणाली शुरु भयी, वा बखत कई लोगनने तो कुआमें कूदके आत्महत्या करी क्योंके तुम यदि सेवा कर रहे हो तो अब क्या तुम गृहस्थ ही नहीं रेह गये? जाओ हम मरेंगे तुम्हारे माथे. ऐसे-ऐसे एजीटेशन् भये हें, इतने अपोज़िशन् भये हें.

(वर्णाश्रमधर्म देहाभिमानमूलक होवे)

सिरोही, जो आबुके पास हे, वहाँको राजा शैव हतो. वाकी दो रानियें, जो मध्यप्रदेशकी राजकुंवरी हती. पुष्टिमार्गीय हती. वो

पीहरमें ठाकुरकी सेवा करती हती. सो ब्याहके बाद भी उनकी सेवाकी आदत छूटी नहीं. वो अपने ससुराल भी ठाकुरजीकी सेवा लेके गयी. तो राजाने उनकु कही के "मेरे जीतेजी तुम ठाकुरजीकी सेवा अलगसु क्यों कर रही हो? सेवा कर रही हो तो क्या तुम अपने आपकु विधवा मान रही हो!" आज अपनकु ये समझ नहीं आवे पर वा जमानाकी मानसिकता और प्रणाली, मैं आपकु समझानो चाह रह्यो हूँ. अपने यहाँ जब हस्तमिलाप होवे हे, फेरा फिरे हें, तब पत्नी पतिसु ये आश्वासन मांगे हे के जो भी तुम धर्माचरण करोगे वाको आधो हिस्सा मेरो. पति भी अग्निके सामने संकल्प करके कहतो कि आजसु जितनो भी मेरो धर्म अर्थ काम को आधो हिस्सा तेरो होयगो. अग्निकी साक्षी या बातकी हे. अग्निकी साक्षी या बातकी नहीं हे के शादी करके अपन् नैनीताल मनाली घूमवे जायेंगे. जाके अपन् हनीमून करेंगे. अग्निकी साक्षी या बातकी नहीं हे. वाकी साक्षी या बातकी प्रतिज्ञा हे के जो मेरो धर्म हे, जो मेरो अर्थ हे, जो मेरो काम हे वाको आधो हिस्सा हर बखत तेरो रहेगो. और तेरो जायज अधिकार मोकु मान्य हे. या बातपे तब पत्नी कहती के अच्छा अब मैं तेरे वाम भागमें बैठूँ और मैं क्या करूँगी? तू धर्मकु अर्थकु कामकु संभाल, मैं तोकु संभालुंगी. या टाइपूको एक आपसी ॲग्रीमॅन्ट् हतो. पत्नी स्वतंत्रधर्म कब कर सकती हती जब वह विधवा हो जाय तब. या बातकी कॉम्प्लेक्सिटीकु समझो के कोई पत्नी स्वतंत्र धर्माचरण कब करती, जब वह विधवा हो जाती क्योंके अब पति तो चल्यो गयो अब धर्माचरण कौन करेगो? पतिके रहते पत्नीकु धर्माचरण करवेको हतो ही नहीं. पति जो करे, वाको आधो हिस्सा पत्नीको होय ही हे. वाको धर्म इतनो ही हे के वो पतिकी परिवारकी संभाल रखे. वो वाको धर्म केहवातो. वो यदि कर रही हे तो वाकु धर्माचरण, व्रताचरण, यज्ञाचरण किये बिना, सबको फल आधो मिल ही रह्यो हे ऐसो एग्रीमॅन्ट् हतो. धर्ममें संपत्तिमें परिवारके सुख-दुःखमें आधो हिस्सा मिलतो.

पर चक्कर महाप्रभुजीके सामने क्या भयो के बहोत सारे पति धर्माचरण करते ही नहीं हते. और पत्नी बिचारी जा कॉन्ट्रेक्टके तहत जुड़ी, और वो तो कछु और ही काम कर रह्यो हे. वाके भरोसे, वा टूटी नावके भरोसे कब तक समुद्रकु तैरनो! कठिनाई समझमें आयी? वाके भरोसे धर्म नहीं कर रही हे और वो खुद भी धर्म नहीं कर रह्यो हे. वो तो कुछ और ही काममें लग्यो भयो हे. वाके भरोसे फिर कब तक चलनो. याकु श्रीमहाप्रभुजीने कही के भई सेवा सब कर सकें. वर्णाश्रमकी व्यवस्थाके तहत ये बात साफ हती के पत्नी और शूद्र धर्माचरण नहीं करे हें, सेवा करे हें और ब्राह्मण वैश्य और क्षत्रीय धर्माचरण करे हें. पत्नी और शूद्र कु सेवाके कारण धर्मको आधो हिस्सा मिले हे. ऐसो सेट-अप् हतो. वह सॅट-अप् ही कॉलेप्स् हो गयो. जैसे बन्यो भयो महल खंडहर बन जाय हे ऐसे. ब्राह्मण क्षत्रीय वैश्य कोई धर्मपरायण रेह नहीं गये. सब कामार्थपरायण हो गये. वा स्थितिमें वाके भरोसे धर्मकी बात कहनी कब तक जायज हे? या स्थितिमें व्यर्थमें क्यों समय गवानो? ये वर्णाश्रमको धर्म जब तक देहाभिमान हे तब तक हे. या बातको खुलासा श्रीमहाप्रभुजीने कियो के "**यावद् देहाभिमानः तावद् वर्णाश्रमधर्माः एव स्वधर्माः**" (भाग.सुबो.३।२८।२) जब तक अपनेकु देहको अभिमान हे के मैं ब्राह्मण हूँ क्षत्रीय हूँ वैश्य हूँ, तब तक वर्णाश्रमधर्म अपनो धर्म हे ही.

(भक्ति आत्मधर्ममूलक होवे हे)

देह ही सब कछु नहीं हे. देहके भीतर रह्यो भयो आत्मा भी कुछ एक तत्त्व हे. वो भी कोई एक शाश्वत सत्य हे और वा सत्यपे महाप्रभुजीने अपनो ध्यान खेच्यो के जीवात्मा और परमात्मा के संबंधके बीच देह बहोत मायने नहीं रखे हे. थोड़ो मायने रखे हे. जीवात्मा और परमात्मा के संबंधके बीच पति-पत्नी दोनों स्वतंत्रतया भी सेवा कर सके हें. जीवात्मा और परमात्मा के संबंधमें शूद्र

और ब्राह्मण भी स्वतंत्रतया सेवा कर सके हें. जैसे ब्राह्मण सेवा कर सके हे, ऐसे भंगी भी अपने घरमें अपने ठाकुरकी सेवा वाही अधिकारसु कर सके हे. रामायण आपने पढ़ी होयगी तो आपकु ख्याल होयगो के वो शम्बूक तपस्या कर रह्यो हतो तो वाकु मार दियो. आजकल लोग कहें के वो अत्याचार कियो. अत्याचार नहीं, वा बखतको जो सेट-अप् हतो वा हिसाबसु वो बराबर हतो, क्योंके शूद्रको धर्म सेवा ही हतो. स्वतंत्र धर्म वाको कोई हतो नहीं. जो व्यक्ति सेवा कर रह्यो हे, और वाके जो सेव्य हे, उनके धर्मको लाभ वाकु मिलतो हतो. वो सेट-अप् कॉलेप्स् होयवेके कारण श्रीमहाप्रभुने कही के हम देहमूलक धर्मनूपे आश्रित होयवेके बजाय, जीवात्मा-परमात्मामूलक जो धर्म हे, उनपे अपन् निभवेको प्रयास क्यों नहीं करें और वा निभवेके प्रयासके अंतर्गत महाप्रभुजीकु सबसु बड़ी यदि कोई तकलीफ लगती हती वो ये हती के हर जीवात्मा कई तरहके दोषनूसु भर्यो भयो हे. वाको निर्दोष परमात्मासु संबंध हो कैसे सकेगो! वाकी आज्ञा ठाकुरजीने प्रकट होके या तरहसु समझाई के **''तुम जीवनूको ब्रह्मसंबंध करवाओ, तिनके सकल दोष निवृत्त हो जायेंगे.''** 'निवृत्त होयेंगे' याको मतलब ये नहीं के कानो यदि ब्रह्मसंबंध ले तो वो कानो नहीं रेह जायगो. बहरो, बहरो नहीं रह जायगो. क्रोधी, क्रोधी नहीं रह जायगो. लोभी, लोभी नहीं रह जायगो. ऐसी बात नहीं हे. लोभी तो दुष्ट लोभी ही रहगो. कानो, कानो ही रहेगो. ये सारे दोष तो वहींके वहीं रहेंगे क्योंके ये दोष तो देहमें घुसे भये हें. ये दोष देहकी वासनानूमें घुसे भये हें पर जो बात नहीं रहेगी वो क्या? वो ये के ये दोष परमात्माकी सेवा करवेमें, परमात्माकी भक्ति करवेमें आड़े नहीं आयेंगे. ये वाकी भूमिका हे. तुम्हारी जीवनचर्यामें आड़े आ सकें. तुम्हारे पाप-पुन्यके लेखा-जोखामें ये दोष आड़े आयेंगे पर जा बखत तुम परमात्मासु संबंध स्थापित करनो चाह रहे हो, परमात्माकी जा बखत तुम भक्ति करनो चाह रहे हो, वा बखत ये दोष आड़े नहीं आयेंगे. इन दोषनूकी गिनती नहीं की जायगी,

वाही तरहसु जैसे अपन् लकड़ाके टेबलपे खड़े हो गये तो बिजलीके तारकु छूवेपे करन्ट् नहीं लगेगो.

ये सारी बात प्रभुने महाप्रभुजीकु समझायी. वो ही बात महाप्रभुजीने प्रत्येक पुष्टिमार्गीयिकु समझानी चाही. अपने तो ये दुर्भाग्य हे के अपनूकु ये ही बात समझ नहीं आवे बाकी सारी बात जैसे राग नेग भोग धूम-धड़ाका मनोरथ झांकी सब समझमें आवे. बस ये ही बात समझमें नहीं आवे. हमारे दादाजी एक बड़ी मजेदार बात बताते हतें के एक डोकरी मर रही हती तो सब बेटानूने इकट्ठे होयके कही के ''माँ 'राम' बोल.'' तो वाने कही के ''बेटा तू जो कहत हे वो हमरे मुखसु नाहीं निकसत.'' इतनी बात बोली पर 'राम' नहीं बोली. ऐसे ही अपने पुष्टिमार्गीयनूकी ये खासियत हे के जो महाप्रभुजीने मुख्य बात कही, जा बातके तहत वा गंगोत्रीसु ये गंगा शुरु भयी, वा गंगामें नहानो अपनूकु पसंद नहीं आवे. बाकी अपनूकु सब बात पसंद आवे हें.

(ब्रह्मसंबंधको प्रयोजन सेवाके लिये ही होवे)

ये बात अपनूकु ध्यानसु समझनी पड़ेगी के ''जिन जीवनको तुम ब्रह्मसंबंध करवाओगे, उनकों हों अंगीकार करूँगो'' सदोष जीवको एक निर्दोष अंगीकार करे हे. ये एक बहोत बड़ी बात हे. हमारे बम्बईमें अभी कुछ साल पहले एक वैष्णव लड़की आयी. वाके माथासु पैर तकको कोढ़. सो वासु कौन शादी करे! लिहाजा वो पढ़ लिखके अमेरिका गयी और वहाँके एयरपोर्टपे सर्विस करे हे. वहाँ वाको एक पारसी दस्तूर, 'दस्तूर' मानें जो पारसीधर्मके धर्मगुरु होवे, वाके छोरासु वाको स्नेहसंबंध भयो. वा दस्तूरने कही के मैं तोसु शादी करूँगो. ये जानते भये भी के वाके पूरे शरीरमें कोढ़ हे. वाने अपने माँ-बापकु यहाँ केहवाई के एक लड़का मोसु यहाँ शादी करवेकु तैयार हे. माँ-बापने कही के ब्रह्मसंबंध जब तक

नहीं ले, तब तक हम शादी करवेकु तैयार नहीं हें. वो बिचारो दस्तूरजीको लड़का मेरे पास बम्बई आ गयो के ब्रह्मसंबंध दे दो. मैंने देख्यो के वो लड़का हिन्दु तो हे नहीं पर वैष्णव लेके आयो तो कैसे पूछूँ? सीधो पूछवेसु तो थोड़ो इन्सल्टिंग् लगे. मैंने बहोत घुमा-फिराकें वाके मुखसु निकलवायो के वो पारसी हे. मैंने वाकु कही के "तुम काहेकु ब्रह्मसंबंध ले रहे हो!" वाने कही के "लड़कीकी मम्मी केह रही के ब्रह्मसंबंध मैं नहीं लेऊँ, तो या लड़कीकी मोसु शादी नहीं करेंगे." मैंने वा लड़कीकी माँसु पूछी के "क्या ये लड़की सेवा करे हे?" वाने कही के "नहीं सेवा तो कुछ नहीं करे हे." मैंने कही के "ये तुम्हारी छोरी ब्रह्मसंबंध लेके सेवा नहीं करे तो या दस्तूरके छोराकु ब्रह्मसंबंध दिवाके फायदा क्या होयगो?" वाने कही के "यदि ये ब्रह्मसंबंध नहीं ले तो हम शादी केसे कर सके!" तब मैंने वा दस्तूरके लड़कासु पूछी के "क्या तुम याकु पारसीधर्ममें दीक्षित करोगे!" वाने इतनी बड़ी बात मोसु कही के "मेरे सामने न तो पारसीधर्म हे और न पुष्टिमार्ग. मेरे सामने या बखत ये लड़की हे. याके माँ-बाप यदि या लिए ना केहते होय तो मैं ब्रह्मसंबंध लेवे तैयार हूँ. मोकु न ब्रह्मसंबंधसु मतलब हे न पारसीधर्मसु, मोकु तो या लड़कीसु शादी करनी हे." मैंने वा लड़कीके माँ-बापकु कही के "ये इतनो बड़ो महापुरुष हे जाको उदाहरण पूरो हिन्दुस्तान खोजोगे तो नहीं मिलेगो. हजारन् रुपया वाको पगार हे. न्यूयोर्क एयरपोर्टपे बड़ो अफसर हे. वाकु लड़की चहिये तो एक मांगे तो दस मिल सके वाकु, ऐसी वाकी इकोनोमीकल् स्टेटस् हे. और वो सारी स्थिति जानके या लड़कीसु शादी कर रह्यो हे, इतनो बड़ो महापुरुष हे. वाकु केवल शादीके लिए ब्रह्मसंबंध दिवानो? सेवाके लिए लेतो होय ब्रह्मसंबंध तो अच्छी बात हे." मैंने लड़कीसु पूछी के "तोकु पारसी बननो हे?" तो वाने कही के "नहीं, पर ये बनायगो तो बन जाऊँगी. पर वैष्णव तो मैं हूँ." मैंने कही "भई! आरामसु शादी करो, दोनोंकु भगवान् सुखी

रखेगो. केवल वाकु शादीके लिए ब्रह्मसंबंध काहेकु दिवानो!" मैंने उनकु कही के "आप दस्तूर हो, अपने धर्मके धर्मगुरुन्के वंशज हो. आप एक महान आत्मा हो, मैं भी अपने धर्मको धर्माचार्य हूँ, आप क्यों व्यर्थमें ब्रह्मसंबंध लेओ हो. जब आप याकु पारसी नहीं बना रहे हो तो आप क्यों व्यर्थमें पुष्टिमार्गमें आ रहे हो! आप अपने धर्ममें कायम रहो. ऐसी छोटी सी बातके लिए क्यों पुष्टिमार्गमें आनो! यह तो देहको धर्म हे." बात समझो के पति-पत्नी देहको धर्म हे तो वाके लिए आप अपनी आत्माकु क्यों बेचो! न ये अपनी आत्माकु बेचे, न आप अपनी आत्माकु बेचो. साफ सुथरी बात रखो तो सारी बात सुलझ जायगी. फिर वाके आगे मैं तो पड़यो नहीं, पता नहीं कोईसु लिवायो के नहीं लिवायो.

(सेवाव्यतिरिक्त ब्रह्मसंबंधको प्रयोजन संप्रदायकी उत्तरावधि लावेको षड्यंत्र)

महाप्रभुजी ऐसी क्षुद्र बातन्के लिए ब्रह्मसंबंध देनो नहीं चाह रहे हें. कई लोग कहे हें के हमारे नौकरी नहीं हे. मंदिरमें नौकरी करनी हे तो हमें ब्रह्मसंबंध दे दो. अरे गरीब आदमी हे वाकु नौकरी नहीं मिल रही हे तो वाकु नौकरी दे दो पर वाकु व्यर्थमें या बातके लिए ब्रह्मसंबंध क्यों देनो? कल तो आप भैंसकु ब्रह्मसंबंध दे दोगे के तेरो दूध मंदिरमें कैसे आवे! भैंसकु ब्रह्मसंबंध देवे तबेलामें जायेंगे? भैंसको दूध भी तो बिना ब्रह्मसंबंधके पीओगे के नहीं के वाकु भी ठाकुरजीके सामने लाके ब्रह्मसंबंध दिवाओगे? एक बालकने अभी ऐसो उपद्रव कियो. उनकु कुत्ता पालवेको शौक हो गयो. कुत्ता उनके साथ ही पलंगपे सोवे. दो-चार वैष्णवन्ने देख्यो तो पूछ्यो के "जे जे आपके साथ कुत्ता कैसे?" तो उनने कही के "याकु मैंने ब्रह्मसंबंध दे दियो हे." अरे भई ये क्या हे? ये कोई ब्रह्मसंबंध नहीं हे भ्रमसंबंध हे. तुमकु कुत्ता पालवेको शौक हे पालो कुत्ता. कौनने मनाई करी! वैसे अपनी प्राचीन परंपरा हती के ब्राह्मण यदि कुत्ताकु स्पर्श करे तो छू जाय हे. यदि तुमकु

परंपरा नहीं पालनी हे, शास्त्र नहीं माननो हे तो मत मानो पर खोटे क्यों ब्रह्मसंबंधकु याके बीचमें लाओ हो! कुत्ता भैंस गधा पालवेकु ब्रह्मसंबंध नहीं हे. ठाकुरजीके सामने ब्रह्मसंबंध मंत्र बोलेगो के भौं-भौं या होंची-होंची करेगो? ऐसी कुछ आपाधापी बिना सोचे समझेकी करें, ये ही उत्तरावधि हे. देखो यहाँसु संप्रदायकी उत्तरावधि आ रही हे. बात वो ही हे, ब्रह्मसंबंध भी हे, कोई जगह तुलसी भी समर्पित की जा रही हे, सेवाके बड़े-बड़े नाटक भी चल रहे हे, छप्पन भोग हो रहे हे, हिंडोरा हो रहे हे, सजावटें हो रही हें, बस समझ लेनो के अब वल्लभ संप्रदायकी उत्तरावधि शुरु हो गयी. "गुल्चीकी साजिशे हे न खारोका हाथ हे, बर्बादिए चमनमें बहारोका हाथ हे." या सब बातमें हम सब गुंसाईन्को हाथ हे. वल्लभवंशमें आये तुम वैष्णवन्को भी हाथ हे. अपन् दोनों जा तरहसु ठगे जा रहे हें, वामें बाहरी लोग भी इन्ट्रेस्ट् लेंगे, उनको भी हाथ हो सके हे. कईयन्को हाथ यामें हो सके हे पर ये बात समझो के ये वल्लभसंप्रदाय नहीं हे, ये वल्लभसंप्रदाय कोई और नदीमें जाके अब मिल रह्यो हे. जैसे गंगाजीमें मिलवेके बाद यमुनाजी अपनो नाम खो दे रही हे और वहाँसु गंगा ही बहे हे. ऐसे ये एक प्रकारकी संप्रदायकी उत्तरावधि हे. पूर्वावधि नहीं हे. पूर्वावधि तो ये हती के अपने ठाकुरजीकी सेवा हर व्यक्ति खुद कर सके हे. वो कर सके याको अधिकार श्रीमहाप्रभुजी ब्रह्मसंबंधसु दे रहे हें क्योंके महाप्रभुजीके सामने प्रश्न हतो के हर जीवात्माकु परमात्मासु मिलवेके लिये कोई माध्यमकी अपेक्षा नहीं हे. जैसे शादी करावेके लिये लड़का-लड़कीकु माता-पिता या पुरोहित की अपेक्षा हे पर वर-वधुकु दाम्पत्य निभावेके लिए कोई दलालकी अपेक्षा नहीं हे. दलालकी अपेक्षा वेश्याकु होवे हे, पति-पत्नीकु नहीं. ऐसे अपने ठाकुरजीकी सेवा करनी हे तो वामें तीसरो कौन के तेरे माध्यमसु मैं अपने ठाकुरजीकी सेवा करूँ! पैसा मैं देऊँगो, झुला तू. ठाकुरजीकु मठरी भोग धरनी हे, पैसा मैं देऊँगो, भोग धर तू. ये दलालीकी

बात कहाँसु आ गयी! ब्रह्मसंबंधकी दलाली, भक्तिकी दलाली, सेवाकी दलाली, भावकी दलाली! ये सब क्या चक्कर हे! "या इलाही ये माजरा क्या हे, दिले नादान तुझे हुआ क्या हे" ऐसो अपनेकु विचार आ जाय. ये वल्लभसंप्रदायकी उत्तरावधि हे. ॲलीमॅन्ट् सारे वोही दीखे हें, वल्लभसंप्रदायको रूप वोही दीख रह्यो हे पर ये वाकी उत्तरावधि हो गयी, जहाँसु वल्लभसंप्रदाय अब खत्म हो रह्यो हे.

(सेवार्थ ब्रह्मसंबंधको अधिकार सब जीवन्को)

या बातकु अपनेकु बहोत ध्यानसु समझनी पड़ेगी के "**जो तुम जीवन्को ब्रह्मसंबंध करवाओगे, उनको हों अंगीकार करूँगो.**" ठाकुरजीने कितनो बड़ो आश्वासन महाप्रभुजीकु दियो हे! जा जीवको तुम, चाहे वो ब्राह्मण होय क्षत्रीय होय वैश्य होय शूद्र होय भारतीय होय अभारतीय होय कामी होय क्रोधी होय लोभी होय, जाकु भी तुम ब्रह्मसंबंध कराओगे वाकी सेवाकु मैं अंगीकार करूँगो. कोईकी दलाली मैं स्वीकार करूँगो, ऐसो तो कोई आश्वासन हतो नहीं. किनकु मैं अंगीकार करूँगो? देखो ये वचन हे के "**जिनकु तुम अंगीकार करोगे और जिनकु तुम नाम देओगे तिनके सकल दोष निवृत्त होवेंगे.**" ये सब मैं तुमकु पहले समझा चुक्यो हूं.

यासु महाप्रभुजीने एक निष्कर्ष लियो के "**तातें जीवकु ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो.**" ये देखो अपने संप्रदायकी गंगोत्री हे. यहाँसु अपने सम्प्रदायकी गंगा बही. ये श्रीमहाप्रभुजीको प्रथम वचनामृत हे. जो अपन्कु चौरासी वैष्णवकी प्रथम वार्तामेंसु मिले हे.

प्रकरण ४ : ब्रह्मसंबंधको स्वरूप

अपन्ने देख्यो के ब्रह्मसंबंध संप्रदायकी पूर्वाविधि दीक्षा हे और दीक्षा देवेकी जब महाप्रभुजीकु भगवद्आज्ञा भई, तबसु पुष्टिभक्ति संप्रदाय प्रवर्तित भयो. वाके पहले महाप्रभुजी दीक्षा देते हतें पर वो पुष्टिभक्तिसंप्रदायकी नहीं, विष्णुस्वामिसंप्रदायकी दीक्षा देतें या अष्टाक्षरकी दीक्षा देतें. दीक्षाके प्रवर्तनमें जो महाप्रभुजीकु ठाकुरजीने आज्ञा करी के ब्रह्मसंबंध जीवनकु दो. यासु निर्दोष भगवान्की सेवा करवेको अधिकार सदोषजीवकु हो जायगो. याके निष्कर्षमें श्रीमहाप्रभुजीके वचन **''जीवकु ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो''** ये देख्यो.

(**'ब्रह्मसंबंध' शब्द क्यों कह्यो ?**)

यामेंसु जो तत्त्वरूप महत्त्वपूर्ण बात समझवेकी हे वो ये हे जो मैंने पहले दूसरे दिनके प्रवचनमें बताई. आपने ब्रह्मसंबंध शब्द कह्यो हे, परमात्मसंबंध नहीं कह्यो, भगवत्संबंध नहीं कह्यो, कृष्णसंबंध नहीं कह्यो, कोई देवमूर्तिसंबंध नहीं कह्यो. याको कोई एक विशेष अभिप्राय हे. मैं आपकु विस्तारसु भी समझानो चाहूँ हूँ और संक्षेपमें भी अपन् याको सूत्र समझ लें. संक्षेपमें सूत्र याको ये हे के कृष्ण और ब्रह्म ये कोई दो हकीकत नहीं हे, हकीकत एक ही हे. वाके दो अलग-अलग पेहलु हें. जैसे सोना और गहना. जा बखत सोनाको गहना बन गयो, वा बखत सोना और गहना कोई दो हकीकत नहीं हे, हकीकत एक ही हे पर सोनाको एक पेहलु गहनाको हे और गहनाको दूसरो पेहलु सोनाको हे. उन दोनों पेहलुनकु अलग समझनो पड़ेगो. जैसे एक मकान समझ लो. वामें ईंट पथ्थर चूना हे. ईंट पथ्थर चूना एक अलग चीज हे और वासु बन्यो भयो मकान एक अलग चीज हे पर हकीकत दो नहीं हे, हकीकत एक ही हे पर वाके पेहलु दो हो गये.

(**कृष्णको ही पेहलु ब्रह्म**)

कृष्ण ही ब्रह्म हे, अपन् जाने हें के **''परं ब्रह्मतु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्''** (सि.मु.३) **''पूर्णानंदो हरिः तस्मात् कृष्णएव गतिर्मम''** (कृष्णाश्रय-८) भगवान्ने भी गीतामें स्वयं आज्ञा करी हें **''मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं हेतुना अनेन कौन्तेय जगद् विपरिवर्तते''** (भग.गीता. ९।१०) अर्जुनने भी भगवानकु ये कही हे **''परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् आहुस्त्वाम् ऋषयः सर्वे देवर्षिनारदस्तथा''** (भग.गीता. १०।१२) तू परब्रह्म हे परमधाम हे. ये तू भी केह रह्यो हे और ऋषि भी केह रहे हे और ये मोकु भी मान्य हे. तो कृष्ण परब्रह्म हे पर परब्रह्म होनों वाको एक अलग पेहलु हे.

(**कृष्णकी प्राप्ति केवल अनन्यभक्तिसु**)

वा परब्रह्मको श्रीकृष्ण होनो एक दूसरो पेहलु हे. यदि आप ध्यानसु समझो तो आपकु ख्याल आयगो के ब्रह्मको जो कृष्णवालो पेहलु हे वो आज अपनकु उपलब्ध नहीं हे क्योंके कृष्ण तो द्वापरमें प्रकट्यो और द्वापरांतमें पाछे वो स्वधाम पधारे. कृष्णको जो पेहलु आज अपनकु उपलब्ध हे, वो हे ब्रह्म होवेको. सो संबंध तो वाहीसु जुड़ेगो, जा बखत जो पेहलु उपलब्ध होय. जैसे बगीचामें एक फूल खिल्यो भयो हे. मधुमक्खीकु फूल पहले उपलब्ध होवे हे के गंध? गंध पहले होवे हे. वा गंधके आधारपे वो फूलकु खोज निकाले हे. जितने चेंटा-चेंटी हें, उनकु शक्कर पहले उपलब्ध नहीं होवे, शक्करकी गंध पहले उपलब्ध होवे हे. और वो गंध जहाँसु आ रही हे, धीरे-धीरे चेटाएं वहाँ इकठ्ठे हो जाय. जो चीज उपलब्ध हे वाके आधारपे ही तो अनुपलब्धकु हम पा सके हें पर जो चीज उपलब्ध नहीं हे, अनुपलब्ध हे, वाके आधारपे कोई चीजकु पावे जायेंगे तो बड़ी मुश्किल कथा हो जायगी. याही कारणसु कृष्णको जो ब्रह्म होवेको पेहलु हे वो अपनकु उपलब्ध

हे, वो कभी अनुपलब्ध हो नहीं सके हे. और ब्रह्मको जो कृष्ण होवे को पेहलु हे, वो तो भगवान् स्वंय आज्ञा करे हें के **"भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहम् एवंविधोऽर्जुन ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेनु प्रवेष्टुं च परन्तप!"** (भग.गीता. ११।५४) वो तो बिना भक्तिके जल्दीसु नहीं मिल पायगो. कहीं आकाश-पातालमें खोजो, कहीं खुदाई करो या कहीं विमानमें बैठके जाओ. वामें कृष्णवालो पेहलु कहीं नहीं मिले हे. वो तो अनन्यभक्ति प्रकट होवे तब वो कृष्णवालो पेहलु अपनुकु मिल सके हे.

(अनवतारकालमें कृष्णको ब्रह्मवालो पेहलु ही उपलब्ध)

कृष्णको ब्रह्मवालो पेहलु अपनुकु सदा सर्वदा उपलब्ध हे. वो कभी अनुपलब्ध हो नहीं सके हे. उपनिषद् याके लिए बड़ी सुन्दर बात समझावे हे. **"तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्या भासा सवर्म् इदं विभाति"** (मुण्ड.उप.२।२।११) वाको प्रकाश सत्ता चेतना आनन्द या जगत्में अपनुकु उपलब्ध हे. या ही कारणसु अपनुकु ये सब उपलब्ध हो रह्यो हे. यदि वाकी सत्ता नहीं होय तो जगत्में कोईकी सत्ता उपलब्ध नहीं हो सके हे. यदि वाकी चेतना नहीं होय तो जगत्में कोई चेतना प्रकट नहीं हो सके हे. वाको यदि आनन्द जगत्में उपलब्ध नहीं होय तो अपनुकु कोई चीजमें सुख मिल नहीं सके हे. वो सच्चिदानन्द परब्रह्म हे. **"परं ब्रह्म तु कृष्णो हि"** वाकी सत्ता चेतना और वाको आनन्द अपनुकु उपलब्ध हे पर वो खुद उपलब्ध नहीं हे. बिलकुल वाही तरहसु जा तरहसु बगीचामें जाती भयी मधुमक्खीकु फूलकी गंध उपलब्ध हे, और फूलके लिए तो कई बार एक-एक पत्तापे, एक-एक पेड़पे मंडरानो पड़ेगो. जब वो यहाँ-वहाँ मंडराके पता लगा लेवे हे के यहाँ फूल हे. और जहाँ फूल हे, वहाँ जाके वो शांतिसु बैठ जावे हे. या प्रकार मंडराये बिना मधुमक्खीकु तितलीकु फूल मिले नहीं हे. कभी शांतिसु बैठके देखियो के तितली फूलपे बैठवेके लिये कितनो प्रयास करे

हे! यहाँ जावे वहाँ जावे दो क्षण भी चुप नहीं बैठ पावे हे. कितनो भीषण प्रयास करे तब जाके वाकु फूल मिले हे. जल्दीसु फूल नहीं मिले हे, गंध मिले हे. याही तरहसु कृष्णकी जो गंध हे, ब्रह्म, वो अपनकु मिल जाय हे. वाकी सत्ताकी चेतनाकी आनन्दकी गंध अपनकु उपलब्ध हे. वो उपलब्ध हे या आधारपे अपन् मंडरानो शुरु करेंगे, वा सत्ताके लिए, वा चेतनाके लिए, वा आनंदके लिए. वा मंडरावेकी प्रक्रियामें जब अपनो हृदय भक्तिकी अनन्यताकु प्राप्त करेगो, वा बखत कृष्ण मिलेगो. अपन् यों सोचें के सहसा कृष्ण मिल जाय तो सहसा कृष्ण नहीं मिले हे, ब्रह्म मिले हे. याही कारणसु अपने यहाँ बड़ी सावधानीसु ये सारी बात कही गयी हे के "**ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयो:**" ब्रह्मसंबंध होनो चहिये.

('ब्रह्मसंबंध'को विचार[१-७])

'ब्रह्मसंबंध'को मतलब क्या? जैसे यामें एक शब्द हे, ब्रह्म, दूसरो शब्द हे, संबंध और तीसरो शब्द हे, करण. "**तासु ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो**" जो सिद्धांतरहस्यमें पंक्ति आयी हे वाहीको अनुवाद यहाँ आयो हे.

([१] ब्रह्मके साथ संबंध होयवेपे भी बेध्यानपनेसु असंबंधता)

जो प्रभुने आज्ञा करी के "**ब्रह्मसंबंधकरणात्**" तो सवाल ये पैदा भयो के ब्रह्मसंबंध यदि ब्रह्म उपलब्ध हे तो करेंगे कैसे? और यदि कर रहे हें तो मतलब उपलब्ध नहीं होनो चहिये ऐसी शंका होवे हे. फिर अपनकु एक बात ध्यानमें रखनी पड़ेगी और वो बिलकुल मधुमक्खीवाली ही बात हे. मधुमक्खीकु अपन् ध्यानमें रखें तो सारी बात समझमें आ सके हे के फूलकी गंध तो मधुमक्खी आवे तब उपलब्ध होवे ऐसे नहीं हे. वो तो मधुमक्खी नहीं आयी हती तब भी उपलब्ध हती पर जब वो खोजेगी तब वाकु गंध मिलेगी.

([२] उपलब्ध सामर्थ्यके बेध्यानपनेसु अनुपलब्धि)

हनुमानजीमें वो सामर्थ्य उपलब्ध हती के वो समुद्रकु लांघ सके. पर जब तक वो याद नहीं दिवाई के "महाराज! आप वायुके पुत्र हो. आप या तरहसु निराश क्यों बैठे भये हो के समुद्रकु कौन लांघेगो?" तब तो उनने समुद्र ही नहीं लांघ्यो, लंका भी जला ड़ाली. सामर्थ्य उपलब्ध हती पर जब तक अपन् वा तरफ अभिमुख नहीं होवें, तब-तक जो सामर्थ्य अपनेमें हे, वो सामर्थ्य अपनेमें काम करती शुरु नहीं होवे हें. अपनेमें रही भई सामर्थ्यकी ओर जब तक अपन् अभिमुख नहीं होवे हें, तब-तक वो सामर्थ्य प्रकट नहीं होवे हे. जैसे बच्चा बुद्धिमान हो सके हे पर हर समय वाकु समझानो पड़ेगो, पीठ थपथपानी पड़ेगी के बेटा तू बुद्धिमान हे. धीरे-धीरे वो समझ जायगो क्योंके वामें सामर्थ्य तो उपलब्ध हे ही. वो वामें काम करती हो जायगी और यदि दिन भर वाकु केह रहे हो के तू तो मूर्ख हे, क्या करेगो तू? तोसु होनो क्या हे? तो वामें जो उपलब्ध सामर्थ्य होयगी, वो भी धीरे-धीरे शान्त हो जायगी. हर समय ये ही सिद्धांत काम करे हे. ऐसे ही बगीचामें फूल उपलब्ध हे और अपन् फूल सूंघनो नहीं चाहे हें. संस्कृतमें एक बड़ी मजेदार कहावत हे "वने पुष्पे समाकीर्णे" जंगलमें फूलनकी सुगंध भी आ रही होवे हे पर सूअर तो दुर्गंध ही खोजे के दुर्गंध कहाँसु आ रही हे? उपलब्ध तो दोनों चीज हें न! जो कछु आदमी खोजेगो वो ही तो वाकु मिलेगो "जिन खोजा तिन पाईयां गहरे पानी पैठ." उपलब्ध सब कछु हे पर मिलेगो वो ही जो अपन् खोज रहे हें. ऐसे ही ब्रह्मकी सत्ता, जगत्की सत्तामें उपलब्ध हे. अपनकी चेतना हे वो ब्रह्मकी चेतनाको एक हिस्सा हे. बिलकुल वाही ढंगसु जैसे गहनाकी सत्ता सोनाकी सत्ताको एक हिस्सा हे. सोनाके तो गहना हे. मानो के सोना भापकी तरह उड़ गयो तो गहना भी नहीं रह जायगो. जैसे कपूरकी पुड़िया अपन् बाधें तो वो पुड़िया ही रह जाय हे और कपूर गायब हो जाय हे.

(३ सत्ता चेतना आनंद की हकीकत मानें ब्रह्म)

बनारसमें संस्कृत विद्यापीठमें मैं एक बखत गयो. वहाँ बहोत हस्तलिखित ग्रंथ रखे भये हें. मैंने उनकु कहीं के मोकु एक हस्तलिखित ग्रंथ चहिये. उनने कही के ग्रंथ तो हे पर ग्रंथ के बजाय अब केवल् ईंट बंधी भयी हे. बँध्यो भयो ग्रंथ तो दूरसु दिखाई दे रह्यो हतो पर वहां ग्रंथ नदारद हतो. केवल ईंट बंधी भयी रखी हती. ये बात क्यों संभव हे क्योंके ग्रंथ एक अलग हकीकत हे और वापे बंध्यो भयो पट्टा या कपड़ा एक अलग हकीकत हे. तो याही तरहसु ग्रंथ गायब होवेके बाद भी लपेटो भयो वस्त्र अपनकु दीख सके हे, वाही तरहसु जा तरहसु आत्माके गायब होवेके बाद शरीर शवके रूपमें तो अपनकु दीखे ही हे. क्यों दीखे हे क्योंके आत्मा एक अलग हकीकत हे और देह कोई अलग हकीकत हे पर ब्रह्म और जगत् कोई अलग हकीकत नहीं हे. जो ब्रह्मकी हकीकत हे, वो ही जगत्की हकीकत हे. जो सोनाकी हकीकत हे वोही गहनाकी हकीकत हे. सोना यदि गायब हो गयो तो गहना मिले नहीं हे. याही तरहसु ब्रह्मकी जो चेतना हे वो अंशरूपसु अपनी चेतना हे. अपनी चेतना कोई अलग चेतना नहीं हे. अंतर इतनो ही हे, जैसे एक पूरो तलाव हे और वा तलावमें उठ्यो भयो एक बिन्दु हे. ऐसे ही अपनी चेतना एक पारमात्मिक चेतनाके तलावको बिन्दु हे. बिन्दु होवेके कारण अपन् अपनी चेतनाकु जब ध्यानसु देखेंगे, तो ब्रह्मकी चेतना अपनकु अनुभूत हो सके हे. वो देखेंगे तब अनुभूत हो सकेगी, बिना देखे नहीं हो सकेगी. उपलब्ध हे पर दीखेगी नहीं. कभी बहोत तेज प्रकाश आतो होय और अपन् आँखकु स्थिर कर दें तो आंखके आगे बाल जैसे तैरते दीखे हें. सायन्सके हिसाबसु वो बाल जैसी वस्तु आँखके अंदर जो द्रव्य भर्यो हे वामें तैरते भये रेशाएँ हें. जो आँखसु अपन् देख रहे हें वा आँखके भीतर वो रेशाएँ तैर रहे हें. वो अपनकु दीख नहीं सके हें. जब तक अपन् कोई चीजकु देख रहे हें तब तक वो

दीख नहीं सके हे. जब अपन् अपनी दृष्टिकु कोई वस्तुपे निर्विषय बना दे तो वो आँखके भीतर रही भयी चीज भी दीखनी शुरु होवे हे, बशर्ते प्रकाश तेज होनो चहिये. वाकु संस्कृतमें 'केशोण्डुक' कह्यो जाय. छोटे-छोटे केशके जैसे आँखमें तैरते भये रेशाऐं. आँख हिलायी तो ओर तेजीसु तैरे हें. ये रेशाएँ हर समय अपनी आँखके सामने ही हें, पर दीखें क्यों नहीं हें? जब अपन् वाकु देखवेको प्रयास करें और देखवेकी मनःस्थितिमें होय तब ही दीखे हें. ऐसे ही जैसे अपनी नाड़ी हाथमें चले हे वैसे ही कानके पास भी चले हे. कभी तकियापे सोते बखत ध्यान दो, तो वाकी धक-धक इतनी तेज सुनाई देगी के नींद आनी बंद हो जायेगी. ये ऐसो करिश्मा प्रभुको हे के वापे अपन् ध्यान नहीं दें. जैसे चलती नाड़ीपे अपन् ध्यान नहीं दे हें. कुत्ता भूसें, गाडीको हॉर्न बजे तो अपनो ध्यान जाय पर अपनी नाड़ीकी धक-धक अपनकु नहीं सुनाई देवे हे. जब बहोत परेशान होंय और तकियापे सर रखें और ध्यान वहाँ चल्यो जाय, तो वो सुनाई देनी शुरु हो जाय. ऐसे ही ब्रह्मकी सत्ताके साथ, ब्रह्मकी चेतनाके साथ, ब्रह्मके आनंदके साथ अपनो संबंध उपलब्ध हे, पर ध्यान नहीं दियो हे.

(४ ब्रह्मकी सत्ता चेतना और आनंद पे ध्यानकी आवश्यकता)

ध्यान दिवावेकु ही यहाँ "ब्रह्मसंबंधकरणात्" कह्यो जा रह्यो हे. संबंध उपलब्ध हे, वा उपलब्ध संबंधकु भी जब आप ध्यान दोगे तो वो ध्यानमें आयगो. नहीं तो चल तो रह्यो ही हे. अक्सर एक बात देखो के हर व्यक्ति कुतुबमीनारकी सीढ़िएं जाके गिने हे, अपने घरकी सीढ़िएं कोई गिने? यदि मैं आपसु पूछूँ के आपके घरमें सीढ़ी कितनी? तो मुश्किलसु एक आधने गिनी होय तो बतायेगो. कुतुबमीनारकी सीढ़ी वहाँ जांय तो सब गिने, गिरनार जांय तो वहाँकी सीढ़ी गिने, मनसादेवी जांय तो वहाँकी सीढ़ी गिने पर घरकी सीढ़ी नहीं गिने हें. ऐसे ही ब्रह्मकी सत्ता, ब्रह्मकी चेतना, ब्रह्मको आनंद

अपनूकु उपलब्ध हे पर अपनूने घरकी मुर्गी दाल बराबर करके रख्यो हे. अपन् विषयकी सत्ता, विषयकी चेतना, विषयको आनंद, काम क्रोध लोभ मोह की चेतना, सुख-दुःखकी चेतना, याकु बहोत ध्यानसु देखें हे, बहोत ध्यानसु समझे हें, बहोत ध्यानसु वाको मजा ले हें पर वा मजा लेवेमें जो ब्रह्मकी चेतना हे वो खो गयी हे. वापे अपनो ध्यान नहीं जावे. अपनो खावेको पहरवेको ओढ़वेको सुख, इन सारे सुखनूपे ध्यान जावे हे. इन सारे सुखनूकी वासना कामना पैदा होवे हे, इन सारे सुखनूको अपनूकु आनंद मिले हे पर ये सुख जा परमानंदको अंश हे वा परमानंदके आनंदपे ध्यान जानो बहोत कठिन हे. जो मैंने आपकु कल बात बताई के "तू जो कहत हे वो नाहीं निकरत" वा डोकरीकु कही के राम नाम बोल. इतनो तो कही के "तू जो कहत हे वो नाहीं निकरत" पर 'राम' नाम जैसो छोटो नाम नहीं बोल पायी. तकलीफ मनुष्यकी याही जातकी हे के अपनूकु जो उपलब्ध हे वापे अपनो ध्यान जल्दीसु नहीं जावे हे.

मैं अपनी बात बताऊँ औरकी क्या बताऊँ! मेरी ये नाक टेढ़ी हे. ये मोकु छत्तीस बरसकी उम्रमें पता चल्यो. जब एक आदमीने मेरेपे लेख लिख्यो के गोस्वामीजीकी नाक टेढ़ी हे. मैंने कही के काहेकु ये टेढ़ी नाक बतावे हे. रातकु मैंने काँचमें जायकें देख्यो तो सचमुचमें टेढ़ी हती. अब देखो अपनी नाक छत्तीस बरसकी उम्र तक मैंने हजारन् बार देखी होयगी पर अपनी नाक यों नहीं देखी हती के टेढ़ी हे के सीधी. वाकु दीख गयी और वाने लेख भी लिख दियो के गोस्वामीजीकी नाक टेढ़ी हे. नाक अपनी कभी ध्यानसु देखी नहीं. नाक तो देखनी ही चहिये पर नहीं देखी छत्तीस बरस तक.

आदमीकी तकलीफ ये हे के जो चीज सहज उपलब्ध हे

वापे आदमीको ध्यान नहीं जावे हे. जैसे माँ-बापको प्यार अपनूकु सहज उपलब्ध होवे हे. बहोत मुश्किलसु बच्चानूकु समझ आवे हे के माँ-बाप अपनूकु कितनो चाहे हे. माँ-बाप थोड़े बिछड़ जाय तब थोड़ो बहोत समझमें आवे. नहीं तो आवे नहीं हे क्योंके सहज उपलब्ध हे. सहजता बहोत अच्छी चीज हे पर वाके साथ ये दुःख जुड़यो भयो हे के जो चीज सहज हे वापे अपनो ध्यान नहीं जाय हे. पुष्टिमार्गमें महाप्रभुजीके सब सिद्धांत अपनेकु सहज उपलब्ध हें पर अपनूकु ख्याल नहीं आवे. बाकी गाम भरके सिद्धांत ख्याल आ जाय. पुष्टिमार्गकी तकलीफ ये ही हे के महाप्रभुजी सब सिद्धांत लिख गये पर सहजताके कारण पुष्टिमार्गीयनूकु ख्याल नहीं आवे के क्या सिद्धांत हे. हर सहजताके साथ ये दिक्कत हे.

(५ ब्रह्मसंबंधके भावोद्बोधनसु ब्रह्मताकी प्राप्ति)

ये तकलीफ मनुष्यको स्वभाव हे और याके कारण ब्रह्मकी सत्ता, ब्रह्मकी चेतना, ब्रह्मको आनंद अपनूकु ख्याल नहीं आवे. तासु "**ब्रह्मसंबंधकरणात्**"ये प्रभुने आज्ञा करी. ब्रह्मसंबंध जो तुमकु उपलब्ध हे वा तरफ तुम ध्यान दो, तुम्हारो ब्रह्मसंबंध होयगो. ये ब्रह्मसंबंध तुम्हारो भयो तो महाप्रभुजी कितनी सुंदर बात बता रहे हें के "**गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना, गंगात्वे न निरूप्या स्यात् तद्वद् अत्रापि चैव हि**"(सि.र.८) गंगामें यमुना जैसी कितनी नदी मिल गयी! ऐसी बात नहीं, न जाने कितनी गटर भी मिल गयी पर जो भी गंगामें मिली वो गंगा हो गयी. या तरहसु जब भी ब्रह्मकी सत्तापे चेतनापे आनन्दपे तुम्हारो ध्यान गयो, तो जो भी कुछ दुनियाके सदोष या निर्दोष पदार्थ हें वामें ब्रह्मात्मकता प्रकट हो जायगी. और ये ब्रह्मात्मकता प्रकट भयी, तो फिर सदोष और निर्दोष को संबंध कैसे हो सके, ये समस्या बहोत गंभीर नहीं रह जायगी. क्यों? जैसे नरसी मेहता बहोत सुंदर बात केह हे के "ब्रह्म लटका करे ब्रह्म पासे" 'लटका' यानि खेल. ब्रह्म, ब्रह्मके साथ खेल कर रह्यो हे. एक ब्रह्म

निर्दोष हे, एक ब्रह्म सदोष हो गयो हे. जो सदोष हो गयो हे वो निर्दोषकु चाह रह्यो हे. जो निर्दोष हे वो सदोषके ऊपर कृपा कर रह्यो हे. एक तरीकेको सहज संबंध वामेंसु खिलेगो. ब्रह्मसंबंधकी भूमि ऐसी उपजाऊ भूमि हे, जामेंसु भक्तिकी फसल पैदा हो सके हे. और वो फसल कोई कृत्रिम खादवाली नहीं होयगी. बल्कि जमीनकी अपनी उर्वरा शक्तिवाली खाद होयगी. जैसे अपन् रसायन डाल-डालके कृत्रिम खाद बनावें और वामें अपनकु कई नुकसान हो जाय. वा तरहसु जमीनकी स्वत: उर्वरा शक्तिमेंसु जो फसल पैदा हो रही हे वामें कोई नुकसान होवेकी संभावना नहीं हे. वामें दस बखत भी फसल उगे तो भी जमीनकी खार युक्त होवेको प्रश्न नहीं उठे हे. अपन् कृत्रिम खाद डाल-डालके फसल पैदा करें तो तीन-चार बारमें वो जमीन खारयुक्त हो जाय क्योंके हमने सारो प्रयास कृत्रिम कियो. ऐसे सारे कृत्रिम प्रयास यदि अपन् भक्तिके करेंगे, तो अपनो हृदय अनुर्वरक हो जायगो. ब्रह्मसंबंधको प्रयास अकृत्रिम खादद्वारा हृदयकी भूमिपे भक्तिकी फसल उगावेको प्रयास हे. ब्रह्मसंबंधकी करणकी प्रक्रिया हे वामें अपने भीतर रही भयी जो सहज उर्वराशक्ति हे वामें यदि अपन्ने भक्तिकी फसल उगाई तो न तो ये खतम होयगी और न वो खतम होयगी. निरंतर भक्तिको प्रवाह चलतो रहेगो. **''सेवकानां यथा लोके व्यवहार: प्रसिध्यति, तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता तत:''**(सि.र.७) सब कछु ब्रह्मात्मक हो जायगो.

''ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि: ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्, ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना'' (भग.गीता.४।२४) ये जो बात अपनकु शास्त्रने बताई हे, वा तरहकी ब्रह्मात्मकताको बोध अपनकु होयगो. जैसे अपन् मथुरा जाके यमुनाजीको पूजन करें. तब सबसु पहले यमुनाजीके घाटकु साफ करें. पानी कहाँसु लावें, वाही यमुनाजीमेंसु एक लोटी लेके यमुनाजीके घाटकु साफ कियो जाय. वा साफ किये घाटपे तिलक करें, फूल चढ़ावें, जल-भोग धर्यो जाय. जल-भोग कहाँसु

धर्यो? वो ही यमुनाजीमेंसु लोटी भरके यमुनाजीकु भोग धर्यो जाय. फिर यमुनाजीकी प्रार्थनाकी जाय हे के या जलकु आप आरोगो. ये देखो, आरोगवेवालो, आरोगा जानेवालो, साफ करवेवालो सब कछु यमुनात्मक हो जाय हे. ऐसे सब कछु ब्रह्मात्मक होयवेसु सदोष-निर्दोषके जो भेद हें, वो सारे बह जायगे. ये भेद चर्मरा जायेंगे. ये भेद बड़े विकराल होके सामने आवे हे के सदोष और निर्दोष को संबंध कैसे हो सके हे. पर एक बखत ब्रह्मात्मकताकी दृष्टिसु देखो.

(६ ब्रह्मसंबंध, नाटक हकीकत और लीला भी हे-दृष्टिभेदसु भावभेद)

हमारे एक परिचितने कही के ''महाराज! ये क्या नाटक हे के आप ब्रह्मसंबंध करवाते हो?'' मैंने कही के ''ये ही तो जीवनको सबसु बड़ो नाटक हे. या नाटककु खेलनो जो नहीं जाने तो नाटक हे और खेलनो जो जाने तो लीला हे. जब ब्रह्म ही ब्रह्मके साथ खेल रह्यो हे, ब्रह्म ही पैदा हो रह्यो हे, ब्रह्म ही पैदा करवेवालो हे, ब्रह्म ही पालनकर्ता हे, ब्रह्म ही पालित हो रह्यो हे तो ब्रह्मको संबंध ब्रह्मसु ही तो करनो पड़ेगो न! और समझो के ये नाटक हे तो नाटकमें डरवेकी बात क्या हे? आप नाटक नहीं देखो क्या? दुकानपे जब आप बैठो हो तो नाटक नहीं करो हो ग्राहकसु! अरे भई ग्राहकसु नाटक नहीं करोगे तो दुकान ही नहीं चलेगी. कछु तो नाटक करनो ही पड़ेगो. आप बड़े सत्यवादी हरिशचन्द्र हो तो भी ग्राहकसु थोड़ो नाटक तो करनो ही पड़ेगो. नहीं तो दुकान चलेगी ही नहीं. दुकानको नाटक यदि नागवार नहीं गुजर रह्यो हे, घरके नाटक यदि नागवार नहीं गुजर रहे हे तो ब्रह्मसंबंधको नाटक, ब्रह्मके साथ हमारे संबंधको नाटक आपकु क्यों नागवार गुजर रह्यो हे! क्या ब्रह्मसु आपकु तकलीफ हे या हमसु आपकु तकलीफ हे. ये खुलासा करो. नाटक हे तो कछु घबरावेकी बात नहीं हे पर नाटक तो ये हे ही नहीं ये तो लीला हे. यामें नाटकको प्रश्न ही नहीं हे.

कोई याकु नाटक भी कहतो होय तो घबरावेकी बात नहीं हे. क्योंके अपनो ठाकुर भी नटवर हे. नाटक हे तो **"बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयतीं च मालां रन्ध्रान् वेणोर् अधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः"** (भाग.पुरा.१०।१८।५) अपनो ठाकुर स्वयं नटवर बन्यो हे. नटवर बनके वो यदि नाटक कर रह्यो हे तो अपनकु नाटक करवेमें तकलीफ क्या हो सके हे? जब वो नाटक कर रह्यो हे तो अपनकु भी नाटक करनो चहिये. एक बात समझो के नाटकमें एक रावण बन्यो हे और वो सीताजीकु हर जा रह्यो हे. अब यदि आपकु दुःख नहीं हो रह्यो हे तो आपकु रामलीलाको मजा ही नहीं आयगो. यदि आप वा बखत अपने ज्ञानकी बघार लगा रहे हो के ये तो सब नाटक हे, मतलब आपकु रामलीला देखनी नहीं हे. या वाको आनंद नहीं लेनो हे. आनंद लेवेके लिए तो आपकु नाटकमें भाग लेनो पड़ेगो. जब रावण सीताजीकु हर रह्यो हे तब आपकु दुःखी होनो पड़ेगो. आप केह रहे हो के दुःखी होनो नाटक हे. वो जो नाटक हे के त्रेतायुगमें रावण सीताजीकु हर गयो तो आज रामलीला क्यों? वो नाटक चल रह्यो हे यहाँ. अपनकु दुःखी भी होनो पड़ेगो. रामचन्द्रजी रावणकु दशहराके दिन मार दे हें. अपन् भी ऐसो करे हें के रावणकु जला दे हें. भगवान्ने जब वह नाटक कियो तो हमकु क्या तकलीफ हे! नाटकसु घबरावेकी बात नहीं हे. सारो जीवन ही एक नाटक हे. बल्कि हकीकत तो यहाँ तक हे के हर माँ अपने बेटाकु थपथपावे और केह के मेरो बेटा सबसु अच्छो, सबसु प्यारो. सबसु अच्छो बेटा होवे कोई दुनियामें ? ये नाटक हे तो वो नाटक वात्सल्यको नाटक हे पर वो वात्सल्यके नाटकसु मां और बेटा के संबंधकी कितनी पवित्रता उभरके आवे हे! अब वा समय कोई जाके मांकु टोके के ये तो नाटक कर रही हे, ये तो कालो हे बदसूरत हे. नाटक तो हे पर वा नाटकमें माताको वात्सल्य और माताके वा तरहसु थपथपाते भये बच्चाकु

आती भयी नींद कितनी अच्छी होवे ये कभी सोची? नींद आते भये बच्चाके हृदयमें आत्मविश्वास कैसो जगे हे, ये कभी सोच्यो? जिनकी मां बच्चाकु नहीं थपथपावे और जिनकी मां थपथपाके सुलावे, उनमें कितनो भेद हे ये कभी देख्यो? शिवाजी महाराज क्यों इतने महान बने? इतिहास पढ़के देखो के उनकी माँ उनकु रोजाना थपथपाती हती के तू अन्यायको प्रतिकार करेगो, तू मेरो राजा बेटा हे, तू बड़ो वीर होयगो, तू बड़ो शूर होयगो ऐसे रोज थपथपाती माता. एक दिन ऐसो आयो के शिवाजी अन्यायके विरुद्ध खड़ो हो गयो. अब ये नाटक हतो के हकीकत? जब माँ थपथपा रही हती तब नाटक हतो और जब शिवाजी तलवार लेके अन्यायके विरुद्ध खड़ो भयो तो वो हकीकतसु भी ज्यादा बड़ी हकीकत हो गयी. ऐसे ही अपन् भगवान्के साथ ब्रह्मसंबंधको नाटक होय तो नाटक, लीला होय तो लीला करो, हकीकत होय तो हकीकत करो.

(७ "तासु ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो" सद्भक्तिको कारण)

जो करनो होय सो ब्रह्मके साथ करो. बस ये बात हे.

वाइस्ता इससे हो मुहब्बत ही क्यों न हो.
कीजै हमारे साथ अदावत ही क्यों न हो.

झगड़ा भी होय और प्रेम भी होय तो तेरे साथ. नाटक होय हकीकत होय तो तेरे साथ. क्यों? क्योंके जब वा ब्रह्ममेंसु सृष्टि प्रकट भयी हे और वो नाटक कर रह्यो हे तो अपनकु नाटकमें क्या तकलीफ हो सके हे! ऐसे देखे तो जीवनमें कितने नाटक चल रहे हें. हर व्यक्ति सुबहसु शाम तक कई नाटक ही तो कर रह्यो हे. जब सब नाटक जीवनमें चल रहे हें तो एक ब्रह्मके साथ चलतो नाटक अपनकु क्यों नागवार गुजर रह्यो हे! ये अपनकु समझ नहीं आवे हे. मनमें आश्वस्त रहो के यदि ब्रह्मसंबंध एक नाटक हे तो कोई चिंताकी बात नहीं हे. नाटक नहीं हे,

हकीकत हे, तो बड़ी अच्छी बात हे. हकीकत नहीं हे, लीला हे तो बड़ी मधुर बात हे. यदि वो पुष्टिमार्गकी दीक्षा हे तो वा दीक्षासु अपनुकु अनुप्राणित होनो हे. **"ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः सहजा देशकालोत्थाः लोकवेदनिरूपिताः संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मंतव्याः"** (सि.र.२-३) सेवामें ये दोष आड़े नहीं आयेंगे. या बातको मैंने खुलासा कल परसो कर दियो हतो. या ही कारण महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के **"तासु ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो"**

अपनने ब्रह्मसंबंधके स्वरूपकु समझवेको प्रयास कियो. जो वामें मुख्य बात मैंने आपकु बतानी चाही वो ये हती के ब्रह्मसंबंधके कारण यदि भक्ति पनप रही हे तो वो भक्ति सद्भक्ति होयगी. वरना जा प्रकारकी भक्ति महाप्रभुजी पसंद करे हें, वैसे वाको पनपनो निश्चित नहीं हे, अनिश्चित हे. वाके उदाहरणमें मैंने आपकु समझायो के जो सहज उपलब्ध हे वासु जो अनुपलब्ध हे वाकु अपन् पहचान सके हें. जैसे कलकत्ता या बम्बईमें सूर्योदय या सूर्यास्त हो रह्यो हे (आजकल टी.वी.में आ जावे वो एक अलग कथा हे) वो यहाँ किशनगढ़में सहज उपलब्ध नहीं हे के वहाँ सूर्योदय या सूर्यास्त कैसे हो रह्यो हे! पर अपने क्षितिजमें सूर्योदय या सूर्यास्त कैसे हो रह्यो हे, वो अपनुकु सहज उपलब्ध हे. वो जो सहज उपलब्ध सूर्योदय या सूर्यास्त हे वासु अपन् बम्बई या कलकत्ता में भी याको थोड़ो अनुमान लगा सके हे, यदि अनुपलब्ध होय तो.

प्रकरण : ५ ब्रह्मसंबंधसु निष्काम और सहज भगवद्भक्तिकी यात्रा

(ब्रह्मके साथ अपनो और जड़ जगत्के संबंधको स्वरूप)

ब्रह्म परमात्मा भगवान् कृष्ण या घरको ठाकुर ऐसे पांचको चक्र मनमें विचारो तो यामें एक बात समझवेकी हे के ब्रह्मको और अपनो संबंध कैसे ढंगको हे? वो मैंने आपकु बतायो के जैसे सोना और गहना को होय. शास्त्र याकु कई तरहसु समझावे हे. आग और तिनका के जैसे संबंधसु भी समझावे हे. **"तद् यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिंगा व्युच्चरन्ति एवमेव अस्माद् आत्मनः सर्वे प्राणाः, सर्वे देवाः व्युच्चरन्ति "** (बृह.उप.२।१।२०) आगमेंसु तिनका निकलें या अपन् आज जैसे पटाखा फोड़ें तो वामेंसु कैसे फुहारा निकले! ये सारे मॉडल् हें समझवेके लिए. ब्रह्मको और जीवको जो संबंध हे, ब्रह्मको और जगत्को जो संबंध हे, वाकु पूरी तोरपे नहीं पर थोड़ो-थोड़ो समझ सके हे. अपन् याकु सोना और गहना के उदाहरणसु यों समझ सकें. सोना एक तत्त्व हे और गहना वासु प्रकट होतो एक रूप हे, अलग नाम अथवा रूप में. पहले वो नाम सोनाकु नहीं दियो जा सकतो हतो पर बादमें सोना वो नाम हासिल कर लेवे हे. वो रूप सोनामें नहीं हतो पर बादमें वो रूप, सोना हासिल कर लेवे हे और जो या तरीकेके नाम रूप हासिल करे हे, कोई खास तरीकेके, तब समझो के कोई कर्म भी वो हासिल करे हे. जैसे अपनने कानकी बूटी बनाई, तो एक कर्म वो हासिल करे हे. जो कानमें पहनो नहीं जा सकतो हतो, वाकी बूटी बन गयी तो पहन्यो जा सके हे. जैसे अपनने सोनाकी कंठी बना ली. तो पहले वो गलेमें नहीं पहर्यो जा सकतो हतो पर कंठी बनवेके बाद पहर्यो जा सके हे. देखो वोही सोनाने एक नाम हासिल कियो, कोई एक रूप हासिल कियो और कोई एक कर्म भी हासिल कियो. ऐसे जगत् और ब्रह्म को संबंध भी शास्त्रने या ही तरह समझायो हे के ब्रह्म, वो तत्त्व हे जो अलग-अलग नाम, अलग-अलग

रूपकु हासिल करे हे. हासिल कैसे करे? तो सोना जो अलग-अलग रूप हासिल करे हे वाको सुनार गढ़े हे. याही कारण सोना-गहनाको उदाहरण ब्रह्म और जगत् कु समझावेमें पूरो कारगर नहीं हो सके हे. सोना कोई भी रूप चाहे वो बूटी होय, कंठी होय के चूडी होय, अपने आप हासिल नहीं कर सके हे, ये वाकी एक लाचारी हे.

(ब्रह्मकी अभिन्ननिमित्तोपादानता)

पर ब्रह्मके बारेमें ऐसो हे के ब्रह्मने ये रूप-नाम आदि जो प्रकट किये हे वो अपने आपमेंसु स्वयं प्रकट किये हें. लिहाजा सोना (उपादानकारण) भी वो हे और सुनार (निमित्तकारण) भी वो हे और गहना (कार्यरूपता) भी वो ही हे. दुनियामें देखेंगे तो सोना कुछ अलग हे, सुनार कुछ अलग हे, मट्टी कुछ अलग होवे हे, कुम्हार कुछ अलग हे. ब्रह्मके साथ ऐसी बात नहीं हे. ब्रह्म तो दोनों ही हे मानें जो बन्यो हे वो, और जो बनावेवालो हे वो भी खुद बन्यो हे. अब या बातकु जा बखत अपन् सोचेंगे तो साफ-सुथरे तोरपे अपनकु समझमें आयगी के ब्रह्मके और अपने संबंध कैसे हें? अपन् ब्रह्म भी हें और ब्रह्मके बनाये भये भी हें. ब्रह्म क्यों हे? क्योंके सोनासु गहना बन्यो हे तो वो सोना तो हे ही न! पर सोना खुद अपने आप गहना नहीं बने हे. वाके लिए सुनार चहिये. पर ब्रह्मकु ऐसे सुनारकी अपेक्षा नहीं हे. मिट्टी खुद घड़ा बन नहीं सके, कपड़ा खुद कुर्ता बन नहीं सके वाकु दर्जी चहिये. पर ब्रह्मकु कछु चहिये नहीं. वो अपने आपमें परिपूर्ण हे क्योंके खुद बने हे और खुद बना रह्यो हे.

(ब्रह्म और अपनो तादात्म्य संबंध)

जब ये अपन् समझ गये तो ये भी अपन् समझ सके हें के ब्रह्मको अपनसु संबंध दो तरहसु हो गयो. हम ब्रह्म भी हे और

ब्रह्मके बनाये भये भी हें. महाप्रभुजीके अलावा दो-तीन ही ऐसे आचार्य भयें हें जिनने या बातकु तत्त्वरूपसु समझायो. नहीं तो अधिकांश आचार्यनको ऐसो मत हे के कोई ब्रह्मकु बनावेवालो माने हे और कोई बनवेवालो माने हे. अपने महाप्रभुने ये बात कही हे जो बनावेवालो हे वो ही बनवेवालो हे. बनावेवालो और बनवेवालो एक हे यासु अपनो संबंध वासु दो तरहसु जुड़ रह्यो हे. बनवेवालो हे यासु अपन् वो ही हे और बनावेवालो हे यासु अपन् वो नहीं हे. अब ये बड़ो नाजुक संबंध हे. या तरीकेको संबंध अपनो और ब्रह्म को हे. ये संबंध अपनकु साफ-सुथरे तोरपे समझमें आनो चहिये.

जिनने ब्रह्मसंबंध लियो हे उनकु यदि वो मंत्र याद होय तो वामें ये ही बात कही जाय हे के मैं तोसु बिछुड़ गयो हूँ और मोकु या बातको ख्याल भी नहीं रह्यो हे मैं तोसु बिछुड़्यो हूँ. ऐसे कैसे हो सके? और यामें एक और तकलीफकी बात हे के बिछुड़े कौन, वो जो मिले. अब ब्रह्म ही यदि सब बन्यो हे तो मिले कैसे और बिछुड़े कैसे? और बिछुड़े हे तो कभी मिले तो होने चहिये. अब इन दो बातनमें जो विरोधाभास हे वो महाप्रभुजी कैसे समझावे हें के ब्रह्मसु अपन् वा दिन मिले, जा दिन ब्रह्मने अपनकु बनायो. और बिछुड़े कब? जब ब्रह्मके बनाये हम, ब्रह्मको अनुभव करवेके बजाय खुदको अनुभव करवे लग गये वा दिन बिछुड़ गये.

अपनकु अपनी हकीकतमें ब्रह्मको अनुभव होनो चहिये हतो, जैसे हर गहनाकु ये अनुभव होनो चहिये के मैं सोना हूँ. घड़ाकु ये अनुभव होनो चहिये के मैं मिट्टी हूँ. कपड़ाकु ये अनुभव होनो चहिये के मैं सूत हूँ ऐसो अनुभव अपनकु कहाँ हें? नहीं हे. यासु अपन् बिछुड़ गये. या अर्थमें अपन् बिछुड़े हें पर वा अर्थमें नहीं बिछुड़े हें. एक हाथ जो दूसरे हाथसु मिले हे जाकु अपन्

हाथ जोड़नो कहें हें, वो हाथ दूसरे हाथसु बिछुड़ भी सके हे. या (संयोगसंबंधसु) अर्थमें अपन् नहीं बिछुड़े हें पर वा (तादात्म्यसंबंधसु) अर्थमें बिछुड़े भये हें. अपनेकु ये हकीकत नहीं मालूम हे के अपन् ब्रह्म ही हे और ब्रह्मके बनाये भये भी हें. जा दिन अपनकु ब्रह्मने बनाये वा दिन अपन् ब्रह्मसु मिले भये हते. बनावेके बाद अपन् ऐसे ढंगसु बने के अपनकु अपनो अनुभव तो होवे हे पर ब्रह्मको अनुभव नहीं होवे हे.

(स्वयंकी एवं वस्तुमात्रकी चाहनाको कारण ब्रह्म)

महाप्रभुजी केह रहे हें के अब तुम अच्छी तरहसु समझो के तुमकु अपने आपसु स्नेह हे के नहीं हे? एक बात समझो के मोकु घर अच्छो लगे हे क्योंके घरमें मोकु रेहवेको सुख मिल रह्यो हे. बेटा, बेटी, धंधा सब अच्छे लग रहे हें, क्योंके उनसु मोकु सुख मिल रह्यो हे. कोई यदि मोकु ये पूछे के मैं अपने आपकु क्यों चाह रह्यो हूँ? तो क्या कारण बताऊंगो? हर चीजकु चाहवेको कोई कारण हे. जैसे ये तकिया क्यों अच्छो लग रह्यो हे क्योंके मोकु यापे हाथ रखवेमें सुख हो रह्यो हे. या गादीकु क्यों चाह रह्यो हूँ क्योंके बैठवेमें मोकु सुविधा हो रही हे. कोई दोस्तकु क्यों चाह रह्यो हूँ क्योंके वासु मेरो काम सिद्ध हो रह्यो हे, या वासु गपशप करवेमें मजा आ रह्यो हे. वाकु क्यों नहीं चाह रह्यो हूँ क्योंके वासु मेरो काम सिद्ध नहीं हो रह्यो हे या वासु मेरो झगड़ा हे. कोई चीजकु अपन् चाह रहे हें, कोईकु नहीं चाह रहे हें. अपने पास वाके सबके कारण हें. अपन् कितनो भी छुपावें पर कारण सामने आ जायगे. कोई बच्चा जब छोटो होय तो अपने मां-बापकु कितनो चाहे! क्योंके छोटे बच्चाकु माँ-बापकी गोदीमें सुख मिले हे. खुद कमावे लग जाय तो वो ही बच्चा मां-बापपे गुस्सा करे हे क्योंके खुदमें सामर्थ्य आ गयी. अब वाकु माँ-बापकी गरज नहीं रह गयी. पति कमातो होय तो पत्नीकु अच्छो

लगे के ओहो, पतिदेव साक्षात् परमेश्वर! और कमावे नहीं, घरमें बैठ्यो रहे तो कोई मानेगो परमेश्वर? शास्त्र कहे के पति परमेश्वर. केहतो होयगो शास्त्र पर बेकाम पतिकु परमेश्वर मानेगो कोई? अपने पास हर चीजकु चाहवेके कारण मौजूद हे पर अपने आपकु चाहवेको कोई कारण अपने पास मौजूद नहीं हे के क्यों तुम अपने आपकु चाह रहे हो! महाप्रभुजी केह रहे हें, यदि तुम ब्रह्म हो, यदि तुम ब्रह्मके बनाये भये हो, और तुम अपने आपकु चाह रहे हो तो तुम ब्रह्मकु भी चाह रहे हो! यदि तुम ब्रह्म हो और ब्रह्मके बनाये भये होवेके बावजूद तुमकु ये अनुभव नहीं हो रह्यो हे के तुम ब्रह्मकु चाह रहे हो पर तुमकु ये तो अनुभव हो रह्यो हे के तुम अपने आपकु चाह रहे हो तो ब्रह्मकु ही चाह रहे हो. अपनेकु ख्याल नहीं हे के अपन् खुद ब्रह्म हे, और ब्रह्मके बनाये भये हें. ब्रह्मके बनाये भये हें या कारण ये समझ तो अपनेकु आ रही हे के हम अपने आपकु तो चाह रहे हे.

('ब्रह्म' संबंधके माहात्म्यसु ही पारमात्मिक निश्छल संबंध)

परब्रह्म क्या हे हमकु क्या पता? कौन चाहे ब्रह्मकु? पर चाहे आस्तिक होय, नास्तिक होय, मनुष्य होय, जानवर होय. जो भी प्राणी हे वो अपने आपकु तो चाह ही रह्यो हे. छोटे सो छोटो कीड़ा, वो भी अपने आपकु तो चाह रह्यो हे के नहीं चाह रह्यो हे? वाकु पकड़के देखो, वो छटकनो चाहेगो क्योंके वो अपने आपकु चाह रह्यो हे. हर प्राणी अपने आपकु चाह रह्यो हे. और हर प्राणी यदि परमात्मासु ही बन्यो हे तो हर प्राणी परमात्माकु तो चाह ही रह्यो हे, ये ब्रह्मसंबंध अपनो होनो चहिये. ये ब्रह्मसंबंध जब अपनो भयो के जब मैं अपने आपकु चाह रह्यो हूँ तो मैं परमात्माकु तो चाह ही रह्यो हूँ. ये यदि संबंध अपनकु ख्यालमें आवे तो अपनो जो परमात्माके साथको संबंध हे वो संबंध निश्छल संबंध होयगो.

(पुष्टिभक्तिकी साधनाकी दृष्टिसु सकाम स्नेहकी अपारमात्मिकता)

वरना तो कैसो संबंध होयगो? एक महाराजश्रीने ही हमकु कही, उनकी बेटीजी लीला पधार गये हते. जब बेटीजी लीला पधार गये तो उनने हमकु कही के कहा करे, हमारे ठाकुरजीमें कछु शक्ति रेह नहीं गई लगे. मैंने कही क्यों आपकु ऐसो लगे? उनने कही हमारी ग्यारह बरसकी छोटी बच्ची चली गयी. ठाकुरजीकु कितनी प्रार्थना करी के याकु बचाओ पर उनने तो बचाई नहीं. यासु हमारे ठाकुरजीमें कछु पावर रही नहीं. मैंने कही के तो कौनसे ठाकुरजीमें पावर् रह्यो. हकीकतमें ये बात हती के उनने अपने ठाकुरजीकी मानता मानी, उज्जैनके कालभैरवकी भी मानता मानी, बम्बईके सिद्धिविनायककी भी मानता मानी. पाँच छ देवतान्की मानता मानी और वासु और देवता तो बदनाम भये नहीं और खुदको ठाकुर बदनाम हो गयो के हमारे ठाकुरजीमें पावर नहीं रही. हमारी ग्यारह बरसकी बच्ची चली गयी. देखो! ठाकुरजीकु अपन् इन सब बातन्के लिए चाहे हें. बच्चीकु बचा देते तो भक्ति हो जाती के देखो हमने ठाकुरजीकु विनती करी और ठाकुरजीने बचा दियो. ठाकुरजीमें बहोत पावर हे. एक व्यक्तिने हमकु कही के हमारे ठाकुरजीकी हम सेवा कर रहे हे पर फलाने भगवदीयने हमकु गिरिराजजी पधराये तो हमकु मजा आ गयी. मैंने कही के क्यों तुम्हारे ठाकुरजीमें तुमकु मजा नहीं आवे. तो उनने कही के नहीं गिरिराजजीमें वाइब्रेशन् ज्यादा हतो. 'वाइब्रेशन्' मानें कंपन. उनने कही के हमारे ठाकुरजीमें कुछ कंपन नहीं दीख रह्यो हतो, गिरिराजजीमें अधिक दीखे हे. तो यार सेवाके लिए वाइब्रेटर् खरीद लो. ठाकुरजी क्यों पधराये. वाइब्रेटरकु बिजलीसु जोड़ोगे तो खूब कंपन आयगो. बोले आप ऐसी बात क्यों कर रहे हो! मैंने कही आप वाइब्रेशन्की बात कर रहे हो या लिए केह रह्यो हूँ. ठाकुरजीमें वाइब्रेशन्की जरूरत क्या हे? ठाकुर कब वाइब्रेट् होयगो जब उनकु लगेगो के कोई गलत आदमीके हाथमें पड़े, तो कांपतो होयगो के कौनके हाथ पड़ गयो. अरे भई! ठाकुरमें

वाइब्रेशन्‌की क्या जरूरत हे. अपन् ऐसे ऐसे कारणन्‌सु ठाकुरजीकु चाहे हें. उनकु तो मैंने नहीं कही पर हम दोनोंन्‌के बीचके एक परिचित हते. मैंने उनकु कही के देखियो थोड़े दिनमें अब इनकी सेवा बंद हो जायगी. क्योंके अब ये ठाकुरजीकी सेवा नहीं कर रहे हे, वाइब्रेशन्‌की सेवा कर रहे हे. हकीकतमें ऐसो ही हो गयो. थोड़े दिनन्‌में वो किसी दूसरे भगवदीयके यहाँ दरसन करवे गये वहाँ उनने बहोत सजावट देखी, बड़ी-बड़ी व्यवस्थाएँ देखी. वो भगवदीय करोड़पति हते. उनकु भयो के हम ठाकुरजीकी ऐसी सजावट तो कर नहीं सके तो हम भी अब करोड़पति बने. तो उनने बॅन्कसु लोन् लेके एक दवाईकी फॅक्ट्री ड़ाली. वामें एक करोड़ रूपया लगा दियो. वो सब घाटेमें गयो. फिर गामसु पैसा उठाये. वामें भी घाटा भयो. सब उनके कर्जदार रो रहे हतें. उनके सारे वाइब्रेशन् खत्म हो गये. अब उनकी ऐसी हालत हे के न ठाकुरजीकी सेवा हो रही हे, न फेक्ट्री चल रही हे. द्विविधामें दोनों गये, माया मिली न राम. वाइब्रेशन्‌को चक्कर ऐसो खतरनाक भयो. अब मुंह छिपाते भये यहाँ-वहाँ भटके हे. अब ठाकुरजीके बजाय वाइब्रेशन् उनमें आ गये.

ऐसी सब बातन्‌सु तो ठाकुरजीमें स्नेह बड़ी जल्दी हो जाय हे. वो ब्रह्मसंबंधको स्नेह नहीं हे. ब्रह्मसंबंधको स्नेह, जो महाप्रभुजी बता रहे हें, वो स्नेह ऐसो हे के अपनो ब्रह्मसु संबंध होनो चहिये. कैसे? जैसे अपन्, अपने आपकु चाह रहे हें. अपने आपमें वाइब्रेशन् होय तो भी चाहेंगे, नहीं होय तो भी अपन् अपने आपकु चाहेंगे. अब समझो के जिन महाराजकी बेटीजी लीला पधार गयी तो भी वो महाराज खुद लीला नहीं पधारे. बेटीजी इतनी प्यारी हती तो उनकु भी लीला पधार जानो चहितो हतो के अब जीके फायदा क्या? बेटीजी भी या लिए प्यारी लगे के मेरी बेटी हे.

(दुःखकी स्वाभाविकता)

बुद्ध भगवान्‌की एक बहोत अच्छी कथा आवे हे. एक डोकरी बुद्ध भगवान्‌के पास रोती गयी के मैं बहोत दुःखी हूँ. तुम मेरे दुःखको इलाज करो. मेरो एक ही बेटा हतो वो चल्यो गयो. उनने कही के मैं अभी गाममें आयो हूँ थोड़ो थक्यो हूँ. थोड़ो स्वस्थ होऊँ तो याको इलाज कर सकु. पहले तुम मोकु दूध लाके दो, जो मैं स्वस्थ होऊँ पर दूध ऐसे घरसु लाइयो जहाँ कोई मर्यो नहीं होय. गाममें ऐसो घर कौनसो हो सके! ऐसो तो कोई घर नहीं हतो. वो दूधको कटोरा खाली वापस आ गयो. तब बुद्ध भगवान्‌ने कही के हर घरमें कोई न कोई तो मरे ही हे वाको दुःख तुम कब तक करोगे? अपन् या बातको दुःख लेके कब तक जी सकें. जो भी जीनेवालो हे, एक न एक दिन तो मरेगो ही तो दुःख होनो तो स्वाभाविक हे पर या दुःखकु समझनो भी जरूरी हे. या तरीकेके दुःख तो, यदि जीवन जी रहे हें, तो आवेगो ही. यासु ही बुद्ध भगवान्‌ने ऐसे सूझ-बूझसु वा डोकरीकु ऐसी बात कही. गाममें ऐसो कोई घर हो नहीं सके जहाँ कोई मर्यो नहीं होय. कहीं दादा, कहीं पिता, कहीं माँ, कहीं बहू, कोई न कोई तो मर्यो ही होय.

(दुःखकी निवृत्ति या कामनापूर्ति के लिये पुष्टिभक्ति नहीं हे)

अपन् प्रभुकु ऐसे दस कारणन्‌सु चाह सके हें. ऐसे दस कारणन्‌सु जब अपन् भक्ति करेंगे, तो महाप्रभुजी वा भक्तिकु, पुष्टिभक्ति तरीके मान्य नहीं करे हें. भक्तिके रूपमें वो बुरी बात नहीं हे, पर अपने यहाँ सेवा करवेके लिए जा भक्तिकी आवश्यकता हे, वो भक्ति वो नहीं हे. अब कई लोग यों कहे हें के ये तो बड़ी कठिन भक्ति हे. तो एक बात समझो. अपने यहाँ बहोत पुरानी कहावत हे के एक घर तो ड़ाकन भी छोड़े हे. ऐसे महाप्रभुजी ये बात नहीं केह रहे हें के तुम निष्काम हो जाओ. अपनी कामनान्‌कु

पूरी करवेके लिए, तुम जो कछु उपाय करते हो वो करो. एक नहीं दस उपाय करो. वाके लिए कौन मनाई करे हे! पर परमात्माके साथ जब सेवा करवेको अपनो संबंध स्थापित करनो हे, वामें इन कामनानूकु बीचमें मत लाओ. बात इतनी सी हे. इन कामनानूकु बीचमें लाके जब परमात्माकी सेवाभक्ति करेंगे, तो सेवाभक्ति, सेवाभक्ति नहीं रहके सोदेबाजी हो जायेगी. महाप्रभुजी नहीं कहें के सब वीतराग मुनि हो जाएं. अरे! वीतराग मुनि हो भी जायगें तो, फिर भी कुछ कामनाएं तो रहेंगी.

हमारे एक मित्र हते, अब तो वो चले गये. उनके एक जैन मुनि मित्र हते. उनने मोसु कही के "श्याम बाबा आप हमारे जैन मुनिसु मिलो" अब अकारण काहेकु कोईसु मिलवे जानो? हम नहीं गये. अब एक दिन अचानक वो हमारे गाममें ही आ गये. अब तो वो हमारे पीछे पड़ गये के अब तो आपकु उनसु मिलवे आनो ही पड़ेगो. मेरे इतने अंतरंग दोस्त हते तो मैंने कही के चलो चलेंगे. पर बात क्या करेंगे? उनने कही के आप भी इतने पढ़े-लिखे, वो भी इतने पढ़े-लिखे, आप दोनोंनूकी बात सुनके ही हमारो कल्याण हो जायगो. मैंने कही के चलो चलें, यदि आपको कल्याण होतो होय तो. पर आप मानोगे नहीं के एक घंटा मैं बैठ्यो, और एक घंटा मुनिजी केवल ये ही बताते रहे हे के "पुस्तक छापवेके लिए इतनो फंड हे, वा कामके लिए इतनो फंड हे. हमकु क्या हे, हम तो कोई गृहस्थ हे नहीं, संन्यासी हे. ये फंड हे वामेंसु ये काम करनो हे." मेरे मित्रकु हती के इतने बड़े मुनि हे, कोई जैनधर्मकी बड़ी बात करेंगे. कुछ वैष्णवधर्मकी मैं बात करूंगो. पर एक घंटा तक फंड्के अलावा कोई और बात ही नहीं करी उनने. मैंने कही के "अच्छा महाराज! मैं चलूँ." उनने कही के "अच्छा! फिर मिलेंगे." अब मुनि भी होय तो भी फंड् पीछा नहीं छोड़े. अपन् सोचें के गृहस्थको ही फंड् पीछा नहीं छोड़े हे.

फंड्को ऐसो अखंड माहात्म्य हे. चाहे साधु होय, संन्यासी होय, चाहे गृहस्थ होय सबकु फंड् तो चहिये ही. फंड्के बिना तो कोईको काम चले ही नहीं. अंतर कितनो हे के गृहस्थ स्वयंके लिए फंड् वापरे और साधु संन्यासी अपने कोई प्रोजेक्ट्के लिए फंड वापरते होवे हे.

(भक्तिकी पंचमपुरुषार्थता)

या बातमें महाप्रभुजी केह रहे हें के तुम वैरागी होके संसारमें अनुरागी हो. तुम निष्काम होके सकाम हो. तुमारे जो भी विषय होय, उन विषयनूकु तुमकु जैसे सुलटानो होय वैसे सुलटाओ पर कमसु कम परमात्माकी भक्तिमें इन कामनानूकु बीचमें मत लाओ. यदि तुम कामनानूकु बीचमें लाके भगवत्सेवा शुरु करोगे तो वो ब्रह्मसंबंधवाली सेवा न होके कामसंबंधवाली सेवा हो जायगी, विषयसंबंधी सेवा हो जायगी. धर्मसंबंधी कामसंबंधी अर्थसंबंधी या मोक्षसंबंधी सेवा होयगी. महाप्रभुजी केह रहे हें के भक्ति पांचवो पुरुषार्थ हे. जो धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारोंनूसु ऊपर हे.

(तादात्म्यभावमूलक भक्तिकी पंचमपुरुषार्थता)

ये बात यापे आधारित हे के तुम खुद भगवान् हो, साक्षात् भगवानूके बनाये भये भी हो और तुमकु या बातको होश नहीं रह गयो के तुम भगवानूके बनाये भये हो. या लिए तुम भगवानूसु बिछुड़ गये हो. अब यदि तुमकु ये बात याद आवे के तुम भगवानूके बनाये भये हो और भगवान् ही तुम्हारे रूपमें प्रकट भयो हे, तो तुम जो अपने आपकु चाह रहे हो वो मूलमें भगवानूकु ही चाह रहे हो. या बातकु तुम यदि ध्यानसु सोचोगे तो वाके बाद भगवानूसु तुम्हारो जो संबंध स्थापित होयगो, वो संबंध तुमकु भक्तिमें सहायक होयगो.

ये संबंध नहीं स्थापित होके, कोई और संबंध स्थापित भयो

के मेरी बेटी जिवा दो, मेरो धंधा चला दो. तो ये संबंध भी संबंध तो हे ही न! पर ये संबंध, ब्रह्मसंबंध नहीं हे, ये भगवत्संबंध हो सके. भगवान्के पास तो जीवकु भागनो ही पड़ेगो. भगवान्कु अपन् ऐसो ही माने हें.

(ब्रह्मकी व्यापकताके कारण वाकी सर्वत्र उपलब्धि)

जा बखत अपन् 'ब्रह्म' केह रहे हें, तो ब्रह्म एक ऐसी हकीकत हे जो सर्वत्र हे. सर्वत्र हे मानें ब्रह्म ऐसो नहीं हे के वो यहाँ हे, वहाँ नहीं हे. मैंने आपकु बात बताई हती के जैन माने हे के कृष्णकु महाभारत करवावेसु साठ हजार बरस नरक भोगनो हे. एकने मोसु कही के अपन्कु जैनधर्मको विरोध करनो चहिये. वो अपने भगवान्कु नरकमें क्यों मानें? मैंने कही के विरोध करके लाभ क्या? तुम अपने भगवान्कु ब्रह्म मान रहे हो के नहीं? ब्रह्म तो सब जगह होवे. वाकु तुम कैसे मना करोगे के तुम नरकमें नहीं रहो. वो तो स्वर्गमें भी हे, नरकमें भी हे. वैकुंठमें भी हे, भूतलपे भी हे. यहाँ भी हे, वहाँ भी हे. नरसिंहजी खंभामेंसु प्रकटे तो कोई खंभा पोलो हतो के वामें चुपचाप छुपकें बैठ गये हतें और बादमें बाहर निकले? ब्रह्म तो सब जगह हे, वो नरकमें भी होयगो. अब उनकु वहाँ वाके दरसनकी इच्छा हे तो वो वहाँ दरसन करे. अपन् क्यों यामें घबरावें. अपन् अपने घरमें ठाकुरजीके दरसन कर पा रहे हें के नहीं? क्या तुम्हारो घर नरक हे? नहीं, घर तो नरक नहीं हे. तुम अपने घरमें अपने ठाकुरजीके साथ प्रसन्न रहो. उनकु नरकमें दरसन होते होय तो उनकु वा तरहसु खुश रहवे दो. यामें झगड़ाकी क्या बात हे? और वासु फायदा क्या होयगो? जब अपन् अपने ब्रह्मकु सर्वत्र मान रहे हें, तो वो नरकमें भी होयगो, स्वर्गमें भी होयगो. कण-कणमें होयगो. जो कण-कणमें हे वाकु रोक कैसे सकें के तू नरकमें मत हो. हवाकु अपन् रोक सकें? हवा तो बगीचामें भी होयगी, गटरमें भी होयगी. आकाशकु

अपन् रोक सकें के तू यहाँ हो और यहाँ मत हो. जाकु जहाँ समझ आतो होय, वो वाकु वहाँ देखे. अपन्कु क्यों चिंता करनी? उनकु उनकी बात सम्हालवे दो. अपन् अपनी बात सम्हालें. अपन् यदि अपनी बात सम्हालेंगे तो बात बन जायगी. ब्रह्मको संबंध ऐसो हे.

(परमात्मसंबंध)

परमात्माको संबंध कैसो हे? वो ऐसो हे के परमात्मा अपने भीतर बिराजमान हे. देहसु अपन्कु स्नेह होवे, वो या लिए के या देहके भीतर रही भयी अपनी आत्मामें अपन्कु स्नेह हे. जब आत्मा निकल जाय तो न पत्नीकु पतिके लिए, न पतिकु पत्नीके लिए स्नेह रह जाय. न मां-बापकु बेटाके प्रति स्नेह रह जाय, न बेटाकु मां-बापके प्रति स्नेह रह जाय. वा आत्मामें भी बिराज्यो भयो परमात्मा हे, तो वा आत्मामें भी स्नेह वा परमात्माके बिराजवेके कारण हे. आत्मामें स्नेह हे यासु देहमें स्नेह हो जाय. देहमें स्नेह होय तो या कारण परिवारमें स्नेह हो जाय. परिवारमें स्नेह होवेसु घरमें, गांवमें स्नेह हो जाय. ऐसे स्नेहको दायरा बढ़तो ही चल्यो जाय हे. जैसे या बल्बके भीतर लाइट् चमक रही हे तो वाकी हांड़ीमें भी चमक रही हे. हांड़ीमें चमक रही हे तो या रूममें भी चमक रही हे. तो स्नेह या तरहसु भीतरसु बाहर निकल रह्यो हे. ये परमात्माको संबंध तब समझमें आयगो जब ब्रह्मसंबंध होय. जो भीतर बाहर सब जगह हे, वो ब्रह्म भीतर हे के नहीं हे!

एक बात समझाऊँ आपकु, अभी अपन्कु यों लगे हे देहमें जो आत्मा हे वाकी अनुभूति तो हो नहीं रही. बहोत सारे सायन्टिस्ट् यों कहे के आत्माकी देहमें जरूरत नहीं हे. देह तो एक मशीनके जैसो अपने आप चल रह्यो हे. आत्माकी क्या जरूरत हे? आत्माकी नहीं तो परमात्माकी क्या जरूरत आयगी? ये सारे गलत विचार

क्यों पनपें? क्योंके अपन्ने जड़ और चेतन को भेद मान लियो के जड़, जड़ हे और चेतन, चेतन हे. अभी दो तीन महीना पहले मैं जबलपुर गयो हतो वहाँ मोकु एक वैष्णवने एक पेड़ भेंट कियो. चौदह करोड़ बरस पुरानो पेड़ हतो. वो पेड़ हे पर पत्थर हो गयो हे. अंग्रेजीमें याकु 'फोसिल्स्' कहे हे. अहिल्या कैसे पत्थर बन गयी हती! मेरे पास एक ऐसो सांप भी हे. पूरो सांप हे, वाकी आंख हे नाक हे मुंह हे जबड़ा हे, पर वो सांप कोईको बनायो भयो नहीं हे पर खुद पत्थर बन गयो हे. अब देखो वो चेतन, जड़ कैसे हो गयो? यदि चेतन वस्तुमें जड़ होवेके गुण नहीं होवे तो वो पत्थर कैसे हो गयो? वो पेड़ कैसे पत्थर हो गयो? अपन्ने जड़ और चेतन के बीच ऐसो भेद मान लियो के जो जड़ हे सो जड़ हे. जो चेतन हे वो चेतन हे. यासु सारो लफड़ा खड़ो हो गयो. सायन्टिस्ट् भी केह दे कि हमने सारो शरीर खोल के देख लियो यामें कहीं आत्मा तो दीखी नहीं. सो ये तो शरीर एक मशीन् जैसे चलतो भयो हे, याकु आत्माकी क्या जरूरत? आत्माकी जरूरत नहीं हे ये अपन् कब केह सके हें के जब अपन् जड़ और चेतन में भेद माने तब. जब जड़ और चेतन में अभेद मानोंगे के जो जड़ हे वो चेतन हो सके हे, और जो चेतन हे वो जड़ हो सके हे. वाको उदाहरण मेरे पास वो सांप और पेड़ हे. आप देखोगे तो आपकु बिल्कुल ख्याल आयगो के ये चेतन ही जड़ बन्यो हे. ऐसी एक सुपारी भी हे पत्थर बनी भयी. ऐसे जड़में और चेतनमें भेद नहीं हे. भेद हे तो केवल इतनो के जैसे ये पेन् या तरफसु पेन् हे और वा तरफसु पेन् नहीं हे. बस जड़ और चेतन में इतनो सो ही भेद हे. यहाँसु या पेनसु लिख्यो जा सके पर या तरफसु नहीं लिख्यो जा सके हे. कोई कहे के यहाँसु भी लिखो तो लिख्यो नहीं जा सकेगो. ऐसे ही ये भेद इतनो ही हे के हकीकतमें जो सत्ता हे, वो सत्ता कोई एक पेहलुसु चेतन हे और कोई दूसरे पेहलुसु जड़

हे. अपन् भी पत्थरके हो सके हें. मैंने लालमणी बाबा, कोटावालेनूकु ये बताई तो उनने कही के अपन् गुसांई सब पत्थरके हो जाय तो! मैंने कही ये वैष्णव लोग सब सेवामें पधरा लेंगे, घबरा क्यों रहे हो!

जड़ और चेतन में कोई वा तरहको ऐसो बड़ो भेद नहीं हे. भेद अपन्ने अपनी सीमित बुद्धिके कारण सोच्यो हे. ये बात बिल्कुल वैसी हे जैसे बरफ और पानी में भेद नहीं हे. बरफ हाथसु उठायो जा सके, खायो जा सके. बरफकु पीवेकी जरूरत नहीं हे. वाकु खा सको हो, उठा सको हो. पानी हिलती चीज हे, बहती चीज हे. कोई भेद नहीं हे. केवल रूप भेद हे. या बाजू वो पानी हे, वा वाजू वो बरफ हे. पानीसु वो बरफ हो जाय हे, और बरफसु पानी हो जाय हे. ऐसे ही जड़सु चेतन हो जाय, चेतनसु जड़ हो जाय. यामें अपन्ने भेद मान्यो हे या लिए अपनूकु तकलीफ हो रही हे. डॉक्टरन्ने केह दियो के हमने खोलके देख लियो, यामें कुछ निकल्यो नहीं. अब बरफकु अपन् तोड़कें देखें के यामें पानी तो दीख्यो नहीं. तो पानी कहाँ मिलेगो? पानी ही तो बरफ हे और बरफ ही तो पानी हे.

(परमात्माकी परमप्रियतासु प्रकट होती पुष्टिभक्ति)

अपनी आत्माके भीतर जो परमात्मा हे वो अपनूकु परम प्रिय हे. वाकी परम प्रियतासु जा बखत भगवान्की भक्ति करेंगे, तब वो महाप्रभुजीकु अभिप्रेत भक्ति होयगी. ब्रह्मसु अपनो संबंध होयगो, परमात्मासु अपनो प्रेम होयगो, तब कहीं जाके भगवान्की भक्ति करी जा सकेगी. जब ब्रह्मसु संबंध नहीं भयो तो परमात्मासु प्रेम नहीं होयगो, और वो नहीं भयो तो भगवान्की भक्ति नहीं करी जा सकेगी. वाके बिना करेंगे भी तो वो ऐसी होयगी जैसी के मेरो धंधा चल जानो चहिये, बेटी जी जानी चहिये, लड़का मिल जानो

चहिये, परीक्षामें पास हो जानो चहिये.

हमारे बम्बईमें एक पंचमुखी हनुमान हे. उनकी बेचारेनूकी इतनी मुश्किल हे के वैसे उनकी पूजा ज्यादा नहीं होय पर जैसे ही परीक्षाके दिन आवे तो सब विद्यार्थी वहाँ चक्कर मारने शुरु हो जाय. उनकी एक और तकलीफ हे के उनको मुखारविंद इतनो बड़ो और खुल्यो भयो हे और विद्यार्थीनूकी परीक्षामें पास होयवेके लिए लाइन् बड़ी लगे. कई बखत तो मिठाईके डब्बाकु हनुमानजीके मुखारबिंदमें डाल देवे हें. अरे यार ! लड्डु पेड़ा भोग धर रहे हो तो डब्बा तो खोल दो! पर लाइन बड़ी होवे और कोईके पास टाईम् होवे नहीं. बिना खोले डब्बा हनुमानजीके मुखारबिंदमें डाल दियो जाय हे. बेचारे हनुमानजीकु भी पीड़ा होती होयगी के मैं हनुमान बन्यो या ही लिए ये तकलीफ भुगतनी पड़ रही हे. नहीं होतो हनुमान तो ये तो न होतो!

ऐसी भक्ति तो अपनूसु बहोत हो सके हे. पास होवेके लिए हनुमानजी याद आ जाय. पास होवेके बाद हनुमानजी याद नहीं आवे. ये भगवद्भक्ति यदि परमात्मप्रेममेंसु जा बखत नहीं प्रकटी, तो हनुमान जैसी दुर्गति अपने ठाकुरकी भी हो जायगी. ये बात महाप्रभुजीकु पता हे. पता हे याही लिए कह्यो के **"ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः"**(सि.र.२) ब्रह्मसंबंधमेंसु परमात्मप्रेम जगाओ, परमात्मप्रेममेंसु भगवद्भक्ति जगाओ.

(सोदारूप या सकामभक्ति, पुष्टिभक्ति नहीं हे)

जैसे ब्रह्म सर्वत्र हे, परमात्मा भीतर हे, ऐसे ही भगवान् कहीं ऊपर हे. वा ऊपर बिराजे भयें भगवानूकी भक्ति करवेमें, जो काम अपनूसु सिद्ध नहीं हो पा रह्यो हे वो भगवान् करेगो, ऐसे कहे और वा भगवानूकी तब जरूरत पड़े हे. अब वो हनुमानजी

होय के श्रीनाथजी होय के बालाजी होय. कोई न कोई भगवान्‌की जरूरत तब पड़े, अपन्‌सु यदि कोई काम सिद्ध होतो होय तो भगवान्‌की जरूरत नहीं पड़े हे. वो काम तो अपन् करके वाको श्रेय भी अपन् ही ले लेवे हें. ये काम तो मैंने कियो, तुमकु पता हे. वा बखत कोई नहीं माने के ये काम भगवान्‌ने कियो. जहाँ थोड़ो भी अपन्‌कु लगे के स्थिति डांवाडोल हे, जैसे चुनावमें जब भी कोई प्रत्याशीकु लगे के जीतेंगे के नहीं तो तुरत यज्ञ करवे लग जाये. कई भगवान्‌की मानता मानी जायगी. साधु-संतन्‌के पास आशीर्वाद लेवे चले जायेंगे. तब भगवान् याद आवे के बचाओ बचाओ. ये बचाओवाली बात हे ये परमात्म प्रेममेंसु पैदा होती भयी भक्ति नहीं हे. ये तो बचाओ-बचाओवाली भक्ति हे. भगवान् बेचारो भी बचाओ-बचाओ करतो होयगो के आ गये गिलिंडर्. बचाओ-बचाओ अब इनसु.

हमने एक मजेदार चुटकुला पढ़यो हतो. एक पेड़पे दो भूत बैठे भये हते. एक भूतने दूसरे भूतसु कही के ऐसो अंदेशा हो रह्यो हे के कोई इन्सान आ रह्यो हे. दूसरेने कही के तेरो वहम भी तो हो सके. ऐसे भगवान्‌कु भी होतो होयगो के कोई आ रह्यो हे के वहम हो रह्यो हे. भगत हे के सच्चे भक्त हे. केहवा तो दी हे के ये मनोरथ करेंगे पर भगत आ रहे हें के सोदेबाज आ रहे हें, पूजा करेंगे के चढ़ावा करेंगे?

एक बखत अजमेरसु हम किशनगढ़ जावेके लिए बैठे हते. हमारे साथ एक सज्जन हते. उनने कही के व्यावरमें एक मरियम माताको मन्दिर हे, हम उनकु माने हें. हमने कही अच्छी बात हे! फिर उनने कही के नाथद्वाराके देव भी चमत्कारी हे. जब भी कोई बड़ो सौदा पटानो होय तो उनके भी दरसन हम कर आवे हें. अबके गये तो दरसन बन्द हो गये थे. हम घबरा गये और पुजारीजीके हाथ पांचसों रुपया धरके बोले के दरसन करा दो. हमकु

अब ये सवाल होता हे के हमने कोई गलत काम तो नहीं किया? मैंने कही के पहले ये बताओ के सोदा हुआ के नहीं हुआ? तो बोले सोदा तो हो गया. मैंने कही के "बस फिर गलती क्यों सोचते हो? तुमकु भगवान्‌के दर्शनका फल तो मिल गया. बस प्रसन्न रहो." बोले के "नहीं नहीं, हमको ऐसा लगता हें के हमने पुजारीजीकु घूस दी." मैंने कही "सोदा तो हुआ के नहीं? मुख्य मुद्दा सोदेका हे के भक्तिका हे?"

भक्ति होय तो घूस देनो पाप हे पर जब सोदाको काम हे तो जा तरहसु वो होय वा तरहसु करनो. सोदाके तो सब या ही तरहसु काम होवे हे. बोले हाँ-हाँ बहोत अच्छी बात आपने बता दी. सोदाके चक्कर ऐसे ही हे के फिर ब्रह्म परमात्मा कोई विषय नहीं रह जाय. बस भगवान् याद आ जाय. जैसे कही हे के "दुःखमें सुमिरन सब करें, सुखमें करे न कोय, जो सुखमें सुमिरन करे तो दुःख काहे को होय". जब दुःख होय तो आदमीकु भगवान् सौदाके लिये याद आ ही जाय हे. भगवान् भी अपन्‌सु डरतो होयगो के लो आ गये सोदेबाज, कुछ न कुछ सोदा करेंगे आके. समझो के अपन्‌ने भगवान्‌कु बेवकूफ मान्यो के लाख रूपया कमाऊँगो और हजार भगवान्‌कु देऊंगो. तो भगवान्‌सु ज्यादा बड़ो बेवकूफ कौन? यदि हजार रूपया लेके तुमकु लाख रूपया देवे तो वो बेवकूफ ही गिन्यो जायगो न! ऐसे क्यों नहीं केह सके के नब्बे हजार तोकु देके दस हजार ही अपने पास रखूंगो. तो ही वो समझदार केहवायगो. सोदाको काम तो प्रॉफिट्‌को काम हे न! पहले सोदामें तो लॉस् हो गयो. चलो भई, कमसु कम ५०-५०को सोदा करो तब तो सोदाकी बात होय. आदमी या तरहकी सोदाबाजीकु भक्ति समझे हे, जब परमात्मा प्रेम नहीं होय तब.

(शुद्ध भक्तिमयी सेवा)

परमात्मप्रेमसु जो भक्ति पैदा होयगी वाकु महाप्रभुजीने ये परिभाषा

दी हे के **''माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः स्नेहो इति भक्तिः''**(त.दी.नि.१।४२) वो भगवद्भक्ति महाप्रभुजीकु अभिप्रेत हे के ब्रह्म तरीकेको वाको माहात्म्य समझो, परमात्मा तरीकेको वाको सुदृढ़ सर्वतोधिक स्नेह समझो और ऐसो स्नेह करवेके बाद जब तुम भगवान्के सामने पेश हो गये तो वो भक्ति सोदाबाजीकी भक्ति नहीं होयगी. तब तुम भगवान्के साथ शुद्ध भक्ति कर सकोगे. या तरहकी भक्तिको नाम महाप्रभुजी 'पुष्टिभक्ति' केह रहे हें. वैसी भक्ति यदि होय, तो महाप्रभुजी केह रहे हें के तब तुम घरमें सेवा पधराओ. ब्रह्मसंबंध पुष्टिभक्तिकी पूर्वावधि हे, जो मैंने आपकु बताई. या ऑर्डरमें याकु जमाके देखोगे के ब्रह्मसु अपनो संबंध होयगो, परमात्मासु अपनो प्रेम होयगो, और भगवान्की भक्ति होयगी. भगवान्की भक्ति होयगी तब भगवत्सेवा या भगवत्कथा करेंगे. वो भगवत्कथा अथवा सेवा, न तो प्रदर्शनके लिए होयगी और न तो कमाईके लिए होयगी, न गामकु दिखावेके लिए होयगी, न खुदकु पूजावेके लिए होयगी. वो शुद्ध भक्तिमयी सेवा होयगी. और वो भक्तिमयी सेवाके बारेमें महाप्रभुजी केह हें के **''गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषदिवर्णना गंगात्वे न निरूप्या स्यात् तद्वद् अत्रापि चैव हि''** (सि.र.८) वा सेवामें तुमने ठाकुरजीकु छप्पन भोग धर्यो तब भी वो ब्रह्मात्मक हो गयो और छोला धरे तब भी वो ब्रह्मात्मक हो गयो. वा भक्तिके कारण तुमने जब सच्चे हीरा-मोतीके शृंगार धराये तब भी सेवा हे और कुछ शृंगार नहीं धराये, खाली गुंजामाला धरायी, तो भी वो सेवा हे.

याही लिए रजोबाई क्षत्राणीकी वार्तामें बहोत अच्छो प्रसंग आवे हे के महाप्रभुजीने वाकु केहवाई के आज मेरे पिताजीको श्राद्ध हे तो थोड़ो घी भेज दो. रजोबाईने ना केह दी. वैष्णवने महाप्रभुजीकु कही के रजोबाई तो ना केह रही हे. महाप्रभुजीने कही के जाके कहो के महाप्रभुजी गुस्सा हो रहे हें. रजोबाईने कही के गुस्सा

भी हो रहे हें तो केह दो के नहीं भेजूंगी. दूसरी बखत भी ना केह दी. तीसरी बखत फिर महाप्रभुजीने भेज्यो नहीं. शामकु जब वो महाप्रभुजीकु आरोगावे गयी तो महाप्रभुजी पीठ देके बैठ गयें. तब रजोने पूछी के ''आप अपनी नाराजगीको कारण तो बताओ.'' तब महाप्रभुजीने कही के ''तू घी जैसी चीजकी मना कर दे हे.'' तब रजोने कही के ''घी आपके पास नहीं हतो का?'' महाप्रभुजीने कही के ''हतो पर वो ठाकुरजीके लिए हतो.'' तब रजोने कितनी अच्छी बात कही हे, ''मेरे पास घी कौनकु धरवेके लिए हतो? मेरे पास जो घी हे वो यदि आपके पिताके श्राद्धमें वापर सको हो तो अपने पासमें जो हे, वो क्यों श्राद्धमें नहीं वापर सको? यामें मेरी कोई गलती होय तो बताओ. और आप जो गुस्सा भये तो गुस्साको तो पुष्टिमार्गमें काम ही नहीं हे. ये तो मर्यादाकी बात भयी.'' भक्तिमें तो ऐसो हे के घी आयो तो भी ठीक और नहीं आयो तो भी ठीक. पानीकी लोटी धर दी तब भी ठीक और छप्पन भोग धर्यो तब भी ठीक. भक्तिमें तो जो सुलभ हे वो धरनो चहिये. और बाकी तो सब मर्यादाकी बातें हें. जब आप गुस्सा भये तो मैं समझ गयी के आप पुष्टिभक्तिके बारेमें नहीं बोल रहे हो, मर्यादाभक्तिके मूड़में केह रहे हो या लिए नहीं भेज्यो.'' तब महाप्रभुजी प्रसन्न हो गये और कहीके ''हाँ तेने ठीक कियो.''

(सेवामें सहजता)

महाप्रभुजीने तो प्रकट करवेके लिए या तरहको प्रसंग गढ्यो. पर याको जो रहस्य हे, वो अपनुकु समझनो चहिये के पुष्टिभक्तिमें जो सहज हे ''सहज प्रीति गोपाल हि भावे''. सहज प्रीतिसु जो सेवा होयगी वो सच्ची सेवा हे और असहजतासु जो कछु भी अपनने कर्यो तो समझो के वो सेवा नहीं हे. वो तो कुछ एक जातको कौभांड चल रह्यो हे. वो सभी जगह चल रह्यो हे तो पुष्टिमार्गमें भी चल रह्यो हे. ये तो भेड़चाल हे. जहाँ सारी दुनिया

जायगी वहीं तो सब जायेंगे क्योंके मनुष्यमें भी एक भेड़ छिपी भयी हे. जहाँ सब गढ्ढामें पड़ रहे हें तो अपन् भी सोचें के चलो अपन् भी गढ्ढामें पड़ेंगे. गाम भी ठाकुरजीके नामपे भिखारी बने तो अपन् भी ठाकुरजीके नामपे भिखारी बन जाय हें के लाओ लाओ.

ब्रह्मसंबंध सेवामें प्रत्येक वस्तुकु ब्रह्मात्मक बनावे हे. वाकी एक व्यवस्थित प्रक्रिया महाप्रभुजीने कैसे गहन सोचके बताई के **''तातें ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो''** जो अपनी सहज सेवा ठाकुरजीकु रुचती भयी हो जाय और ये सोदेबाजी और लालाबाजी नहीं रेह जाय.

प्रकरण ६ : सेवाको रहस्य

(पूर्वोत्तरभाव संगति)

अपन्ने पुष्टिभक्तिकी दीक्षाविधिसु शुरु करके, पुष्टिभक्तिकी साधनाविधि तकको क्रम देख्यो. जामें कौन-कौन पेहलुन्में कौनसी कौनसी बात आ रही हे, ये देख्यो. एक बखत फिरसु स्मरण दिवा दउं आपकु के पुष्टिभक्तिमार्गी साधना यदि करनी हे, तो सबसु पहले पुष्टिपुरुषोत्तमसु अपनो संबंध जुड़नो चहिये. वो संबंध जोड़वेके लिए महाप्रभुजीने वाको कृष्ण होयवेको पेहलु नहीं लियो, अपने घरमें बिराजते ठाकुर होवेको पेहलु नहीं लियो, वाको भगवान् होवेको पेहलु नहीं लियो, वाको परमात्मा होवेको पेहलु नहीं लियो पर वाके ब्रह्म होवेको पेहलु लियो. याको उदाहरण मैंने आपकु फूल और फूलकी गंध के रूपमें दियो हतो. ब्रह्मसु ही अपनो संबंध स्थापित हो सके हे.

(कृष्णके ब्रह्म होवेके पेहलुसु संबंध)

क्योंके 'ब्रह्म'को मतलब हे समग्रता. समग्रतासु संबंध स्थापित नहीं हो सके हे पर समग्रतासु असंबद्ध कोई रेह नहीं सके हे, ये एक सिद्धांत हे. जैसे यहां, 'नयो शहर' कहे या 'पुरानो शहर' कहे या 'मदनगंज' कहे तो यामें किशनगढ़की समग्रता नहीं हे. एक-एक बस्ती हें. एक पुराने शहरकी, एक नयेकी, एक स्टेशन्के पासकी बस्ती हे. इन तीनों बस्तीन्कु यदि समग्रतासु अपन्कु केहनो होय तो अपन् 'किशनगढ़' केह सके हें. 'किशनगढ़' केहवेसु वो तीनों बस्तीएं वामें आ गयी. आज तो ये सारी बस्तीएं और पूरो ड़िस्ट्रीक्ट् भी आ जावे किशनगढ़ केहवेसु. तो समग्रतासु अपनो संबंध कहीं भी स्थापित हो सके हे. जैसे नयी बस्तीमें कोई रहतो होय तो वाको संबंध किशनगढ़सु नहीं होय, ऐसो हो नहीं सके. कोई पुराने शहरमें रहतो होय वाको संबंध किशनगढ़सु नहीं होय, ऐसो केह

नहीं सके हें. पर जो नये शहरमें रह रह्यो हे वो पुराने शहरमें तो नहीं रह रह्यो हे. जो पुराने शहरमें रह रह्यो हे वो नये शहरमें नहीं रह रह्यो हे. जो मदनगंजमें रह रह्यो हे वो न नयेमें रह रह्यो हे, न पुरानेमें. पर किशनगढ़सु तीनोंको संबंध जुड़ सके हे. क्योंके किशनगढ़ सारी बस्तीन्को समग्र रूप हे. समग्रतासु अपन् बहोत सरलतासु संबंध जोड़ सके हें. पर जहाँ समग्रता नहीं हे वहाँ संबंध जोड़वेमें तकलीफ तो होयगी. जैसे नये शहरमें आप रह रहे हो और पुराने शहरमें जानो हे, तो चलके जानो पड़ेगो. पुरानेमें रह रहे हो और नये शहरसु संबंध जोड़नो हे, तो वहाँ चलके जानो पड़ेगो. और अधिक यदि संबंध जोड़नो हे तो वहाँ मकान बनानो पड़ेगो. वरना संबंध नहीं जुड़ेगो.

कृष्णको जो ब्रह्म होवेको पेहलु हे, वो समग्रताको पेहलु हे. वाके समग्रताके पेहलुसु संबंध आनंदसु जोड़यो जा सके हे. कृष्णके कृष्ण पेहलुसु इतनो जल्दी संबंध नहीं जुड़ेगो. वो बात मैंने आपकु बताई हती के भंवरा भी गंधसु तो संबंध जल्दीसु जोड़ लेवे हे पर फूल तक पहुँचवेके लिए वाकु कई बखत बगीचामें यहाँ-वहाँ मंड़राकें ढूढनो पड़ेगो के गंध कहाँसु आ रही हे. तब जाके वाकु पता चलेगो के फूल कहाँ हे. तब जाके वाको फूलसु संबंध जुड़ेगो. ऐसे ही परमात्माके साथ जो संबंध हे वो थोड़ो कठिन संबंध हे. जैसे अपनकु यहाँके गुंदलाव तलाबमें स्नान करनो हे, ऐसो कौन महावीर होयगो के सारे गुंदलाव तलाबपे नहावे. अपनकु कोई न कोई एक घाटपे स्नान करनो पड़ेगो. अब अपन् कोई भी घाटपे स्नान करें तो वो गुंदलाव तलाबपे नहाये ऐसे कह्यो जायगो के नहीं? जैसे मथुरामें यमुनाजीके कितने सारे घाट हें! वामेंसु कोई भी घाटपे नहाओ, तो आपको संबंध यमुनाजीसु हे. पर घाटके साथ संबंधकी जो बात हे वो जब एक घाटपे आप नहा रहे हो, तो दूसरे घाटपे नहीं नहा रहे हो. क्योंके घाट समग्रता नहीं हे पर

यमुनाजी समग्र हे. गंगाजी समग्र हे. गंगोत्रीसु लेके गंगासागर तक चाहे तो आप हरिद्वारमें नहाओ चाहे बनारसमें नहाओ चाहे पटनामें नहाओ या फिर कलकत्तामें नहाओ. चाहे कहीं भी नहाओ, वो 'गंगास्नान' तो केहवायेगो ही. जो हरिद्वार प्रयाग काशी को स्नान हे, वो तो तीर्थस्नान हे. वो आपकु अपनी श्रद्धा रुचि सामर्थ्य के अनुसार वाकु चुननो पड़ेगो. यदि अपन् केह के समग्र गंगाजीमें नहावें गंगोत्रीमें पड़े और गंगासागरमें निकले तो निकलवेसु पहलेही न्यूमोनिया हो जायगो. इतनी देर कौन नहा सके! अपन् गंगाजीमें नहायेंगे, कैसे नहायेंगे? कोई एक तीर्थ, तीर्थमें भी कोई एक घाट, वा घाटकु पकड़के अपन् नहायेंगे. वो घाटपे क्यों गंगाजी अपनकु मिल रही हे, क्योंके गंगाजीकी उन तीर्थन्में, इन घाटन्पे व्यापी भयी समग्रता हे. वा समग्रताकु पकड़वेके लिए महाप्रभुजीने ब्रह्मसंबंधकी बात कही हती.

(कृष्णके परमात्मा होवेके पेहलुसु संबंध)

परमात्मा समझो के समग्रता नहीं हे क्योंके वो अपनी आत्माके भीतर बिराज्यो भयो हे. जब अपनी आत्माके बारेमें ही अपने विचार डांवाडोल हो रहे हे तो वासु संबंध स्थापित करनो तो बड़ी मुश्किल बात हे. आत्मा होय तो परमात्मा होय न! जब आत्माकु ही स्वीकारवेमें स्थिति डांवाडोल हे, तो परमात्माकी तो बात आगेकी हे. पर ब्रह्मकु कोई इन्कार नहीं कर सके हे. वाके अस्तित्वकु कोई मना नहीं कर सके. अब ये बात अलग हे के तुम 'ब्रह्म' नाम नहीं, वाकु 'खुदा' दे दो, 'खुदा' नहीं वाकु 'अल्लाह' दे दो, वाकु 'गॉड्' दे दो, 'यहोवा' दे दो. ऐसे कछु भी दो पर जो जगत्की समग्रता हे वाकु कोई इन्कार नहीं कर सके हे. यासु ही उपनिषद्में कह्यो के **''असन्नेव स भवति असद् ब्रह्म इति वेद चेद्''** (तैत्ति.उप. २।६।१) जो आदमी ये कहे के ब्रह्म नहीं हे वो तो खुद यों केह रह्यो हे के मैं नहीं हूँ. मैं नहीं हूँ ऐसे कौन केह सके,

कैसे केह सके? क्योंके जब कहे के मैं नहीं हूँ तो वामें भी मैं तो आ ही गयो. "नहीं हूँ" केहवेवालो कौन हे? जैसे "मैं नहीं हूँ" ऐसे नहीं कह्यो जा सके हे. ऐसे ब्रह्म नहीं हे ऐसे भी नहीं कह्यो जा सके. यासु ही ब्रह्मसु संबंध जुड़े हे. ब्रह्मसु जब संबंध जुड़े हे, तब अपनो परमात्मासु स्नेह जुड़े हे. परमात्मासु जब स्नेह जुड़े हे तब भगवान्की नवधाभक्तिको अपनुकु अधिकार प्राप्त होवे हे, श्रवण कीर्तन स्मरण, अर्चन वंदन पादसेवन, दास्य सख्य आत्मनिवेदन, ये सारी भक्तिएं कब चरितार्थ होवें, जब परमात्माके प्रति अपनुकु प्रेम होय तब. परमात्माके प्रति प्रेम नहीं हे, तो श्रवण भी करेंगे तो भी कोई कर्मकाण्ड हे, कीर्तन करेंगे तो भी कोई कर्मकाण्ड हे.

हम एक कीर्तनमें गये हते. वामें चार आदमी झांझ लेके यहाँ बैठे, चार आदमी वहाँ बैठे, दो आदमी पखावज लेके वहाँ बैठे और मोकु बीचमें बिठा दियो. मोकु दोनों तरफकी बातें सुनाई दे रही हतीं. सब गा रहे हतें. बीचमें दो आदमी बोले के मैं दस रुपया काहेकु दऊँ, वाकु पाँच ही देने. खोटे अपन् क्यों दस रुपया दे. ये बात झांझ बजाते-बजाते केह रहे हते. कीर्तन चल रह्यो हे. मोकु ये बात सुनायी दे रही हती. ये जो चक्कर हे के कीर्तन चालू हे, झांझ चालू हे और वामें बात कुछ और ही चालू हे. मैंने कही के कीर्तनमें ये कौनसो पद आ गयो, दिवालीको के अन्नकूटको के दानको? तो ये बात समझो के परमात्माके प्रति प्रेम नहीं हे, तो चाहे श्रवण करो या कीर्तन करो, चाहे तो स्मरण या कोई भी भक्ति करो, वामें कछु न कछु अपने लौकिककी झांझ बज जांय और अपनुकु पता ही नहीं चले. जैसे रोड् जब बने हे तो वामें रोड् बनावेके लिए एक डाइवरज़न् दियो जाय. तो अपनेकु पता ही नहीं चले के कहाँ डाइवरज़न् आयो और गाड़ी धूलमें चली जाय.

(कृष्णके भगवान् होवेके पेहलुसु संबंध)

ऐसे ही यदि परमात्माके प्रति अपनो प्रेम हे, तो नवधाभक्तिमें कोई डाइवरज़न् नहीं आ सके हे. यासु ही नवधाभक्ति भगवान्की होवे हे. परमात्माकी ब्रह्मकी नवधा भक्ति नहीं हो सके. क्योंके ब्रह्मकी नवधा भक्ति कैसे करें! वाकी क्या बात सुने? वो तो सब कछु हे. वाकी नवधाभक्ति करवे बैठेंगे तो घोड़ा भी ब्रह्म हे और गधा भी ब्रह्म हे. अब गधाकी भक्ति करनी? वाके पादसेवन करने? क्या करनो? ब्रह्म तो सब कुछ हे. वाकी नवधाभक्ति नहीं हो सके हे. ऐसे ही परमात्माकी भी नहीं हो सके. क्योंके परमात्मा अपने भीतर बिराजचो भयो हे, वाके चरणस्पर्श कैसे करे? वाकी आरती कहाँसु उतारे? हम बनारस पढ़वे गये हते वहाँ एक मठ हे. उनके यहाँ ये सिद्धांत हे के आत्मा सो परमात्मा. वो षोड़शोपचार पूजन खुदपे करे हे. "पुष्पं समर्पयामि, धूपं समर्पयामि, नैवेद्यं समर्पयामि" खुदकी घंटी बजावे. खुद ही अपने ऊपर सब करे. ऐसे कैसे होय? तो समझो के परमात्माकी नवधाभक्ति अपन् कैसे करें? वासु स्नेह तो कियो जा सके पर वाकी नवधा भक्ति नहीं करी जा सके हे. भक्तिके लिए तो कोई न कोई भगवान् चहिये.

(कृष्णके कृष्ण होवेके पेहलुसु संबंध)

वो नवधाभक्ति; जा बखत अपनेकु भागवत समझावे हे और वहाँ महाप्रभुजीने कही हे, अपने पुष्टिमार्गमें अपने कृष्णकी करनी हे. क्योंके अपनो जो सेवाको प्रकार हे, तो कृष्णकथाके इर्द-गिर्द वाके ताना-बाना बुने भये हें. हर सेवाके प्रकारमें कोई कृष्णकी कथा हे. अपनेकु पता नहीं चले हे के कृष्णकथा कैसे हे. पर जगा रहे हें तो कृष्णकी कथा हे के यशोदाजी ठाकुरजीकु जगा रही हें, ठाकुरजीकु गेंद साज रहे हे तो कृष्णकी कथा हे के ठाकुरजी कैसे गाय चराने पधारे. दानको उत्सव आयो तो कृष्णकी कथा हे के **"गोवर्धनकी शिखरतें मोहन टेर अंतरंगसु कहत हें सब ग्वारिन**

राखों घेर. नागरी दान दे.'' अभी दीवाली आयेगी तो वा सेवामें भी कृष्णकथा हे. अन्नकूट आयगो तो कृष्णकी कथा हे. धनतेरस आयेगी तो कृष्णकी कथा हे **''अपनो धन धोवत नंद-रानी.''** देखो, सारी सेवाके प्रकारमें बहोत खूबसूरतीसु कृष्णकथा गूंथी गयी हे. कृष्णकथा अपन् सुने के नहीं सुने वा कथाकु अपन् जी रहे हें. यदि अपन् सेवा कर रहे हें तो अपन् कृष्णकथाकु जी रहे हें. पर वो कृष्णकथाके भावसु सेवा अपन्ने करी तब तो वो सेवामें व्रजभक्तन्को भाव आयगो. पर कृष्णकथाके भावसु सेवा नहीं करी तो वो ही सेवा कर्मकाण्ड़ हो जाय हे, झांझ बजावे जैसो.

(कृष्णके घरके ठाकुर होवेके पेहलुसु संबंध)

वा कृष्णकथाकु जीवेके लिए महाप्रभुजीने हर वैष्णवकु वाके माथे खुदके ठाकुरजी पधराये. जा ठाकुरजीकी घरमें सेवा, तनुवित्तजा सेवा, चेतस्तत्प्रवणं सेवा, परिवारजनन्के साथ हिल मिलके सेवा होवे हे. जा ठाकुरजीकी सेवाके लिए अपन् शादी करेंगे, जा ठाकुरजीकी सेवाके लिए अपन् नौकरी-धंधा करेंगे. जा ठाकुरजीकी सेवाके लिए अपन् गृहस्थ बनेंगे, घरमें अनाज लायेंगे, वस्त्र लायेंगे, फल लायेंगे, फूल लायेंगे. अपने माथे बिराजते ठाकुरजीकी जो सेवा हे वो इतनो छोटो सर्कल् हो गयो याको अंदाज लगाओ के जो आपके माथे बिराजते ठाकुरजीकी सेवा हे वो दूसरेके माथे बिराजते ठाकुरजीकी नहीं हे. दूसरेके माथे बिराजती सेवा हे वो आपके माथे बिराजते ठाकुरजीकी नहीं हे. पर कृष्ण दोनोंके लिए कॉमन् हे.

(पुष्टिभक्तिसाधनाकी विलक्षणता-व्यापक कृष्णसु व्यक्तिगत कृष्णके साथ संबंध)

वो कृष्ण कोईके लिए केवल कृष्ण ही होय. और कोई कृष्णभक्त नहीं होके रामभक्त होय. कोई रामभक्त नहीं होके समझो कोई वामनभक्त होय के नरसिंहजीको भक्त होय, महादेवजीको भक्त होय के हनुमानजीको

भक्त होय. भगवान् सबके लिए कॉमन् हे. वो अन्कॉमन् नहीं हो सके हे. वाही तरहसु जैसे नये शहरमें ये मार्ग हे वाकी अपन्ने 'वल्लभाचार्य मार्ग' केहवेकी अर्जी म्युनिसिपालिटीमें दिवाई हती. तो ये मार्ग वल्लभाचार्य मार्ग हे पर वाके बाजूवालो तो वल्लभाचार्य मार्ग नहीं हे. जो वल्लभाचार्य मार्गपे हे, वो एक भक्ति हे. जो दूसरे मार्गपे हे वो दूसरे प्रकारकी भक्ति हे. वो कॉमन् नहीं हे पर नयो शहर सबके लिए कॉमन् हे. ऐसे परमात्मा भगवान्सु ज्यादा कॉमन् हे और परमात्मासु ज्यादा कॉमन् ब्रह्म हो जाय हे. या तरहसु ब्रह्मसु संबंध, परमात्मासु स्नेह, भगवान्की नवधाभक्ति, कृष्णकी कथा और वा कृष्णकी कथाकु जीवेके लिए अपने माथे बिराजते ठाकुरजीकी, अपने परिवार जनन्के साथ अपने घरमें की जाती तनु-वित्तजा सेवा. ये ब्रह्मसंबंधसु लेके पुष्टिभक्तिकी साधनाको आखो क्रम हे.

यामें अपनो भजनीय जो ठाकुर हे वाके कौन-कौनसे पेहलु वा भगवान्कु छू रहे हे, वाकु आप समझो तो कोई गड़बड़ आपकी साधनामें नहीं होयगी और या बातकु नहीं समझे तो बड़ी गड़बड़ हो जायगी. क्योंके जो आपके माथे बिराजतो ठाकुर हे वो तो आपके ही माथे बिराज रह्यो हे. दूसरेके माथे तो नहीं बिराज रह्यो हे. वाकु जगानो पौढ़ानो आपकु आपके परिवारकु ही हे.

(संबंधके पेहलुन्की नासमझके कारण होती दुर्गति)

हमारे मुम्बईमें एक नयो ऊधम चल्यो. क्योंके हम नाथद्वारामें बिराजते ठाकुरजीको ऐसो प्रचार करे हे के हिन्दु मुस्लिम सिक्ख ईसाई सबको मेरा सलाम. वाके कारण जो पुष्टिभक्तिमार्गीय भक्त नहीं हें, वे भी श्रीनाथजीके पद गावे लग गये हे. उनके प्रोग्राम् होवे लग गये हें. उनकी कॅसेट् निकल रही हे. गुजराती भाषाके एक बहोत बड़े कवि हे, उनकी श्रीनाथजीकी अष्टयाम सेवाकी एक नयी कॅसेट् निकली हे. वाको बड़ो भारी कार्यक्रम भयो मुम्बईमें.

उनने श्रीनाथजीकु जगावेको एक मंगलाको कीर्तन गायो हे के श्रीनाथजी "मैं तुमकु क्या जगाऊं, तुम सो जाओगे तो दुनिया सो जायगी." राजभोगमें गायो हे के "मैं तुमकु क्या भोग धरूं, तुम तो विश्वम्भर नाथ हो." ऐसे जो भी कछु अपनो सेवाको क्रम हे वासु एकदम विपरीत सेवाके क्रमके कीर्तन गाये हे. थोड़े दिनमें यहां कृष्णकथाके बजाय ब्रह्मकथा श्रीनाथजीके आगे लोग गावे लगेंगे. श्रीनाथजीकु लगेगो के मोकु क्यों बिठायो यहाँ? जब तुमकु कुछ सेवा करनी नहीं हे, कुछ सेवा होनी नहीं हे. शृंगारके पदमें यों गायो हे, ये शृंगारमें तुमकु क्या धराऊँ, तुम तो दुनियाके शृंगार हो. अब तो सारी बात खत्म हो गयी न! "तू हे हरजाई तो अपना भी येही दौर सही, तू नहीं और सही, और नहीं और सही." वा तरीकेको दौर अब पदन्को आ रह्यो हे. वामें कोई बात गलत नहीं हे पर गलत बात कौनके बारेमें हे? श्रीनाथजीके भगवान् होवेके बारेमें ये बात सच हे, पर कृष्ण होवेके पेहलुमें ये बात सच नहीं हे. क्योंके नंद-यशोदाने वाकु खिलायो हे नवायो हे और यहाँ तकके लकड़ी भी मारी हे वाकु. ये बात अपन्कु समझनी चहिये के कौनसे पेहलुको अपन् गीत गा रहे हें. कौनसे पेहलुकी अपन् सेवा कर रहे हें. कौनसे पेहलुकु अपन् चाह रहे हें. कौनसे पेहलुसु अपन् संबंध जोड़ रहे हें. ये सब अपन्कु स्पष्ट नहीं होयगो तो बहोत कबाड़ा हो जाय हे. पर दौर कुछ ऐसो चल्यो हे के अब ऐसे ही पद लिखे जा रहे हे और वैष्णव सब केह रहे हे के "ओहो क्या पद लिखे हे, उनने श्रीनाथजीकी कैसी महिमा कही हे के कौन तुमकु जगा सके!" यदि जगा ही नहीं सके तो मंगलाके दर्शन कयो खोलो? दर्शन खुले ही रहवे दो. शृंगार धरा ही नहीं सके हें तो फिर क्यो शृंगारके दर्शन खोलो? ऐसे ही ठाड़े राखो. इन रोड़के चोराहान्पे बहोत सारी ऐसी नेतान्की मूर्तिएं खड़ी रहे हे, उनपे कौन शृंगार धरावे हे? हाँ धरावे हे तो कौआ धरावे हे. जब शृंगार नहीं ही धरानो हे तो रोड्पे ठाड़े राखो श्रीनाथजीकु. शृंगार धरावेकी,

मंदिरमें पधरावेकी क्या जरूरत हे? ऐसे विचित्र भाव अपनेमें पैदा हो जाय हे. फिर या बातमें अपन् आनंद ले हें, दु:ख नहीं माने हें. दु:खकी बात ये हे. क्योंके अपन् खुदकु अपने महाप्रभुजीके सिद्धांतन्को होश नहीं रह गयो हे.

(पुष्टिस्थठाकुर पुष्टिस्थजीवकी मर्यादाके अनुरूप बंधे)

महाप्रभुजीको सिद्धांत अपनो कोई ऐसो संकीर्ण सिद्धांत नहीं हतो. जब महाप्रभुजीने कही के ठाकुरजीकु जगानो हे, भोग धरनो हे, पौढ़ानो हे. अरे अपनो ठाकुर तो छू भी जावे हे, स्नान भी करानो पड़े हे. वा बाबत महाप्रभुजीने भगवान्के पेहलुकी बात नहीं कही हती. वो बात तुम्हारे माथे बिराजते ठाकुरजीके प्रति कही हती. तुम जो भी आचार या मर्यादा पालोगे वो मर्यादा तुम्हारो ठाकुर भी पालेगो. गोपीनाथजीने एक साधनदीपिका ग्रंथ लिख्यो हे. वामें स्पष्ट हे के अपन् छू जाए तो अपनी शुद्धि करे वा तरहसु अपने ठाकुरजीकी शुद्धि करनी. अपन् वा चर्चामें नहीं पड़ेंगे के कौन काहेसु छूए हे. जैसे हम हमारे घरमें नलको जल वापरे. कई गोस्वामी बालक पधारे तो कहें के हम छू जायेंगे. अच्छी बात हे, आप कुंआको जल पी रहे हो तो आप नलसु छू जाओगे. यामें न मेरे मानको प्रश्न हे, न अपमानको प्रश्न हे. आप जो अपरस पाल रहे हो, वो आपकु पालनी चहिये. आपको ठाकुर भी वो अपरस पालेगो. मैं जो अपरस पाल रह्यो हूँ, मेरो ठाकुर मेरी अपरस पालेगो. मैं नलको जल वापर रह्यो हूँ तो मेरो ठाकुरजी भी नलको जल वापरे हे. मेरो ठाकुर हे न! मेरो ठाकुर नलके जलसु नहीं छू जाय हे. जैसे मोहना भंगीके हाथकी कढ़ी श्रीजी आरोगते हतें के नहीं? अलीखानके हाथकी सखड़ी श्रीजी आरोगते हतें के नहीं? ताजबीबीसु श्रीनाथजी चोपड़ खेलते हते के नहीं? अब छू जाएं के नहीं छू जाए! जैसे ताजबीबी, ऐसे ताजबीबीको ठाकुरजी. जैसे मोहना भंगी, ऐसे मोहना भंगीके श्रीनाथजी. जैसे ब्राह्मण वैसो उनको ठाकुर.

प्राचीनकालमें हम गुंसाई लोग पंचद्रविड़ ब्राह्मण हतें. यासु हम ऐसे नियम पालते हतें के जो पंचद्रविड़ ब्राह्मण नहीं होय तो वाके हाथकी सखड़ी नहीं खानी. बरसन तक हम पुष्करणा ब्राह्मणके हाथकी सखड़ी भी नहीं खाते हतें. पीछेसु धीरे-धीरे गैर पंचद्रविड़ ब्राह्णन्के हाथकी सखडी खावे लगे. ठाकुर भी सब ब्राह्मणन्के हाथकी सखड़ी खावे लग्यो. ठाकुरकु थोड़ी पुष्करणा, द्रविड़ को भेद हे! वो तो हमारे ज्ञातिके बंधन हते के हम पंचद्रविड़ ब्राह्मण हें तो गैर पंचद्रविड़ ब्राह्मणके हाथको हम नहीं खाते हतें. जब हम नहीं खाते हतें तो हमारो ठाकुर भी नहीं खातो हतो. अब ऐसो ऊधम हो गयो के बालक सब हॉटल्में भी आरोग रहे हें और ठाकुरके लिए ऐसो नियम हे के कुंआको जल नहीं होय तो वैष्णव सेवा नहीं कर सके हे. तो ये कहाँको न्याय हे. यदि तुम हॉटल्में आरोग रहे हो तो ठाकुरजी भी आरोगेगो. मोहना भंगीके हाथकी कढ़ी आरोगतो हतो के नहीं! तुम तो जो चीज चहिये वो खा आओ. और ठाकुरपे सारे नियम लाद रखे हें. अरे भई, ठाकुरके कोई नियम नहीं हे. घरको नियम होवे हे, या लिए घरके ठाकुरको नियम होवे हे. घरमें अपन् क्या नियम पाल सके हें, ये तो घर-घरकी अलग कथा हे.

जैसे अपने घरकी बात कहूँ के हमारे तातजीके बखत झारीको जल मटकीको आतो हतो. हमारे काकाने कही के बम्बईकी जलवायुके कारण मटकीमें जल ठण्डो नहीं रहे हे. हमकु फ्रिज़ लाके दो. हमारे तातजीने कही के नहीं फ्रिज़में जल छू जायगो. हमारे काकाने कही के फ्रिज़ तो जल ठंडो करवेको मशीन हे. जल तो हम अपने बर्तनमें ही रखेंगे. तब वा बखत हमारे तातजीने भविष्यवाणी करी हती के तुम फ्रिज़को जल पीयोगे तो तुम्हारे बेटाएं सब नलको जल पीयेंगे. हमारे तातजीकी ऐसी कड़ी अपरस हती के वाको कोई ठिकाना नहीं. जब वो पूनासु एक बखत गाड़ीमें पधार रहे हते

तो एक अंग्रेज उनसु छू गयो. तो वहीं गाड़ीसु उतरके जंगलमें जाके नदीमें स्नान कियो और आखे दिन उपवास करके नदीके किनारे ही गायत्रीको मंत्र जप्यो. तब जाके घरमें प्रवेश कियो. अब आज कोईकु कहे के अंग्रेजकु छूवेसु या ढंगसु छू जाएं तो कोई मानेगो भी नहीं. तब वा ढंगकी अपरस हती. अब सोचो अपरस बदल गयी के नहीं! अब वो ही श्यामदास हमारे घर आयो हतो तो यहीं हमारे घर ही रह्यो हतो. अब हमारे दादा देख लेते तो घर ही छू जातो. अब अपने बड़े-बूढ़ेनसु पूछो के यहाँ किशनगढ़में भी जब कोई वैष्णव अजमेर जातो तो जनोई-कंठी बदलनी पड़ती हती. अब आज कोई बदले जनोई-कंठी? जब अपन् जनोई-कंठी नहीं बदले हें तो अपनो ठाकुर भी नहीं छू जाय हे. यदि अपनकु जनोई-कंठी बदलनी पड़े तो यदि अपनो ठाकुर अजमेर पधारे तो वाकु भी स्नान करानो पड़ेगो.

(असंगीकु जीवनसंगी बनाके जीववेकी पुष्टिभक्तिसाधनाप्रणाली)

ठाकुर अपने घरको ठाकुर हे और वो घरकी मर्यादा पाले हे. घरमें अपन् जाग रहे हें तो ठाकुरकु भी जगायेंगे. घरमें अपन् सो रहे हें तो ठाकुरकु भी सुवायेंगे. घरमें अपन् कुछ तो शृंगार कर ही रहे हें न! तो ठाकुरकु भी शृंगारेंगे. घरमें अपन् कुछ भी खा भी रहे हें तो ठाकुरकु भी भोग धरेंगे. घरमें अपन् दीवाली मना रहे हें तो ठाकुर भी दीवाली मनायेगो. घरमें अपन् होली मना रहे हें तो घरको ठाकुर भी होली मनायेगो. ये पूरो एक अलग पेहलु हे और या पेहलुकु समझे बिना ऐसी-ऐसी कविता लिखे और वैष्णव गावे तो फिर पुष्टिभक्तिसाधना तो नहीं रह गयी न! अपनी साधनाको जो क्रम हतो, वो ये हतो के अपनकु घरमें रहके केवल अपने लिए ही नहीं जीनो हे. अपनी जिम्मेदारीसु भागनो नहीं हे पर वो कैसे जीनो, जैसे पति-पत्नी एक घरमें गार्हस्थ्य निभाते भये जीवे हें. या तरहसु एक स्वामी-सेवक, एक घरमें रेहवें

हें वा तरहसु उत्सव शृंगार एक साथ मनावे. हमारे गुसांईनके घरमें ऐसो ही हतो. ठाकुरजीकी पिछवाई बड़ी-बड़ी होवे. वो या लिए के जब हमारे घरमें नयो थान आतो तो ठाकुरजीकी पिछवाई बना दी जाती. खूब दिन तक वो धराते. फिर कोई उत्सव आवे तो वा पिछवाईकु बड़ी करके, वाके बच्चानके कपड़ा सिवा दिये जाते. तो या तरहसु, जो भी अपने घरमें रहवेको सुख हे वो अपन् ठाकुरजीके साथ मानते हतें. ठाकुरजीके छोटे-छोटे वस्त्र तो अपन् पहर नहीं सकें. पर या तरीकासु तो ठाकुरजीको प्रसादी अपन् पहर सकें हे के नहीं! हमने बचपनमें अपने ठाकुरजीके गद्दल पहरे हे. आजकल तो गद्दल पहरवेकी प्रथा ही नहीं रही. स्वेटर् चल गये. पर पुराने जमानामें गद्दल आते हते. वो गद्दल ठाकुरजीके नापके नहीं बनते हते. अपन् अपने नापके बनवाते और ठाकुरजीकु धराते के ठंड़ी हे. यामें आप सुखसु बिराजो. फिर वाकु प्रसादी करके अपन् खुद पहनते हतें. अपने बचपनमें हमने बहोत पहरे हे. तातजी महाराज हर बखत उत्सवपे वो गद्दल हर बच्चाकु बांटते. नये गद्दल ठाकुरजीके बनते. या तरहसु ठाकुरजीके संग जीवन जीवेकी अपनी पुष्टिभक्तिकी साधनाप्रणाली हती. जामें हर पल अपनकु ये ख्याल रहतो के अपनकु ठंडी लग रही हे तो ठाकुरजीको प्रसादी गद्दल पहर रहे हे. आश्चर्य होयगो के हमारे यहाँ शादी-ब्याहमें जो वरराजाकु पाग बांधे हें, वो ठाकुरजीकी प्रसादी पाग होती हती.

कई बखत जब ठाकुरजी छोटे होते तो उनकी पाग तो नहीं आ सकती हती. जो ठाकुरजीकी ओढ़नी होती, वाकी पाग सिद्ध करवाते. या तरहसु अपन् जीवनके हर प्रसंगमें ठाकुरजीसु कैसे जुड़े रहनो, ये एक साधनाप्रणाली हती. वाकु ठाकुरजी भी पालते हते. कई वार्ता-प्रसंगमें ऐसो आवे हे के एकने मांगके भोग धर्यो तो ठाकुरजीने कही के गांवसु मांगी भयी चीज आरोगवेके लिए तेरे यहाँ नहीं बिराज्यो हूँ. मैं तो तेरी सत्ताको अंगीकार करवेकु यहाँ

बिराज्यो हूँ. मांग्यो सेवकने और शरम सेव्यस्वरूपकु आयी! "वो मेरा दोस्त हे सारे जहांको हे मालूम, दगा करे वो किसीसे शर्म आये मुझे!"

(निरपेक्षब्रह्मकु भक्तसापेक्ष बनावेकी साधनाप्रणाली)

वो ब्रह्मको पेहलु नहीं हे, परमात्माको पेहलु नहीं हे, भगवान्को पेहलु नहीं हे, कृष्णको पेहलु नहीं हे, वो तो घरके ठाकुरको पेहलु हे. घरके ठाकुरको पेहलु ये हे के जैसे घरके बालकको लालन-पालन अपन् करें. ये एक पुष्टिसाधनाकी प्रणाली हती जो ब्रह्मसंबंधकी दीक्षासु शुरु होके एक गृहसेवा तक बहती हती. याको स्वाद जाने चख्यो हे वो ही समझ सके हे के घरमें जीनो तो हे ही. महाप्रभुजी यों नहीं केह हे के घर छोड़के जंगल चले जाओ, संन्यास ले लो पर वा जीनेमें, घरके ठाकुरके साथ जीनेकी योजना बनाके तो देखो! जैसे अकेले कुंवारे तो अपन् रेह ही रहे हें पर एक बखत ब्याहके पत्नीके साथ रहके तो देखो. वो जो गृहस्थीके साथ रेहवेको आराम हे प्रेम हे, वो बेचारे कुंआरेकु कहाँसु मिलेगो. एसे ही घरमें अपन् रेह रहे हें, अपने संसारकु जीवेके लिए, पर अपने ठाकुरके साथ जा बखत अपन् जी रहे हें, जा बखत ठाकुरके साथ अपन् उत्सव मना रहे हें, वो जो जीवन जीनेकी शैली हे, वो तो जो जी रह्यो हे वाहीकु मिल सके हे. बिना जिये तो वा शैलीको मजा नहीं मिल सके हे. बन्दर क्या जाने अदरकको स्वाद. वा स्वादकु लेवेके लिए वो ब्रह्मसंबंधकी गंगोत्री हती.

वा स्वादकु लेवेके लिए घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवाप्रणाली महाप्रभुजीने रखी. **"बीजदाढर्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं"** (भ.व.२) ये सेवाप्रणाली हती. वा सेवाप्रणालीसु जीनेवालेके लिए महाप्रभुजी ऐसी आज्ञा करें के वाकु सेवा करते-करते ऐसो अलौकिक सामर्थ्य आ जायगो के वाको हर क्रिया-कलाप सेवासु जुड़यो भयो रहेगो. वो अलौकिक सामर्थ्य सेवाको फल महाप्रभुजीने

सेवाफलमें बतायो. ये गंगोत्रीसु गंगा सागर तक अपनी पुष्टिभक्तिकी गंगा हे. याकी उत्तरावधि तो कई बखतमें आपकु बता ही चुक्यो हूँ. वाकी अपन् अब चिंता नहीं करेंगे. या वचनामृतसु इतनो सो खुलासा करिके अपन् आगे बढ़ेंगे.

(श्रीहरिरायजीके भावप्रकाशकी संगति)

यहाँ जो महाप्रभुजीको वचनामृत हे, वाके भावप्रकाशमें हरिरायजी और खुलासा कर रहे हें. वे आज्ञा करे हें के **"जो दामोदरदासने कही के मैंने श्रीठाकुरजीके वचन सुने पर समुझ्यो नाहीं, ताको कारण यह जताए जो एकादश अध्यायमें भगवद्गीतामें श्रीठाकुरजीके वचन हें जो अपुने पढ़के समुझो चाहे सो समुझे न जाय. जब गुरुकृपा करें तब समुझे जांय."**

देखो! ग्यारहवें अध्यायमें श्रीठाकुरजीने अर्जुनकु अपने विराट स्वरूपके दर्शन करवाएं. वामें नहीं समझ आवेवाली बात क्या हे, वो समझो. गीतामें वर्णित एक सूक्ष्म रहस्य हे और वो ये हे के कृष्ण ब्रह्म हे, कृष्ण परमात्मा हे, कृष्ण भगवान् हे. जो गीताको वचन मैंने आपकु वचन बतायो **"परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्"** (भग.गीता.१०।१२) कृष्ण सब कछु हे. अर्जुन भी या बातकु जानतो हतो. नहीं जानतो तो गीता शुरु कैसे होती! **"शिष्यस् तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्"** (भग.गीता.२।७) जा बखत अर्जुनने कही वाकी तो जरूरत ही नहीं हती क्योंके भगवान् तो ग्यारहवे अध्यायसु पहले ही केह चुके हें **"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः भवति भारत! अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं."** (भग.गीता ४।७) भगवान्ने गीतामें आज्ञा करी वो बात अर्जुनने मान भी ली के श्रीकृष्ण परमात्मा हें और धर्मसंस्थापन साधुपरित्राण के लिए प्रकट भये हें. वा बखत अर्जुनने कोई विरोध प्रकट नहीं कियो हतो के ये बात हमकु मान्य नहीं लग रही हे. तुम तो हमारे सारथी हो. वो बात तो अर्जुनने मान्य रखी. अचानक यहाँ दसवे अध्यायमें अर्जुनने एक प्रश्न रख

दियो के तुम केह रहे हो के सब कछु तुम हो तो क्या ये हकीकत तुम्हारी देखी जा सके हे? तब भगवान्ने वाकु स्वीकारके कही के चल मैं तोकु दिखाऊँ. देखी नहीं जा सके हे पर दिखलाई जा सके हे, ये भगवान्ने वहाँ खुलासा कियो. **''न तु माम् शक्यसे द्रष्टुम् अनेनैव स्वचक्षुषा दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्''**. (भग.गीता.११।८) तू देख नहीं सके हे पर तू यदि चाहे तो मेरी ये हकीकत मैं तोकु दिखला सकूँ हूँ. ये केहके भगवान्ने अपने स्वरूपमें विराटको दर्शन करवायो और वो दर्शन ऐसो के भगवान्के स्वरूपमें ही आखी दुनिया हे.

(तात्त्विक ब्रह्मसंबंध और साधनात्मक ब्रह्मसंबंध)

ब्रह्म सब कछु बन्यो हे, यासु सब कछु ब्रह्म हे, ये बात तो समझमें आ गयी न! जैसे सोना ही गहना बन्यो हे तो जितनो गहना हे, वो सोनामें हे ही. सोनाके बाहर तो गहना नहीं हो सके हे. घड़ा मिट्टीसु ही बन्यो हे, मिट्टीके बाहर तो मटका रेह नहीं सके हे. सारी सृष्टि ब्रह्म हे ये एकादश अध्यायको मूल हे. ये ब्रह्मसंबंधकी बात हे, ध्यानसु समझियो के बात कहाँ जा रही हे. सब कछु ब्रह्ममें हे, ये भगवान्ने गीतामें यहाँ तक समझायो हे के खुदकु और अर्जुनकु भी विराटमें दिखायो हे. जा बखत अर्जुनने विराटमें देखनो शुरु कियो वा बखत अर्जुनकु अपने दर्शन भी भये और वामें भगवान् कृष्णने खुदके भी दर्शन करवाये. **''वृष्णीनां वासुदेवो अस्मि पाण्डवानां धनंजय''** (भग.गीता.१०।३७) भगवान्ने ये बात कही हे के वृष्णी यादवन्में मैं वासुदेव हूँ. पाण्डवन्में मैं धनंजय हूँ. अर्जुनकु ये बात दिखला दी हे के तू भी मेरेमें ही प्रकट्यो हे, मेरे अलावा कछु और हे नहीं. यहाँ तक वाकु भगवान्ने कही के **''मया हताः त्वं जहि मा व्यथिष्ठा''** (भग.गीता ११।३४) जिनकु मारवेमें तेरे मनमें जो संकल्प विकल्प हो रह्यो हे, उनकु मैंने मार रखे हे, देख ले या हकीकतकु मेरेमें. अब जब भगवान्ने मार

ही रखे हे तो वामें अब अर्जुन क्या करेगो? भगवान् केह रहे हें के कछु तो तोकु करनो ही पड़ेगो. **''ब्रह्मसंबंधकरणात्''** ब्रह्मसु तो संबंध हे ही पर करोगे तो होयगो. नहीं करोगे तो नहीं होयगो. संबंध तो उपलब्ध हे पर करे बिना नहीं होयगो. जिनकु मारनो हे, जिनकु तारनो हे, उनकु मारवे-तारवेवालो मैं ही हूँ. मेरे अलावा और कोई हे नहीं पर तीर तो तोकु ही चलाने पड़ेंगे. ये हे ब्रह्मसंबंधकरण. अब ब्रह्मसंबंधमें जो बात, जा विचारधारासु महाप्रभुजी प्रकट कर रहे हें, वाको एक पेहलु या आधुनिक कविने प्रकट कियो हे तोकु हम क्या जगाएं, तू तो जगत्कु जगावेवालो हे. तोकु हम क्या शृंगारे. तू तो सबकु शृंगार रह्यो हे. पर मैंने सबकु मार रख्यो हे, पर तीर तू चला, ये बात हे के नहीं. ऐसे ही सबकु खिलावेवालो मैं हूँ पर तू भोग धर, ये बात आ रही हे के नहीं आ रही? मैंने सबकु तैयार कर रख्यो हे पर तू मोकु शृंगार. मैं सबकु अपनी गोदमें सुवावेवालो हूँ, पर तू मोकु पौढ़ा. या बातकु भूलनो नहीं चहिये. **''मया हताः त्वं जहि''** (वहीं) ये जो एक सिद्धांत हे के ब्रह्म तो समग्रता हे और जीव वाको एक आंशिक क्रिया-कलाप हे. वो क्रिया-कलाप करवेसु ही होयगो. जैसे सारी गाडी एंजिन्सु तो चल रही हे. पर वाके डब्बान्कु भी तो वाके साथ चलनो तो पड़ेगो के नहीं! समझो के डब्बान्के चलवेकी प्रक्रिया बंद हो गयी तो गाड़ी जब चलेगी तो डब्बा चलेगो नहीं घिसटेगो. चलनो एक अलग चीज हे और घिसटनो एक अलग चीज हे. जैसे कोई कार तेज चल रही होय और अचानक ब्रेक् मारे तो पहिया तो चलनो बंद हो जाय पर गाड़ी बहोत देर तक घिसटती रहे हे. घिसटनो कोई अच्छी बात नहीं हे. जब गाड़ी चल रही हे तो पहिया भी चले हे. ऐसे ही ब्रह्म तो सब कछु कर रह्यो हे पर वामेंसु जो अपन्सु हो सकतो होय वो अपन्कु करनो चहिये.

(वरण और शरण की पूरकता)

जैसे कल या परसो कोईने प्रश्न कियो हतो के शरण अथवा

वरण. तो समझो के शरण अपनो हे, वरण वाको हे. वरण ब्रह्मको हे और शरण जीवको हे वो दोनों एक-दूसरेके पूरक हें, जैसे इंजन् और डब्बा. इंजन् चलेगो तो डब्बा चलेगो. डब्बामें कोई अपने आपमें चलवेकी प्रक्रिया नहीं हे. पर पहिया तो वाकु घुमानें ही पड़ेंगे. बिना घूमते पहियानूकु कोई डब्बा चाहे के इंजनूके भरोसे चल पड़े तो वो चलेगो नहीं, घिसटेगो. बस ये ही मुख्य बात हे के पहिया अपने घूमने चहिये. चलायगो अपनूकु इंजन्. ये शरण और वरण को मुख्य अंतर हे.

(सेवाको रहस्य-गीताके एकादश अध्यायमें)

या अंतरकु अपन् ध्यानसु समझें के प्रभु अपनूकु सब कछु दे रह्यो हे. पर वाकु अपन् प्रभुके साथ शॅर् करें. जो जीवन प्रभुने दियो हे वा जीवनूकु प्रभुके साथ जीनेको अपन् प्रयास करें. प्रभुके साथ जीनेकी जो प्रक्रिया हे वो सेवाकी प्रक्रिया हे. जीवन जीनेकी प्रक्रियाकी जो शुरुआत हे वो ब्रह्मसंबंधकी दीक्षाकी प्रक्रिया हे. वो ही बात एकादश अध्यायमें गीतामें समझाई गयी हे के मारेगो सबकु भगवान्, पर तीर तोकु चलानो हे. भाईयनूकु बचावेको कर्तव्य अर्जुनको हे, इच्छा भगवानूकी हे, परमात्माकी हे. ये बात गीताकी अपन् समझें तो सेवाको सारो रहस्य अपनूकु समझमें आ जाय हे. यासु ही श्रीहरिरायजी यहाँ केह रहे हें के **"एकादश अध्यायमें गीताजीके श्रीठाकुरजीके वचन हें जो अपुने पढ़ेते समुझो चाहें सो समुझें न जाय."** ओसतन पाठ करवेवालेकु लगे के केवल अर्जुनकु महाभारतके युद्धमें शत्रुनूकु मारवेकी खाली आज्ञा हे. महाप्रभुजी समझावे हें के अपने सेव्यस्वरूपकी विराटता = ब्रह्मसंबंधकु देखके अपनूकु अपने गार्हस्थ्यकु अपने सेव्यप्रभुके साथ निभावेको भी अभिप्राय हे. ग्याहरवे अध्यायको पाठ गीताजीको कर लो. और महाप्रभुजीको सिद्धांत नहीं समझमें आतो होयगो, तो समझमें ये बात नहीं आ सके, नहीं आ सके और नहीं आ सके. महाप्रभुजीको सिद्धांत समझोगे तो

ये बात तुरंत समझमें आ जायगी के ये बात तो बिल्कुल साफ-सुथरी बात हे. "तातें ठाकुरजीके कहेतें समझें दामोदरदास तो श्रीठाकुरजीके सेवक भये." यासु ही दामोदरदास केह रहे हें के **"महाराज सुन्यो तो सही पर समझ्यो नाहीं. जब आचार्यजी समझावें तोही समझें. ये कहि ये जताए के हृदयमें दृढ़ ज्ञान गुरुकी कृपा तें ही होय. सेवकभाव दिखाये के यदि ठाकुरजीसु समझते तो श्रीआचार्यजीके बराबर ज्ञान कह्यो जाय. तातें कहे जो सुन्यो पर समझ्यो नाहीं."**

और एक-दूसरी बात श्रीहरिरायजी यहाँ समझानो चाह रहे हें के **"तातें कहे के समुझ्यो नाहीं, अथवा कहे जो मैं समुझ्यो नाहीं सो मेरे समझवेको कहा प्रयोजन? आप कहें ताको मेरे समुझिवेको प्रयोजन मोको हे."** मानो कोई डॉक्टरके यहाँ अपन् जाय और हर दवाईकी शीशीकु उठाके देखें के ये दवाई काहेकी हे! डॉक्टर् कहेगो "अरे रोग बता क्या हे, दवाई कौनसी देनी हे वो तो मैं बताऊँगो तोकु." रोग तो बतावे नहीं और शीशी उठाके पूछे हे ये दवा काहेकी हे. एक सिरदर्द होय तो अपनूकु पता नहीं चले, वाके कितने कारण हें. ब्लडप्रेशर् हो सके, माथामें गांठ हो सके, गॅस् हो सके, शुगर लेवल् बढ़ गयो हो सके. एक छोटे से सिरदर्दमें कितने सारे कारण हो सके हें. ये बात तो समझनी पड़ेगी के सिरदर्द क्यों हो रह्यो हे.

ऐसे महाप्रभुजीकी चिन्ता सदोष जीवको निर्दोष भगवानूके साथ संबंध कैसे होयेगो वाको खुलासा ठाकुरजी यों देते होय के **'ब्रह्मसंबंधद्वारा'**. वो बात ठाकुरजी और महाप्रभुजी के बीचकी हे. वाकी बात अपनूकु महाप्रभुजीसु ये पूछवेकी हे के "अब महाराज! मेरा कर्तव्य क्या?" और तब महाप्रभुजी समझावेंगे के ब्रह्मसंबंध लेके अपने घरमें भगवत्सेवा कर. दामोदरदासजी तो अपनो घर महाप्रभुजीके साथ चलके वाको त्याग करवे आये हें. यासू महाप्रभुजी उनकु समझावे के "दमला

बड़ी देर भयी भगवच्चर्चा करें!'' ''सेवायां वा कथायां..''

(कृष्णसेवाके लिये गुरुकी अपेक्षा नहीं के गुरु बनावेके लिये कृष्णसेवा)

पांडुरंग विट्ठलनाथजीकी आज्ञा भयी तासु आपने विवाह कियो. वाके बाद आपने गृहसेवाको सिद्धांत स्थापित करके, सबकु गृहसेवामें प्रवृत्त किये. यासु प्राचीन कालसु चलती आयी जो परंपरा हती वो परंपरा ये हती के **''गुर्वऽभावे तत्पुत्रः तदभावे तत्पत्नी तदभावे तत्कुलम्''** गुरु नहीं होय तो गुरुकी पत्नी या गुरुके पुत्र अथवा कुलकु अपनो गुरु माननो. अपने यहाँ प्राचीन कालमें वंश-परंपरासु भी गुरु मानवेको एक सिद्धांत रह्यो. याही कारण प्रवचनके आरंभमें ही मैंने बतायो हतो के वंश-परंपरासु गुरु हो सके और शिष्य-परंपरासु भी गुरु हो सके हे. दोनों तरहकी प्रणाली अपने यहाँ प्राचीन कालसु चली आ रही हे. वामेंसु श्रीमहाप्रभुजीने अपने वंशकी परंपरासु आचार्यत्व रख्यो. पर वा परंपराकु केवल वंशमें होवेकी लायकातके आधारपे अपने यहाँ मान्यो नहीं गयो हे. आपने या बातको स्पष्ट विधान कियो हे के **''कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दंभादिरहितं नरं श्रीभागवततत्त्वज्ञं भजेद् जिज्ञासुरादरात्''** (त.दी नि.२।२२७) गुरु कृष्णसेवा परक होनो चहिये. वंश होय पर कृष्णसेवापर न होय तो गुरु नहीं हो सके. वो कृष्णसेवा कोई प्रकारके दंभपे टिकी नहीं होनी चहिये. आजीविका कमावेके लिए नहीं की जाती होनी चहिये. श्रीमद्भागवत्के आधारपे या कृष्णसेवाको आपने प्रवर्तन कियो. जैसे मैंने वा दिन आपकु बतायो के अपने घरके ठाकुरकी जो सेवा हे वो कृष्णकथासु जुड़ी भयी सेवा हे. ये कथा श्रीमद्भागवत्मेंसु ली भयी हे. श्रीमद्भागवततत्त्वज्ञ होनो चहिये. ऐसो गुरु नहीं मिले तो महाप्रभुजीकु गुरु मानके स्वंय सेवा चालू करो. सेवा करनो ये मुख्य हे. गुरु हे के नहीं हे ये महत्त्वपूर्ण नहीं हे. ये महाप्रभुजीने क्यों कह्यो हे? क्योंके कृष्णसेवा मार्गके प्रवर्तनार्थ गुरुकी महिमा हे. गुरुकी अपेक्षासु कृष्णसेवा मार्ग नहीं हे. जैसे चलवेके लिए पैर दिये हे. यदि अपन् चल ही नहीं

रहे हें तो पैरकी क्या आवश्यकता हे? ऐसे ही कृष्णसेवाके प्रवर्तनके लिए गुरु हे पर गुरु बनावेके लिए कृष्णसेवा नहीं बताई हे. हमकु अपने बेटान्कु गुरु बनानो हे यासु हमने कृष्णसेवा शुरु करवा दी. बात तो बदल गई न! लड़कीकु ब्याहे तो लड़काके मां-बापकु कुछ न कुछ तो देवे ही हे. ब्याहवेके लिए लडकीकु लावे और वाके साथ वाके मां-बापकी कछु संपत्तिको हिस्सा भी घरमें लावे, ये एक प्रकारको वैवाहिक संबंध हे. और दूसरो ये भी हो सके के लड़कीके मां-बापकी संपत्ति हड़पनी हे, वाके कारण लड़कीकु ब्याहके लाये. वहाँ भी लड़की और संपत्ति दोनो आयेगी. पर बात तो बदल गयी. दहेज लेवेके लिए कोई लड़कीसु शादी करनी और लड़कीसु शादी करनी वामें दहेज मिल गयो तो ले लियो नहीं मिलो तो नहीं लियो. इन दोनों बातन्में बहोत अंतर हे. दहेज लेवेके लिए विवाह करवेमें तो संबंधकी स्वस्थता खतम हो गयी. ऐसे ही कृष्णसेवाके लिए गुरु हे. गुरु कोईकु बनानो हे याके लिए कृष्णसेवा नहीं हे. या बातकु साफ तोरपे समझोगे तो अपने मार्गको रहस्य साफ तोरपे समझमें आयगो.

(सेवामार्गको शृंगार गुसांईजीके कारण)

गुसांईजीने कृष्णसेवाकु जा तरीके सुसमृद्ध कियो. **''पितृ-प्रवर्तित-पथ-प्रचार-सुविचारकः''** (नामरत्ना.१२) मैं या बातकु बहोत मोटे तोरपे बता रह्यो हूँ. याकु मैं बहोत महत्त्व नहीं दऊँ पर जहाँ महाप्रभुजीने चार शृंगार सोचे वहाँ गुसांईजीने आठ शृंगार धराये. जो कछु भी महाप्रभुजीने सोच्यो वाकु श्रीगुसांईजीने इतने सुंदर ढ़ंगसु सजायो संवार्यो हे के मैं नहीं समझूं के विश्वमें कोईने या ढंगसु कृष्णसेवाके ऐसे संजे-संवरे प्रकार बताये होय. पूजाके अपनेसु भी अच्छे प्रकार ज्यादा हें या बातकु भूलियो मत. पर सेवाको प्रकार जैसो यहाँ सज्यो-संवार्यो सुविचारित हे, वैसो कहीं भी नहीं हे. वो या लिये विकृत हो गयो के अपन्ने वाको प्रदर्शन कियो. जीवनकी प्रणाली बनावेके बजाये

कमाईकी प्रणाली बना ली. वा कारणसु ये एक धंधाके रूपमें पुष्टिमार्गमें विकसित हो गयो. ये सब कथा अलग हे. ये गुसांईजीकी बताई भयी नहीं हे. गुसांईजीने, जो महाप्रभुजीने सेवाकी रीति बताई हती, वाकु ही एक सुंदररूपमें विकसित करके प्रत्येक वैष्णवके घरमें सेवा पधराई और उनकु समझाई के तुम या तरीकेसु सेवा करो. कई-कई वैष्णवन्सु भी आपने समझी के या तरीकेसु सेवा करनी चहिये. जैसे अपने यहाँ ठाकुरजीकु चोपड़ धरनो. ये कहीं भागवतमें हे नहीं के ठाकुरजी चोपड़ खेलते हते. पर क्योंके ताजबीबी चोपड़ खेलती हती ठाकुरजीके साथ. ये भाव गुसांईजीकु बहोत सुंदर लग्यो के ठाकुरजीसु चोपड़ भी खेली जा सके हे. अपने यहाँ ताजबीबीके भावसु चोपड़ धरवे लग गये. श्रीनाथजीने गुसांईजीसु मांग्यो के मोकु कुलह धराओ. तो गुसांईजी कुलह धरावे लग गये. कुलह अफगानी शृंगार हे. हिंदुस्तानको नहीं हे. अफगानमें वाकु कुलहा कहे और पठान लोग वाकु अभी भी पहरे हें. वाकु अपनी रीतसु बनाके के जासु वो थोड़ो पठानी भी लगे और थोड़ो अपनो भी लगे, या ढंगसु श्रीनाथजीकु धराई. ऐसी कई बातें हें जो अपन् घरमें सेवा करे तो पता चले हे. पर घरमें कौन तकलीफ मोल लेवे? वाके कारण गुसांईजीने सेवाको जा सुंदरतासु, सुघड़तासु रूप संवार्यो वो सब आजकी तारीख व्यर्थ चल्यो गयो. वाको कारण बताऊँ. वो ये के जासु अपन् करावें वो बेचारे कर्मचारीवर्ग पगारके लिए करते होवे. उनकु क्या लेना-देना सेवाके लफड़ासु! अपनेकु खुद करवेकी इच्छा नहीं हे. करवावेकी इच्छा हे. वामें "दुविधामें दोनों गये, माया मिली न राम." ऐसी स्थिति हो गयी हे पुष्टिमार्गकी. गुसांईजी और महाप्रभुजी कु या बातकी कल्पना भी नहीं हती के पुष्टिमार्गमें ऐसो ऊधम भी हो जायगो. ध्यानसु समझो के गिरिराजजीपे श्रीनाथजीके लिए जो जल भर्यो जातो हतो वो गिरिधरजी खुद भरते हतें. पहाड़पे गागर लेके गिरिधरजी खुद चढ़ते हतें. वा बखत गुसांईजीने एक पत्र लिख्यो हे के "**जलादिसेवा हि सेवकैः कार्या तदपि**

नातिश्रमेण मत्स्वामिनः कोमलस्वभावात्'' (पत्र) कोई नोकरकु द्रव्य देके जल भरवा लो. क्योंके कोई औरसु यदि तुम जल भरवा लोगे तो और सेवासु भली-भांति पहोंच सकोगे. ये केहवेके साथ ही श्रीगुंसाईजीने अपनी कलमकु पाछे सुधारी हे. परंतु कोईको लहु पीके ये काम कोईसु मत करवाइयो क्योंके मेरो स्वामी बड़े कोमल स्वभावको हे. कोईकु कष्ट देके यदि तुम ये सेवा करवाओगे तो मेरे स्वामीकु स्वीकार्य नहीं होयगी.

(शृंगारित सेवामार्गको विकृतरूप)

ये इतनी बातको विचार हतो जो आज अपन्ने खो दियो. हम यों समझें के बहोत व्यवस्थासु सेवा हो रही हे. यों समझो के अपने यहां, कभी पचास या सो बरसमें छप्पन भोग होते हते. आजकल हर बरसमें पांच-छ छप्पन भोग हो रहे हे. मैं आजकल छपवेवाली पुस्तिकाएं बांचतो रहूँ हूँ. वामें छप्पन भोगमें रेट् कौनने लगायी हे, पैसा कौनने दियो हे वाकी एडवर्टाईज़मेन्ट् लगी भयी रहे हे. जैसे टी.वी.में स्पोन्सई प्रोग्राम् आवे हे ऐसे ही छप्पन भोग भी एक स्पोन्सई प्रोग्राम् रह गयो हे. एक शादीको मंडप बांधवेवालो हतो वाकु अपने मंडपको प्रचार करनो हतो तो वाने हमारे बड़े मंदिरमें ठाकुरजीको मंडप बांध दियो और नीचे लिखवा दियो के ''मंडप डेकोरेटर्'' अब ये शादीको मनोरथ भयो के मंडपकी एडवर्टाईजमेन्ट् भयी! मंदिरमें हजारन् लोगन्ने देख्यो के मंडप कौनने लगायो. ये कोई सेवा-भावना-मनोरथ नहीं हे. ये तो कोई और ही धर्म चल रह्यो हे. अपन् बावा-बेटीजीन्के जनोई-ब्याहको खर्चा माथेपे न पड़े यासु हम गुसांईबालक प्रस्तावके आगे-पीछे छप्पनभोगके मनोरथके नामपे वैष्णवन्की भीड़ और रुपया बटोरवे लग गये!

(गुसांईजीके द्वारा सेवाविस्तार भी सेवामें सहजताके निर्वहनके लिये)

मंडप कितनो बड़ो बनानो ये महत्त्वपूर्ण नहीं हे. अपने घरमें

ठाकुरजीको मनोरथ करनो होय तो चार केलाके खंभ गाड़के छोटोसो मंडप बांधो. वामें भी मनोरथ हो सके हे. वाकु हीरा-मोतीसु भी सजा सके. ये आपकी इच्छाकी और सामर्थ्यकी बात हे. चार ईख बांधके भी ठाकुरजीके विवाहको मनोरथ हो सके हे. इतनो सरल प्रकार अपने यहाँ हतो वाको इतनो बड़ो बखड़जन्तर अपन्ने खड़ो कियो. ये गुंसाईजीने नहीं बनायो. गुंसाईजीने इतनो ही बनायो हतो के अपन्सु जो सहजतासु निभ सके, हर व्यक्तिसु, वो ही सेवाको सच्चो प्रकार. और जो अपन्सु सहजतासु नहीं निभे, वो सारो प्रकार कर भी रहे हें तो झूठो, करवा भी रहे हें तो झूठो. या बातकु चाहो तो शिलालेखपे लिखके घरमें रख लो के सेवा प्रदर्शनकी वस्तु नहीं हे. सेवा दिखानी नहीं हे, करनी हे. सेवा अब देखवेकी वस्तु हो गयी तो समझो के लड़कीसु शादी नहीं करनी हे केवल देखनी हे. वासु फायदा क्या होयगो? तुमकु करनी हे तो करो, नहीं करनी हे तो मत करो, रहो ब्रह्मचारी. शादी नहीं करके केवल लड़कीकु देखवेकी इच्छा हे ये बात समझ लो. अपनी नहीं सुधरे हें पर अपन्कु सुधारनी चहिये. महाप्रभुजीके सिद्धांतके आधारपे अपन्कु सुधारनी चहिये. महाप्रभुजी अपन्सु क्या अपेक्षा रखे हें, वो अपेक्षान्कु ध्यानमें रखके अपन्कु सुधारनी चहिये.

पुष्टिमार्ग तो पुष्टिप्रभुकी कृपासु जीवके हृदयमें प्रकट होती भक्ति या भक्तिके लिये कृष्णसेवाकी जीवनप्रणालीको मार्ग हे. जब हम गुसांईबालक वाकु अपनी लाभ-पूजा बढ़ावेके लिये हवेलीन्में बढ़ावा देवें तो वो ऐसी भक्ति भगवान्की कृपासु नहीं पर लक्ष्मीजीकी अकृपा माने यथालाभ सन्तुष्ट न हो पानेकी हमारी लाचारीके कारण हे. आज यहां रखे.

।। कृष्णदास मेघनकी वार्ता ।।

दामोदरदासजीकी वार्तामेंसु वचनामृत संकलित भये हते उनको अपनूने पिछले दिनन्में अवगाहन कियो. अब अपन् कृष्णदास मेघनकी वार्तामें आते भये वचनामृतनूकु लेंगे.

(वार्ता प्रसंग)

एक समें श्रीआचार्यजीसों कृष्णदास मेघनने प्रश्न पूछ्यो जो **''महाराज! ठाकुरजीकों प्रिय वस्तु कहा हे?''** ताको उत्तर श्रीआचार्यजी कहत हें **''जो ठाकुरजी उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें परंतु गोरस ठाकुरजीकु अतिप्रिय हे. 'गोरस' शब्देन वाणी कहियत हे ताको भाव अनिर्वचनीय हे और सबनूतें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे. जातें 'भक्तवत्सल' कहावत हे.''**

(औपक्रमिक ब्राह्मिक एकता)

प्रभु अपने सेव्य हें, उनके बहोत सारे पेहलु हें. वाके कुछ पेहलु अपनूने दामोदरदासजीकी वार्तामें विचारे. वाके अन्तर्गत, जहाँ-तक ब्रह्म होवेके पेहलुको सवाल हे, तो एक बात अपनूकु साफ समझनी चहिये के ब्रह्मके लिए न तो कोई वस्तु अच्छी हो सके हे, और न कोई बुरी हो सके हे. भगवान् गीतामें आज्ञा करे हें **''समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः''** (भग.गीता.९।२९) मैं समान हूँ. न मेरे लिए कोई वस्तु द्वेष्य हे, न मेरे लिए कुछ प्रिय हे. या बातकु अपन् सावधानीसु समझवेको प्रयास करें. एक बहोत सुंदर वचन हे जापे प्रायः लोग ध्यान नहीं देवे हें. **''यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य 'ब्रह्म' इति एकता''** (बृह.उप.१।४।७)

(वाणीके कारण होतो भेद)

मतलब क्या? जो भी कुछ अपन् बोल रहे हें, जाकु अपन् बोल सके हें, तो कुछ न कुछ अपनूकु भेद वामें खड़ो करनो

पड़ेगो. मतलब जैसे अपन् यों कहें के ये शहरको नाम किशनगढ़ हे. तो सबसु पहले 'ये' आयो. 'ये' मानें जो अपनूकु आंखसु दिखलाई दे रह्यो हे. दूसरो शब्द आयो 'शहर'. शहर तो दुनियामें बहोत सारे हें. या शहरकु अपन् 'ये' केहके बाकी शहरनूसु अलग कर रहे हें. जो दिखलाई नहीं दे रह्यो हे वा शहरकी हम बात नहीं कर रहे हें. पर जो दिखलाई दे रह्यो हे वो 'ये' शहरकी बात हम कर रहे हें. देखो भेद आ रह्यो हे. अब यदि भेद नहीं करें तो बोल्यो ही नहीं जा सके. अब जो शब्द हे उनमें अपनूने कितने प्रकार पैदा किये हें. निरंतर उनमें कुछ न कुछ भेद पड़तो ही जाय हे. जैसे 'ये' जब अपन् बोलें तो वाको मतलब हे के 'वो' नहीं. जो दिखलाई नहीं दे रहे हें वो नहीं, पर जो दिखलाई दे रह्यो हे वो. पहले तो 'ये' बोलते ही भेद आ गयो. एक तो 'ये' हे, जो दिखलाई दे रह्यो हे और दूसरो 'वो' जो दिखलाई नहीं दे रह्यो हे. तो 'ये' और 'वो' केहवेसु भेद पड़ गयो.

'शहर' केहवेसु भेद पड़ गयो. क्योंके ये शहर जब अपन् जोड़ेंगे तो 'ये शहर', 'वो शहर' ऐसो भेद पड़ जा रह्यो हे. और जब ये शहरको नाम 'किशनगढ़' हे ऐसे अपन् बोलें तो वाको कोई नाम भी हे. किशनगढ़ नामके हिन्दुस्तानमें कोई तीन-चार शहर हें. पर अपन् केहनो क्या चाह रहे हें के जो दिखलाई नहीं दे रहे हें उन किशनगढ़की बात नहीं कर रहे हें. जो दिखलाई दे रह्यो हे वा किशनगढ़की बात हो रही हे. जब अपन् केह रहे हें के 'या' शहरको नाम 'किशनगढ़' हे तो अपन् केहनो चाह रहे हें के और भी किशनगढ़ हो सके हें. पर उन शहरनूको नाम भी 'किशनगढ़' हे. फिर देखो भेद खड़ो हो गयो! जब भी अपन् कुछ बोले हें तो निरंतर कुछ न कुछ भेद खड़ो होतो चल्यो जाय हे. एकमेंसु दूसरो, दूसरेमेंसु तीसरो, जैसे रूईकी तातें. वामेंसु

एकके पीछे दूसरो तार निकलतो ही चल्यो जाय हे. ऐसे जितने भी शब्द अपन् बोले हें वामेंसु निरंतर कोई न कोई भेदकी तांत निकलती ही चली जावे हें.

उपनिषद् वाके लिए बहोत सुंदर विधान करे हे के ये सब क्यों होवे हे? क्योंके कोई भी बात जब अपन् बोले हें, वो तब बोले हें जब वाको अपन् अनुभव करे हें. कोई भी दृष्टिसु जाको अपन् अनुभव ही नहीं कर सकतें होय वाकु अपन् बोल नहीं पावे हें. अपन् एक प्रयोग करके देखें. कोई ऐसी वस्तुको नाम कहो के जाको आपकु ज्ञान नहीं होय. बहोत देर सोचवेके बाद भी अपन्कु नाम याद नहीं आवे हे. अपन्कु उन्हीं वस्तुन्के नाम याद आवे हें के जिन वस्तुन्को अपन्कु प्रत्यक्ष या परोक्ष अनुभव हो गयो होय. उन वस्तुन्के नामन्की अपने पास लिस्ट् होगी. एक-एक वस्तुके नामकी लिस्ट् यदि अपन् अपनी खोपड़ीमें तलाशें तो अंबार भर जाय, इतनी लिस्ट् होवे हे. पात्र छोटो हे पर इतने नाम या खोपड़ीमें भरे भये होवे. और उन-उन वस्तुन्को अपन्ने प्रत्यक्ष या परोक्ष में अनुभव कियो हे. यासु ही अपन् वो नाम बोल सके हें. याकु उपनिषद् कहे हे **''यद्वै किञ्चन अनूक्तं.''** जो भी आपने अनुभव कियो हे और जो आप बोल रहे हो वो अपने अनुभवके आधारपे बोल पाओगे. कुछ भी नाम/शब्द आप बोल रहे हो, जाको आपने अनुभव कियो हे वो ही तो आप बोल पाओगे. कई बार ऐसो भी होय हे के अनुभव होवेके बाद भी अपन् शब्द नहीं खोज पावे हें. वो एक अलग कथा हे. वाको यहाँ प्रश्न नहीं हे. यहाँ जो कथा हे वो ये हे के अपन् वो ही शब्द अपने मनमें ला सके हें के जा बातको अपन्ने अनुभव कियो हे.

हर चीजको आंखसु अनुभव होनो जरूरी नहीं हे. कोईकु कानसु स्पर्शसु अनुभव हो सके हे. और जाको आंख नाक कान सु अनुभव

नहीं होय वाको अनुमानसु तो अनुभव होवे ही हे के वो ऐसो हो सके हे. ऐसो हो रह्यो हे तो ऐसो होनो चहिये. याकु प्रत्यक्ष अनुभव न केहके 'परोक्ष अनुभव' कह्यो जाय हे. कुछ न कुछ अनुभवके आधारपे ही शब्द प्रयोगमें लायो जा सके हे. अनुभव नहीं होय तो शब्द प्रयोगमें नहीं लायो जा सके हे. तो जब अपन् शब्द वापर रहे हें तो वो शब्द अनूक्त हे. 'अनूक्तं' मानें जा बातको अनुभव हे वा बातकु दोहरावेवालो. और जब अनुभवकी बात अपन् दोहरा रहे हें तो सारे भेदन्की तांत निकलती जा रही हे. जैसे रूईके तार निकले हे. ऐसे ही अपने अनुभवकी रूईमेंसु भेदकी सूत निकलती जावे हें.

(भेदात्मक वाणीकी एकता)

पर उपनिषद् आगे कहे हे के यामें घबरावेकी कोई बात नहीं हे. **''यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य 'ब्रह्म' इति एकता''** उन सब शब्दन्कु जिनमेंसु आप भेद पैदा कर रहे हो, जैसे 'ये' शब्द 'वो'सु अलग हे. शहर, गांवसु एक अलग शब्द हे, नाम अमुकगढ़सु अमुकगढ़ अलग हे. ये भेद, यदि आपकु नहीं करनो हे तो एक शब्द केह दो 'ब्रह्म', वामें सब आ जाय हें. **''यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य 'ब्रह्म' इति एकता''** बहोत विलक्षण वचन हे. मोकु बहोत प्रिय लगे हे के यदि कुछ भी आपकु शब्दके भेद नहीं खड़े करने हें तो एक ब्रह्म केह दो. ब्रह्म केहते ही सब वस्तु एक हो जाय हें. जो कुछ भी भेद अपने अनुभवने खड़े किये हे, जो कुछ भी भेद अपनी वाणीने खड़े किये हें, वे सारे भेद गायब हो जायेंगे. जैसे धूप पड़ते ही जमीनपे पड़्यो भयो पानी उड़ जाय हे.

(ब्रह्ममें प्रिय-अप्रियको अभेद)

यामें बहोत समझवे जैसी बात हे के **''तस्य सर्वस्य 'ब्रह्म'**

इति एकता'' जब भेद खतम हो रहे हे तो कौन प्रिय होयगो और कौन अप्रिय होयगो. प्रिय और अप्रिय तो भेदकी बात हे. पर यदि 'ब्रह्म' कह्यो तो न कुछ प्रिय हो सके हे और न अप्रिय. क्योंके प्रिय होवेके लिए एक वस्तुकु प्रेम करवेवालो और दूसरो जाकु प्रेम कियो जा रह्यो हे, ऐसे भेद आ रहे हें. और ऐसे भी केह सकें के एक वस्तुसु प्रेम हे और दूसरेसु प्रेम नहीं हे. यासु ही प्रिय और अप्रिय आपसमें विरोधाभासी शब्द हें. और 'प्रिय' केहते ही प्रिय और प्रेम करवेवालो, वामेंसु दो भेद आ रहे हें. अपन् ब्रह्मके पेहलुसु देखें तो कोई भी प्रिय और अप्रिय हो नहीं सके हे. यासु उपनिषद् याकु समझावे हे के ब्रह्म आत्माराम हे, आप्तकाम हे, आत्मप्रेम हे. याको मतलब क्या? ब्रह्म एक ऐसो पदार्थ हे के जो स्वयंकु चाहे हे. स्वयंकु क्यों चाहे हे? क्योंके वाके अलावा और कुछ हे ही नहीं. वाके अलावा कुछ होय तो वो वाकु चाहेगो न! ब्रह्म अपने अलावा कोईकु चाहे ही नहीं हे. क्योंके वाके पास कोई चाहवे लायक वस्तु उपलब्ध ही नहीं हे. **''सर्वस्य 'ब्रह्म' इति एकता''**

(ब्राह्मिक आत्मप्रेम ही जीवमें अंशात्मना प्रकट)

अपने पहले दिनके प्रवचनकी बात याद करो तो सारी बात समझमें आ जायगी के वा ब्रह्मके यदि अपन् अंश हें तो अपन् भी अपने आपकु चाह रहे हें. जैसे सोनाको कोई गहना हे तो वामें सोनाको गुण तो आयेगो ही. मिट्टीको यदि कोई मटका हे तो वामें मिट्टीको गुण तो आयेगो ही. सूतको यदि कोई कपड़ा हे तो वामें सूतको रंग वाकी गुणवत्ता वामें आयेगी ही. अपन् यदि वा ब्रह्मके नाम-रूपको विस्तार हें तो अपनेमें भी वाकी आत्मरामता आप्तकामता आत्मप्रेमता आ रही हे. अब वो तो पूर्ण हे और अपन् वाके अंश हें तो अपनेमें आंशिकरूपसु आ रही हे. यदि वो सागर हे तो अपनेमें बिंदुरूपसु हे पर हे तो सही क्योंके अपन्

बिंदु हें तो ही अपन् अपने आपसु प्रेम कर रहे हें.

(प्रिय-अप्रियताको पेहलु विभिन्न प्रसंगमें)

पर अपने आपसु प्रेम तभी तक करें के जब-तक अपनकु ब्रह्मको ज्ञान नहीं हे. यदि अपनकु ब्रह्मसु संबंध होवे तो अपनकु ये ज्ञान होय के अपन् अपनेसु प्रेम नहीं, केवल ब्रह्मसु ही प्रेम कर रहे हें. क्योंके अपन् ब्रह्मके अंश हें तो अपन् ब्रह्मसु तो प्रेम कर ही रहे हें. और यदि अपन् ब्रह्मसु प्रेम कर रहे हें और कुछ वस्तु अपनकु प्रिय लग रही हे, वो यासु ही लग रही हे क्योंके ब्रह्ममें कुछ प्रियता हे. जहाँ अपनकु ब्रह्मकी प्रियता प्रकट नहीं दिखलाई दे रही हे, वो वस्तु अप्रिय लगेगी. यदि अपनो ब्रह्मसंबंध भयो तो जैसे अपन् अपनी अहंता-ममताकु ब्रह्मसु जोड़के देखेंगे तो प्रिय-अप्रियको पेहलु ब्रह्ममें कैसे चल रह्यो हे ये पता चले. अपनी अहंताकु ब्रह्मसु जोड़नी के मैं ब्रह्मको अंश हूँ, तो अपनी ममता वा ब्रह्मसु जुड़ रही हे.

(ब्रह्म परमात्मा भगवान् में प्रिय-अप्रियको पेहलु)

पर जा अनुभवके प्रकारमें यदि अपनी अहंता-ममता ब्रह्मसु नहीं जुड़ रही हे जैसे समझो के मैं ये बात आपकु केह रह्यो हूँ और आप भी बातकु सुन रहे हो क्योंके आप पुष्टिमार्गीय हो, तो आपकु यामें अविश्वास भी नहीं हो रह्यो हे. अविश्वास नहीं हो रह्यो हे पर याको अनुभव आपकु हो रह्यो हे? अपनकु सहसा या बातको अनुभव नहीं होवे हे के मैं ब्रह्म हूँ. अनुभव तो मोकु ये ही होयगो के मैं श्याम गोस्वामी हूँ. आपकु भी अपने नाम-रूपको ही अनुभव होयगो. अपनकु समझमें आ सके हे के मैं ब्रह्म हूँ. पर अनुभवमें ये बात सहसा नहीं आवे हे. यासु ही अपने अनुभवमें ये बात सहसा नहीं आवे हे के कुछ बात अपनकु ब्रह्मसु जुड़ी भयी लगे हे और कुछ बात अपनी खुदकी हकीकत के मैं श्याम

गोस्वामी हूँ. वा खुदकी हकीकतमें, के मैं श्याम गोस्वामी हूँ क्योंके ये ब्रह्मसु जुड़ी भयी नहीं हे, अप्रियताको अनुभव होनो चहिये. ब्रह्मके कारण यदि प्रियताको भान होतो होय तो जहाँ ब्रह्मानुभूति नहीं हो रही हे वहाँ अप्रियताको भान होनो चहिये. मतलब मोकु या पेहलुपे तो प्रेम जागनो चहिये के मैं ब्रह्मको अंश हूँ. और या पेहलुपे प्रेम नहीं जागनो चहिये के मैं श्याम गोस्वामी हूँ. ये मन:स्थिति यदि पैदा होवे तो ब्रह्ममें प्रिय और अप्रिय को पेहलु कैसे चल रह्यो हे, ये बात समझमें आयेगी.

यासु ही अपने यहाँ ये बात महाप्रभुजीने बताई हे परमात्मा परम प्रिय हे. याको विस्तार मैंने अपने तीन चार दिनके विवेचनमें समझायो.

वा परमात्मामेंसु भगवान्के पेहलुको जब अपन् विचार करे हें तब स्पष्ट हो जाय हे के 'भगवान्' मानें जामें ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान और वैराग्य हे. वा पेहलुको नाम 'भगवान्' हे और वामें जो अनैश्वर्य अवीर्यता अज्ञान अपयश की बात हे वो तो अप्रिय लगवेवाली ही हे.

(ब्रह्मको घरके ठाकुरके पेहलुमें प्रिय-अप्रियताको प्रसंग)

अब ब्रह्म कैसे भगवान् हो गयो ये कभी अपन् फुरसतसु सोचें. अभी वाको विषय यहाँ नहीं हे. ब्रह्मने अपने भगवान् होवेको पेहलु हासिल कियो. आप याकु यों समझ सको हो के जैसे भूतलपे बिखरी भयी मिट्टीकु आप थोड़ोसो लेके वाकु पानीसु सानो. और वाको एक लोंदा बन जायगो. अब अपन् वाकु एक चाकपे चढ़ा दे तो वो तुरंत घड़ा नहीं बन जायेगो. पर वामें कछु गोलाई और घड़ा बनवेके गुणधर्म प्रकट हो जायेंगे. और जब कुम्हारको हाथ वामें लगे तो वो ही बिखरी भयी मिट्टी एक घड़ाके रूपमें निखरके

आवे हे. हे वो मिट्टी ही, पर वामेंसु वो रूप धीरे-धीरे उभरे हे. ठीक याही तरहसु ब्रह्ममेंसु धीरे-धीरे परमात्माको रूप उभरे हे. वामेंसु भगवान्को और भगवान्के रूपमेंसु धीरे-धीरे वो कृष्णको रूप व्रजमें प्रकट्यो. वा कृष्णके रूपमेंसु घरके ठाकुरको रूप प्रकट्यो हे. जो महाप्रभुजीने निबंधमें अपन्कु ये बात समझाई के सब कछु भगवद्रूप होते भये भी **''एनम् उद्धरिष्यामि तदा मृदादेः प्रादुर्भूतः''** (त.दी.नि.प्र.२।२२८)

अपने घरके ठाकुरजीकी सेवा करवेमें मूल मुद्दा क्या हे? जैसे नरसिंहजी प्रहलादको उद्धार करवेके लिए खंभामेंसु प्रकटे. ऐसे अपने जीवकु अपने पुष्टिभावसु परिपूर्ण बनावेके लिए ठाकुर पुष्टिजीवके घर पधारे हें, बिराजे हें, वासु अपनी सेवा लेनो शुरु करे हें. वाकु अपनो सेवक माने हें. खुद वाको स्वामी बने हें. अब यामें प्रिय और अप्रिय को प्रसंग ब्रह्मके होवेके पेहलुमें खड़ो नहीं हो सके हे. याकु अपन् अच्छी तरहसु समझ सके हें के मट्टीपे आपने डंडा मार्यो तो मट्टीको टूटवेवालो कछु भी नहीं हे. पर घड़ापे आपने डंडा मार्यो तो वामें टूटवे लायक बात आ जाय हे. वामें पानी भरोगे तो वो संभाल लेगो. पर मिट्टी क्या पानीकु संभाल पायगी! मिट्टीमें पानी भरो तो वो बह जायगो. ऐसे ही ब्रह्मके पेहलुमें प्रिय-अप्रियको कोई प्रश्न ही नहीं हे.

पर जब वो ही ब्रह्म घरको ठाकुर होय हे, घरकी मर्यादामें जब बिराज्यो तो आप भी कुछ प्रिय और अप्रिय कर रहे हो और वो भी कुछ प्रिय-अप्रिय कर रह्यो हे. आपने भी कुछ अपनो परायो मान्यो हे. वो भी कुछ अपनो परायो मानके चल रह्यो हे के ये मेरो सेवक हे. वो सेवक मेरी सेवा करे तो प्रिय और यदि गाम आके मेरी सेवा करे तो वामें (मेरे) क्या मतलब? याहीसु वार्तामें आवे हे के **''तिहारी सत्ताको अंगीकार करवेकु हों तिहारे घर बिराज्यो. दूसरेकी सत्ताको अंगीकार करवेकों नाहीं''** देखो वहाँ

प्रभुने अपनी अप्रियता प्रकट करी. जाके माथे बिराज रहे हें वाकी सत्ताको अंगीकार करवेमें अपनो प्रेम प्रकट कियो. अब ये बात मिट्टीके लेवल्पे सच नहीं हे के वामें पानी भर्यो जा सके हे. पर मटकाके लेवल्पे वो पानी भरवेकी सामर्थ्य वामें प्रकट हो रही हे. मिट्टीकु डंडासु तोड़यो नहीं जा सके पर मटका टूट जायगो. जैसे मिट्टीमेंसु मटकाको रूप प्रकट होवे हे. वैसे जब ब्रह्म, आपके घरको ठाकुर बनके आपके घरमें बिराज्यो हे, तब वाकु प्रिय और अप्रिय प्रकट होवे हे. मानें ये बात हकीकत कहाँ तक हे के जा भक्तने बालभावसु ठाकुरकी सेवा करी और जब बिल्ली आयी तो वाने बालभावकु भुलाके माहात्म्यज्ञानकु स्वीकारके कही के आपने इतने असुर मारे, वामें आपकु डर नहीं लग्यो, जो अब डर लग रह्यो हे. तब भगवान्ने कही के तू तो अपनो भाव बदल रह्यो हे. एक बार तेने बालक मानके वा भावसु सेवा करी तो ही तो मैंने कही के मोकु डर लग रह्यो हे. वहाँ देखो प्रभुकु अपनो माहात्म्य भी अप्रिय लगवे लग रह्यो हे. खुदको माहात्म्य कौनकु अप्रिय लगे हे! कोईकु नहीं लगे हे.

(भक्तिमें प्रिय-अप्रियताको पेहलु)

अपने यहाँ तो भक्तिकी परिभाषामें ही कह्यो हे के **"माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिकः स्नेहः भक्तिः इति"** (त.दी.नि.१।४२) पर घरके ठाकुरकु अपन् यदि कोई एक भावसु रिझा रहे हें, कोई एक भावसु वाकी सेवा कर रहे हें, वाके माहात्म्यकु भूलके वाके साथ अपने पारिवारिक भावसु (तादात्म्यकु खिलाके) वाकी सेवा कर रहे हें के मेरे घरमें एक बालक बिराज रह्यो हे. वो बालक बिल्लीसु डर रह्यो हे. अब जब वो बालक बनके बिल्लीसु डरनो शुरु करे, तब अपन् अचानक यों कहे हे "तब तो तुमने इतने असुर मारे और नहीं डरे, अब बिल्लीसु क्यों डर रहे हो!" तब भगवानकु अपनो माहात्म्य अप्रिय लग रह्यो हे.

पर भगवान्‌वाले पेहलुमें वो अप्रिय नहीं होयगो क्योंके भगवद्‌भक्तिमें भगवन्माहात्म्य साधक हे. और वैसो प्रभुके प्रति स्नेह भक्तिको शुद्ध रूप लगे हे. वाको कारण क्या? क्योंके अज्ञान प्रयुक्त जो स्नेह हे वामें जीवके काम क्रोध मोह मात्सर्य को कोई न कोई रंग, आभा मिली भयी रहेगी. पर माहात्म्यज्ञानसु जा बखत अपन् भगवान्‌की भक्ति करनो शुरु करेंगे वा बखत ये आभाएं क्षीण हो जाएंगी. भगवान् होवेके पेहलुमें भगवान्‌कु अपनो माहात्म्यज्ञान प्रिय हे के भक्त मेरो माहात्म्य जाने हे. मेरो माहात्म्य जानके मेरी तरफ अभिमुख होवे हे. कोई कामसु मदसु क्रोधसु मात्सर्यसु लोभसु मेरी तरफ नहीं आ रह्यो हे. मेरो माहात्म्य समझके मेरी तरफ आवे हे. पर एक बात समझो के जा बखत वो हमारे घर पधारे हे, वाने हमारी सेवा लेनो स्वीकार कियो हे, तब तो वाने अपनो माहात्म्य छोड़ दियो हे. कैसे छोड़ दियो वो समझो. वो जगत्‌को ईश्वर हे पर घरमें पधारके वो ये नहीं केह रह्यो हे के मैं जगदीश्वर हूं. वो केह रह्यो हे के मैं तेरो स्वामी हूं, तेरो ठाकुर हूं. वाने अपनो माहात्म्य कितनो घटा लियो! जो सारे ब्रह्माण्डको मालिक हे. वो केह रह्यो हे के नहीं मैं तेरे घरको ठाकुर हूँ. अब तेरी मोकु गरज हे के तू सेवा कर रह्यो हे के नहीं कर रह्यो!! इतनो माहात्म्य छोड़के जब वो अपनी सेवा लेवे अपने घर पधार्यो हे और वा बखत अपन् वाको माहात्म्य केहनो शुरु करें तो बात बिगड़ जायेगी.

जैसे मैंने कल आपकु बात बताई के हमारे बम्बईमें ऐसे श्रीनाथजीके माहात्म्यज्ञानवाले भजन बनने शुरु भये हें. श्रीनाथजी भी परेशान के क्या करें? श्रीनाथजीने जो स्वरूप धारण करके पुष्टिमार्गमें बिराजनो चाह्यो, जा माहात्म्यज्ञानके द्वारा प्रकट कियो जा रह्यो हे वो स्वरूप वो नहीं हे. वो तो पुष्टिभावके द्वारा प्रकट कियो जानेवालो स्वरूप हे. अब अपन् वा स्वरूपकी उनकु याद दिवानो चाहे हें, तो भगवान्

कहें के तू बालभाव छोड़के मोकु माहात्म्यकी याद दिवावे हे. और यदि ब्रह्मभावमें मोकु मंडित करनो हे तो तो मोकु बोलवेकी कोई आवश्यकता ही नहीं हे. क्योंके **"यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य 'ब्रह्म' इति एकता भवति"** अब तो एकता हो गयी अब बोलवेकी क्या जरूरत हे?

(संबंधकी स्पष्टतासु प्रिय-अप्रियता)

एक बड़ो मजेदार नानकके जीवनको प्रसंग हे. वे मक्का-मदीना की तरफ पैर करके सो रहे हतें. कोईने कही के "तुम खुदाके घरकी तरफ पैर करके सो रहे हो. ये क्या तुम्हारी उद्धताई हे" तब नानकने कही के "बात ठीक हे पर मैं बहोत थक गयो हूँ. तुम मेरे पैर वा तरफ कर दो, जा तरफ खुदाको घर नहीं होय." ऐसे कैसे हो सके के कोई तरफ खुदाको घर नहीं होय! 'खुदा' मानें ब्रह्म.

यदि ब्रह्मकी दृष्टिसु देखनो हे तो खुदाको घर नहीं होय ऐसी कोई दिशा ही नहीं हे. जहाँ भी पैर करोगे वहाँ खुदाको घर तो होयगो ही. तो क्या मक्का-मदीनाको होनो कोई गलत बात हे? मैं अपनी दृष्टिसु पूछ रह्यो हूँ. ये कोई हिन्दु-मुसलमानन्‌के झगड़ाकी दृष्टिसु नहीं पूछ रह्यो हूँ. अपन् अपनी दृष्टिसु सोचें तो भली-भांतिसु समझ सके हें के यदि मक्का-मदीना खुदाको घर लगे तो वामें बुराईकी बात क्या हे? क्यों आपसमें एक-दूसरेसु टकरा रहे हें? वहाँ एकको भाव खुदाकु व्यापक मानवेको हे और दूसरेको भाव वा खुदाकु एक घरमें मानवेको हे. दोनों बात खुदाके लिए सच हें. कोई भी बात खोटी नहीं हे. सबसु पेहले अपनो भाव विचार संबंध निश्चित करनो पड़ेगो. ब्रह्मसंबंध हे, परमात्मसंबंध हे, भगवत्संबंध हे, कृष्णसंबंध हे के घरके ठाकुरको संबंध हे, ये सारी बातें स्पष्ट करनी पड़ेंगी. ये स्पष्ट हो जाय तो कोई झगड़ाकी बात

नहीं रहेगी. और ये बात स्पष्ट नहीं भयी तो हमारे निरंतर विवाद चलते ही रहेंगे. वो कहेगो के खुदाकी तरफ पैर क्यों कर दिये. और दूसरो कहेगो के हमारो पैर वा तरफ कर दो जा तरफ खुदाको घर नहीं होय.

एक बहोत बड़े सूफीने भी या बातकी मज़ाक उड़ाई हे वो यों केह के

हाजी बराहे काबा, मन-साहिबे दीदार।
ऊ खाना हमी जोयद, मन साहिबे खाना॥

वो यों कहे हे जो हज करवे मक्का-मदीना जा रहे हें, वो तो मकान खोजवे जा रहे हें. मैं कोई थोड़े ही मकान खोज रह्यो हूँ. मैं तो मकानमालिककु खोज रह्यो हूँ. मैं क्यों मक्का-मदीनाकी दिशामें जाऊँ! जब मकानमालिककु खोजनो हे तो कोई भी दिशा सच्ची हे. पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण सभी सच्ची हें.

पर ये सारे जो झगड़ाएं हें वाकु एक बखत अपने महाप्रभुजीकी दृष्टिसु देखो तो ये बात समझमें आयेगी के उनने ब्रह्मके विविध पेहलुनकु पूर्णरूपसु स्वीकार कियो हे. अपन् उन विविध पेहलुनकु आंशिकरूपसु स्वीकार करे हें. याही लिए झगड़ा खड़े होवे हें. ब्रह्मके जो विविध पेहलु हें, वाके ब्रह्म होवेको परमात्मा होवेको भगवान् होवेको कृष्ण होवेको और घरको ठाकुर होवेको, इन सब पेहलुनसु देखोगे तो जो झगड़ा चल रहे हें उन सबको समाधान अच्छी प्रकारसु मिल सके हे. और जो झगड़ते होंय, उनकु मजा भी मिल सके हे और वा झगड़ामें अपनकु ऊब भी आ सके हे के अपन् क्या झगड़ा कर रहे हें! जा ब्रह्मके इतने सारे पेहलु हें वाकी इन क्षुद्र बातनपे झगड़ा करवेकी जरूरत क्या हे? सब बातें वाके बारेमें सच हो सके हें. **''यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य 'ब्रह्म' इति**

एकता भवति'' ब्रह्मके लेवलपे ये सारी बातें एक हो जायेंगी. अब ब्रह्मसु अपन् संबंध स्थापित करके परमात्मासु स्नेह करके, भगवानकी भक्ति करके, कृष्णकी कथाके अनुसार जब घरके ठाकुरकी सेवा कर रहे हें, वा समय प्रिय और अप्रिय के सारे प्रसंग खड़े हो रहे हें.

(ब्रह्मके साथ व्यवहार संभव नहीं)

क्यों? क्योंके अपनने प्रभुसु या तरीकेको एक समझोता कियो हे के हम जान रहे हें के तुम ब्रह्म हो. पर ना तो हम आपके वा रूपके बारेमें कुछ बोल सके हें, न तुमकु वंदन भी कर सके हें. सोचो ब्रह्मकु वंदन कहाँ करनो! कौनसी दिशामें करनो! ब्रह्मकु यदि दंडवत् करनी हे तो कौनसी दिशामें करनी! वोही गुरु नानकवालो चक्कर खड़ो हो जायगो के या ठिकाने दंडवत् करोगे तो पीछे तुम्हारे पैर आ जायेंगे. ब्रह्मकु अपन् दंडवत् नहीं कर सकें. वाकु हाथ नहीं जोड़ सकें. या दिशामें जोड़ेंगे तो पीछे तो पीठ हो जायगी. वा तरफ भी तो ब्रह्म हे. वो तो आगे भी हे पीछे भी हे ऊपर भी हे नीचे भी हे. वाके साथ या तरहको व्यवहार नहीं हो सके हे.

(भावके अनुरूप व्यवहार)

जब अपनकु ब्रह्मसु या तरीकेको व्यवहार करनो हे, जैसे अपन् प्रभुके गुण गानो चाह रहे हें, वाके बारेमें जब अपन् कुछ बोलनो चाह रहे हें, तो ब्रह्ममेंसु वाकु परमात्मा बननो पड़ेगो. जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी. **''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस् तथैव भजाम्यहम्''** (भग.गीता.४।११) ये जो भगवान् गीतामें आज्ञा करे हें के तुम अपने आप पहले निश्चय करो के तुम मेरे तरफ कौनसे भावसु कौनसे विचारसु आनो चाह रहे हो. जा भावसु, जा विचारसु तुम आनो चाह रहे हो, वा तरीकेको कुछ

तुम मेरेमें पाओगे. वा तरीकेको मैं गढ़ा जाऊँगो. यदि प्रहलादको भाव हे के खंभामें भी भगवान् हे, तो खंभामेंसु भी नरसिंह प्रकट हो सके हें. वा खंभामें कोई सुरंग नहीं हती जामेंसु आके उनने हाय-हत्या मचा दी. ठोस खंभा हतो. वामेंसु भी नरसिंह प्रकट हो सके हे.

ऐसे अपने ठोस अहंता-ममताको जो परिवार हे, वामें घरको ठाकुर प्रकट हो सके हे. और वो जब अपनी इतनी सीमा स्वीकार कर रह्यो हे के सारे ब्रह्माण्डमें व्यापक सारी आत्मामें परमात्माके रूपमें बिराज्यो भयो, ऐश्वर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य वालो द्वापरान्तमें जो प्रकट भयो, वो अभी भी तुम्हारे घरमें प्रकट होवेकी सामर्थ्य रख सके हे. जब सूरदासजीने ये बात कही के **"तब ता दिन तें वे लोग सुख संपत्ति न तजे"** महाप्रभुजीने तुरंत ये बात कही **"सुन सुर सबन्‌की यह गति जे हरि चरण भजे. व्रज भयो महरके पूत जब यह बात सुनी."** (जन्माष्टमी बधाई) आज भी वो अपने घरमें प्रकट हो सके हे. आज भी अपन् वाके साथ दिवाली शरदोत्सव मना सके हें. आज भी अपन् वाके साथ होली खेल सके हें. पर शर्त वाकी ये हे के तुम्हारे हृदयमें वो भाव होनो चहिये. वो अपनी ब्रह्मताकु परमात्मताकु भूलके, तुम्हारे भीतर बिराजवेके बजाय, बाहर प्रकट होवे और तुम अचानक कहो के हम तुमकु बाहर क्यों खोजें, हम तो तुमकु भीतर ही खोजेंगे. ऐसो दुर्व्यवहार अपन् अपने माँ-बापसु अपनी पत्नीसु नहीं कर सके हें.

समझो के एक लड़कीकु शादी करके लाओ. और वाकु कहो के तेरी सुंदरताकी मूर्ति तो मेरे दिलमें बिराजी भयी हे. वो बिचारी लड़की जब घरमें आवे तो आँख मीचके बैठ जाओ के हम तेरी सुंदरताको ध्यान कर रहे हें. कितनी बार वो देखेगी? वो तो पाछें पीहर चली जायगी. मेरे आनेके बाद आँख ही नहीं खोले, ऐसो

कैसो पति हे? आँख खोलके देखे ही नहीं. क्योंके वाको सुंदर रूप अब तो दिलमें बस गयो हे. अब तो हम आँख खोलेंगे ही नहीं. कितने दिन वो लड़की ससुरालमें रहेगी? भाग जायगी पीहर.

ऐसे ही परमात्मा जब तुम्हारे घरमें प्रकट भयो, तब वाकु तुम्हारी सेवा लेवेकी अपेक्षा हे. ध्यानसु ज्यादा वाकु तुम्हारी सेवाकी अपेक्षा हे. वो परमात्मा जब भगवान्‌के रूपमें प्रकट भयो तो वाकु श्रवण कीर्तन पादसेवन स्मरण वंदन अर्चन दास्य सख्य और आत्मनिवेदन की अपेक्षा हे.

(भावानुरूपताके कारण प्रिय-अप्रियको प्रसंग)

जा बखत वो कृष्णके रूपमें प्रकट भयो तो उन व्रजभक्तन्‌के भावसु वाकु भावित करवेकी अपेक्षा हे और वा तरहकी अपेक्षामें कुछ प्रिय हे तो कुछ अप्रिय भी हे. तुम्हारो ही कुछ प्रिय-अप्रिय हे, ऐसो नहीं. वाकु भी कुछ अपनो प्रिय-अप्रिय लगे हे. वाकी व्यापकता वाकु प्रिय नहीं लगे हे. क्योंके वाकु अपनी व्यापकता प्रिय लगती होती तो क्यों तुम्हारे घरमें पधारतो! यदि भगवान्‌कु अपनी व्यापकता प्रिय लगती होती तो नरसिंहरूपसु प्रहलादके खंभामें क्यों प्रकट होते! तो भगवान्‌कु प्रहलादके कारण अपनी व्यापकता प्रिय नहीं लगी. यासु ही वो खंभामेंसु प्रकट भये. यदि भगवान्‌कु अपनी ब्रह्मता प्रिय लगती होती तो फिर न उनकु प्रहलाद प्रिय होतो न हिरण्यकशिपु अप्रिय होतो. क्योंके यदि भगवान् जब अपनी ब्रह्मतामें बिराजें तो न हिरण्यकशिपु बुरो हे और न प्रहलाद अच्छो हे. दोनों एक सार हो गये. **"समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति न प्रियः"** (भग.गीता ९।२९) न मेरे लिए कोई अच्छो हे, न मेरे लिए कोई द्वेष्य हे, न मेरे लिए कोई प्रिय हे. **"यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य 'ब्रह्म' इति एकता भवति"**

पर प्रहलादने वा ब्रह्मतापे ध्यान नहीं दियो. प्रहलादने वाकी भगवत्तापे ध्यान दियो. ऐसो स्पष्ट उल्लेख आवे हे के हिरण्यकशिपुने पूछी के "तुम क्या पढ़े? क्या बात तुम अच्छी तरहसु समझे?" प्रहलादने कही के "मैं तो ये समझ्यो के भगवान्‌की नवविध भक्ति करनी बड़ी अच्छी चीज हे." उनने कही के "अरे ढीठ, मेरी बात नहीं मानके तूने फिर दुष्टता करी. और फिर भगवान्‌की भक्ति कर रह्यो हे! मारो याकु." पर मार नहीं सक्यो. आखिरमें हिरण्यकशिपुने कही के "कहाँ हे तेरो भगवान्?" उनने कही के "कहाँ नहीं हे मेरो भगवान् ये बताओ!" एक बात समझो जब प्रहलाद ये केह रह्यो हे के "कहाँ नहीं हे मेरो भगवान्, ये बताओ" तो प्रहलाद ये बात स्वीकार कर रह्यो हे के मेरो भगवान् मेरी भक्ति स्वीकारवेकु सब जगह बिराजमान हे, वो ब्रह्मके रूपसु नहीं. एक भक्तको स्वरूप भयो और एक भगवान्‌को स्वरूप भयो. ब्रह्मकु भक्तिकी अपेक्षा नहीं हे, न भक्तकी अपेक्षा हे और न बिराजवेके स्थानकी अपेक्षा हे. क्योंके सब दुनिया वामें बिराजी भयी हे. ब्रह्म कहाँ बिराजेगो? ब्रह्मके लिए सिंहासन कौनसो ये बताओ? सारी दुनिया ब्रह्मके सिंहासनपे बिराज रही हे, यदि दुनिया हे तो! वैसे तो ये भी बड़ो प्रश्न हो जाय के दुनिया हे के नहीं. क्योंके **"यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य 'ब्रह्म' इति एकता भवति"**

पर भगवान् सब जगह बिराजमान हे या बातकु भक्तिसु भर्यो भयो प्रहलादको हृदय जानतो हतो. यापे हिरण्यकशिपुने ये बात पूछी के "या खंभामें बिराजमान हे?" उनने कही "हाँ, खंभामें भी बिराजमान हे." प्रहलादकी बातकु सत्य करवेके लिए नरसिंह भगवान् ठोस खंभामेंसु प्रकटें. ये प्रहलादको भाव हतो जो नरसिंहके रूपमें खंभामेंसु भगवान् प्रकट भये. उनकु प्रहलाद प्रिय हे और हिरण्यकशिपु अप्रिय हे. प्रहलाद प्रिय हे इतनीसी ही बात नहीं हे. जब उनने हिरण्यकशिपुकु मार्यो तो ऐसो आवे हे लक्ष्मीजी पास जावेमें डर रही हतीं. उनने

सोची के ऐसो रूप तो अपने पतिको मैंने कभी देख्यो नहीं हे. जाऊँ के नहीं जाऊँ? पर प्रहलादकु डर नहीं लग्यो. बिलकुल वाही रीतिसु जैसे शेरके बच्चाकु, जब शेर चाटतो होय तो क्या बच्चाकु डर लगे? अपन् कोई जंगलमें सो रहे होय और शेरकु अपनेपे प्यार आ जाय और अपनकु चाटवे लगे तो समझो के खावेसु पहले ही अपने प्राण निकल जायेंगे. अब शेर यों कहे के भयी चाट ही तो रह्यो हूँ. पर अपने तो प्राण वाहीमें निकल जाय. पर वा प्रहलादकु बिलकुल शेरके बच्चाकी तरह जीभसु नरसिंहजीने चाट्यो. पर प्रहलादकु डर नहीं लग्यो. क्योंके प्रहलादको भाव वा खंभामेंसु प्रकट भयो हतो. वो प्रहलाद उनकु प्रिय हे. वा स्वरूपकु लक्ष्मीजी प्रेम नहीं कर सकी पर प्रहलाद प्रेम कर सक्यो.

(प्रहलादकी दृष्टिसु नरसिंहजीकी प्रिय - अप्रियता)

प्रिय-अप्रियको भेद भगवान्‌में भक्तके कारण खड़ो भयो. भगवान्‌कु भी कुछ प्रिय हे, कुछ अप्रिय हे. अब प्रहलादकु चाट्यो जा सकेगो और हिरण्यकशिपुकु मार्यो जा सकेगो. लक्ष्मीजीकी भी वा बखत भगवान्‌ने परवाह नहीं करी. अरे भई! आँखसु ही इशारा कर देते के डर मत. ये तो मेरो लियो भयो रूप हे. पर वहाँ भगवान्‌ने ये परवाह नहीं करी के लक्ष्मी पास आवे के नहीं आवे. वा बखत तो प्रहलादके हिसाबसु जो विकराल रूप प्रकट होनो चहिये वो रूप आप धारण करके बैठे रहें. चाहे लक्ष्मीजीकु अच्छो लगे अथवा बुरो लगे. पीहर तो बिचारी लक्ष्मीजी कहाँ जा सके हें? पर समझो के बहोत बुरो लग जातो और चली जाती पर भगवान्‌ने वाकी भी परवाह नहीं करी. जानो होय तो जाओ. या बखत प्रश्न प्रहलादको हे. यासु जो प्रहलादकी दृष्टिसु प्रिय हे वो नरसिंहजीकु प्रिय हे. और जो प्रहलादकी दृष्टिसु अप्रिय हे, वो नरसिंहजीकु अप्रिय हे. यासु ही ठाकुर, वो भगवान्, वो कृष्ण जा बखत अपने घरमें आके बिराजे, तो अपनकु जो प्रिय हे वो वाकु प्रिय हे.

जो अपनुकु अप्रिय हे, वो वाकु अप्रिय हे.

(भक्तिके सुरसु भगवान्‌की प्रिय-अप्रियता)

अब या प्रकारको जब संवाद आपसमें बैठ गयो होय तो एक बात समझो के अपन् जब गीत गाते होंय तब तानपुरा मिलानो पड़े, तबला वाही सुरमें मिलानो पड़े. अपन् कोई और स्वरमें गाते होंय और वाद्य कोई और स्वरमें बजे तो कितनो खराब लगे! उनकु वाही स्वरमें मिलानो पड़ेगो. मिलेगो तो संगीत होयगो नहीं तो दुर्गीत ही होयगो. भाव और भक्ति को आपसी संगीत जो प्रकट हो रह्यो हे, भावात्मक स्वरूप और भक्तिके स्वरूप को, वा संगीतमें कुछ अप्रिय हे, कुछ प्रिय हे. जो लोग थोड़ो भी संगीत जानते होय उनकु यह बात अच्छी तरह समझमें आयगी के भैरव रागमें कोमल ऋषभ कितनो प्रिय लगे हे और वाही भैरव रागमें यदि शुद्ध ऋषभ लगा दियो तो कितनो खराब लगे हे! वो ही शुद्ध ऋषभ सारंग रागमें प्रिय हे वो ही भैरवमें अप्रिय हो जाय हे. जो सुर आपसमें बंधे हें वामें एक सुरसु अप्रियता और प्रियता को विषय बने हे. अपने आपमें न तो कोई सुर प्रिय हे न अप्रिय हे. जा बखत अपन्ने सुरनुकु एक-दूसरेसु बांध्यो, वाके बाद कुछ प्रिय और कुछ अप्रिय हो जा रह्यो हे. याही प्रकार अपन्ने अपने प्रभुकु जा भावसु, जा धारणासु बांध्यो हे वामें वो ही भाव प्रिय लगे हे प्रभुकु दूसरे भाव अप्रिय लगे हें.

ooooo

(वार्ताप्रसंग)

श्रीकृष्णदासजीकी वार्तामें आते भये महाप्रभुजीके वचनामृत जामें कृष्णदासजीने पूछी के **''महाराज! श्रीठाकुरजीकु प्रिय वस्तु कहा हे?''** ताको प्रतिउत्तर श्रीआचार्यजी कहत हें, **''श्रीठाकुरजी उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें परन्तु गोरस अतिप्रिय हे. 'गोरस' शब्देन वाणी कहियत हे, ताको भाव अनिवर्चनीय हे और सबन्तें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे. जातें 'भक्तवत्सल' कहावत हें.''**

तब कृष्णदासने फेर पूछी **''जो ठाकुरजीकु अप्रिय वस्तु कहा हे?''** तब श्रीआचार्यजीने कह्यो हे, ''श्रीठाकुरजीकु धुंआँ समान अप्रिय और कुछ नाहीं हे. ताहूतें अप्रिय श्रीठाकुरजीकु भक्तको द्वेषी हे'' या वार्ताके भावप्रकाशमें श्रीहरिरायजी आज्ञा करे हें- **''गोरस सो वैष्णवको स्नेह परस्पर और धुंआँ सो वैष्णवको क्लेश. जहाँ स्नेह वहाँ श्रीठाकुरजी पधारे जानिये और जहाँ क्लेश तहाँते श्रीठाकुरजी दूरि जानिये''** ये वचनामृत और भी बड़ो हे अब या वचनामृतको अवगाहन अपन् करेंगे.

('ठाकुरजी भोक्ता' - स्वरूपविचार)

सबसु पहले या वचनामृतमें महाप्रभुजीने एक बात कही हें के ठाकुरजी उत्तम तें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें. अब कल जो मैंने बात समझायी हती के यहाँ जो 'ठाकुरजी' शब्द वापर्यो जा रह्यो हे, वो ब्रह्मके परमात्माके भगवान्‌के या कृष्णके पेहलुसु भी नहीं पर घरमें बिराजते ठाकुरके पेहलुसु ही ये शब्द वापर्यो जा रह्यो हे. ठाकुरजी कौनसी उत्तम वस्तुके भोक्ता हें और कौनसी उत्तम वस्तुके भोक्ता नहीं हें, वाको यदि प्रमाण समझनो होय तो अपन् यों समझ सके हें, जैसे ब्रह्मसूत्रमें एक बहोत सुंदर सूत्र आयो हे, वो सूत्र **''अत्ता चराचरग्रहणात्''** (ब्र.सू.१।२।३) 'अत्ता' यानि आरोगवेवालो. जैसे काम करतो होय वो कर्ता, जातो होय वो गन्ता, जानवेवालो होय

वो ज्ञाता. ऐसे ही आरोगवेवालो मानें अत्ता और वहाँ ये बात ब्रह्मसूत्रकार बहोत अच्छे ढंगसु समझावे हें के ये अत्ता कौन हे? क्या ये जीव हे या परमात्मा हे? ये प्रश्न वहाँ व्यासजीने भी उठायो हे. ये शंका उनने उठाई हे जो भोक्ता हे वाकु सुखी या दुःखी होनो पड़े हे, सो यहाँ 'अत्ता'को अर्थ जीवात्मा लेनो चहिये, परमात्मा या ब्रह्म नहीं. या शंकाकु उठाके व्यासजी वहाँ खुलासा कर रहे हें के ये बात ठीक हे के जो भोक्ता हे, वाकु दुःखी होनो पड़े हे. पर कौनसे भोक्ताकु दुःखी होनो पड़े हे? जो केवल अपने मुखकी वासनासु भोग नहीं करतो होय, पर जाको स्वभाव ही भोगवेको होय अथवा जाको सामर्थ्य भोक्ता होवेको होय, वापे ये नियम लागू नहीं होवे हे.

जैसे अपन् एक बात जाने हें के कोई कपड़ा, गंध आवेवाली चीजके संपर्कमें आ जाय तो वामें भी वो गंध आ जाय हे. क्योंके कपड़ा एक सीमित वस्तु हे और वाको सम्पर्क भी सीमित वस्तुसु ही होयगो, असीमित नहीं हो सके हे. और वहाँ ये युक्ति भी दी हे के जैसे हवा. एक ही हवा गंदगीमेंसु और बगीचामेंसु निकले तो वामें उनके संपर्कसु दुर्गंध और सुगंध देती होवे. हर गंधकु अपने साथ लेवेमें हवा समर्थ हे पर कोई भी गंधकु अपने पास रखे नहीं हे. वासु निभावे नहीं हे, लेवे और छोड़े हे. जैसे कबीरजी बहोत सुंदर कहे हें ''जसकी तस रख दीनी चदरिया, झीनी रे झीनी.'' जैसी देहकी चादर मोकु भगवान्ने ओढ़वेके लिए दी. अब जैसो बेदाग देह प्रभुने मोकु दियो हतो वैसो ही छोड़ते समय मैंने वाकु बेदाग छोड़यो. ''जसकी तस रख दीनी चदरीया'' ऐसे यदि जसको तस होय तो होय पर वाकी वासना नहीं हे. भोगकी वासनासु भोग नहीं हे.

और या हेतुकु समझाते भये व्यासजी कहे हें श्रुतिमें जहाँ

अत्ता वाकु बतायो गयो हे, वहाँ ये बात भी बतायी हे के **''अत्ता चराचरग्रहणात्''** चर-अचर हर चीजको वो अत्ता हे. हर चीजको भोक्ता हे. चरकी भोक्ता तो सारी दुनिया ही हे. अचरको जैसे पत्थर पहाड़, ऐसेनूको भोक्ता होय तो भोक्ता मान्यो जाय. चींटीसु लेके शेर हाथी कोई जानवर या मनुष्य सभी चरके भोक्ता हें. अचरको भोक्ता कोई नहीं हे. तो 'अचर' मानें जो स्थिर वस्तुएं हें, जड़ हें, वाको भी भोक्ता वाकु कह्यो गयो हे. कोई भी जीवात्मा अचरको भोक्ता नहीं हो सके हे. **''जीवो जीवस्य जीवनम्''** (भाग.पुरा.१।१३।४६) यों कह्यो जाय हे. जीव, जीवकु खावे और जीवे हे. कोई वनस्पतिकु खावे हे और कोई वनस्पतिकु खावेवालेकु खावे हे. कोई वाकु भी खावेवालेकु खावे हे और जीये हे.

जब हनुमानजी लंका जा रहे हतें तो बहोत सुंदर वामें आवे हे के **''तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघवः''** 'तिमि' मानें व्हेलकु भी खा जावेवाली मछली हें समुद्रमें और वाकु भी खावेवाली मछली हें और 'तद्गिलोप्यस्ति' मानें वाकु भी खावेवाली मछलीएं हें. हर मछली दूसरी मछलीकु खा रही हे. पर सब चरकु खा रही हें अचरकु नहीं खा रही हें. पर परमात्माके लिए ये बात कही जाय हे के वो चर और अचर सब चीजको भोक्ता हे. अब वामें उत्तम क्या और अनुत्तम क्या?

जब अर्जुनने ये प्रश्न भगवान्सु कियो के जो तुम रूप बता रहे हो, वाकी हकीकत मैं देखनो चाहूँ हूँ. तो भगवान्ने अपने कई स्वरूप दिखाए हें. अपन् गीताको प्रकरण कभी शांतिसु बैठके देखें तो मजा आवे के विराटके कौन-कौनसे पेहलु अर्जुनकु आपने दर्शन कराये. उपनिषद्में ब्रह्मके परमात्माके वर्णन हें, वा एक-एक स्वरूपको दर्शन भगवान्ने अर्जुनकु करायो हे. जैसे-जैसे वो श्लोक आगे बढ़ते जाय, ऐसे-ऐसे कोई न कोई उपनिषद्में वर्णित परमात्माको

स्वरूप अर्जुनकु दीखतो जाय हे. विराट केहके अपन् यों समझें के भगवान्ने कोई बड़ो स्वरूप अर्जुनकु दिखा दियो. टी.वी.वालेन्ने भी एक विशाल स्वरूप विराटको दिखा दियो ऐसो नहीं हे.

दर-असल उपनिषद्की जो बत्तीस विद्याएं हें, उनमें जा तरहसु परमात्मा वर्णित हे, वाको अर्जुनकु साक्षात्कार भगवान्ने करवायो हे के देख ऐसो मैं हूँ के नहीं? ब्रह्मको जा जा रूपसु वर्णन उपनिषद्की बत्तीस विद्यान्में आयो हे, हर वा रूपको दर्शन अर्जुनने अपनी आँखन्सु कियो. अपन् तो कानसु सुने हें, और सुनके भी समझ नहीं पावे. उपनिषद् स्वयं कहे के **"श्रवणायापि बहुभिः यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः"** (कठ.उप.१।२।७) बहोत लोग वे बातें सुन ही नहीं सके हें. और बहोत जो सुन ले हें वे समझ नहीं सके हें. और जो समझ जाय हें, उनकु वो बात केहनो नहीं आवे हे. और जो केह भी दे हें उनकु वो बात हृदगत नहीं हो सके हे. उन बत्तीस विद्यान्में वर्णित परमात्माको स्वरूप ऐसो विलक्षण हे उनमेंसु एक स्वरूप 'अत्ता'को भी हे. और विराटको जहाँ वर्णन हे, वहाँ महाभारतके जितने योद्धा हें उनके मांसकु आप चबा रहे हें, ऐसो भी आपने अर्जुनकु दर्शन करवायो हे. देख, इन सब चीजन्को भोक्ता मैं हूँ. तू क्या केह रह्यो हे के मांरूगो, नहीं मांरूगो. देख, इन सबकु तो मैं चबा गयो हूँ. बड़ो भयंकर वर्णन हे **"अत्ता चराचरग्रहणात्"**को. वो जो परमात्माकी अन्नविद्या हे वो अर्जुनकु अपनी आंखन्सु भगवान्ने दिखाई हे. तो यामें प्रभुके भोक्तृत्वको वर्णन हे.

जब भी अपन् कोई चीजको भोग करे हे तो भोक्ताको उपचय होवे हे और भोग्यवस्तुको नाश होवे हे. जैसे समझो अपन्ने एक सेब खायो तो वो अपने शरीरमें कुछ न कुछ उपचय करेगो. अपने शरीरकु बढ़ायेगो और स्वयं सेब अपनो रूप खो देगो. मानो अपन्ने रोटी खायी तो रोटी अपनो रूप छोड़ देगी और हमारे शरीरको

रूप वो अपना लेगी. हमारो शरीर मांस आदिको रूप ग्रहण कर लेगी. जो परमात्माको प्रलयकर्ताको वर्णन हे, वामें बहोतसे लोगन्कु या प्रकारको संशय होवे के परमात्मा प्रलय ऐसे करे हे के वो जगत्कु खतम कर दे हे. जैसे अपन् मटकाकु तोड़ दे या एक मकानकु गिरा दें. या तरहसु सारे विश्वकु परमात्मा तोड़ दे हे.

(भोक्ताको ब्राह्मिक पेहलु)

पर ये बात ध्यानसु समझो के परमात्मा कुछ तोड़े नहीं हे क्योंके वाके बाहर तो सृष्टि हे नहीं. ये सृष्टि तो ब्रह्ममें प्रकट भयी हे, ब्रह्ममेंसु प्रकट भयी हे और ब्रह्ममें पाछी लीन होवे हे. तो ब्रह्ममें जो विलीन हो रह्यो हे, वो ही वाको 'अत्' हे. वाके मुखके रूपमें या तरहसु वर्णन कियो जाय के वो भक्षण कर रह्यो हे जो अर्जुनकु दिखायो.

जो हिमालयपे जावे, वो या रहस्यकु अच्छी तरहसु समझे हे के जहाँसु नदीएं प्रकट हो रही हें, वहाँ एक गोमुख सो बना दियो जाय हे के गोमुखमेंसु ये नदी निकल रही हे. यदि गोमुख नहीं भी होय तो वाको नाम 'गोमुख' रख दियो जाय हे. हिमालयपे आप जाओगे तो ये सब लीला वहाँ देखवेकु मिले हे. और जहाँ नदी अपनो रूप खो देवे हे वाकु अपन् 'संगम' कहे हें. मतलब या नदीने अपनो रूप खो दियो क्योंके अपने भीतर ये भावना भरी भयी हे के नदी एक पदार्थ हे. और सागर कोई दूसरो पदार्थ हे यासु ही अपन् यों कहे हें के नदीको सागरमें संगम भयो.

परब्रह्म एक पदार्थ और जगत् दूसरो पदार्थ, ऐसो तो हे नहीं. ब्रह्ममेंसु ही जगत् प्रकट्यो हे और ब्रह्ममें ही जा बखत वो विलीन हो रह्यो हे, अब वाकु लय कहो के भक्षण कहो, बात एक ही हे. जो चीज ब्रह्ममें लीन हो रही हे वाकु अपन्

यों भी केह सके हें के ये चीज ब्रह्ममें लीन हो रही हे. और यों भी केह सके हें के ब्रह्म याकु लील गयो. जैसे एक मछली दूसरी मछलीकु लील जाय ऐसे जगत्के नाम-रूप-कर्मकु ब्रह्म लील जाय. मकड़ी जालाकु अपने मुँहसु बाहर निकाले हे और वापस लील भी जाय हे. ये वाको भक्षण करे हे और वाको उद्भवन भी करे हे. दोनों प्रकारको मकड़ीको संबंध हे. याही प्रकारसु ब्रह्मको जड़ जीवात्मा चराचर जगत्के साथ उद्भवनको भी संबंध हे. **"यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिंगाः व्युच्चरन्ति एवमेव अस्माद् आत्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे देवाः व्युच्चरन्ति"** (बृह.उप.२।१।२०) और वाको पुनर्विलीन भावको भी संबंध हे.

अब यामें आप देखो के उत्तम और अनुत्तम को परहेज ब्रह्म नहीं करे हे. उपनिषद्में यहाँ-तक आवे हे कोई साधु बच जायेंगे, शैतानकु वो खा जायगो, ऐसो नहीं हे. देवता बच जायेंगे और मनुष्यनकु खा जायगो, ऐसो नहीं हे. देव दानव मानव सब कछु ब्रह्ममें लीन हो जायगो, जा दिन प्रलय होयगो. और जा दिन सृष्टि होगी वा दिन फिरसु ब्रह्ममेंसु प्रकट होवे हे. ब्रह्म चर-अचर सब वस्तुकु अपनेमें लील जाय हे. ब्रह्मके पेहलुसु आप सोचोंगे तब तो वहाँ उत्तम और अनुत्तम को कोई प्रश्न नहीं हे.

(भोक्ताके विचारमें प्रश्नकी भूमिका)

परमात्माको जहाँ-तक प्रश्न हे तो जो सूत्र मैंने आपकु पहली वार्तामें बतायो वा बातकी यहाँ फिर पुनरावृत्ति कर रह्यो हूँ. वो याके लिए के हर वार्तामें महाप्रभुजीने वेदके उपनिषद्के कौनसे पेहलुकु समझावेको प्रयास कियो हे, वो अपन् समझेंगे तो पता चलेगो के वार्ताएं कितनी गंभीर दार्शनिक हें. नहीं तो अपनकु लगे के कोई चालू खाताकी कथा हे के कृष्णदासजीने पूछी और आचार्यजीने वाको उत्तर दियो. ऐसे नहीं हे. वाकी जो दार्शनिक पृष्ठभूमिकु जब आप

ध्यानसु समझोगे तो आपकु पता चलेगो के ये कोई कहानी-किस्सा नहीं हे. इनके पीछे वल्लभदर्शन और अपने मार्गको सिद्धान्त कूट-कूटके भर्यो भयो हे. ऐसो भी नहीं हे के ब्रह्मसूत्रमें उपनिषद्में षोड़शग्रंथमें या सुबोधिनीमें ही ये विषय वर्णित हे. यहाँ भी वोको वो ही विषय वर्णित भयो हे. कई लोग यों सोचें के वार्ता तो केवल भावपक्षकी कथा हे, केवल भावपक्षकी ये कथा नहीं हे.

वामें श्रीआचार्यजीने जो कह्यो हे वाके पीछे आपको दृष्टिकोण क्या हे? कौनसे पेहलुकु आप वर्णित कर रहे हें और वाको भी कारण अपनकु समझनो पड़ेगो के सामनेवालेने कौनसी भूमिकापे प्रश्न पूछ्यो हे. जा भूमिकापे प्रश्न पूछ्यो हे वापे ही तो वाकु उत्तर समझायो जायगो. प्रश्न कोई एक भूमिकापे पूछे और उत्तर कोई दूसरी भूमिकापे दे तो उत्तर ही नहीं बनेगो. अर्जुनने जा भूमिकाके सामने कर्मकी बात पूछी वो कौनसो कर्म हतो? वो युद्धको कर्म हतो. वहाँ जो कर्मकी बात समझायी गयी हे वो युद्धकी समझायी गयी हे **"तस्माद् युध्यस्व भारत!"** (भग.गीता.२।१८) अब अपन् यों कहें के भगवान्ने तो अर्जुनकु युद्ध करवेकी बात बतायी हे तो अर्जुनकी तरह अपन् भी गाँवमें तीर ले ले के निकल पड़ें के भगवान्की आज्ञा हे के युद्ध करो. **"हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्, तस्माद् उत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः"** (भग.गीता.२।३७) भगवान्की आज्ञा अब हमकु हो गयी के जो सामने आवे वाकु तीर मारो. भगवान्ने ये ही तो आज्ञा करी. यासु तो ये गीताको रहस्य अपनकु समझ नहीं आ सकेगो के अर्जुनने जा भूमिकापे कर्मकी बात पूछी हे. **"ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिर् जनार्दन! तत् किं कर्मणि घोरे मां नियोज्यसि केशव!"** (भग.गीता.३।१) "तू क्या केहनो चाह रह्यो हे? कर्म करनो मेरे लिए अच्छी बात हे के हर बातकु समझनो मेरे लिए अच्छी बात हे?" अब वहाँ जो अर्जुनको कर्मके बारेमें प्रश्न हे, वो युद्धके कर्मके बारेमें हे.

जब भगवान् अर्जुनकु केह रहे हें के तू कर्म कर, कर्मसु पलायन मत कर. वो युद्धात्मक कर्म हे. वो युद्धात्मक कर्म अपनुकु नहीं करनो हे. क्योंके अपनी वो भूमिका नहीं हे. अब समझो ठाकुरजीके सामने अपन् गीता पाठ करे हें, तो ठाकुरजी भाग जायगो. क्योंके ये भूमिका अलग हे और वो भूमिका अलग हे. जा भूमिकापे वहाँ बात पूछी गयी हे वा भूमिकापे वहाँ बात समझायी गयी हे. सिद्धांत वामेंसु अपन् निकाल सकें के या उपदेशसु ये सिद्धान्त निर्णित भयो. अर्जुनने जा भूमिकापे प्रश्न पूछ्यो हे वा भूमिकापे ज्ञानको वो अर्थ वा बखत समझायो हे. वो ही अर्थ अपनूपे कब लागू हो सके हे, जब अपनी भी वो ही भूमिका होय तो. नहीं तो अपनी जो भूमिका होगी, वापे जो कर्मको ज्ञानको अर्थ होयगो वो अपनूपे लागू होयगो. अर्जुनवाले कर्म और ज्ञान को अर्थ अपनूपे लागू नहीं होयगो. ये खास शास्त्रकु समझवेकी एक दृष्टि हे. या बातपे ही अक्सर लोग ध्यान नहीं देवे हें. ऐसे ही वहाँ कृष्णदासजी जा बातकी भूमिकापे ये बात पूछ रहे हें, वा भूमिकापे महाप्रभुजी बात समझा रहे हें. यासु ही वा भूमिकापे वो उत्तर सच्चो हे. बाकी भूमिकानूपे वो उत्तर सच्चो नहीं भी हो सके हे, क्योंके भूमिका बदल गयी. ब्रह्मकी भूमिकापे कोई यदि पूछ रह्यो हे तो महाप्रभुजीने **''अत्ता चराचरग्रहणात्''** पे भाष्य लिख्यो हे, वा भाष्यकु उठाके देख लो के वहाँ महाप्रभुजीने एक भी शब्द ऐसो नहीं वापर्यो हे के जो अनुत्तम होयगो उनकु वो खा जायगो और उत्तमकु छोड़ देगो, ऐसे नहीं हे. **''अत्ता चराचरग्रहणात्''**में ये कह्यो हे के 'सर्व अत्ति' सब कछु वामेंसु प्रकट भयो हे और सब कछुकु प्रलयके समय वो आरोग जावेवालो हे. ये वाको प्रलयकर्तृत्वको रूप हे. और प्रलयकर्ताको रूप धरवेके लिए जो परमात्मा आरोगे हे वाकु अपन् आरोगनो नहीं केहकें 'प्रलय' कहेंगे, पर मानो के या शब्दकु वापरे भी तो वहाँ उत्तम-अनुत्तमको भय नहीं हे. जब प्रलयात्मक आरोगनो हे तो वो चराचर सबकु आरोग जाय हे.

(गृहकी मर्यादासु 'भोक्ता'में उत्तम या अनुत्तम)

और जो मर्यादाभक्तिकी दृष्टिसु मानें, देवकी सामर्थ्यसु जो प्रभु आरोगे हे वाको तो शास्त्रमें स्पष्ट उल्लेख आवे हे के देव तो कोई चीज आरोगे ही नहीं हे. केवल देखे हे और देखवेसु वो आरोग्यो मान्यो जाय हे. **''न अश्नन्ति, न पिबन्ति दृष्ट्वैव तृप्यन्ति''** एक ऐसो सिद्धान्त हे. अपनूने प्रभुके सामने कोई वस्तु रख दी और प्रभुने वापे दृष्टि डाल दी, तो वो दृष्टि डालनो ही वाको आरोगनो हे. पर पुष्टिमार्गमें या भांतिको आरोगनो अपन् सेवामें नहीं माने हें. क्योंके अपने यहाँ प्रभुकु देव जैसो तो मान्यो हे. देव नहीं देवाधिदेव हे. अभी जो विवाद चल रह्यो हे के ठाकुरजीकु जो भेंट आवे हे वो देवद्रव्य हो जाय. तो कई महानुभाव यों केह हें के अपनो ठाकुर तो देव ही नहीं हे. यदि देव नहीं हे तो देवद्रव्य कहाँसु हो गयो! महाप्रभुजीने सुबोधिनीको पहलो श्लोक यों लिख्यो हे के **''वन्दे श्रीकृष्णदेवम्''** (भाग.सुबो.मंगला.१) तो देव नहीं हे ऐसो नहीं हे. अपने यहाँ कृष्ण देव भी हे, परमात्मा भी हे, ब्रह्म भी हे, भगवान् भी हे और अपने यहाँ कृष्ण केवल इतनो ही नहीं हे पर घरको ठाकुर भी हे. और घरको ठाकुर होवेसु वो कोई दूसरी मर्यादा भी स्वीकार रह्यो हे. जब वो घरकी मर्यादा स्वीकार रह्यो हे, वा मर्यादाकी भूमिकापे महाप्रभुजी कृष्णदासजीकु ये बात समझानो चाह रहे हें के **''ठाकुरजी उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें''**.

(भोक्ताको पारमात्मिक पेहलु)

वा पारमात्मिक मर्यादाकी बात नहीं कर रहे हें. क्योंके परमात्माकी मर्यादामें, परमात्माके वर्णनमें उपनिषद्में ये बात बिलकुल साफ तोरपे आयी हे के **''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते, तयोः एकः पीप्पलं स्वादु अत्ति अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति''** (मुण्ड.उप.३।१।१) एक वृक्षपे दो पक्षी बैठे भये हें. एक पक्षी

ऐसो हे के वो वृक्षके फलनूको स्वाद ले हे और दूसरो पक्षी या फलको स्वाद नहीं लेके पहले पक्षीकु फल खाते भये देखवेको स्वाद ले हे. मानें कोई दुनियाकु देखे हे और कोई दुनियाकु देखवेवाली निगाहकु देखे हे. ऐसे कोई दुनियाकु सुने हे और कोई दुनियाकु सुनवेवाले कानकु सुननो चाहे हे के क्या सुन रह्यो हे. कोई दुनियाकु माने हे और कोई दुनियाकु मानवेवाले मनकु माने हे. यासु ही परमात्मा मनकु माने हे, परमात्मा विषयकु नहीं माने हें.

या लिए जा बखत पारमात्मिक विचार होवे हे, वा बखत मनको प्राधान्य क्यों हे, वा बखत विषयको प्राधान्य क्यों नहीं हे? वाको कारण समझो. क्योंके परमात्मा विषयभोग नहीं करे हे. परमात्मा तो केवल मनको भोग करे हे. अपने यहाँ भी जा बखत ये बात कही जाय हे के भगवान् तो भावके भूखे हें वा बखत दूसरी बात बताई जा रही हे. वा बखत घरके ठाकुरजी होवेकी बात नहीं बताई जा रही हे. विषयको भोग करे ही नहीं हे ठाकुर. वो तो तुम्हारे भावको भोग करे हे. वो पारमात्मिक दृष्टि हे. वाकु विषयभोगको क्या करनो हे! विषयको भोग तो तुम भोग रहे हो. वा विषयकु भोगवेमें तुम्हारो भाव क्या हे? वा भावकु भगवान् भोगे हे, वो विषयकु नहीं भोगे हे. ये वाकी पारमात्मिक दृष्टि हे, वो वाको पारमात्मिक पेहलु हे. अपन् वाकु भोग धर रहे हें. वा भोगकु परमात्मा नहीं भोगे हे पर वा भोगकु धरते बखत तुम्हारो भाव क्या हे वाकु भोगे हे, पारमात्मिक पेहलुसु.

पर अपने घरमें अपनो ठाकुर केवल परमात्मरूपसु नहीं बिराज रह्यो हे. परमात्माके रूपमें तो जैसे **"यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् भूतेभ्यो अन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुः यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम्, यः सर्वाणि भूतानि अन्तरो यमयति, एष ते आत्मा अन्तर्यामी अमृतः"** (बृह.उप.३।७।१५) ऐसे कह्यो जाय हे. जो सबके भीतर, सबमें

रेहके सबके भावकु भोग रह्यो हे, वाकु 'परमात्मा' कह्यो जाय हे. कोई भी देहके भीतर रहे भये विषयके सुख-दुःखकु परमात्मा नहीं भोगे हे. देहमें रेहके देहकी इन्द्रियनूके द्वारा विषयके सुख-दुःखकु तो अपनी जीवात्मा भोगे हे. देहमें अपनी जीवात्मा रेहवे हे. और अपनी इन्द्रियनूसु जो सुख-दुःख हो रहे हें, उनकु तो जीवात्मा ही भोगे हे. परमात्मा नहीं भोगे हे. परमात्मा या देहमें बिराजते भये, या सुख-दुःखकु भोगते भये जीवात्माको भाव क्या हे, कैसे ये सुख-दुःखकु जीवात्मा भोग रह्यो हे, या भावकु भोगे हे. अब ये बात पूरी बदल गयी.

जैसे भगवान् गीतामें स्थितप्रज्ञके वर्णनमें या बातकु समझावे हें के **"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः, वीतराग-भय-क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते"** (भग.गीता.२।५६) वा स्थितप्रज्ञतामें तुम सुख-दुःखकु भोग रहे हो. जैसे कोई स्थितप्रज्ञ हो गयो. ठंडी हवा मिली, चाहे वो ठंडे जलसु नहाके, एअरकंडिशनूसु, पंखासु मिली, काहेसु मिली, क्या वाको सुख नहीं होयगो! कड़ाकेकी धूप पड़ गयी तो क्या दुःख नहीं होयगो? होयगो. पर वा सुख और दुःख कु भोगवेमें अपनो भाव क्या हे? या बातकु ध्यानसू समझो तो पता चलेगी.

अपने यहाँ किशनगढ़के राजा मदनसिंहजी हते. उनके बारेमें मैंने एक बात सुनी के वो इग्लॅन्ड्में पोलो खेलवे गये. खेलते-खेलते घोड़ापेसु गिर गये. पैरकी हड़डी टूट गयी. वा जमानामें ऑपरेशनूकी शुरुआत भयी हती. वहाँके लोगनूने ऑपरेशनूकी तैयारी करके उनकु बेहोश करनो चाह्यो. तो उनने कही के "मैं कांई बानिया हुं? करो ऑपरेशन्" बगैर बेहोश करे उनने अपनो ऑपरेशन् करायो. क्या उनको पत्थरको पैर हतो? पैर तो उनको भी हाड़-मांसको ही हतो. पर एक क्षात्रवृत्ति हती के हम बनिया नहीं हें. पैर कटे तो हमकु वाकु झेलवेकी ताकत हे. देखो, दुःख तो हे ही. ऐसो

नहीं हे के जब उनको पैर कट्यो होयगो तो दुःख्यो नहीं भयो होयगो. पैर कटेगो तो सबकु दुःखेगो. चाहे वो क्षत्री होय के महाक्षत्री होय. पर वा दुःखवेकु कैसे आदमी सह रह्यो हे! मजा याकी हे.

अभी कुछ समय पहले मैंने एक बहोत सुंदर कथा पढ़ी. एक अमेरिकन् बाई एक जंगली हाथीको आफ्रिकामें अध्ययन करवे गयी. वाने खूब अध्ययन कियो के जंगलमें हाथी कैसे खावे, कैसे रहे, क्या करे? करते-करते वाकु एक हाथीसु इतनो स्नेह हो गयो और वाके इतने पास चली गयी के वा हाथीने वाकु उठाके पटकके वाकी सब पसलिएं तोड़ दी. वाकु इलाज करवानो पड़यो. चार-पाँच महीनामें जब वो ठीक भयी तब वाने कही के मोकु पाछे वाही हाथीके पास छोड़ आओ. लोगन्ने कही के "इतनो वा हाथीने कियो फिर क्यों जाओ!" तब वाने कही के "यामें हाथीके इतने पास मोकु जानो ही नहीं चहितो हतो" देखो! वाने हाथीको कियो बुरो नहीं मान्यो. इतनो हाथीने वाके साथ अत्याचार कियो फिर भी क्योंके वाकु हाथी प्रिय हते. जैसे एक बच्चा रातकु बहोत टें-टें करके रोवे पर मांकु बुरो नहीं लगे. बिलकुल मातृवात्सल्य वाकु हाथीपे आ गयो. वाने कही के "हाथीकी यामें क्या गलती हती! मैं हाथीके अधिक करीब चली गयी, जितनो मोकु नहीं जानो चहिये" अब देखो हाथीने वाकु सूंडसु उठायो, जमीनपे पटक्यो और पैर रखके वाकी सब पसलिएं तोड़ दी. वाकु दुःख तो भयो ही होयगो. पर प्रश्न ये हे के वो वा दुःखकु लेवे कैसे हे? वो लेवे कैसे हे या बातकु भगवान् भोगे हे. सुख-दुःखकु भगवान् नहीं भोगे हे. पर या सुख-दुःखकु तुम ले कैसे रहे हो, या बातकु वो भोगे हे. **"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते, तयोः एकः पीप्पलं स्वादवत्ति अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति"** लार टपका-टपकाके या देहमें रहे विषयन्को स्वाद लेवे हे और दूसरो

केवल वाकु देखके वाकी मजा ले रह्यो हे.

जैसे अपने घरमें भी एक कोई खावेवालो होवे कोई परोसवेवालो होवे. परोसवेवालेकु क्या खावेकी मजा आवे? परोसवेवालेकु तो खावेवालेकु देखवेकी मजा आती होवे हे. ऐसे परमात्मा भी तुमकु सुख-दुःख परोस रह्यो हे. वाकु याकी मजा आवे हे के तुम उन सुख-दुःखन्कु कैसे खा रहे हो! अक्सर परोसवेवाले, खावेवालेसु पूछे हें कि तुमकु ये चीज अच्छी लगी के नहीं, वो चीज अच्छी लगी के नहीं? दाल अच्छी लगी के लड्डू अच्छो लग्यो? क्योंके जब वो परोस रह्यो हे तो वाकु जानवेकी इच्छा होवे हे के मैंने तुम्हारे मनकी वस्तु परोसी के नहीं? ऐसे ही परमात्माके रूपमें भगवान् हमसु पूछे हे के बता दुःखमें मजा आयो के सुखमें? तोकु दुःखकी मिर्चीको स्वाद अच्छो लग्यो के सुखके लड्डू अच्छे लगे? क्या अच्छो लग्यो तोकु? सुख और दुःख को चक्कर तोकु अच्छो लग्यो? इन सब बातन्कु परमात्मा भोगे हे. याहीसु अपने यहाँ यों कह्यो जाय हे के परमात्मा या भगवान् विषयको भोक्ता नहीं हे पर भावको भोक्ता हे. अब अपन् ठाकुरजीकु यों कहें के तुम तो भावके ही भोक्ता हो, सामग्रीके भोक्ता कहाँ हो! तुम्हें क्या भोग धरें? बिराजे रहो सिंहासनपे. तो देखो पत गयी न बात! अब घरमें पत्नी आ जाय तो वाकु भी कहो के तू तो मेरे भावकी भोक्त्री हे, तोकु कहां साड़ी गहना दऊँ? वो भी दो-चार दिन बैठके पीहर भाग जायगी. कहाँ-तक भावपे बैठी रहेगी! और कभी पलटके वाने केह दियो के तुम तो मेरे भावके भूखे हो. हे पति परमेश्वर, तुम्हें क्या रोटी खिलाऊँ! तो पत गई न बात! प्रभु भावको भोक्ता हे, ये एक पेहलुसु कही जाती बात हे. वो ब्रह्मके पेहलुसु कही जाती बात नहीं हे क्योंके ब्रह्म तो भाव-अभाव सभी चीजको भोक्ता हे. तुमकु भाव होय वाको भी भोक्ता हे और अभाव होय वाको भी भोक्ता हे. क्योंके वो तो **"अत्ता चराचरग्रहणात्"** हे. पर परमात्मा

भावको भोक्ता हे, विषयको भोक्ता नहीं हे.

(मर्यादामें भगवान्‌को भोक्तापनो दृष्टिसु)

भगवान् दृष्टिको भोक्ता हे. वो देखे हे के तुमने पूजा बराबर विधिसु करी के नहीं. यदि तुमने ठीकसु पूजाकी विधि करी तो वो दृष्टि करके आरोगेगो. और तुमने पूजा विधिमें गड़बड़ करी तो वो देखेगो ही नहीं. क्योंके तुम खुद ही गड़बड़ कर रहे हो, तो वाकु क्या गरज हे भोक्ता बनवेकी! वो मर्यादाकी बात हे.

(भक्ताधीन भावसु कृष्णको भोक्तापनो)

पर कृष्णके पेहलुसु, अपन् कृष्णकी कथा अच्छी तरह जाने हे के **''ब्रह्ममें ढूढ्यो, पुरानन् गायन, वेद ऋचा सुनि चोगुने चायन, देख्यो सुन्यो कबहूं न किते धों, वो बैठ्यो पलोटत राधिका पायन''**. और **''शेष महेष दिनेश सुरेश गनेश हू जाहि निरंतर गावे, जाहि अनादि अखंड़ अनंत अभेद अछेद सु वेद बतावे. नारदसे शुक व्यास रचे पचिहारे, तोऊ पुनि पार न पावें, ताहि अहीरकी छोहरिया छाछिया भर छाछपे नाच नचावें''** देखो! आखी बात बदल गयी हे. अब वो भावको भोक्ता नहीं रेह गयो. छछिया भर छाछपे नाचवेवालो रूप हो गयो. उन गोपीने कही के तू नाचके बता तो छाछ देऊंगी. कृष्णने कही के चल तू मोकु अधिक नहीं थोड़ीसी छाछ देगी तो मैं नाचवेकु तैयार हूँ. ये बात नहीं हती के उनके घर छाछ नहीं हती. नन्दरायजीके घर कितनी गाय हती! उनके घर छाछकी कमी तो नहीं हती. पर गोपीने कही के छाछ देऊंगी, तू नाचके बता. तो कृष्ण थोड़ी छाछपे भी नाचवेकु तैयार हे. ऐसो भक्तपराधीनरूप कृष्ण प्रकट भयो. याही लिए महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के **''कृष्णाधीनातु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते''** (त.दी.नि.३।५।२६) जब भक्तके पराधीनरूप परमात्माको प्रकट होवे हे तो वो पुष्टिरूप हो जाय हे. एक बात वो हती के जो छछिया भर छाछ देती हती वाके लिए कृष्ण

नाचे. ऐसो ही नहीं जो छाछ नहीं देती हती अपनो माखन छिपाके रखती हती वाके घर चोरके भी कृष्णने माखन खायो.

अब अपन् या कथाकु अर्जुनकी गीताके तरह यों समझ जाय के भगवान्‌कु तो चोरी करके भी भोग धर्यो जा सके. तो सारे पुष्टिमार्गीय एक-दूसरेके यहाँ चोरी करवे पहुँच जांय. वो पूछे के ''क्यों आयो'' तो कहें के ''भगवान्‌कु भोग धरनो हे'' क्या अपन् चोरी करके भगवान्‌कु भोग धरेंगे? तो कहें के हमारे भगवान्‌कु आदत हे चोरी करके खावेकी. बेचारे महाप्रभुजीने तो कृष्णको वो पेहलु सेवामें नहीं पधरायो हे.

(गृहठाकुरकी दृष्टिसु भोक्तापनो)

वो स्वरूप सेवामें पधरायो हे जो ब्रह्मसंबंधके आत्मसमर्पणकी क्रियासु शुरु हो रह्यो हे. ''जो तिहारी सत्ताको हे वाकु भोग करवेकु तिहारे घर पधार रह्यो हूँ'' जो तुम्हारी सत्ताको नहीं हे वाको यदि तुम भोग धर रहे हो, तो तुम्हारो ठाकुर आरोग नहीं रह्यो हे. या बातकु ध्यानसु समझोगे तो बात समझमें आयगी के उत्तम क्या और अनुत्तम क्या? वार्ता पढ़ोगे तो ख्याल आयगो के जा जीवके घर ठाकुरजी बिराज रहे हे और वाकी सत्ताको यदि वो भोग धर रह्यो हे, यदि वो छप्पनभोग होय तो भी चलेगो और छोला होय तो भी चलेगो, वाकु प्रभु उत्तम मान रह्यो हे.

(गृहठाकुर अन्यकी सत्ताको भोग नहीं करे)

जो कोई दूसरेके खीसामें हाथ डालके भोग धर रह्यो हे, वो तो बहोत जघन्य बात हे. वो कोई अच्छी बात नहीं हे. ठाकुरकी सेवा तेरे यहाँ बिराज रही हे और तू दूसरेके खीसामें क्यों हाथ डाले हे! दूसरेके सामने क्यों झोली फैलावे हे, तो कहे के ''ठाकुरकु भोग धरनो हे लाओ पैसा लाओ पैसा''. ये भिखारीपनो हे. ठाकुरजीके

नामपे भीख मांगवेके लिए क्या ठाकुरजी अपने माथे बिराजे हे के तुम दुनियाभरमें भीख मांगके ठाकुरजीको अपमान कराओ हो? या लिए ठाकुरजी तुम्हारे घरमें बिराजे हे? जब भी तुम ठाकुरके नामकी भीख मांग रहे हो, समझ लो के तुम्हारे घर ठाकुरजी बिराज ही नहीं रह्यो हे. ये बात तुम निश्चित समझ जाओ. जब भी तुमने ठाकुरके नामकी भीख मांगी तो तुमने वा ठाकुरकु एक भिक्षापात्र बना दियो केहवायगो. वो ठाकुर ही नहीं रेह जायगो. दयारामभाई कहे हें के ''पारसमणिनुं पात्र लइ हाथमां घेर घेर भीक्षा मांगे'' पारसमणिको पात्र हाथमें हे और वाकु लेके भीख मांगवे जा रहे हे के लाओ पैसा. आज भागवतसप्ताह करनी हे, आज ठाकुरजीको मनोरथ हे, आज अन्नकूट हे, लाओ पैसा लाओ चंदा. अरे पारसमणिकु लेके भीख मांग रहे हो! कैसी दुर्गति ठाकुरकी!! तुम्हारेमें स्वाभिमान होनो चहिये के जो तुम्हारी सत्ताको हे, वाकु आरोगेवेके लिए प्रभु तुम्हारे घरको ठाकुर भयो हे.

एक लड़की भी जब ब्याहे हे तो ये स्वाभिमान रखे हे के मेरो पति जो कमाके लायगो, वाको कपड़ा मैं पहरूँगी. अरे वासु भी क्या तुम्हारो ठाकुर गयो बीत्यो हे के गाममें वाके नामकी भीख मांगो और चंदा इकट्ठो करो. शरम नहीं आवे हे तुमकु? पर अपनेकु शरम नहीं आयी. क्योंके अपन् नालायक पुष्टिमार्गीय हें. ठाकुरजीके नामपे अपन् मागे हें. उत्तम वस्तुको भोक्तृत्व ठाकुरजीको हे, वो अपन्ने भुला दियो.

(गृहठाकुर तो अपनी सत्ताको भोक्ता)

उत्तम वस्तु वो ही हे जो अपनी सत्ताकी होय. याहीसु महाप्रभुजीने सर्वनिर्णयमें आज्ञा करी **''यद्यद् इष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः येन स्यान् निवृतिः चित्ते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम्''** (त.दी.नि.२।२३६) जो तुमकु अच्छो लगे हे, जो तुमने नीतिसु कमायो हे, जो तुम्हारो

हे और जाके द्वारा तुम ठाकुरजीकी सेवा कर रहे हो, जा भावसु तुम ठाकुरजीकी सेवा कर रहे हो, जा भावसु सेवा करके तुम्हारो भाव बढ़ रह्यो हे, उन वस्तुनकु 'उत्तम' कह्यो गयो हे. उन उत्तम वस्तुन्को ठाकुरजी उपभोग करे हें. वा बातकु महाप्रभुजी यहाँ केह रहे हें के **''ठाकुरजी उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें''** यदि अपन् उत्तम वस्तुको अर्थ ये करें के ठाकुरजी छप्पनभोगके ही भोक्ता हें, छोलाके भोक्ता नहीं हें क्योंके छोला तो बहोत सस्ती वस्तु हे. तो आप मथुराधीशजीको भाव समझ नहीं पाये के मथुराधीशजी क्या भावसु पद्मनाभदासजीके घर बिराजे हतें, उनकु छप्पनभोग उत्तम नहीं लग रह्यो हे और छोला उत्तम लग रह्यो हे. अपन् वा भगवदीय, गदाधरदासजीको भाव नहीं समझ रहे हें के जाकु एक जलकी झारी अच्छी लग रही के और दूसरी वस्तु अच्छी नहीं लग रही हे. ये भाव अपन् समझें नहीं.

हमारे यहाँ एक भाईने यों कही के ''ओहो, पुष्टिमार्गमें तो केसर कस्तुरी बादाम पिस्ता के भोग धरे जांय हें.'' भई ये सब ठीक हे पर यदि ये सब भीख मांगके लानी पड़ती होय तो ठाकुरजी वाको भोग करे ही नहीं हें. क्योंके फिर वो वस्तु उत्तम नहीं रेह गयी. वो तो जघन्य हो गयी. **''येन स्यान् निर्वृतिश्चित्ते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम्''** वो निर्वृति नहीं रेह गयी. वो तो भिक्षावृत्ति हो गयी. वा भिक्षाके प्रभु भोक्ता नहीं हे. समझो के अपन् कोईके घरमें जाय और कोई अपने साथ ऐसो व्यवहार करे तो? मैंने एक चुटकला पढ़यो हतो. कोईको दोस्त लोभी हतो. वाके दोस्त वाकु केहते हतें के कभी तो हमकु जिमा. कोई दिन तो हमकु भोजनके लिए बुला. सबकु पता हती के लोभी हे कोई दिन भोजन करायगो ही नहीं. एक दिन वाने भोजनके लिये सबकु आमन्त्रित कियो. जब सब इकट्ठे हो गये तो उनके जूता उठाके बेच आयो और रॅस्टॉरामेंसु खावेकु पकोड़ा लाके सबकु खवा दियो. सब लोग प्रसंशा करवे

लगे तब वाने हम गुसांई बालकन्के जैसो दैन्यभाव और प्रकट कर दियो के "मेरी क्या सामर्थ्य? सब आपकी कृपा हे."

बात तो बड़ी सच्ची हे के आपके चरणन्की महिमा हे. आपके चरणकी महिमासु ही हम आपकु खवा पा रहे हें. पर ऐसी कारस्तानी तो अच्छी नहीं हे.

या प्रकारकी ठगाई श्रीठाकुरजीके साथ हो नहीं सके हे. कमसु कम पुष्टिमार्गमें तो नहीं हो सके हे. और मार्गन्में होय तो भी पुष्टिमार्गमें या बातकी महाप्रभुजीने सम्मति नहीं दी हे. महाप्रभुजीको स्पष्ट अभिप्राय हे के प्रभु उत्तम तें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें और उत्तम वस्तु क्या हे? जो अपन् अपनी सत्ताको श्रीठाकुरजीकु भोग धर रहे हें. क्यों उत्तम हे वो? क्योंके ब्रह्मसंबंध लेते समय आपने ठाकुरजीसु ये प्रतिज्ञा करी हे के जो मेरे पास हे, वो सब मेरे प्रभुके लिए हे. तो वा आत्मनिवेदनकी वाणी गोरस हे जाके प्रभु भोक्ता हे. यासु वाकु प्रभु उत्तम मान रहे हें.

कलकु अपन् कहेंगे के ताजमहल बहोत उत्तम हे तो ठाकुरजीकु वहाँ पधराओ. अरे वो कब्रिस्तान हे, घर नहीं हे. उत्तम तो हे ताजमहल पर उत्तम कब्रिस्तान हे, उत्तम घर नहीं हे. पर अपन् केह के ठाकुरजी तो उत्तम वस्तुके भोक्ता हें. मैं तो छप्पनभोगको मनोरथ ताजमहलमें जाके कराऊंगो. अरे! वहाँ छप्पनभोग कराके क्या फायदा हे, वो तो कब्रिस्तान हे. तुम्हारे घरकी झोंपड़ीमें ठाकुरजी ज्यादा प्रसन्न हे. ताजमहलमें प्रसन्न नहीं हे. क्यों? क्योंके तुम्हारे घरकी झोंपड़ी तुम्हारी अपनी हे. और तुमने ब्रह्मसंबंध लेते बखत ये बात कही हे के "जो कुछ मेरे पास हे वो मैं तुमकु समर्पण कर रह्यो हूँ. दारा आगार वित्त पुत्र आप्त जो कुछ मेरे पास हे वो मैं तेरी सेवाके लिए हाजिर कर रह्यो हूँ". वाकु प्रभु 'उत्तम'

मान रह्यो हे. **"प्रभु उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें"** ये अपने घरके ठाकुरके लिए कही जाती बात हे. ये भगवान्के लिए, कृष्णके लिए, परमात्माके लिए, ब्रह्मके लिए कही जाती बात नहीं हे. ये तो सबन्ने नाटक फैला दियो. समझो के अपन् छप्पनभोग धरें और सचमुचमें ठाकुरजी आरोग जाय तो एक आदमी भी छप्पनभोग नहीं धरेगो. सब कहेंगे के अरे भाई! घोर कलयुग आ गयो. ठाकुर इतनो सब आरोग जा रह्यो हे. वो तो वहीं रहे याके लिए छप्पनभोग धरे हें. क्योंके वाके बादमें प्रसाद भी बिके हे. लेते बखत भी भिखारीवेड़ा और प्रसादमें भी पाछे कमाईको धंधा. सचमुचमें एक दिन कृपा करके ठाकुरजी सब आरोग जाय और फिर दूसरे दिन कोई छप्पनभोग धरे तो मैं जानूं. कोई नहीं धरेगो फिर तो ये एक अलग कथा हे और वो कोई अलग कथा हे.

(अपने समर्पणके भावको प्रभु भोक्ता)

महाप्रभुजी जो उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता प्रभुकु बता रहे हें वो तुम्हारे समर्पणके भावकु बता रहे हें के जो तुम प्रभुकु समर्पित करो, जो तुम्हारो अपनो हे वो ही तुम समर्पित कर सको हो. जो तुम्हारो नहीं हे, वाके समर्पणको कोई प्रश्न नहीं उठे हे. याके लिए महाप्रभुजी केह रहे हें के **"'गोरस' शब्देन वाणी कहियत हे"** कौनसी वाणी याद करो 'सहस्र'सु लेके 'तवास्मि' तककी जो वाणी हे. वा वाणीसु जब हम श्रीठाकुरजीकु समर्पित करें के "मैं और क्या कर सकु हूँ." अपने यहाँ गोपेश्वरजीने बहोत सुन्दर बतायो हे के "भोग धरते बखत ऐसे कह्यो जाय के गोपीन्के यहाँ तो तुम चोरके आरोगते हते. तो मैंने तो आपके समक्ष धर्यो हे तो क्यों नहीं आप आरोगो." ऐसी वाणी ये गोरस हे. 'गो' यानि वाणी और वाणीको ये रस. जैसे मां अपने बच्चाकु मनुहार करके लिवावे. कीर्तन बांचोगे तो वामें आवे हे के "कर मनुहार लिवाई" यशोदाजी जैसे ठाकुरजीकु मनुहार करके खवाती हतीं. ऐसे भोग धरवेमें

जो मनुहारको भाव हे. जाकु अपने यहाँ 'कानि' कह्यो जाय हे के श्रीनंद-यशोदाजीकी कानिसु, महाप्रभुजीकी कानिसु, जिन भक्तन्पे तुमकु भाव होय उन भक्तन्की कानिसु प्रभु आप आरोगो. वा भावसु जब अपन् मनुहार करिके लिवा रहे हें, वा वस्तुमें उत्तमता प्रकट हो रही हे. वो अपनो समर्पणको भाव हे. पर वो समर्पणको आहंकारिक भाव नहीं हे. समर्पणके द्वारा दैन्यवालो भाव हे के तुम तुम्हारो समर्पण कर रहे हो पर या अहंकारके साथ नहीं के मैं कर रह्यो हूँ पर या मनुहारके साथ के तू ले ले. देखो, मैं कर रह्यो हूँ, ये एक अहंकारको भाव हे और तू ले रह्यो हे ये एक समर्पणको भाव हे, स्नेहको भाव हे.

समर्पण और वाके बाद दूसरी बात आ रही हे स्नेहकी. समर्पणके साथ जा बखत स्नेह जुड़ेगो तो वो गोरस प्रकट हो जायगो. और वो "गोरस जो हे वो उत्तमतें उत्तम वस्तु हे ताको भाव अनिर्वचनीय हे और सबन्तें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे" जा बखत प्रभुकु निवेदन कर रहे हें के प्रभु तुम आरोगो. वा भावसु जा बखत अपन् मनुहार कर रहे हें, तो प्रभु निश्चित आरोगे हें."**अद्धा तद् गोपिकेशः स्वबदनकमले चारुहासे करोति**" (श्रीवल्लभाष्टकम्-४) ये बात गुंसाईजी अपन्कु समझावे हें. ये कृष्णदासजीकी वार्ताके वचनामृतमें महाप्रभुने अपनेकु ये समझायो. आज अपन्ने ये भाग कियो. दूसरो भाग वचनामृतको अपन् कल करेंगे.

(सिंहावलोकन)

कृष्णदास मेघनजीकी वार्ताके अंतर्गत महाप्रभुजीको तीसरो वचनामृत अपन् कल कर रहे हतें. वामें महाप्रभुजी ये आज्ञा करे हें के **"श्रीठाकुरजी उत्तमतें उत्तम वस्तुके भोक्ता हें. परंतु 'गोरस' शब्देन वाणी कहियत हे. और सबन्तें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे. तातें 'भक्तवत्सल' कहावत हें."**

कल अपन्ने प्रभुके भोगके कई पेहलुन्को विचार कियो हतो. ब्रह्म परमात्मा भगवान् कृष्ण और घरको ठाकुर. और वाके अंतर्गत अपन्ने ये देख्यो के श्रीकृष्णकु गोरस प्रिय हे. एक अर्थमें, "गोरस प्रिय हे" जाकु अपन्ने रसखानजीके सवैयासु अवगाहन कियो हतो के "ताहि अहीरकी छोहरिया छछिया भर छाछपे नाच नचावे" पर घरके ठाकुरके रूपमें वो कृष्ण प्रकट भयो तब महाप्रभुजीने वा गोरसकु(नवनीतकु) अतिप्रिय नहीं मान्यो. या बातको महाप्रभुजीने आगे खुलासा कर दियो हे के "**'गोरस' शब्देन वाणी कहियत हे**" ये बात बहोत समझवेकी हे. या लिए केवल नहीं के महाप्रभुजीकु अपन् वाणीके पति माने हें. पर अपने यहाँ सेवाको जो प्रकार हे वो समर्पण और स्नेह पे आधारित प्रकार हे. समर्पण स्नेह और वाकी भावना. अपने यहाँ मुख्यतया तीन तरहकी भावनान्को उपदेश आयो हे. स्वरूपभावना लीलाभावना और भावभावना. भावनाको सेवामें रोल क्या हे?

(ब्रह्मसंबंधकी गरिमा और वासु होतो दुर्व्यवहार)

समर्पणको बहोत महत्त्वपूर्ण रोल् हे. जैसे मैंने आपकु बतायो के वो गोरसरूप हे. वाणीको रस वामें प्रकट हो रह्यो हे. ये बात मैंने आपकु शिवाजी और शिवाजीकी माँ की कथाके द्वारा भी समझाई हती. शिवाजीकी माँ शिवाजीकु सोते बखत या प्रकारसु थपकाती हती. वा थपकावेमें वाने शिवाजीके भीतर वो भाव भरे हते. हर माँ अपने बच्चाकु जा तरहसु थपकावे, सुवावे, लोरी गावे, वा बखत वो क्या गा रही हे वासु बच्चाको मानस पूरो गढ़यो जाय हे. अपन्कु पता नहीं चले. गुरुके पास अपन् सीखवे जांय तो अपन्कु पता चले के वा दिन गुरुने ये बात सिखायी, दूसरे दिन वो बात सिखायी. पर माँके सिखावेकी तारीख नहीं होवे. वो कोई दीक्षासु नहीं सिखावे हे. पर अपनी संस्कृतिकी बात आप सोचोगे तो आपकु ख्याल आयगो के बच्चा जब गर्भमें होवे हे, वा बखत माँ जा तरीकेकी भावना, जा तरीकेके विचार सुने हे वाको प्रभाव

बच्चापे पड़े हे. जाको उदाहरण अपने यहाँ अभिमन्यु मान्यो जाय हे. अभिमन्युने उत्तराके गर्भमें चक्रव्यूहको भेदन सुन्यो हतो और वाकु जनमसु ही वो चक्रव्यूह भेदन आतो हतो. ऐसी बहोत सारी बातें हें जो बच्चाकु आवे हें. अपनूकु आश्चर्य होवे हे के ये बात बच्चाकु कैसे पता पड़ गयी! पर बच्चाकु गर्भमें भी थोड़ो ज्ञान हो जावे हे, ये बात अब थोड़े बहोत अंशमें वैज्ञानिक लोग भी कबूल करवे लगे हें. माँ जो बच्चाकु सिखावे हे वाकी तारीख नहीं होवे. वाकी डायरी भी नहीं होवे हे. याही लिए माँकु शास्त्रमें 'पहलो गुरु' कह्यो. बच्चाको सच्चो पहलो कोई गुरु हे तो वो माँ हे. वो जा तरहसु गढ़ देगी, वा गढ़नूकु फिर गुरु भी बड़ी मुश्किलसु ही बदल सके हे. समझो माँने बच्चाकु चोर बना दियो तो वाकु कितनी भी साहूकारीकी बात समझाओ फिर चोरी ही करेगो. क्योंके वाकी माँको सिखायो पाठ इतनो बलशाली होवे हे. और वो अपने पूरे व्यक्तित्वमें झलकतो होवे हे. जाकु बदलनो बड़ो मुश्किल हे.

अपने यहां जो समर्पण और समर्पणवाली वाणी हे, जा वातकु अपन् ब्रह्मसंबंधके मंत्रमें बोले हें, वाकु ठाकुरजी भी सुने हें, गुरु भी सुने हें और वो बुलवाई जाय हे. वो एक माँके जैसी प्रक्रिया हे, जामेंसु पुष्टिभक्तिको सारो संस्कार गढ़यो जा रह्यो हे. शिवाजीकी माँने जैसे थपथपाके शिवाजी बना दियो वा तरीकेसु, वामें कृष्णभक्तिको संस्कार प्रकट होयगो. वा तरीकेको बीज वामें रह्यो भयो हे. अब वो चालू खातामें ब्रह्मसंबंध लेवे तो वामें वो गरिमा ही नहीं प्रकट होवे हे. गरिमा ही नहीं प्रकट होवे तो वाको संस्कार भी अपनूमें नहीं प्रकट होवे हे. कोई लड़कीकी होवेवाली ससुरालमें जाके यों कहो के ये लड़की मोपे बहोत भाररूप हे. या लड़कीके भारकु तुम उतारो. याकु तुम ब्याहके ले जाओ! तो वा लड़कीकी ससुरालमें क्या कीमत होयगी? और जब माँ-बाप खुद यों कहें के बहोत

प्यारसु पली हे, बहोत संभालके पाली हे, बहोत अच्छे संस्कार हमने याकु दिये हे तो तुम याकु वोही स्नेह-प्यारसु पालियो. तो वा लड़कीको ससुरालमें एक दबदबा पैदा हो सके हे के अपने बापके घरमें प्यारसु पली लड़की हे. पर जाको बाप ही कंटालके और कोई तरहसु वाको भार उतारतो होवे, वा लडकीको ससुरालमें कोई दबदबा पैदा होनो बडो मुश्किल हे.

ऐसे ही ब्रह्मसंबंध अपन् चालू खातामें ले लें. जैसे अपन् कहीं पहुंच गये. वहाँ महाराज बैठे हते तो ब्रह्मसंबंध ले लियो. महाराज कोई गाँवमें आ गये तो ब्रह्मसंबंध ले लियो. कोईने केह दियो के चलो मैं ही दे देऊं ब्रह्मसंबंध, तो वासु ही ले लियो. वासु वाकी गरिमा नहीं रही. और जब गरिमा नहीं रही तब न तो वाको अपने मनपे संस्कार पैदा होयगो. महाप्रभुजीने यासु ही सर्वनिर्णय ग्रंथमें स्पष्ट या वातकु समझायो हे के सहसा कोईकु ब्रह्मसंबंध देनो ही नहीं चहिये. जब तुम अत्यंत आश्वस्त हो जाओ तब ब्रह्मसंबंध देनो चहिये और अत्यंत आश्वस्त होवेके लिए सबसु पहली शर्त महाप्रभुजीने ये रखी हे के तुम वाकु ना पाड़ो. तब तुमकु पता चलेगो के वो लेवे लायक हे के नहीं. अभी तो ऐसो हो गयो हे के गाँवमें महाराज आ गये तो ब्रह्मसंबंध देते जाओ. नहीं आये होते तो बिना ब्रह्मसंबंधके तो रेह ही रहे हतें. वा ब्रह्मसंबंधकी कीमत कितनी? कोई आयो तो ब्रह्मसंबंध ले लियो, चहिये जहाँ ब्रह्मसंबंध ले लियो. वाको क्या हेतु हे ये जाने बिना समझे बिना ब्रह्मसंबंध ले लियो. कौनसु लेनो चहिये ये जाने बिना ब्रह्मसंबंध ले लियो. वाकी विधिके बिना ही ब्रह्मसंबंध ले लियो.

कुछ साल पहले, किशनगढ़में ही कोई बालक पधारे हते. रातके नो बजे उनने खबर भिजवाई के ब्रह्मसंबंध लेवे कौन आ रह्यो हे? तब ठंड़ीको मौसम हतो. कौन न्हावेगो? तो लोगनूने

कहीके महाराज! यहाँ तो कोई लेवेकु तैयार नहीं हे तो बालक नाराज हो गये के हमने तो समझी हती के श्याम मनोहरजीको गाम हे. यहाँ दैवीजीव होंयगे पर यहाँ तो आसुरीजीव हें, जो ब्रह्मसंबंध लेवे भी नहीं आयें. वो वापस जयपुर पधार गये. ये सब चालू खाताके ब्रह्मसंबंध हे. अपन्ने घोषणा करवा दी के महाराज आ गये हे, आके ब्रह्मसंबंध ले जाओ. ऐसे-ऐसे ब्रह्मसंबंध भये हें के एक हजार आदमीनकु एक साथ आग बुझावेको पंप लाके सबकु नहवा दियो और एक साथ ब्रह्मसंबंध दे दियो. लोगनकु लावेवालेकु दस रूपिया प्रति आदमी दियो. वाने सबकु कही के "आओ ब्रह्मसंबंध ले लो." लोगन्ने कही के "क्या करनो पड़ेगो!" तो वाने कही "कुछ नहीं, बस नहानो पड़ेगो और प्रसाद मिलेगो." तो प्रसादिया भगत तो प्रसाद लेवेके मोहसु वहाँ आ गये. और नहावेकी व्यवस्था हती नहीं तो पंपसु नवाये. वामें ब्रह्मसंबंधको मंत्र कौनने सुन्यो कौनने नहीं सुन्यो. या तरीकेको चालूखाताको ब्रह्मसंबंध अपन् लेवें तो वामें गोरस प्रकट नहीं होयगो.

और जो महाप्रभुजी केह रहे हें के **"गोरस शब्देन वाणी कहियत हे"** वो समय-समयकी वाणी ही सरस होवे हे और असमयकी वाणी तो नीरस हो जाय हे. बात सच्ची भी होय पर असमयकी बात होय तो वामें रस प्रकट नहीं होवे हे. और कोई बखत झूठी बात भी होय पर समयपे कही भयी होय तो वामें रस प्रकट हो जाय हे.

मैं एक बखत बसमें जा रह्यो हतो. आँखों देखी बात हे. बस पूरी भरी भयी हती. वामें ज्यादा आदमी भरे भये हतें. बस खड़ी भयी तो एक आदमी जबरदस्ती चढ़ गयो. बस कंडक्टरने वाके साथ झगड़ा कियो के बस पूरी भरी भयी हे. वाने कही के "एक उतर्यो तो हम क्यों नहीं चढ़ें?" कंडक्टरने कही के "जो

उतर्यो वो भी ज्यादा हतो". दोनोंनमें खूब झगड़ा भयो. बहोत तू-तू, मैं-मैं भयी. बस कंडक्टर् बहोत दुबलो-पतलो हतो और वो चढ़वेवालो अच्छो तगडो आदमी हतो पर वाके चश्मा बहोत नंबरवाले हते. बस कंडक्टरने कही के "मोटू समझता क्या हे, तेरा चश्मा उतार लूँगा?" वो बेचारो डरके उतर गयो. वाने सोची के चश्मा उतार लेगो तो क्या होयगो! मोकु बड़ी हंसी आयी के देखो समयपे एक बात केह दी और वो भी एक कमजोर आदमीने कही और तगड़ो आदमी डरके उतर गयो. समयकी बातमें ऐसो रस प्रकट हो जाय हे. वा तगड़े आदमीने बस कंडक्टरकु दो थप्पड़ यदि मारे होते तो वहीं ढेर हो जातो. और बलवानने भी कोई निर्बलकु कोई असमय बात कही तो निर्बल डरेगो नहीं. जैसे कोई व्यक्ति टूट रह्यो हे, दुःखी हो रह्यो हे वा बखत यदि तुमने स्नेहके दो शब्द बोल दिये तो वाकु नयी आशा बंध जायगी और वो पार उतर जायगो. और असमय अपन् वाकु आशा बंधाते रहें तो वो भी समझ जायगो के ये सब तो बेवकूफ बनावेकी बाते हें. तो हर बातको प्रसंग और अवसर होवे हें.

ऐसे ही ब्रह्मसंबंधको भी यदि प्रसंग और अवसर होवे तब यदि वह वाणी प्रकट होवे, तो तो वाको असर होवे और यदा-कदा ब्रह्मसंबंध करावेमें, वाकी कीमत नहीं रेह जाय और वाको असर नहीं होवे. या प्रकारको चालू खाता हो गयो. वामें वाणी तो आवे हे, पर रस नहीं आवे हे. **"गोरस शब्देन वाणी कहियत हें."** यासु ही महाप्रभुजीने आज्ञा करी के यथा कथंचित ब्रह्मसंबंध नहीं लेनो चहिये. क्योंके ये अपने समर्पणकी दीक्षा हे और वा समर्पणके भावसु जब अपन् ये दीक्षा लेंगे तो वामें प्रसंगोचित गरिमा जाग जायगी. वाही प्रकारकी के "मोटू तेरा चश्मा उतार दूंगो." तुरंत अहंता-ममताके चश्मा अपने उतर जायेंगे, जो हमने पहन रखे हे. पर अप्रासंगिक देते ही रहे ब्रह्मसंबंध, अब हजार बार अपन् वाकु

केह दें के "समर्पयामि" पर वो 'समर्पयामि'में कुछ समर्पित होवे ही नहीं हे. कुछ समर्पणको भेद पता नहीं चले हे. कभी एक सर्वे करके देखो के एक गाँवमें कितने वैष्णव हें! उनकु पूछके देखो के तुमकु निवेदन दान और समर्पण को भेद पता हे? यदि इतनो भी पता होय तो समर्पण सार्थक हो गयो. चर्चासभा भयी हती, वामें मैंने यही पूछी के निवेदन समर्पण दान को मतलब? एकदम पूछवे लगे के "ये बात फिरसे पूछो"? अरे भाई, चर्चा करवे आये हो तुमकु ये मौलिक बात नहीं पता हे, ऐसी स्थिति हे संप्रदायकी! तब अपन् केह रहे हें के अपनने ब्रह्मसंबंध दिये. ब्रह्मसंबंध दियो के भ्रमसंबंध दियो? ब्रह्मसंबंध एक अलग और बड़ी गरिमावाली चीज हे. वो सब जगह लाउड्स्पीकर्में बोलवे जैसी चीज नहीं हे. हर प्रसंगमें वो बोलवे जैसी वाणी नहीं हे. वाकु उच्चरित करनो आनो चहिये. तब तो वामें वो गरिमा प्रकट होयगी.

कामवनवाले महाराजके बारेमें एक बात मैंने सुनी हती. गरमीके दिनन्में जब गामकी छतपे सब ड़ोलते हतें तब कामवनवाले महाराज कभी छतपे नहीं पधारतें. क्यों? गर्मी तो सबकु लग रही हे पर अपनकु तो कोई पंखा भी कर देगो. सब छतपे जा रहे हें और अपन् भी छतपे जाय तो कितनी देर कोई अपनी मान-मर्यादा रखेगो! वाको एहसास करके खुद छतपे नहीं पधारतें. सब आस-पास रेह रहे हें और छतपे डोल रहे हें और अपन् भी छतपे जांय तो मान-मर्यादा कोई कब तक रखेगो? इतनो अपने आपपे संयम रखतें. यासु ही उनको इतनो रुतबा हतो के जा बखत गाममें आप पधारतें तो लोग खड़े हो जातें. समझो के लोग भी छतपे टहल रहे हें और अपन् भी टहल रहे हें. मनुष्य तो मनुष्य हे न! कितनी देर रुतबा निभायगो तुम्हारो? ऐसे ब्रह्मसंबंधको भी रुतबा कितनी देर निभेगो? चालू खातामें भेड़ बकरी कुत्ता बिल्ली सबकु ब्रह्मसंबंध देते ही चले जाओ. क्यों? क्योंके सृष्टि बढ़ानी हे. अरे बहोत

सृष्टि बढ़ाओगे तो खावेकु अनाज नहीं मिलेगो. मोसु कोई पूछे के सबसु बड़ी पुष्टिमार्गमें हानि क्या भयी हे? तो मेरो साफ अभिप्राय हे के बिना विचारे जो आयो वाकु दे ब्रह्मसंबंध, दे ब्रह्मसंबंध, वो हानि भयी.

वाको कारण ये के अपनी सेवा भक्तिसाधना की प्रणालीके प्रति कोईकु भी आदरभाव रेह नहीं गयो. कोईकु ये भाव नहीं रेह गयो के मैंने ब्रह्मसंबंध लियो हे तो मैं सेवा बिना कैसे रेह सकु? ऐसे-ऐसे कारणन्सु लोग ब्रह्मसंबंध ले हें. सास हमारे हाथको पानी नहीं पीवे हे तो लाओ ब्रह्मसंबंध दे दो. अरे, सास पानी नहीं पीवे तो व्रत करवे दो, वाकु पुन्य मिलेगो. वाकु भी मिलेगो और तुमकु भी मिलेगो के तुमने वाकु व्रत करवायो. सासकु पानी पिवावेके लिये ब्रह्मसंबंध लेनो! क्योंके सासने ये व्रत लियो होय के बगैर ब्रह्मसंबंधीके हाथको पानी नहीं पिऊँगी. बड़ी अच्छी बात हे पर वाके लिए बहूकु ब्रह्मसंबंध लेनो, ये कौनने कही? ठाकुरजीकी सेवा करनी नहीं हे, सासकु पानी पिवावेके लिए ब्रह्मसंबंध लेनो हे. जब व्रजयात्रा उठे तो वा बखत तो ब्रह्मसंबंधकी फसल जैसी कटती होवे हे. क्योंके यात्रामें जावे तो बीचमें बैठक आ जावे हे. तो बैठकमें झारी भरवेके लिए ब्रह्मसंबंध लेनो हे. घरमें ठाकुरजीकी सेवा करें नहीं. महाप्रभुजी अलग परेशान. झारी भी कैसे भरें के एक भरे तुरंत वाकु उठाके दूसरी भरे. एक भरे, दूसरी उठावे. अरे महाप्रभुजीकु पीवेको मौका तो दो! बेचारे पीवे जायें तो दूसरो उठा के ले जाय झारीकु. कई बार तो रेलमपेलमें झारीएं महाप्रभुजीपे ढुले हें और मट्टीकी कच्ची चोकी सरकके और दूर चली जाय हे. ये कोई ब्रह्मसंबंध हे?

हमकु एक दिन एकने आके कही के "महाराज! ब्रह्मसंबंध लेनो हे." हमने पूछी के "क्यों लेनो हे?" वाने कही के "व्रजयात्रामें

जा रहे हे. वहाँ हमकु बिना ब्रह्मसंबंधके झारी नहीं भरवे देंगे.'' अरे! झारी भरवेके लिए ब्रह्मसंबंध लेवेको कोई नियम ही नहीं हे. मत झारी भरो. दर्शन करो महाप्रभुजीके. उनने कही के ''सब झारी भरें और अपन् दर्शन करें तो अपनकु नीचो देखनो पड़े.'' तो मैंने कही के ''यदि नीचो देखनो पड़े हे तो एक नियम लो के घरमें रोज सेवा करोगे.'' वाने कही के ''रोज मैं शिवजीकी पूजा करूँ ही हूँ.'' मैंने कही के ''शिवजीकी पूजा करवेके लिए तो शिवमंत्र या शिवदीक्षा लेनी चहिये. ब्रह्मसंबंधकी दीक्षा क्यों लेनी चहिये. जब शिवजीकी पूजा तुम रोज कर रहे हो तो शैवदीक्षा लो आनंदसु. वैष्णवदीक्षा लेवेकी जरूरत क्या हे?'' तो वाने कही के ''हमकु तो झारी भरनी हे.'' मैंने उनकु कही के ''क्षमा करो, मैं तो ब्रह्मसंबंध नहीं दे सकु हूं.'' फिर वाने तो यात्रामें जाके ब्रह्मसंबंध ले लियो. और आके मोकु सुनायो भी के ''रोज शिवजीकी पूजा भी करूँ.'' अब समझो के जाकी पूजा करनी हे वाकी दीक्षा नहीं लेनी हे. जाकी दीक्षा लेनी हे वाकी सेवा नहीं करनी हे. केवल झारी भरवेके लिए ब्रह्मसंबंध लेनो हे. अब सोचो यामें रस हे? मतलब जाके साथ ब्याहनो हे वाके साथ घूमनो नहीं हे. जाके साथ घूमनो हे वाके साथ ब्याहनो नहीं हे. या परिस्थितिमें कोई रस पैदा हो सके हे? ऐसी वाणीमें रस कैसे प्रकट हो सके हे?

(१-३ वाणीको गौरव-अगौरव)

''गोरस शब्देन वाणी कहियत हें'' वा वाणीमें वा प्रकारकी गरिमा गौरव होनो चहिये. एक तो वाणी अपन् ऐसे ही बोलें और एक वामें कुछ गौरवको अनुभव करके बोलें. देखो एक बात सुनाऊँ तो ये बात बिलकुल समझमें आ जायगी. एक ठाकुर साहब हते. वाने रेहवेके लिए सुन्दर महल बनायो. वाकु दिखावेके लिये चारणनकु बुलायो. चारणन्ने देख्यो और एक चारण माथा पकड़के बैठ गयो. ठाकुर साहबने पूछी के ''महल कैसो बन्यो हे? माथा क्यों पकड़के

बैठे हो?'' तब वाने कही के ''ठाकुर साहब! महल तो इतनो बड़ो बनायो पर यामेंसु जब आप मरोगे तो आपकी लाश कैसे निकलेगी? दरवाजा तो सब छोटे हें.'' ठाकुर साहबने कही के ''मैंने महल देखवेकु बुलायो और ये तो मेरे मरवेकी बात सोच रह्यो हे.'' दूसरे चारणने कही के ''ठाकुर साहब याकु आप गंभीरतासु मत लो, ये तो ऐसो ही हे. आप घबराओ मत. जब आप मरोगे तो लाशकु तो काट-काटके निकाल देंगे, दरवाजा छोटे हे तो क्या भयो?'' ठाकुर साहबने कही ''अभी भागो तुम दोनों मेरे यहाँसु. महल देखवे आये हो और मेरे मरवेकी बात सोच रहे हो!'' समझो के महल दिखावेके लिए बुलायो और वा समय कोई ऐसी बात करे तो वा वाणीको कोई गौरव हे? कुछ ख्याल हे तुमकु के तुम क्या बोल रहे हो? तो ये भयी बिना गौरवकी अनुभूतिके बोली भयी वाणी. कुछ भी जो मनमें आयो बस बोल दियो. ऐसे जब भी मनमें आयो बस धड़ाकसु ब्रह्मसंबंध ले लियो. वामें गरिमा गौरव तो नहीं रह्यो. अपन् जो भी बोलें, वाकी गरिमा समझके बोलें, चाहे वो गालीकी बात होय या प्यारकी बात होय, प्रशंसाकी बात होय चाहे निंदाकी बात होय, रागकी बात होय या द्वेषकी बात होय. पर जब गरिमासु बोलेंगे तो तो वाको कुछ असर हो सके हे. समझो के कोईकु दिन भर ही गाली केहवेकी आदत हो जाय तो वाकी गालीको कोई बुरो मानेगो? नहीं मानेगो. क्यों? क्योंके वाकी गालीमें गौरव ही नहीं हे. गाली जैसी चीजमें भी गौरव नहीं रेह जाय हे. ऐसे ही प्रशंसा भी यदि दिन भर करें तो प्रशंसाको गौरव भी खत्म हो जाय हे. लोग समझ जाय के ये चापलूस हे खोटी प्रशंसा कर रह्यो हे.

वाणीमें कब गौरव या गरिमा प्रकट होवे जब वाकु समझके, समय देखके अपन् वाको उच्चारण करें तो. बिना अवसरके वाणीको उच्चार करें तो वाकी गरिमा खतम हो जाय हे. जब गरिमा नहीं

रही तो वाणीमें रस भी नहीं रेह जाय हे. समझो के आदमी गाली क्यों दे हे. दूसरे आदमीकु दुःख पहुँचावेके लिये. मारपीट अपन् नहीं कर सकते होंय के चलो मारपीटपे तो पुलिस पकड़ेगी. कमसु कम दो-चार गाली तो दे दो, जो थोड़ो दुःख वाकु हो जाय. अब वो हेतुसु दी भयी गालीको असर तो पड़नो चहिये के नहीं! सामनेवालेकु दुःख तो होनो चहिये के नहीं! दिन भर गाली देवे तो होयगो असर? ऐसे निरंतर चापलूसी करो तो आदमी प्रसन्न नहीं होवे. ये मिनिस्टरनूकी बात अलग हे. पर जो इन्सान हे, वो निरंतर चापलूसी पसंद नहीं करे. जो आदतन् चापलूसी कर रह्यो हे, वाकी बातको असर होनो बंद हो जाय हे. वाकी वाणीकी गरिमा खतम हो जाय हे.

आपने नॅपोलियनूको नाम सुन्यो होयगो. फ्रांसको राजा हतो. वाने बहोत लड़ाइयाँ लड़ीं. वो मोर्चपि तोपके नीचे ही सो जातो. वाके सैनिक त्रस्त हो जाते इतनी लडाइयाँ लड़ते. एक दिन वाके सैनिकनूने षड़यंत्र रच्यो के रातकु याकु मार दें तो लड़ाइयनूसु तो पीछा छूटेगो! चार सैनिक वाकु मारवेके लिए रातमें जहाँ वो सो रह्यो हतो वहां गये. कछु पैरके जूताकी आहट भयी तो वो जाग गयो. वाने देख्यो के चार सैनिक खड़े हें. वाने कही "यहाँ क्यों खड़े हो, जाओ अपने कामपे." वो निहत्थो हतो और सैनिक हथियारनूसु लेस हतें पर वाके केहते ही वो वापस चले गये. ऐसी गरिमा हती वाकी वाणीमें. जोरसु कड़क आवाजमें जब वह बोल्यो तो हथियार होवेके बावजूद सब भाग गये. वाणीमें ऐसी गरिमा होनी चहिये. वो मिनिस्टरनूकी तरह रोज भाषण नहीं देतो हतो. भाषण देतो होतो तो ये गरिमा खतम हो जाती. कोई मिनिस्टर् भाषणमें इतने वायदे करके जाय तो कोई माने? सबकु पता हे के भाषण देनो इनको धंधा हे. चुनाव आयेगो तो भाषण देवे आ जायेंगे. जीतके कोई कुछ करवेवालो तो हे नहीं. उनके भाषणकु कोई गरिमासु

नहीं ले हे. उनकु भी आदत हो गयी हे और अपनूकु भी आदत हो गयी हे. वो गरिमा वाणीकी खतम हो गयी हे.

([१] समर्पणभावात्मिका वाणी)

याही तरहसु जब ब्रह्मसंबंधकु भी अपन् चालू खातामें लेंगे, चालू खातामें बोलेंगे, बुलवायेंगे तो वो वाणीकी गरिमा खत्म हो जायगी. वो प्रसंग खड़ो होनो चहिये के मोकु मेरे घरमें ठाकुरकी सेवा करनी हे. वो तड़प पैदा होनी चहिये और वो तड़प जब पैदा होके अपन् कहेंगे के मैं प्रभुको हूँ और मेरो सब कुछ प्रभुको हे, मैं सब कुछ समर्पित कर रह्यो हूँ. वा वाणीमें गरिमा आ जायगी. वा वाणीमें ऐसो रस आ जायगो जाके कारण अपन् भी नॅपोलियनूकी तरह प्रभुके समक्ष कड़कके केह सके हें, प्रभु मैंने अपनो सब कुछ समर्पित कर दियो अब तो आपकु आरोगवेके लिए पधारनो ही पड़ेगो. फिर प्रभु भी इन्कार नहीं कर सके हें. वा प्रकारकी गरिमा अपनी वाणीमें प्रकट होयगी के प्रभु मैंने अब समर्पण कियो हे. अब आप यदि मेरे घर नहीं पधारो तो चलेगो नहीं. ठाकुरजी भी कहेंगे के ये समर्पित हे, वाकु ना कैसे कही जा सके याके घर तो पधारनो ही पड़ेगो! **"गोरस शब्देन वाणी कहियत हें."** वो वाणीमें रस पैदा हो जायगो, गरिमा पैदा हो जायगी. वाके लिए तड़प तो पैदा होनी चहिये के नहीं? ताप-क्लेशकी जो बात हती, वो ताप-क्लेश प्रकट होयगो तो तो वा वाणीमें रस पैदा होयगो. ताप-क्लेश तो हे नहीं. चालू खातामें अपन् लेनो चाह रहे हें. चालू खातामें अपन् दे रहे हें ऐसे क्षुद्र कामनूके लिए के बैठकजीमें झारी भरनी हे. अरे झारी भरवेके लिए काहेकु ब्रह्मसंबंध लेनो? जरूरत क्या? सासकु पानी पिलावेके लिए ब्रह्मसंबंध लेनो. इन सब बातनूसु वाणीको रस निचुड़ जाय हे. इन सब कामनूके लिए न तो ब्रह्मसंबंध लेनो चहिये और न देनो चहिये. क्यों? क्योंके वामें यदि समर्पणको भाव नहीं जग्यो तो ब्रह्मसंबंध लियो

तो क्या और दियो तो क्या. महाप्रभुजी याही लिए आज्ञा करें के ब्रह्मसंबंध लियो और दियो, ऐसो व्यापार न बन जाय, याके लिए इतनी सावधानी आवश्यक हे के जा बखत अपने घरमें ठाकुरकी सेवा करवेकी तैयारी होय, तो ही ब्रह्मसंबंध देनो चहिये. और जब निश्चित हो जाय के याकु सचमुचमें तड़प लगी हे के मोकु अपने घरमें सेवा करनी हे तो ही ब्रह्मसंबंध देनो चहिये. और तब ही ब्रह्मसंबंध लेनो चहिये. जब ऐसी तड़प ही नहीं हे तो फायदा क्या?

जब एक लड़का या लड़की एक-दूसरेकु पसंद आ जाय के ये ही जीवनसंगिनी या संगी मोकु मिले तो जीवन सार्थक हो जाय. तब शादी करो तो तो वा शादीको सुख विलक्षण हे. और ऐसो होय के वो छोरी आ गयी हे, अपन् बैंगन खरीद रहे हते, वो मिर्ची खरीद रही हती, दोनों मिल गये. अरे, बैंगन-मिर्ची खरीदवेमें शादीकी बात चल गयी तो वो शादी कितने दिन टिकेगी! ऐसे सारे प्रकार ब्रह्मसंबंधके या ढंगके हो गये हें. अपन् कहीं अचानक पहोंच गये तो कही के आ जाओ और ब्रह्मसंबंध ले लो. एक व्यक्तिके दस रूपया रेट् फिक्स् कर दी. क्योंके हमकु सृष्टि बढ़ानी हे. ऐसी सृष्टि बढ़वेसु पुष्टिमार्गकु हानि ही पहुँचे हे, कुछ लाभ नहीं पहुँचे हें. क्योंके अपनी वाणीकी गरिमा खतम हो जाय हे तो वा वाणीमें रस ही प्रकट नहीं होवे हे. वा वाणीमें रस प्रकट नहीं होवे तो ठाकुरकी सेवामें परायण ही नहीं हो पावे हें. परायण नहीं हो पावें तो वो ब्रह्मसंबंध भयो ही नहीं, वो तो भ्रमसंबंध भयो. "**गोरस शब्देन वाणी कहियत हें**"में समर्पणकी वाणी हे.

([२] स्नेहभावात्मिका वाणी)

समर्पणकी वाणी बराबर प्रकटे तो दूसरी वाणी स्नेहकी प्रकट होनी चहिये. जो मैंने आपकु कल बताई हती के "**कर मनुहार**

लिवाई". अपने ठाकुरको मनुहार करनो अपनेकु आनो चहिये. अब मनुहार क्या हे? समझो के अपन् कोइके यहाँ अतिथि बनके गये. अपनो खाके पेट भर गयो होय पर मेजबान मनुहार करे तो ना करवेकी अपनी हिम्मत रेह नहीं जाय. कुछ तो लेनो पड़े हे. तो मनुहार स्नेहकी भाषा हे. स्नेहके कारण वामें मनुहार होयगो तब तो "**गोरस शब्देन वाणी कहियत हें**" आयगो. और जब सेवामें मनुहार ही नहीं करी तो मशीनी सेवा हो जायगी. अब तो मशीन् भी ऐसे बन गये हे के मशीनसु ही सेवा हो सके हे. आपने सुन्यो होय तो तिरूपति बालाजीमें बीचमें क्या भयो के शयनको समय आधा-पौना घंटा रेह गयो, क्योंके भीड़ इतनी बढ़ गयी. बारह-एक बजे शयन होय और आधा घंटा बाद मंगला हो जाय. क्योंके यात्री इतने हो गये के ठाकुरजीकु पोढ़वेको समय ही नहीं हे. अब वहाँके भीतरिया जो लड्डू बनाते हतें उनने कही के "इतने यात्री बढ़ गये तो हमारो पगार बढ़ाओ." वहाँके व्यवस्थापकनने कही के "पगार तो नहीं बढ़ायेंगे." उनने कही के "पगार नहीं बढ़ाओगे तो हम हड़ताल करेंगे." व्यवस्थापकनने पूछी के "मंदिरमें यूनियन् बन सके के नहीं?" वाके बाद वहाँ हड़ताल भयी. तो मॅनेजमॅन्टने ये नक्की कियो के अपने यहाँ मशीन् बैठायेंगे. जो लड्डू बनावे वो कन्वेयर् बॅल्टपे चलके बालाजीके सामने होते भये दर्शनार्थीकु मिल जायेंगे. वो मशीन लगावे जा रहे हते, तो कांचीके शंकराचार्य; उनको या बातपे आभार माननो चहिये, उनने बहोत विरोध कियो. उनने कही के "नहीं नहीं, ऐसे सेवा-पूजा हो ही नहीं सके. कन्वेयर् बॅल्टपे मन्त्र कौन बोलेगो!" व्यवस्थापकनने कही के "हम मंत्रनको रॅकार्ड़ बजा देंगे". अब आप एक बात समझो के आप कोईके घरमें जाओ और ऑटोमॅटिक् दरवाजा खुल जाय. वहाँ एक टेप्-रॅकार्ड़र् भी लगा दे के वामें बजे के आओ भाईसाहब आओ. घरवालो नदारद हे. सब कुछ यदि टेप्-रॅकार्डरपे चल रह्यो हे तो आपकु वा घरमें अपनो स्वागत जैसो कछु लगेगो! जब वहाँ "कर मनुहार

लिवाई'' ऐसो भाव ही नहीं हे, सारो काम टेप्-रॅकार्डपे ही हो रह्यो हे, वामें कौनसो देवता इतनो निकम्मो हे, जो या टेप्-रॅकार्डके बोलपे आपके यहाँ आ जायेंगे! वो सारी अपनी व्यवस्था ऑटोमॅटिक् करवा दे, पर खुद नहीं आवे तो अपनेकु कैसो लगेगो!

हमारे गुरुजीकी ही एक बात बताऊँ, जिनने मोकु पढ़ायो हतो. उनको बेटा पढ़वेके लिये कॅनेडा गयो. बयासी बरसकी उम्रमें हमारे गुरुजीकु प्रेम आयो के चलो बेटा कॅनेडा गयो हे तो मिल आवे. वा बेटाने ऐसो चमत्कार कियो के लेवे गयो एयरपोर्टपे और ले जाके एक होटल्में उतार दियो. और कही के कोई संकोच मत करियो. जो भी तकलीफ होय फोन करके मोकु बता दीजो, मैं सब सुविधा कर देऊंगो. पाछे तीन दिन तक मिलवे ही नहीं आयो. फोन करके रोजाना पूछ लेवे के तकलीफ तो नहीं हे न! उनने कहीं के तकलीफ तो एक हे के हम तो बेटासु मिलवे आये हे, कोई होटल्के बॅरासु मिलवे तो आये नहीं. चोथे दिन वो बेचारे वापस बम्बई आ गये. फोनसु पूछ रह्यो हे के सब कुछ ठीक हे? अब बयासी वर्षकी उम्रमें क्या डोकरा-डोकरीकु कॅनेडा देखवेको शौक चढ़ेगो! स्नेहके कारण बेटासु मिलवे गयो और बेटा या तरीकेको व्यवहार करे!! पुष्टिमार्गमें भी ऐसो ही हो गयो हे के हर मनोरथी पैसा जमा कराके सेवा लिखवा दे हे के फलानेकी तरफसु आज राजभोग हे. जाको मनोरथ हे वो वा समय नदारद होवे. राजभोग तो मुखिया-भीतरिया धर रहे हें और वो घरपे बैठके टी.वी. देख रह्यो हे के पैसा तो जमा करा दिये हे. गुरुजी भी या कारणसु चोथे दिन बम्बई आ गये. आपकु आश्चर्य होयगो के जा बखत उनकी देह छूट रही हती तो उनने मोकु बुलायो. तब उनकी लडकीने उनकु कही के ''बेटाकु फोन करे'' तो उनने कही के ''बेटाकु बुलाके क्या होयगो?'' मोकु पास बैठाके मेरो हाथ पकड़के कही के ''मोकु विष्णुसहस्त्रनाम सुनाओ.'' मैं तो उनको विद्यार्थी हतो

पर जो सगो पुत्र हतो वाके लिए उनकु ये भाव हो गयो! क्यों ये भाव भयो? क्योंके वासु मिलवे गये और वो मिलवे नहीं आयो. सुविधा सारी कर रह्यो हे. खावेकी पीवेकी सोवेकी सब अच्छी सुविधा हती क्योंके बेटा पैसावालो हतो.

(वाणीकी रसरूपता स्नेहके कारण)

ऐसे ठाकुरजीकु सुविधा अपन् सब कर दें और भक्त नदारद. ठाकुरजी सुविधाके लोभी हें क्या? भई ठाकुरजी सुविधाके लोभी नहीं हें. समर्पणको स्नेहको भाव ऐसो हो नहीं सके हे. ''कर मनुहार लिवाई''. जो सेवा कर रह्यो हे वो मनुहार करके लिवावे तब तो प्रभुके प्रति स्नेह प्रकट होयगो. नहीं तो सुविधा प्रकट होयगी. सुविधाकी तो कोईकु कमी नहीं हे. गरीबसु गरीब व्यक्ति भी होयगो पर वाकु सुविधाकी गरज नहीं हे. स्नेहकी गरज हे. कोई भी स्वाभिमानी व्यक्तिके लिए ये बात सच हे. मनुहार करके लिवायो तो ठाकुरजीने विदुरके घर केलाकी छाल भी आरोगी. सुविधाकी तो सारी सामग्रीएं दुर्योधनके घर मौजूद हती ही. क्यों नहीं आरोगे वहाँ? क्योंके मनुहार एक स्नेहको प्रकार हे. वासु वाणीमें रस पैदा होवे हे तो यासु तो सेवा सार्थक होगी. और यदि अपन्ने सेवाकी सारी सुविधा कर दी के मंगलभोगमें मठरी आ रही हे लड्डू आ रहे हे राजभोगमें जलेबी आ रही हे सखड़ी आ रही हे. अरे, तुम सुविधा पैदा कर रहे हो. मनुहार कहाँ कर रहे हो! सुविधा पैदा करवेमें और मनुहार करवेमें क्या फरक हे? होटल्को आदमी सुविधा पैदा करे हे और मनुहार तो माँ पत्नी बेटी बहेन करे हे. होटल्वाले तो यस् सर् करके खड़े हो जायेंगे के क्या चहिये. मॅनुमें जो लिख्यो हे वो लिखा दो. वो ये नहीं कहेगो के ये भी तो चखके देखो, मैंने ये भी तुम्हारे लिए बनायी हे. वो तो तुम्हारे लिए बनायी ही नहीं होवे. और दूसरी तरफ माँ बेटी पत्नी या बहेन तुमकु नहीं भी भाती होयगी तो मनुहार करके खवायेगी के मैंने खास

तेरे लिए बनायी बेटा, खाके तो देख! या मनुहारकु अपन् ठुकरा नहीं सकेंगे. जब मेरे लिए ही बनी हे तो मोकु खानी ही पड़ेगी. ये स्नेहकी बात हे, सुविधाकी बात नहीं हे.

(प्रभु स्नेहको भोग करें, सुविधाको नहीं)

आज सबसु बड़ी भ्रांति पुष्टिमार्गमें पैदा भयी वो ये हे के अपन् सुविधा प्रदान करवेकु सेवा समझ रहे हें. सुविधा प्रदान करनो सेवा नहीं हे. ठाकुरजीकु स्नेहसु थोड़ो भी करोगे वो सब स्वीकार हे. **"पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति, तदहं भक्त्युपहृतम् अश्नामि प्रयतात्मनः"** (भग.गीता.९।२६) भक्ति उपहृत हे, मनुहारके द्वारा लिवायो गयो हे वामें "गोरस शब्देन वाणी कहियत हे." वामें तुम्हारी रसरूप वाणी प्रकट होयगी. वो कहे के "नहीं खानो" पर एक बखत थोड़ो चखके तो देखो! वामें झगड़ा होयगो, थोड़ो मनुहार होयगो. ये सब ऐसो सेवाको प्रकार हतो. ठाकुरजीकु सुविधा प्रदान कर देनो वामें स्नेह नहीं प्रकट होय तो सेवा नहीं हे. हमारे गुरुजीकु भी अच्छीसु अच्छी होटल्में ठहरायो. कोई तकलीफ तो हती नहीं पर बेटा ही नदारद होय तो स्नेह कहाँसु प्रकट होयगो! ऐसे ही जो मनोरथी हे वो नदारद हे, छप्पनभोगकी सुविधाएं सब मौजूद हें. ठाकुरजी क्या सुविधा भोगी हे? इतनो क्षुद्र हे सुविधाको प्रेमी? ठाकुरजी कभी इतनो क्षुद्र हो नहीं सके हे. वो तो स्नेहको प्रेमी हे. स्नेह मांगे हें. स्नेहमयी वाणी ठाकुरजीकु अपने यहाँ प्रिय हे. याही लिए अपने यहाँ शुरुआतमें स्नेह होय के नहीं होय, पर व्रजभक्तन्के कीर्तनन्कु गाके अपनी वाणीकु गोरससु रसमय बनायेंगे. और ठाकुरजीकु भी वा गोरससु रसाद्र बनायेंगे. याहीसु अपने यहाँ कीर्तनद्वारा मनुहारको प्रकार हतो. वामें जब अपन् ये कीर्तन गाते भये सेवा करेंगे के **"मैया मोहे माखन मिश्री भावे"** तो समझो के वो भाव अपन्में भी जगेगो और वैसो भाव ठाकुरजीमें भी जगेगो और अपन् जा बखत कहेंगे के आज फलाने सेठको मंगलभोग आयो हे और ठाकुरजीके

सामने मुखियाजीकु कहेंगे के धर दीजो तुम. सेठ कब आयेंगे जब दरसन खुलेंगे या राजभोगके बाद आयेंगे. अरे ठाकुरजी सुविधाकु भोगवेवालो क्षुद्र जन्तु नहीं हे! या भ्रमकु मनसु निकाल दो. ये पुष्टिमार्ग नहीं हे.

ये पुष्टिमार्ग नहीं के जामें अपन् ठाकुरजीकु सुविधा प्रदान करनो चाह रहे हें, स्नेह प्रदान करनो नहीं चाह रहे हें. स्नेह तो कब अपन् प्रदान कर सकेंगे, जब अपन् अपने घरमें ठाकुरजीकु पधराके खुद सेवा करेंगे. सुविधा हे के असुविधा हे वाको प्रश्न नहीं हे. कल ही मैंने आपकु बात बतायी हती के बड़े दरबार सुरसुरा गामकी कसेंड़ी भरके दूध पी गये. ये तो मनुहारकी बात हती न! नहीं तो कसेंड़ी भरके दूध कौन पी सके आजके जमानामें! चायके जमानामें कसेंड़ी भरके दूध पीनो, ये अचरजकी बात हे. मनुहारकी बात ऐसी ही होवे हे तकलीफ भी होवे तो भी आदमी कसेंड़ी भरके दूध पी जाय और सुविधाकु तो कोई हल्को आदमी ही भोग सके. कोई स्वाभिमानी व्यक्ति सुविधाकु लालायित नहीं हो सके हे. ये तो अपन् इन्सानके लेवल्पे समझ सके हें पर भगवान्कु अपन् इन्सानसु भी गयो-गुजरो समझे हें. अपन्ने ऐसी खोटी पद्धति पुष्टिमार्गमें खड़ी कर ली हे सब सुविधा हो जानी चहिये, स्नेह होय के नहीं होय. नौकरन्सु अपन् सुविधा खड़ी कर सके हें, स्नेह खड़ो नहीं कर सके हें. अपनी पत्नी अपने लिए दो-चार नौकर छोड़ जाय चाय-रोटीके लिए और कहे के मैं तो अपने पीहर रेह रही हूँ. तो वा पत्नीसु अपनेकु स्नेह प्रकट होयगो? कभी प्रकट नहीं होयगो. कोई अमेरिकाकी लड़की आ जाय तो पाँच-दस नौकरन्कु लाके सुविधा तो सारी खड़ी कर सके हे पर वासु अपने दाम्पत्यको स्नेहको रस प्रकट नहीं होयगो. कोई क्षुद्र व्यक्ति ही ऐसी सुविधाके लिए लालायित हो सके. स्वाभिमानी व्यक्ति ऐसे नहीं जी सके हे. तो अपनो प्रभु क्यों ऐसी सुविधाके लिए लालायित

होयगें! यासु ही कह्यो के **''गोरस शब्देन वाणी कहियत हें.''** जब ठाकुरजीकी सेवा या भावना सु स्नेहकी प्रणालीसु अपन् करें, जाकु अपने यहाँ 'कानि' कह्यो जाय हे, नंद-यशोदाकी कानिसु महाप्रभुजी श्रीगोपीनाथजी गुसांईजी की कानिसु ऐसे जो स्नेहके मनुहारकी प्रणाली हे, यामें 'गो'में रस प्रकट होवे हे. **''गोरस शब्देन वाणी कहियत हें.''** वो वाणी भोग धरवेमें प्रकट होनी चहिये. धरनो हे याके लिए धर दियो, या प्रकार तो कोई भुक्कड़ ही खा सके. कोई स्वाभिमानी तो खा नहीं सके हे. कोई छुएगो भी नहीं. अपन् पुष्टिमार्गमें ठाकुरजीकु इतनो अपमानित करे हें. अपनेकु होश नहीं हे के कहाँ अपने समर्पणमें गड़बड़ हो गयी हे! चालू खाताको कोई समर्पण हो गयो हे. अपन्ने पुष्टि-अस्मिताकी कॅसेट् बनवाई वामें ''तो तमे प्रवाहीजीव रे'' ऐसी एक कड़ी आवे. तो वामें जो म्युझिक् डायरेक्टर् हती वाने पूछी के ''महाराज! ये प्रवाहीजीव क्या?'' वाकु टालवेके लिए केह दियो के 'प्रवाही' मानें चालू खाताको जीव. अब जो ढोल बजावेवालो हतो वो ठीकसु ढोल नहीं बजावे तो वो कहे के ''ए, प्रवाही ढोल मत बजा.'' जो समर्पण हे वो प्रवाही समर्पण हे. स्नेहको समर्पण नहीं हे चालू खाताको समर्पण हे. वाणी हे पर रस नहीं हे. गो हे पर रस नहीं हे. **''गोरस शब्देन वाणी कहियत हें.''**

(३ तत्सुखजनिका वाणी)

तीसरी बात ये हे के स्नेह हो गयो, समर्पण हो गयो, अब तीसरे लेवल्पे जामें अपन् स्नेहसु प्रभुके सुखको विचार करें. छाकके पद गायें तो पता चलेगो के **''देखो मेरे उरके पसीना''** प्रभुके सुखके विचारसु वो स्नेहमयी वाणी प्रकट भयी हे. वामें रस प्रकट होयगो के प्रभुके सुखके विचारसु अपन् सेवा कर रहे हें. अपने कर्तव्यके विचारसु नहीं. सेवा कई तरहकी हो सके हे. भाड़ेकी सेवा, अपने कर्तव्यके भावकी सेवा, कोई ॲक्सचेंजूके भावसु करी भयी सेवा, सेवा हो सके हे के इतनो काम तुम करो तो इतनी सेवा

हम करें. वो भी तो सेवा ही हे न! इतनी सेवा कर दो इतनो पैसा मिल जायगो. इतनी सेवा कर दो तो इतनो नाम मिल जायगो. वो सेवा तो हे ही पर पुष्टिमार्गमें ऐसी कोई भी सेवाकु मान्य नहीं कियो गयो हे. पुष्टिमार्गमें जो सेवा मानी गयी हे वो ठाकुरके सुखके विचारवाली सेवा मानी गयी हे. सेव्यके सुखको विचार, ये सेवाकर्ता और सेव्य के बीचको आपसी संबंध हे. ये मियां-बीवीके राजी होवेकी बात हे यामें कोई काजी बीचमें आ ही नहीं सके हे.

मोकु एक कथा बहोत प्रिय हे यासु मैं वाकु दोहरातो रहूं हूँ. मैंने रिडर् डाइजेस्टमें पढ़ी हती. एक घरमें रंगाई-पुताई चल रही हती. माँ कोई कामसु बाहर गयी. घरमें एक छोटी बच्ची तीन-चार बरसकी हती. वो देख रही हती के माँकु कितनो उत्साह हे, रंगाई-पुताईमें. वाने रंग उठाके सब चीजनूपे पोत दियो टी.वी पे, कपड़ापे लाइट्पे. वाकु क्या खबर हती के कौनकु रंगनो! छोटी बच्ची हती. वाने देख्यो के मांकु या काममें उत्साह हे. तो मेरे काम करवेसु मां खुश हो जायगी. माँ जब घरमें आयी तो सारो कबाड़ा देख्यो. वा बच्चीने चिहुकके वा वखत माँकु कही के ''माँ देखो कितनो अच्छो रंग मैंने तेरे लिए कियो हे.'' तब वा माँने ये लिख्यो हे के ''मोकु वा बच्चीकी बात सुनके वाकु डांटवेकी इच्छा नहीं रही. क्योंके वाने मोकु खुश करवेके लिए ये सब कियो हतो. वाकी समझ कितनी? वाकु इतनी समझ नहीं हे के भीतपे रंग पोतनो चहिये, टी.वी.पे नहीं पोतनो चहिये. माँ वा बातपे बहोत खुश हुयी के वाने वो गलती क्यों करी हे, सेव्यकु सुखप्रदान करवेके लिए. माँने वाकु प्यारसु गले लगा लियो के तेने बहोत अच्छो काम कियो. वाने कही के रंग तो दूसरो हो जायगो. टी.वी. तो दूसरो आ जायगो पर या बखत या बच्चाको भाव खण्डित कर दियो तो वो नहीं सुधरेगो. बच्चाने कोई अपने तूफानके लिए रंग

नहीं पोत्यो हतो. वाने रंग पोत्यो हतो माँकी खुशीके लिए. अब वाकी जैसी समझ. वा माँने लिख्यो हे के न तो मैं वासु कुछ केह सकी न लड़ सकी. वाकु गलेसु लगा लियो के हाँ बेटा तेने बहोत अच्छो काम कियो.

ऐसे सेव्यसुखके लिये अपन् कुछ गलती भी करेंगे, तो ठाकुरजी भी अपनेकु गलेसु लगायगो के तेने तो बहोत अच्छी सेवा कर दी. यदि सेव्यसुखको भाव नहीं हे, कछु कर्तव्यको भाव हे, तो जैसे कोई होटल्वालो तुम्हारे बॅगूपे ऐसे रंगकी पुताई कर दे तो? वासु तुम हर्जानाके पैसा मांगोगे. क्योंके वहाँ स्नेहकी बात नहीं हे. सेव्यके सुखकी बात नहीं हे. वहाँ लेन-देनकी बात हे के हमने तुमकु सुविधा प्रदान करवेके लिए पैसा दियो हे. तुमकु ऐसी सुविधा प्रदान करनी चहिये. तुम यदि वैसी सुविधा प्रदान नहीं कर सके तो लाओ हमारे पैसा वापस. प्रभुकी सेवा लेन-देनको प्रकार नहीं हे. लेन-देनमें 'गो' तो प्रकट होयगो पर रस प्रकट नहीं होयगो. **''गोरस शब्देन वाणी कहियत हें''** महाप्रभुने कही वो वाणी प्रकट होनी चहिये, सेव्यके सुखकी के कैसे आपकु सुख होवे. वैसी वाणी प्रकट भयी तो वो सेव्यसुखजनिका हो जायगी. तासु ही कही के ''ताको भाव अनिवर्चनीय हे.''

(गोरस = समर्पण+स्नेह+तत्सुख)

ये तीन लेवल्पे हे. पहलो लेवल् समर्पणको, दूसरो लेवल् स्नेहको, वामें वाणीको रस प्रकट होनो चहिये. और तीसरो लेबल् सेव्यके सुखको विचार वाकी भावनाकी वाणी प्रकट होनी चहिये. वा तरहसु की जाती सेवा पुष्टिमार्गीय सेवा हे. और वा तरहसु नहीं की जाती सेवा उत्तम नहीं हे, अधम हे. वे सारे प्रकार अधम कोटीके हें. महाप्रभुजीके वचनामृतके तहत इतनी बात तो साफ तोरपे समझनी पड़ेगी, समझनी ही पड़ेगी. आज अपन् यहाँ रखे, बाकीको

अपन् कल करेंगे.

(''ताको भाव अनिर्वचनीय हे'' - वाणीकी निर्वचनता-अनिर्वचनता)

''गोरस शब्देन वाणी कहियत हें. ताको भाव अनिर्वचनीय हे. और सबन्तें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे, तातें भक्तवत्सल कहावत हें.''

कल अपन्ने देख्यो सेवोपयोगी वाणी तीन प्रकारकी हे. एक समर्पणभावात्मिका वाणी, एक स्नेहभावात्मिका वाणी और एक सेव्यसुखजनिका वाणी. समर्पण स्नेह और सेव्यसुखजनन, इन तीनोंन्के भावकु महाप्रभुजीने 'अनिर्वचनीय' कह्यो. ये शब्द भी ध्यान देवे लायक हे. सामान्यतया पहली बार सुनवेसु शब्दन्को व्यवहार कैसो होय वो समझ्यो नहीं जा सके हे. अनिर्वचनीयको अर्थ ऐसो लगे के जो बोल्यो नहीं जा सके. ये अनिर्वचनीयको बहोत प्राथमिक अर्थ हे. 'अनिर्वचनीयता'को मुख्य तात्पर्य ऐसो हे के कई वस्तुएं जिनकु अपन् अनुभव कर सकें पर उनको शब्दमें निर्वचन नहीं दियो जा सकतो होय, वाकु 'अनिर्वचनीय' प्रायः कहे हें. जैसे शहदकी मिठास, गुड़की मिठास, शक्करकी मिठास वाकु अपन् जब जीभपे रख लें तो अनुभव तो होयगो, क्योंके वो तीनों मीठे स्वाद हें. पर उन तीनोंन्को भेद क्या? निर्वचन करके बताओ तो कोई कैसे बतायगो? इन तीनों मिठासन्को भेद शब्दन्में समझानो, बतानो बहोत मुश्किल हे. अंतमें सिर पटकके केहनो पड़ेगो के भाई खाके देख लो, समझमें आ जायेगी. जो कह्यो जा सके वो ये हे के तीनों मीठे हें. तो क्या एक ही हें. नहीं तीनों एक तो नहीं हे. क्योंके शहदकी जो मिठास हे वो गुड़की तो नहीं हे. गुड़की जो मिठास हे वो शक्करकी तो नहीं हे. इन तीनोंन्की मिठासके भेदकु अपन् निर्वचन तो नहीं कर सकें. पर अनुभव तो कर सके हें. बोल्यो क्या जा सके हे के मीठे हें. मीठे हें, ऐसो बोलवेमें अनिर्वचनीय नहीं हे. ये कह्यो

जा सके हे के तीनों वस्तुएं मीठी हें. पर वाकी मिठासको निर्वचन करनो एक मुश्किल काम हो जाय हे. यासु ही, यों केहनो पड़े हे के चाखके देख लो. ऐसो समर्पणके बारेमें भी अपन् बोल सके हें. घंटा भर या एक महीना भी प्रवचन करनो होय तो कर सके हें. वा प्रवचनसु, समर्पण यदि अनुभव हे, समर्पणात्मिका मनोवृत्ति जा बखत अपन्में होवे, वा बखत वो कैसी होवे, वो अनुभव शब्दन्में नहीं बांध्यो जा सके हे. शब्दन्में यदि बांधवे जायेंगे तो मोटी बात हाथमें आयेगी. जैसे 'मीठो हे' बस इतनो ही केह सके हें.

समर्पणके बारेमें भी इतनो ही केह पायेंगे के ऐसी कोई वस्तु जामें अपनी अहंता-ममता नहीं रेह जाय. यदि अपनी अहंता-ममता नहीं रेह जायगी तो समर्पण ही नहीं रेह जायगो. समर्पण रहेगो तो अहंता-ममता रहेगी. अब याकु शब्दमें कैसे बांधनो! ये मुश्किलसी बात हे.

अक्सर या तरीकेको अनुभव अपने यहाँ शास्त्रमें बतायो हे. जैसे देव और शक्ति. ब्रह्मा सृष्टिके कर्ता देव हे. और वाकी शक्ति सरस्वती हे. विष्णु सृष्टिके पालक देव हे. उनकी शक्ति देवी लक्ष्मी हे. रुद्र सृष्टिके संहारके देव हे. उनकी शक्ति हे देवी काली. अब देखो, जा बखत अपन् यों कहे के सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और संहार में जिन शक्तिनुकु वापर्यो जा रह्यो हे वो शक्तिएं क्या हें? वो ज्ञानकी वैभवकी और संहार की शक्तिएं हें. जो मैंने बतायी हती "**अत्ताचराचरग्रहणात्**" वो शक्तिएं भगवान् वापर रह्यो हे. अब वा शक्तिके स्वरूपको जा बखत अपन् दर्शन कर लें तो बात समझमें आ जाय हे. पर तकलीफ क्या होवे वो समझो. जब अपन् देवीके स्वरूपकु अलग सेवामें या पूजामें पधरावें, वा बखत वा देवीकु, वाकी शक्ति समझनो कठिन हो जाय हे.

क्योंके वो स्वयं एक मूर्तिमान स्वरूपसु दर्शन देवे लग जाय हे. और अपन् यों कहे के ये भगवान्की शक्तिएं हें. जैसे देवी जितनी भी हे, वो देवकी शक्ति हे. जब अपन् देवकी बात करें, तो ऐसे नहीं केह सकें के देव तो सब शक्तिहीन हे. देव तो सब शक्तिमान हे. अब यदि देव सब शक्तिमान हें, वो शक्तिमान देवमें अपनेकु शक्तिको अनुभव पाछो नहीं होवे. क्यों? क्योंके अपन् अपने आधारपे शक्ति टटोलवे जायेंगे. अपनी शक्ति अपनेसु छुट्टी चल नहीं सके हे. जैसे मैं यहाँ रहूँ और मेरी शक्ति बाहर घूमके आ रही हे, ऐसो तो नहीं हो सके न!

अपन्में भी पति और पत्नी को दांपत्य हे, पर वो शक्ति और शक्तिमान वालो दाम्पत्य संभव नहीं हे. शक्ति और शक्तिमान देवमें लौकिक पति-पत्नी जैसो दाम्पत्य नहीं होवे. अब ये रहस्यकु कुछ अलग-अलग उदाहरणन्सु अपन् समझ सके हें. पर याको अनुभव आनो अपनी स्थितिमें संभव नहीं हे, अनिर्वचनीय बात हे. ये रहस्य यामें समझवेको हे. जब अपन् पति-पत्नीके रूपमें समझवेको प्रयास करेंगे तो यामें एक प्रकारको भेद भासित होयगो. वाकु पति-पत्नीके रूपमें न समझके, शक्ति-शक्तिमानके रूपमें समझवेको प्रयास करेंगे तो अपनी शक्ति अपन्सु पृथक खड़ी नहीं हो सके हे. अपने साथ ये समस्या हे, यासु शक्ति और शक्तिमान के बीचमें द्वैत हे के अद्वैत हे? याकु अपन् यों ठीक तरहसु केह सके हें के ताको भाव अनिर्वचनीय हे. याके भावकु अपन् निर्वचन नहीं कर पायेंगे. जब भी अपन् याको निर्वचन करवे जायेंगे वो अपनी कूपमंडूकता होयगी. 'कूपमंडूकता'को अर्थ हे के जो कुआमें मैंढककु जाके कहें के आज हम समुद्र देखके आये तो वो कुआके या किनारासु वा किनारापे कूदके बतायगो के क्या समुद्र इतनो बड़ो हतो? नहीं भाई यासु बहोत बड़ो हतो. वो दो चक्कर और मारके बतायेगो के इतनो बड़ो हतो? अरे नहीं भाई यासु भी बहोत बड़ो हतो. वो

कहेगो के तुम बैठे ठाले गप्प क्यों मार रहे हो? 'कूपमंडूकता'को अर्थ ये हे के यदि चार चक्कर मैंने कुआके मार लिए और तू यासु भी बड़ो केह रह्यो हे तो तू गप्प मार रह्यो हे. कुआके मेंढककु समुद्रकी बात गप्प ही लगेगी क्योंके वा बेचारेने कुआके बाहर कभी निकलके देख्यो ही नहीं हे. ऐसे अपनी बुद्धि सामर्थ्य स्वभाव क्रिया की सीमा वो कुआके मेंढक जैसी ही हे. वामें अपन् दो-चार चक्कर मारनो होय तो मार सके हें, पर उनसु यदि अपन् उन दिव्यशक्तिन्को माप लेवें तो ले नहीं सकेंगे.

बिलकुल या ही तरहसु, ये मैं अलौकिककी बात नहीं कर रह्यो हूँ, लौकिक लेवल्सु ये बात उठा रह्यो हूँ. समर्पणको स्नेहको या सेव्यके सुखके विचारको जो भाव हे, वो शब्दन्में नहीं बंध्यो जा सके हे, लौकिकमें भी और अलौकिकमें भी. क्योंके जाकु समर्पणको भाव होय, वो तो याको अनुभव कर सकेगो पर जाके खुदके भीतर समर्पणको भाव नहीं हे, वो कुछ समर्पणको अर्थ ऐसो समझेगो के दे देनो और अपनो नहीं माननो. ऐसे ही प्रकारसु वो समझ सकेगो. ये ही तो अपनी कूपमंडूकता हे. चाहे तो कोई चीज अपन् पास रखें या कोईकु दे दे. चाहे तो दी भयी चीजकु अपनी मानें या अपनी नहीं मानें. इतने सारे शब्दन्में बांधके अपन् समर्पणको भाव केहनो चाहेंगे, पर केह दो बस ये अपनी कूपमंडूकता हे. समर्पणकी मनोवृत्ति विलक्षण हे. वाकु यदि केहनो चाहें तो ऐसे केह सकें जैसे कविने कही के

मम नाथ यद् अस्ति योस्म्यहं सकलं तद्धि तवैव माधव।
नियतस्वमतिप्रबुद्धिः अथवा किं नु समर्पयामि ते।।

(आळवन्दार स्तोत्र-५३)

हे माधव, मेरो जो कुछ हे, मैं जो कुछ हूँ, वो तेरो हे. तो सब कछु तेरो हे तो समर्पण कैसे होयगो! वो तो हो ही

नहीं सके हे. जब तेरो ही हे तो तेरो तोकु कैसे समर्पण करूँगो! ऐसो समर्पण संभव ही नहीं हे. शायद इतनीसी बात हो सके के मैं याकु अपनो माननो छोड़ दऊं तो तो समर्पण हो सके. यदि सबकु अपनो माननो छोड़ दें तो नाम कैसे केह सकेंगे. जैसे अपन् कहे हें के ममता बिलकुल तोड़ दो. फिर अपने ठाकुरकु अपनो केहनो के नहीं? अहंता अपन्ने छोड़ दी तो मैं ठाकुरको दास हूँ, ये गौरव रखनो के नहीं रखनो? अब ये यदि गौरव रखेंगे तो अहंता आ ही जायगी. ठाकुर मेरो हे ऐसो कहेंगे तो ममता आ जायगी. अब क्या करनो? शब्दन्में याको निर्वचन देवे जायेंगे तो आधे-अधूरे शब्दन्सु याको इशारा कियो जा सके हे. पर याको निर्वचन नहीं हो सके हे.

जैसे हमारे व्रजभाषामें यदि केहनो होय के सीधे जाओ तो यों कहे के नाककी सूधमें जाओ. अब चलते-चलते मुँह मुड़ गयो तो अपन् भी मुड़ जाय. क्या याको ये मतलब हे? ये बात केहवेसु समझमें नहीं आयगी. जाकु सीधो जानो हे, वाकु समझमें आ जायगी के 'नाककी सूध'को मतलब सीधो जानो हे. पर जाकु जानो ही टेड़ो हे, वो क्या बदमाशी करेगो के अच्छा! नाककी सूध कही तो मुँह दूसरी तरफ करके वहाँ जायगो. रस्ता या तरफ जा रह्यो हे क्योंके बदमाशी करनी हे, तो मुंह दूसरी तरफ करके टेढ़े जाय. फिर भी ये वकालत तो चालू रहेगी के तुमने कही हती के नाककी सूधमें जाओ, हम तो वो ही कर रहे हे. ये छोटीसी बात हे, नाककी सूधकी. पर याको निर्वचन संभव नहीं हे. नाककी सूधमें जाओ मतलब कौनसी दिशामें जाओ. जाकु सीधो चलनो हे वाके लिए तो बहोत सरल बात हे. वाकु तो तुरंत समझमें आ जायगी के कहां जानो हे पर जाके मनमें खुराफात हे, वाकु कहे तो वो तो वाही दिशामें जायगो जा दिशामें वाकु जानो हे. पाछें कहेगो के तुमने तो ये ही कही हती.

कई बातें शब्दन्में बांधी नहीं जा सके हें, पर शब्दन्सु इशारा कियो जा सके हे. जैसे बच्चाकु अपन् पूछे के हाथी कितनो बड़ो? तो बच्चा पूरो हाथ फैला दे हे के हाथी इतनो बड़ो. तो क्या अपन् फुटपट्टी लेके नापवे जायेंगे के हाथी इतनो बड़ो! जितनो बड़ो हाथी हे, उतनो बड़ो हाथ बच्चा फुला नहीं सके हे. पर अपनी ताकतभर हाथ फैलाके केह देगो के हाथी इतनो बड़ो. वापे जो समझदार हे वाकु तो इशारा काफी हो जायगो के हाथी कितनो बड़ो होनो चहिये. पर यदि फुटपट्टी लेके नापवे बैठेंगे तो हाथीको माप गलत आ जायगो. बच्चा भी बेचारो झूठ बोल्यो, ऐसो कह्यो जायगो. बच्चा झूठ नहीं बोल्यो पर जाने हाथ नाप्यो वो झूठो हे.

ऐसे ही या अर्थमें अनिवर्चनीय हे के वाको शब्दन्में निर्वचन शक्य नहीं हे. पर वाको इशारासु तो समझ्यो जा सके हे. अब चाहे वो समर्पणकी बात होय, चाहे वो स्नेहकी बात होय और चाहे वो सेव्यकु सुख देवेकी बात होय. जैसे मैंने अपने गुरुजीकी बात बतायी के उनके बेटाने उनकु सुख देवेकी बात ही तो करी हती. अब और कितनो सुख देनो! फाइव् स्टार् होटल्में रुका दियो तुमकु. और क्या सुख चहिये? तो क्या सेव्यसुख भयो यासु? नहीं भयो. ये बात अनिवर्चनीय हे. याकु अपन् केहवे जायेंगे तो निर्वचन कर नहीं सकेंगे. क्या करें जो सेव्यकु सुख होय और दुःख नहीं होय. ये बात शब्दन्सु निर्वचनीय नहीं हे. क्या करें, तो वाको स्नेह केहवायगो. देखो, स्नेह यदि होयगो तो गालीमें भी स्नेह होयगो. और स्नेह नहीं हे और प्रशंसा करे तो भी द्वेष हो सके हे. जैसे कोईकु अपन् द्वेषके कारण कहें के बड़े संत हे. मतलब महापाखंडी हे, ऐसो अर्थ निकल जाय हे. प्रशंसा कर रहे हें तो भी अर्थ पाखंडी हो रह्यो हे और बच्चाके प्रति स्नेह हे और अपन् कहेंगे के महादुष्ट हे तो भी स्नेह तो प्रकट हो ही रह्यो हे.

हमारे एक परिचित शास्त्रीजी हते वो ऐसे कहते के "मेरा बच्चा, बहोत बड़ा गुंडा हे. पच्चीसों आदमीयोंके रूपया खा जाता हे" ये बात कहते भये उनकु अपने बेटापे प्यार आतो हतो. तो ये बात समझवेकी हे के यदि अपन् निंदा भी कर रहे हें तो वामें गौरव छुप्यो भयो दीखतो होवे हे. कभी उनके मुँहसु ये बात ऐसे नहीं निकलती के कोई शर्मकी बात होय. वो ऐसे ही निकलती के कोई गौरवकी बात होय! हमारे एक और परिचित हते. उनको बेटा हमारे घर खेलवे आतो. एक दिन वो सबकु बता रह्यो हतो के हमारे पापाकु जब पैसाकी जरूरत होय तो झट जुआ खेलके पैसा ले आवे. अब वो बच्चा प्रशंसा कर रह्यो हतो के निंदाके रूपमें केह रह्यो हतो? क्योंके वाने पिताकी निंदा करनी तो जानी ही नहीं हती. स्नेहके भावमें गाली दी तब भी मजा आयगी. और द्वेषके भावमें प्रशंसा भी शूलकी तरह चुभेगी. हमारे बचपनमें एक परिचित हते. उनकु सब बच्चा घेरा बांधके बीचमें कर लेते और केहते "अरे मुकुन्दजी आप तो प्रखर हो." वो केहते "अरे नहीं हम क्या प्रखर हे" 'प्रखर'को एक अर्थ गधा भी होवे हे . 'प्र-खर' मानें विशेष गधा. हमारी और उनकी चलती रहती. समझो के निंदा और स्तुति बेमायना हो जाय हे. गये सालकी ही एक बात बताऊँ. कोईके यहाँ मैं गयो हतो. उनके बहनोई आये हते. उनने कही के "हमें जयपुरसु पुष्करजी जानो हे, आपकु तकलीफ तो होगी पर आपकी गाड़ी चहिये." उनने कहीं के "हाँ तकलीफ तो बहोत होगी हमकु गाड़ी देवेमें. पर आपके लिए तकलीफ लेवेमें हमकु बहोत मजा आयेगी." अब देखो ये स्नेहकी बात भयी. गाड़ी हमारे पास नहीं होयगी तो तकलीफ तो होयगी. पर वा तकलीफमें बहोत सुख मिलेगो और वो तकलीफ नहीं ली तो दुःख होयगो. स्नेहको भाव ऐसो हे के वामें तकलीफ लेवेमें मजा आवे. सुख लेवेमें कभी दुःख होवे हे. और दुःख झेलवेमें कभी सुख होवे. ये अनिर्वचनीय भाव हे. इन भावनूकु शब्दनूमें बान्ध्यो नहीं जा सके हे के तकलीफ

हो रही हे तो वामें कैसे आनंद मिल रह्यो हे! अरे स्नेहमें तकलीफकी ही तो मजा आ रही हे और स्नेह नहीं हे तो सारी सुविधा होवेके बावजूद दुःख ही होयगो. जैसे गुरुजीके उदाहरणमें मैंने आपकु बतायो. सारी सुविधा उनने भोगी पर उनकु दुःख ही भयो, सुख नहीं भयो. ये भाव अनिर्वचनीय हे. अपने हृदयमें अनुभूत होवे तोही होवे और नहीं होवे तो नहीं ही होवे.

याके लिए महाप्रभुजीने आज्ञा करी के "**ताको भाव अनिर्वचनीय हे.**" अनिर्वचनीय ऐसो नहीं हे के बोल्यो नहीं जा सके. बोल्यो तो जा सके पर वाकु अपनी कूपमंडूकतासु ही अपन् बोल पायेंगे. जाके हृदयमें वा समर्पणकी स्नेहकी अनुभूति हे, वैसी अनुभूति यदि हो गयी तो तुरतमें बात समझमें आ जायगी. और नहीं अनुभूति भयी तो समझमें नहीं आ सकेगी. सूरदासजीने जन्माष्टमीकी बधाईमें एक बहोत सुन्दर बात कही हे के "**देव मुनि सब देखन आये.**" देखो याकु तो कितनी बड़ी विडंबना सी लगे. जब ठाकुरजीको जन्म भयो, वाको जो आनंद भयो, वाको जन्मोत्सव मनायो जा रह्यो हतो, जहाँ देव मुनि सब वा उत्सवकु देखवे आये हें, वाकु देखवेकु मेरे जैसे अंधेकु भिजवायो गयो हे. अब यह निंदा हे के प्रशंसा हे के स्तुति हे? कुछ समझ नहीं आवे. "**देखनकों वहाँ सूर हकारे.**" उनकु क्या मजा आ रह्यो हे और क्या तकलीफ हो रही हे सूर होवेकी और सूर होते भये भी वा लीलाके दर्शनको क्या आनंद आ रह्यो हे! वो भाव अपन् अपने ढंगसु, जब-तक वैसी दिव्यदृष्टि नहीं होय तब-तक वा बातको मजा अपन् पूरो-पूरो ले नहीं सकेंगे. वो होय तो अपन् ले सकेंगे. ये बात खास समझवेकी हे. "**ताको भाव अनिवर्चनीय हे.**" ये भावकी अनिर्वचनीयता हे.

("... भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे" - भगवान्को सानुभाव)

"और सबनतें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे तातें 'भक्तवत्सल'

कहावत हें'' भक्तको स्नेहमय प्रभाव. **''गोरस शब्देन वाणी कहियत हें.''** स्नेहको एक सामान्य नियम ये हे के स्नेह मुखरित होनो चाहे हे. और जा बखत जो अपनो प्रिय हे वाके तरफ अपन् मुखरित होवें, तो वो मुखरित होवेकी प्रक्रिया भी स्नेहकु बढ़ावेकी प्रक्रिया हे. वाणीको और स्नेहको संबंध या तरहसु आदान-प्रदानको हे. पर साथमें एक ये भी हकीकत हे के कोई बखत स्नेह अंतर्मुख भी हो जाय हे. वो मुखरित नहीं हो पावे वा बखत वाकु निस्नेह समझ लेनो भी एक गलती हे. क्योंके कुछ स्नेह मुखरित हो पावे और कुछ स्नेह मुखरित नहीं हो पावे. अक्सर अपन् जब ठाकुरजीकी सेवा करें तब सेवामें अपनकु सानुभाव कुछ भी होतो होय. जो सानुभाव हो रह्यो हे वो ठाकुरजीकी अपनी ओर मुखरितता हे. मानें ठाकुरजी मुखरित हे. जैसे अपन् ठाकुरजीकु स्नेह जता रहे हें ऐसे ठाकुरजी जब सानुभाव जतावें तो अपनकु सेवामें उत्साह अधिक बढ़े हे. चालू खाताकी भाषामें लोग वाकु कई बखत चमत्कार भी कहे हें. ठाकुरजीने हमकु ये चमत्कार दिखा दियो. चमत्कारसु अक्सर बेवकूफ लोग चमकें. चमत्कारसु चमकवेकी जरूरत नहीं हे. अपने यहाँ या ही लिए बहोत अच्छो शब्द हे, सानुभाव. चमत्कार शब्द नहीं हे. ये देखो अपनो स्नेह ठाकुरजीके प्रतिको हे के जाकु अपन् स्नेह कर रहे हें, वो कुछ कर रह्यो हे तो वासु चमकें क्यों? चमत्कारसु तो चमके हें. जैसे बैलके सामने कोई लाल कपड़ा दिखाओ तो बैल चमके. अपनकु क्यों ठाकुरजीसु चमकनो?

'सानुभाव' मतलब अपनकु अनुभव हो रह्यो हे के ठाकुरजी अपनी सेवा स्वीकार रहे हें. ऐसो भाव ठाकुरजीके मुखारविंदपे, ठाकुरजीकी सेवा ग्रहण करवेकी प्रक्रियामें कोई बखत प्रकट होवे. वार्तामें आप देखोगे तो अक्सर ऐसो मिलेगो के **''कछु काल पाछें ठाकुरजी सानुभावता जतावन लागे.''** जैसे अपन् ठाकुरजीके सामने कीर्तन कर रहे हें **''गोरस शब्देन वाणी कहियत हे''** ऐसे ये अपनो गोरस

हे और ठाकुरजीको सानुभाव जतानो उनको गोरस हे. अपनी वाणी जा तरहसु वो प्रकट कर सकतो होय, वा तरहकी वाणी ठाकुरजी प्रकट कर रहे हें. वो कैसी वाणी हे? कभी अपनने ठाकुरजीके शृंगार धराये और ठाकुरजीको मुखारविंद बहोत प्रसन्न नज़र आयो, कभी बड़ो रूआबदार नज़र आयो, कभी बड़ो श्रमित नज़र आयो तो सानुभावकी प्रक्रिया शुरु हो गयी. मुखारविंदपे भावकी विविधताके दर्शन हो रहे हे तो सानुभाव हो गये. सानुभावताको अर्थ ये नहीं हे के ठाकुरजी बोलें ही. जहाँसु एक्सप्रेशन् शुरु भये वहाँसु भी सानुभाव शुरु हो सके. अपने बच्चा जब जन्मे तो हर माँ-बाप या कोई भी, बच्चाके गालकु छूअे, कुछ अगड़म-बगड़म बातें शुरु करें, और बच्चा वापे हंस दियो या कुछ रिस्पॉन्स् दियो, तो बच्चा अपनकु सानुभाव जता रह्यो हे. और समझो के बच्चाकु कितनो भी हसाओ तो हसे नहीं, कितनो भी रुलाओ तो रोवे नहीं, कितनो भी खिलाओ तो कुछ करे नहीं, तो बच्चाकु डॉक्टरके पास ले जानो पड़े हे. क्यों रिस्पॉन्स् नहीं दे रह्यो हे, क्या लफड़ा हे? याकु सुनायी नहीं दे हे, दिखायी नहीं दे हे, क्या बात हे? ऐसे ही अपन् सेवा कर रहे हें और ठाकुरजीके मुखारविंदपे भाव अपनकु नहीं दिखायी दे रहे हे तो अपनो डॉक्टर् महाप्रभुजी हे. वाकु कन्सल्ट् करनो चहिये के चक्कर क्या हे यामें ये खुलासा करो. पर या बातमें उतावल नहीं चल सके हे. धीरज तो रखनी पड़ेगी. जनमते ही बच्चासु अपन् ये अपेक्षा रखें के सानुभाव जतावे तो कोई बच्चा दस दिन लेवे हे. कोई बच्चा महीना लेवे हे कोई तीन तो कोई छ महीना लेवे हे. ये तो बच्चा और माँ-बाप जो वाको लालन-पालन कर रहे हें, उनको ये आपसी विषय हे. ऐसे अपन् ठाकुरजीको सानुभाव जतानो और अपनो ठाकुरजीकु भक्तिभाव जतानो, वो आपसी विषय हे. अनिवर्चनीय विषय हे. इशारा वाको कियो जा सकेगो पर वाको निर्वचन संभव नहीं हे. जो कर रहे हें उनकु तो अनुभव होयगो.

बच्चा माँकु कैसे रिस्पॉन्स् देनो पहचाननो शुरु करे हे! जब बच्चा पैदा होवे, तब माँकी/मातृत्वकी पहली आवश्यकता हे के मैं बच्चाकु दूध पिला रही हूँ. बच्चा माँकु पहचानवे लग्यो के नहीं? यदि बच्चा माँकु पहचानवे लगे तो समझ लो के माँकु वाने सानुभाव जतानो शुरु कर दियो. माँकु देखके चुप हो जाय. माँ नहीं दिखती होवे तो रोवे लग जाय. माँकी गोद मिल जाय तो चुप हो जाय, दूसरेकी गोदमें रोवे. ये सारी प्रक्रियाएं धीरे-धीरे माँकु पहचानवेकी शुरुआत हे. वाकु अपनी सुविधा वहाँ लग रही हे. अपनो सुख वाकु वहाँ लग रह्यो हे. ये वाके पहचानवेकी प्रक्रिया हे. ये पहचान फिर धीरे-धीरे बढ़े हे. मांसु वो बापमें, भाईमें, दादामें, दादीमें आयगी. या तरहसु वाकी पहचानको जो वर्तुल हे, वो धीरे-धीरे बढ़तो चल्यो जायगो. जैसे-जैसे वर्तुल बढ़तो जायगो ऐसे-ऐसे वो सबकु पहचाननो शुरु करेगो.

याही तरहसु जो जीव सेवा कर रह्यो हे वाको ठाकुर वाके परिवारकु, वाके घरकु पहचाने हे और धीरे-धीरे वासु संबंधित हर बातकु पहचानवे लग जाय हे. ये ठाकुरके सानुभाव जतावेकी प्रक्रिया हे. अगर अपनो ठाकुर सानुभाव जता रह्यो हे तो अपन् समझ जाय के पहचान अपनी शुरु भयी. याके लेवल् कई तरहके हो सके हे. एक आदमी जो सेवा कर रह्यो हे वाकु शृंगार धरानो फातो होय और दूसरो आदमी वहाँ आवे और मूढ़ होके बैठ जाय के अब कैसे शृंगार धराने! आवे ही नहीं शृंगार धराने. मतलब के पहचान नहीं हो पा रही हे. जैसे पड़ोसीके बच्चाकु कैसे खिलानो, अपनकु नहीं पता चले. कोई बच्चाकु कैसे खिलानो, कैसे हंसानो, कैसे वाकु प्रसन्न करनो, ये अपनकु पता चल जाय तो अपनी और बच्चाकी पहचान बढ़ी, ऐसे केहवावे. वो अपनकु अंकल्, चाचा, चाची या आंटी केहवे लग जाय. ये सब क्या हे? ये पहचान बढ़वेकी प्रक्रिया हे. ठाकुर जा जीवके माथे बिराज रह्यो हे, वा

जीवसु संबंधित जो-जो व्यक्ति हे, उनकु पहचाननो शुरु करे तो वो ठाकुरजीके सानुभावकी प्रक्रिया हे और वो प्रक्रिया बड़ी धीमी प्रक्रिया हे, पर सेवामें वो प्रक्रिया शुरु हो सके हे. नहीं शुरु हो सके ऐसी बात नहीं हे. और वा प्रक्रियाकु महाप्रभुजी केह रहे हें के **"और सबनतें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे."**

ठाकुरजीकी तो एक बहोत बड़ी दिव्य कथा हे पर घरमें अपनने कुत्ता बिल्ली या पोपट पाल्यो होय वो भी धीरे-धीरे घरमें आवेवाले परिवारके लोगनकु पहचाननो शुरु करे हे. जो पालते होयंगे उनकु या बातकी हकीकत पता होयगी के जानवर भी धीरे-धीरे घरके सब लोगनकु पहचाननो शुरु कर दे हे. जो वाकु दाना दे हे वाकु सबसु पहले पहचाने. जैसे बच्चा माँकु सबसु पहले पहचाने हे. माँ जिनके साथ उठ-बैठ रही हे, उनकु बच्चा पहचाननो शुरु करे, ऐसे जानवर भी जो वाकु दाना दे रह्यो हे, जाके साथ वो उठ-बैठ रह्यो हे, वाकु वो भी पहचाननो शुरु कर दे हे. वो पहचाननो शुरु करे वो सानुभावकी पहली प्रक्रिया हे. ऐसे ही जब ठाकुरजी उनसु या परिवारवालेसु सेवा ले रहे हें, वो ठाकुरके सानुभाव जतावेकी पहली प्रक्रिया हे. याकु महाप्रभुजी केह रहे हें के **"सबनतें भक्तको स्नेहमय प्रभाव"** जैसे माँको प्रभाव. माँके प्रभावको अर्थ क्या? जैसे माँसु जुड़े भये हर व्यक्तिकु बच्चा पहचाननो शुरु करे तो वो बच्चापे माँको प्रभाव पड़नो शुरु भयो. और वा प्रभावको वा बच्चाने सानुभाव जतायो. सिर्फ माँके व्यक्तित्वसु ही नहीं पर माँके व्यवहारकु भी पहचाने हे, माँके गुणसु भी माँकु पहचाने हे. जैसे बच्चाकु पता चले हे के वो पड़ोसन आयगी तो माँ नाराज होयगी. इतनी बात बच्चाकु पता चले, तो वा बच्चापे माँको पड़्यो भयो प्रभाव हे. और याको अनुभाव जब बच्चा जतावे लग जाय, तो बच्चा सानुभाव जता रह्यो हे. बच्चाकु यासु ज्यादा समझ नहीं पड़ेगी के या पड़ौसनपे माँ क्यों नाराज हे और या पड़ोसनपे माँ क्यों खुश हे? पर इतनो

वो समझे हे के ये पड़ोसन आयी तो मेरी माँ बहोत चिहुक-चिहुकके बातें करवे लग गयी और वो पड़ोसन आयी तो मेरी माँ मुँह चढ़ाके बैठ गयी, गुस्सा हो गयी. इतनी छोटी-छोटी बातनूकु वो बच्चा ग्रहण करे हे. इन बातनूकु ग्रहण करके वो बच्चा धीरे-धीरे अपनो सानुभाव प्रकट करनो शुरु करे हे. बच्चा जब सानुभाव प्रकट करनो शुरु कर रह्यो हे तो अपनी ममतासु जुड़ी भयी जो व्यक्ति हे, अपने घरसु जुड़े भये जो लोग हें, अपनी अहंतासु जुड़ी भयी जो व्यक्ति हे उनकु अपनो ठाकुर वैसे-वैसे स्वीकार करनो शुरु करे हे. ठाकुरजी जो स्वीकारे हे वो ठाकुरजीको सानुभाव हे. या सानुभावकु महाप्रभुजी यहाँ केह रहे हें के **''और सबनतें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे.''** भक्तको ऐसो प्रभाव भगवानूपे पड़नो चहिये के भगवान् वाकु सानुभाव जतानो शुरु करे.

(''तातें 'भक्तवत्सल' कहावत हे.'' - भक्तको प्रभाव)

''तातें 'भक्तवत्सल' कहावत हे.'' तो महाप्रभुजी ठाकुरजीकु 'भक्तवत्सल' केह रहे हें. भक्तवत्सल क्यों? क्योंके जो भक्तकु प्रिय हे वो ठाकुरजीकु प्रिय हो जाय हे. जो भक्तकु अप्रिय हे वो ठाकुरजीकु भी अप्रिय लगनो शुरु हो जाय. जैसे ये व्यक्ति आयो तो बच्चा समझे के माँ-बाप नाराज हो जायेंगे तो उनसु वो भी घबरातो रहे हे, डरतो रहे हे. प्रभाव तो ग्रहण करे ही हे बच्चा के याके आवेसु मां-बाप अप्रसन्न हो रहे हें. तो कुछ प्रभाव बच्चा ग्रहण करे हे. बस इतनो सो प्रभाव यदि बच्चा ग्रहण करे वाकी पितृवत्सलता, मातृवत्सलता प्रकट भयी. मतलब वो अपने सुख-दुःखकु ही वो सुख-दुःख नहीं मान रह्यो हे पर अपने माँ-बापके सुख-दुःखकु भी अपनो सुख-दुःख मान रह्यो हे. ये वाकी वत्सलताकी शुरुआत हे. जैसे बच्चाको जामें मन लगे और माँ-बापको भी वामें मन लगनो शुरु होवे, तो माँ-बापकी वो संततिवात्सल्य हे और बच्चा जा चीजपे प्रसन्न हो रह्यो हे और वाही चीजपे अपनूकु रागद्वेष

हे तो अपनूकु संततिवात्सल्य नहीं हे.

ऐसे ही ठाकुरजीकु जो वस्तु सुखद हे, वो अपनूकु सुखद लगवे लगे. और अपनूकु जो सुखद हे वो ठाकुरजीकु सुखद लगवे लगे तो वो भक्तको प्रभाव ठाकुरजीने ग्रहण कियो. जब ऐसो सानुभाव ठाकुरजी प्रकट करें तो ऐसो संबंध ठाकुरजीकु अतिप्रिय हे. **''याको भाव अनिर्वचनीय हे.''** अनुभव करोगे तो हर घरमें ये कथा हे. हर घरमें या अनुभूतिकु पायो जा सके हे. शब्दनूमें याकु इदम् इत्थंतया अपन् नहीं केह सके हें. छोटे-छोटे उदाहरणनूसु ही बात समझायी जा सके हे. यहाँ आजको प्रकरण रखेंगे.

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : ....

उत्तर : ब्रह्मसंबंधकी आज्ञा ठाकुरजीने महाप्रभुजीकु दी. महाप्रभुजीके कारण ठाकुरजी अपनेकु पहचानके अपने घरमें बिराजें, याकु अपनेकु सानुभाव तरीके स्वीकारते आनो चहिये. अक्सर क्या होय के अपन् याकु सानुभाव तरीके नहीं स्वीकारें और समझें के अच्छा हमने सेवाको संकल्प कियो हे, या लिए हमने ठाकुरजी पधराये. याकु अपनूने अहंकार तरीके स्वीकार्यो. भक्तिके सानुभावके रूपमें नहीं स्वीकार्यो. अपन् याकु या प्रकारसु स्वीकारें के ठाकुरजीने महाप्रभुजीकु वचन दियो हतो और वा महाप्रभुकी दीक्षासु अपन् दीक्षित भयें, यासु ये ठाकुर अपने घर पधार्यो. तो ठाकुरने महाप्रभुजीके संबंधसु अपनो मान्यो हे. अपनो ठाकुर या प्रकारसु अपनेकु सानुभाव जता रहे हें और अपने घर बिराज रहे हें. ये सबसु पहलो सानुभाव हे के ठाकुर अपने माथे अपने घर बिराज रह्यो हें. बाकीके सब सानुभाव ऊपरकी कथा हे. या भावकु सानुभावके रूपमें अपन् लेनो शुरु करें तब तो सानुभाव प्रकट होयगो.

और याहीकु या प्रकारसु के अपन् पुष्टिमार्गीय हें, हमने ब्रह्मसंबंध

लियो और ठाकुरजीकु अपन् घरमें पधरा रहे हें, तो अपन्ने ये अहंकारभावसु लियो न! सानुभावसु कहाँ लियो? प्रभुके सानुभावके प्रकारसु याकु लेनो शुरु करो. तब देखो सेवाको रूप कैसो मधुर होतो चल्यो जायगो. ये सारी अनिर्वचनीय कथा हे. **''गोरस शब्देन वाणी कहियत हें. ताको भाव अनिर्वचनीय हे.''**

प्रश्न: लीलाभाव और सानुभाव के भेद कैसे समझमें आवे?

उत्तर: ऐसो हे के बहोतसे पद लीलाभावके हें और बहोतसे पद सानुभावके हें. और वार्ताएं अपन् पढ़ेंगे तो वार्ता खुद या बातको खुलासा करे हे के कौनसे भगवदीयने कौनसो पद सानुभावताके भावसु लिख्यो हे और कौनसो पद कौनसे भगवदीयने लीलाभावसु लिख्यो हे. दोनों प्रकारके पद मिले हें.

प्रश्न: ....

उत्तर: ऐसो हे के पहले और दूसरे दिनके प्रवचनमें मैंने ये बात बतायी हती के पुष्टिभक्तिकी साधना एक पेकेज् हे. वा पेकेज्में ब्रह्मके साथ संबंध हे, परमात्माके साथ स्नेह हे, भगवान्के साथ नवधाभक्तिको संबंध हे, कृष्णकी कथा हे और घरके ठाकुरकी सेवा हे. ये पेकेज् हे. कृष्णकी कथाकी मस्तीमें गाये भये भी पद हे. वहाँ सानुभाव जरूरी नहीं हे. और घरके ठाकुरकी सेवामें गाये भये जो पद हें, वहाँ सानुभाव भी हे. या ठाकुरकी सेवामें गाये भये जो पद हें, वहाँ सानुभाव भी हे. या ॲन्गल्सु अपन् जब वार्ताएं पढ़ें तो ये साफ हो जाय के भगवदीयने सानुभावसु गायो हे के लीलाभावसु गायो हे. क्योंके पॅकेज् ही या ढंगको हे. वामें बात गड्डमड्ड हो जाय हे. पर छाँटके वाकु देखेंगे तो सारी बात समझमें आवे. क्योंके कथा तो कृष्णकथा हे और कृष्णसेवा जब होयगी तब होयगी सबसु पहले तो अपने घरके ठाकुरकी सेवा हे. वापे कृष्णकथा लिखी हे. वापे नवधाभक्तिकी बातें लिखी भयी हें, जासु

वाके भगवान् होवेको पेहलु अपन् याद रखें.

वो नवधाभक्ति सकाम नहीं हे, निष्काम हे. निरूपाधिक स्नेहवाली हे जासु यामें पारमात्मिक स्नेह भी लिख्यो हे. और वो स्नेह असंबद्ध परमात्मासु नहीं हे, ब्रह्मसु संबंद्ध परमात्मासु हे. ये पॅकेज् या ढंगसु बनायो गयो हे के वामें वोही बात आ रही हे.

जैसे पेटीकु उठावेके लिये अलग-अलग हॅन्डल् होवे हे पर पेटीकु कौनसे हॅन्डल्सु उठानो जासु अपने हाथकु भी झटका नहीं लगे और पेटी भी उठ सके. एक अपन् फूहड़पनेसु ऐसे भी उठाके रख सकें. एक वाकु हेंडलसु भी उठा सकें. कैसे उठानो वो वजन उठावेकी टॅक्निकूपे निर्भर हे. जैसे या बॅग्में एक हॅन्डल् उठावेके लिये यहाँ दियो हे और दूसरो हॅन्डल् अलग दियो हे घसीटवेके लिए. और याकु कुलीकी तरह उठानो हे तो हॅन्डल्की जरूरत ही नहीं हे. उठाओ और माथेपे रखो. बॅग् तो वो ही हे, पर वाकी व्यवस्था सब अलग-अलग हें.

प्रश्न: ...

उत्तर: माखनकी कटोरी बहोत लोग धर पाते होयेगें और बहोत लोग नहीं भी धर पाते होयेंगे. कोई लोग केवल एक मिश्रीको टुकड़ा ही भोग धर रहे हें, कोई दूधकी कटोरी ही भोग धर रहे हें. पर अपन् गा रहे हें के माखन-मिश्रीको भोग लगायो. तो ये कथा हो गयी न! ये उत्सवके पदन्में आवे हे के **''कर मोदक माखन मिश्रीले कुंवरके संग डोलत नंदरानी, मिस कर पकरि न्हवायो चाहत बोलत मधुर बानि''**

अब अपने ठाकुरजी ऐसो सानुभाव जतावें तब जतावें पर कृष्णकथा तो गावेकी अपनेकु सामर्थ्य हे न! आज ठाकुरजीकु अभ्यंग करानो

हे तो **''कर मोदक माखन मिश्री ले कुंवरके संग डोलत नंदरानी, मिस कर पकरि न्हवायो चाहत''** मतलब माखनसु ललचाके कोई तरहसु ठाकुरजीकु न्हवानो हे. वे न्हावे आ ही नहीं रहे हें. जब नहीं आ रहे हें तो **''मिस कर पकरि न्हवायो चाहत, बोलत मधुर बानि''** ये कितनी गजबकी बात कही के **''राजकुंवर अधन्हातो भाज्यो ताकी कहूं कहानी, बेनी न बाढ़ी रही तनकसी दुल्हिन देख हसानी''** यहां ठाकुरजीकु ब्लॅकमेल् कियो हे. (ठाकुरजीकु डरानो, धमकानो, ब्लॅकमेल् करनो या तरहसु.) ठाकुरजीकु अभ्यंग कराते बखतकी कथा कृष्णकथा हे. कैसो गजबको पॅकेज् हे के न्हवा हम रहे हे और कथा भागम्-भागकी चल रही हे. पॅकेज्के कारण ही वो लाभ अपनेकु मिल रह्यो हे. समझो महाप्रभुजीने यामें कृष्णकथा नहीं गूंथी होती तो? और मैंने तो यहाँ-तक मंदिरनूमें देख्यो हे के ठाकुरजीकु अभ्यंग उल्टे करके करावें. कोई बच्चाकु ऐसे न्हवाओ? दूसरे दिन बच्चा न्हावे ही नहीं आयगो. मंदिरनूमें वो पॅकेज्मेंसु कृष्णकथा गायब हो गयी हे और ठाकुरकी सेवा चालू हे. यासु ही ये सब हो जाय हे के जो यों (सीधी मुद्रामें) बिराज्यो भयो ठाकुर हे वाकु उल्टो पकड़नो पड़े. सवाल तो ये हे के जैसे ठाकुरजीके मुखारबिंदके अभ्यंग कराने हे ऐसे पेटके भी तो कराने हे. तो ठाकुरजीकु उल्टो पकड़के अभ्यंग करावें? सुरेश बावाने एक बात मोकु बतायी के दिल्लीमें उनको एक मंदिर हे जहाँ बरसन् ठाकुरजीके अभ्यंग नहीं भये तो ठाकुरजी सांवरे हो गये. नये मुखियाने दो-चार बार अभ्यंग कराये तो भी ठाकुरजी गोरे नहीं हुये तो वाने उनकु चक्कूसु छील दिये. ट्रस्टी और दर्शनार्थी दोनों प्रसन्न हो गये के नये मुखियाजी कितने अच्छे आये हे के ठाकुरजी एकदम गोरे हो गये! ये बात सुरेश बावाने मोकु बतायी. दर्शनार्थी ऐसी-ऐसी क्रूरता ठाकुरजीपे करें. सेवा नहीं करनी होय और दर्शन ही करने होय तो ऐसे सब लफड़ा होवे हें. उनकु ठाकुरसु कछु लेनो-देनो नहीं हे उनकु बस ये हे के जब हम दर्शन करवे जाय तो ठाकुरजी बस चमकतो दिखनो

चहिये. अरे वो चमकेगो कैसे, ये तुमने सोच्यो? मैं तो यों कहूँ के यासु अच्छे तो पहले मुखियाजी हते, जिनने अभ्यंग नहीं कराये. कोई बात नहीं हती यदि ठाकुरजी सांवरे हो गये हते. ठाकुरजी तो वैसे भी सांवरे ही हतें. वामें नुकसान क्या हतो? अब या तरह चक्कूसु छीलके वाकु गोरो करनो, ये कोई कृष्णकथा हे? कृष्णकथा वहाँ नदारत हे. केवल दर्शनकथा हे के आ हा हा! दर्शनमें बड़ो आनंद आ रह्यो हे, ठाकुरजी कैसे चमक रहे हें! आहाऽऽऽ...

पुष्टिमार्गमें दर्शनार्थी भगत सब ऐसे सत्यानाशी हे. जैसे दीमक लग जाय मकानकु ऐसी दीमक दर्शनार्थी वैष्णव होवें. हर व्यक्ति अपने घरमें सेवा करतो तो ऐसो नहीं होतो. घरमें सेवा करवेवालो वैष्णव ऐसे सपना भी नहीं देख सके हे. ये बात केवल दर्शनार्थी कर सके हे के हम आये तो ठाकुर चमकतो होनो चहिये, सब सफाई होनी, सजावट अच्छी नजर आनी चहिये. या अच्छी सजावटके चक्करमें क्या होवे के मंदिरनूमें भातके नीचे खाली उल्टो टोकरा रख दे. देखवेवालेकु लगे के **''ओ हो! भयो भातको कोट ओह गिरिराज छुपायो''** देखके प्रसन्न हो जाय. अरे वामें भीतर तो पोल हे. ठाकुरजी क्या खाली टोकरी आरोगेगो! ऐसे-ऐसे उपद्रव चले. दर्शनार्थीनूकु वापे ही मजा आवे. जैसे कुश्ती देखवेमें मजा आवे के वो मारा, वो पटका. जब-तक दर्शनार्थी ठाकुरजीकु पटक नहीं दे, तब-तक उनकु मजा नहीं आवे हे.

प्रश्न : ....

उत्तर : यामें देखो ब्रह्मसु लेके भगवान् तककी जो बात हती वो माहात्म्यज्ञानकी बात हती. ब्रह्ममें स्वरूपमाहात्म्य, परमात्मामें आत्मरतिरूप स्नेह, भगवानूमें ज्ञानादि छ दिव्यगुणनूको माहात्म्य और कृष्णमें सर्वोद्धारक स्नेह. या तरीकेके माहात्म्य और स्नेह के मिश्रणसु जो शुरु हो रही हे वो पुष्टिसेवा हे. ब्रह्मको जो भाव हे वो माहात्म्यको भाव

हे, परमात्माको भाव स्नेहको हे. वाके बाद भगवान्में फिर वो ही दिव्यगुणन्को माहात्म्य आ रह्यो हे और कृष्णकथामेंसु अपने यहाँ वो माहात्म्यको अंश गायब कियो हे. आज-कल दर्शनार्थीन्कु खुश करवेके लिए करवे लग गये हें. अभी अधिकमासमें एक मनोरथ भयो. वामें एक पूतना बनायी. और बिजलीसु पूतनाके होठपे लिख्यो मर गयी, मर गयी. सब दर्शनार्थी प्रसन्न हो गये के क्या दरसन भये! अरे पूतना मारवेकी जैसी दुर्भावना करो ही क्यों हो? वो आयी हती वाकु तो ठाकुरजीने मार दियो. अब फिरसु क्यों ला रहे हो! माहात्म्यको अंश ले लियो हे सेवामें दर्शनार्थीके लिये. ये कथा अलग हे. अपन्ने सारे स्नेहके अंश ही सेवामें लिये हे. वो अंश जामें पूतनाकु अघासुरकु बकासुरकु मार्यो, नहीं लियो हे. पर लगे के अब जैसो दौर चल्यो हे, ऐसे मनोरथ भी अब होवे लगेंगे. याही मंदिरमें एक मनोरथ ऐसो भी भयो जापे अक्रूरजी आके ठाकुरजीकु मथुरा पधराके ले जा रहे हे. अरे यार! रोओ तुम. तुम्हारे भाग्य फूटे जो तुम ये मनोरथ कर रहे हो. अक्रूरजी मथुरा पधराके ले गये तो गोपीन्ने कितनो करूण क्रंदन कियो हे! अब तुम याको मनोरथ कर रहे हो क्योंके अधिक मास हे तो एक अधिक मनोरथ करनो हे. अरे! पुष्टिमार्गीयिके दिलमें ये मनोरथ जगे के ठाकुरजी ब्रज छोड़के मथुरा पधार रहे हें मानें धिक्कार हे न! क्योंके प्रदर्शन करनो हे तो ये सारे मनोरथ करने पड़ेंगे.

ये पॅकेज् ऐसे बॅलेन्स् कियो हे के जब माहात्म्यज्ञान आवे तो अपने स्नेहको काऊंटर् बॅलेन्स् आ जाय. परमात्माको स्नेह जब माहात्म्यज्ञानकु कम करे तो भगवान् आ जाय, ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य के साथ नवधाभक्तिके साथ. फिर माहात्म्यज्ञानकी अधिकता होवे तो स्नेहके साथ कृष्ण आ जाय. जब कृष्ण आ जाय तो फिर सेवा शुरु हो जाय **"कृष्णसेवा सदा कार्या"** तो ये पॅकेज् हे या प्रकारको.

(धुआँको कारण अहंता-ममता और समर्पणको विवेक)

कल अपन्ने **"गोरस शब्देन वाणी कहियत हें. ताको भाव अनिर्वचनीय हे. तातें भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हे. तातें 'भक्तवत्सल' कहावत हें."** या वचनामृतकु अपन्ने देख्यो. याके बाद **"तब कृष्णदासजीने फेरि पूछ्यो जो ठाकुरजीकों अप्रिय वस्तु कहा हे. तब श्रीआचार्यजीने कह्यो के ठाकुरजीकु धुआँ समान अप्रिय और कछु नाहीं हे. ताहू तें अप्रिय श्रीठाकुरजीकु भक्तको द्वेषी हे."** या वचनामृतको अपन्कु आज अवगाहन करनो हे.

श्रीहरिरायजी भावप्रकाशमें आज्ञा कर रहे हें के जैसे 'गोरस' शब्दकु वाणी कह्यो हे ऐसे ही 'क्लेश'कु महाप्रभुजी धुआँ केह रहे हें. ये बात अपन्कु महाप्रभुजीके सिद्धांतके तहत खास समझनी चहिये के अपने ठाकुरजी जहाँ बिराज रहे हें वहाँ कालिमा आवे, तो वो धुआँ अपनेकु पैदा नहीं होवे देनो चहिये.

महाप्रभुजीने सर्वनिर्णयमें एक आज्ञा याही लिए करी हे के समर्पण अपन्कु करनो हे और समर्पण अपन् अपनी अहंता-ममताको कर रहे हें. सामान्य बोल-चालमें अपन् यों भी कहे हें के सर्वस्व समर्पण कर रहे हें. जब सर्वस्व समर्पण कर रहे हें तो सुख भी समर्पण कर रहे हें और याके साथ अपन् दुःख भी समर्पण तो कर ही रहे हें. क्योंके अहंता-ममतासु जैसे अपने सुख जुड़े भये हे, ऐसे अपने दुःख भी तो जुड़े भये हे. अपनी अहंता-ममतासु जैसे अपने स्नेही जुड़े भये हे ऐसे वासु अपने द्वेषी भी तो जुड़े भये हे. अपनी अहंता-ममतासु जैसे प्रिय वस्तु जुड़ी भयी हे वैसे ही अप्रिय वस्तु भी तो जुड़ी भयी हे ही. क्योंके कोई वस्तु दुनियामें अपने आपमें, न तो प्रिय हे और न अप्रिय हे. अप्रिय कहें तो केहनो पड़ेगो के कौनकु अप्रिय हे? ऐसी तो कोई वस्तु दुनियामें हो नहीं सके जो सबकु प्रिय होय. ऐसे ही कोई वस्तु सबकु

अप्रिय भी नहीं हो सके हे. तो जब भी अपन् प्रिय या अप्रिय की बात कहेंगे, तो कौनकु? ये पहलो सवाल सामने आवेगो. जैसे ही हमने या बातको जवाब दियो के कौनकु, तो वा व्यक्तिकी अहंता-ममता याकी चोखट बनेगी के जा चोखटमें वो प्रियता या अप्रियता को चित्र आयेगो. प्रायः ऐसे ही होवे हे के जो अपनकु प्रिय होवे वासु अपनेकु सुख होवे हे और जो अप्रिय होवे हे वासु अपनेकु दुःख होवे हे. ये सारी बातें मूलतः अपनी अहंता-ममतासु जुड़ी भयी हे. और एक बखत जब हमने नक्की कियो के हम अपनी अहंता-ममताकु समर्पित कर रहे हें जैसे कल मैंने आपकु श्लोक बतायो के **"नियतस्वमतिप्रबुद्धिः अथवा किं नु समर्पयामि ते"** वा अहंता-ममतासु जुड़ी हर वस्तु समर्पित होनी ही हे.

मैं एक उदाहरण देके आपकु समझानो चाहूंगो. कहींके महाराज वैष्णवन्में बहोत प्रिय हतें. उन महाराजश्रीके पीछे कोई हतो नहीं. जब वे लीला पधारे, तो वहाँके वैष्णवन्ने कही के उनके ठाकुरजीकु भी शोक करवानो चहिये. तो ठाकुरजीकु श्याम वस्त्र धराये. महाराज लीला पधार गये हें तो ठाकुरजी शोकमें श्याम वस्त्र धरेंगे.

अपने यहाँ तो ऐसे कहे के महाराज नित्यलीला पधारे. वो या लिए कहे के शोक मत करो. मरे नहीं हे, नित्यलीलामें पधारे हे. शोक दूर करवेके लिए नित्यलीलामें पधारे, ऐसे कहे. और अपन् नित्यलीलामें पधारवेको शोक करें! तो ठाकुरजी भी घबरायेंगे के इनकु अपनी नित्यलीलामें बुलानो? नहीं तो पाछें शोक करेंगे वैष्णव. महाराजश्री नित्यलीलामें पधारे तो ठाकुरजीकु श्याम वस्त्र धराये. अब याके बिलकुल विपरीत एक बात बताऊँ. मथुरावाले महाराज ऐसे कहते के या काले रंगकु शोकको रंग क्यों माननो? ये तो मेरे ठाकुरको रंग हे. अपने जन्मदिनपे वो कालो रंग धारण करते. मेरे ठाकुरको रंग सांवरो हे तो या दिन तो मैं सांवरो रंग पहरूंगो. केसरी नहीं डालूंगो.

अब देखो सांवरो रंग शोकको हे के सांवरो रंग भक्तिको हे? जैसे मीरा कहे के "साँवरे रंग रांची" या "सूरदासकी काली कामर चढ़े न दूजो रंग." अब ये शोकको रंग हे के भक्तिको? वैसे वो कृष्णको ही रंग हे वाकु अपन्ने शोक क्यों मान लियो? अब जब सांवरो रंग शोकको मान लियो तो साँवरे रंगके वस्त्र ठाकुरजीकु नहीं धराने चहिये. क्योंके महाराज नित्यलीलामें पधारे तो ठाकुरजीकु शोक क्यों होनो चहिये! अपनकु शोक अपनी ममताके कारण हो रह्यो हे. वा शोककु अपने तक ही सीमित रखनो चहिये, वाकु ठाकुरजीपे क्यों प्रकट करनो? जो ठाकुर परमानंदरूप हे, उनके प्रति वो शोक प्रकट करके फायदा क्या?

कभी गलतीसु क्लेश भी समर्पित हो जाय हे. जैसे कोई आदमी कानो हे, तो दर्शन भी तो वो एक आँखसु ही करेगो. वाके लिए दूसरी आँख थोड़ी ला सके? तो वाकी एक ही आंख समर्पित हो रही हे और वाको कानोपन भी समर्पित होयगो. हमारे धीरूभाई बड़े भुलक्कड़ हे. भुलक्कड़ भी ऐसे के आचमनके पहले बीड़ी आरोगा दे. बीड़ी आरोगावेके बाद आचमन करावे. मोसु पूछी "जै जै कुछ अपराध तो नहीं हो गयो?" मैंने कही "ठाकुरजी तुम्हारे भुलक्कड़पनेको मजा ले रहे हें. यामें डरवेकी क्या बात हे?" एक बार स्कूटर् लेके हमारे खवासकु शाक खरीदवे ले गयो. वो शाक खरीदवे उतर्यो और ये वाकु छोड़के स्कूटर लेके घर आ गये. कोई दुकानपे जाय तो दुकानवालेकी चाबी खुदकी जेबमें रख ले और अपनी चाबी दुकानपे छोड़ आवे. दुकानवालो दुःखी होतो रहे. भुलक्कड़पनो वाको स्वभाव ही हे और वो स्वभाव सेवामें भी लागू हो रह्यो हे. अब प्रभु वाकु स्वीकार लें. प्रभु स्वीकार लें ये कथा एक अलग हे **"गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषदिवर्णना, गंगात्वे न निरूप्या स्यात् तद्वद् अत्रापि चैव हि"** (सि.र.८) पर अपने भुलक्कड़पनेकु जानके सेवामें विनियोग करनो ये समर्पणको भाव

नहीं हे. अपने स्वभावकी जो त्रुटिएं हें, वो सेवामें प्रकट होंयगी. नहीं होयगी ऐसी बात नहीं हे पर उन त्रुटिनकु जानके सेवामें विनियोग करनो ये समर्पणको भाव नहीं हे. क्योंके समर्पणकु जा बखत समझायो गयो हे वाके साथ ये भी बात समझायी गयी हे के स्वामीके भोगके लिए जो उचित वस्तु हे वाको विनियोग करनो. याको नाम 'समर्पण' हे. अपन् जब समझ रहे हें, जान रहे हें के उचित वस्तु नहीं हे, तो नहीं आनी चहिये. और समझो के हो जाय तो स्वामी अपनो इतनो कोई कठोर भी नहीं हे. अब जैसे धीरूभाईसु ऊटपटांग काम होय, तो ठाकुरजी वाकी मजा लेंगे. अपन् भी धीरूभाईके या स्वभावसु परिचित हो जाय तो मजा आवे लगे. वो तो व्यक्ति ही ऐसो हे, कोई भी बात भूल जाय. वाको ये स्वभाव भी कुछ विनियोग हो ही जाय हे. अपन् वासु परिचित होय तो ये आनंद ले सके हें. ठाकुरजी भी वाके स्वभावको आनंद जरूर लेते होयेंगे. पर जानके सेवामें भूल करनी ये समर्पणको भाव नहीं हे. ये अहंकारको भाव हे.

यासु ही महाप्रभुजी समझा रहे हें के अहंता-ममतासु अपने साथ जुड़ी भयी सब चीज प्रभुके साथ जुड़ रही हे. अब जैसे विदुरकी पत्नीने केलाकी छाल खवा दी और ठाकुरजीने स्वादसु आरोग ली. याको सिद्धांत नहीं बने हे के केला खुद खाओ और छिलका ठाकुरजीकु आरोगाने. शबरीने झूठे बेर ठाकुरजीकु आरोगाये, यासु वो सिद्धांत नहीं बने हे के अपन् भी ठाकुरजीकु जो आरोगानो हे वो झूठो करके आरोगायें. क्यों? क्योंके वाकी भक्तिमें भुलक्कड़पनो हतो. वाने या बातपे ध्यान नहीं दियो के वो रामकु क्या आरोगा रही हे! विदुरकी पत्नीकी भक्तिकी मस्तीको ये भुलक्कड़पन हतो के वो ठाकुरजीकु क्या आरोगा रही हे या बातपे ध्यान नहीं गयो. या बातकु तो प्रभु भी अंगीकार करें पर जानके अपन् सेवामें गड़बड़ाध्याय जोड़ें तब वो समर्पणको भाव नहीं रेहके कोई तरहको उपेक्षा या

अरुचि को भाव प्रकट करे हे. सेव्यसुखको भाव प्रकट नहीं करे हे. क्योंके ठाकुरजीने महाप्रभुजीकु वादा कियो हे के "**ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिः**" (सि.र) यासु अपन् सारे ऊधम सेवामें करें, ये बात सिद्धांत नहीं हो सके हे.

(समर्पणको भाव)

समर्पणको भाव बड़ो नाजुक हे. और नाजुक भाव होवेके कारण, यद्यपि अपनी अहंता-ममतासु अपने क्लेश जुड़े भये हे पर अपनकु देखनो ये हे के अपने क्लेशकु अपन् ग्राह्य मान रहे हें के त्याज्य मान रहे हें. यदि क्लेशकु अपन् ग्राह्य मान रहे हें तो वाको सेवामें विनियोग करायो जा सके हे और अपने क्लेशकु अपन् स्वयं ही त्याज्य मान रहे हें के ये क्लेश अपनकु नहीं होनो चहिये, वाकु अपन् ठाकुरजीकी सेवामें जोड़ें तो वो अपनो समर्पणको भाव न होके, ठाकुरजीकी कृपालुताको अनुचित लाभ उठावेको भाव हे. ये बात ध्यानसु समझनी चहिये. अहंता-ममतासु अपने क्लेश तो जुड़े भये रहेंगे, रहेंगे और रहेंगे ही और अपनेमें अहंता-ममता हे तो कुछ क्लेश तो अपने साथ जुड़े रहेंगे. ऐसो तो हो ही नहीं सके के अहंता-ममता होय और क्लेश नहीं होय. पर वा क्लेशको व्यर्थमें ठाकुरजीके सामने रोनो गलत बात हे. अपने यहाँ दीनताके पद भी ठाकुरजीके सामने नहीं सुनावे. ठाकुरजीके पोढ़वेके बाद गावें. अपने आपकु सुनावेके लिए अपन् गावें. क्योंके वो अपनो क्लेश हे. सेवाके समय अपनो ध्यान वा परमानंदरूप ठाकुरकी परमानंदरूपतापे जानो चहिये. तब तो सेवा अपनी भक्त्यात्मिका होगी.

यहाँ आप लोग जानते होगे के यहाँ सूरदास हरिशचन्द्रजी हते. मेरे खुदके अनुभवकी बात बताऊँ के उनको बीस बरसको शादी करके आयो बच्चा बम्बईमें चल्यो गयो. ये बात सुबह हमकु पता पड़ी. बड़ो क्लेश भयो. हम सुबह श्मशान गये. जैसे ही हम

श्मशान गये, हरिशचन्द्रजी कीर्तन करवे लग गये. हमारी रूह कांप गयी के या व्यक्तिकु क्या आश्वासन दे! हमकु कुछ बोलवेको मौका नहीं दियो. जैसे ही हम, मैं और उत्तमजी, दोनों गये, वो तो हमारे स्वागतमें कीर्तन करवे लग गये. अब क्या उनकु कहें! अब क्या क्लेश नहीं हुओ होयगो उनकु बेटाके जावेको. निश्चित हुओ होयगो. पर वा क्लेशकु हमारे सामने उनने प्रकट नहीं कियो. हरिशचन्द्रजीकी ये गजबकी बात हती. हमें बोलवेको चांस् ही नहीं दियो के हम लोग संवेदना प्रकट करें. हम लोग पाछें लौटके आ गये.

ये समझवेकी बात हे के क्लेश तो अपनकु होय हे, नहीं होय हे ऐसी बात नहीं हे. क्योंके अपन् मनुष्य हें. अपनी भी अहंता-ममताएं हे. अपने भी सुख-दुःख हें. पर उन क्लेशनकु अपन् ठाकुरजीके सामने तो प्रकट नहीं करें. अनोसरमें जो रोना रोनो हे, वो कर लें. आपसमें बैठके वाके उपाय सोच लें. जो कछु भी करनो होय, रोनो होय, पीटनो होय, लड़नो होय, तो करो. पर वाकु ठाकुरजीकी सेवामें तो कमसु कम विनियोग मत करो. चाहे तो प्रार्थनात्मक चर्चात्मक विनियोग, ठाकुरजीकी सेवामें उन क्लेशनको विनियोग नहीं करनो. अपने पास अहंता-ममता हे, वासु क्लेश जुड़यो भयो हे, तो आपकु ये सब सहनो ही पड़ेगो. ये समर्पणको भाव नहीं हे. ये बड़ी नाजुक बात हे. जैसे मैंने ये कही के ताको भाव अनिर्वचनीय हे. यदि अहंता-ममताको समर्पण करनो हे तो क्लेशको समर्पण भी होयगो. यदि क्लेशको समर्पण नहीं कियो तो अहंता-ममता तो पूरी समर्पित हो नहीं पायेगी. क्योंके उतनो अंश तो बच ही जायेगो. अब याकु अपन् शब्दमें केहवे जाय तो समर्पणकी परिभाषा बड़ी मुश्किल हो जायगी. पर **"ताको भाव अनिर्वचनीय हे."** यासु ही महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के **"ठाकुरजीकु सबसु अप्रिय धुआँ हे."**

(क्लिष्टको असमर्पण, अक्लिष्टको समर्पण)

'धुआँ' मतलब क्लेश हे. या क्लेशकु महाप्रभुजीने कई तरहसु वर्णित कियो हे, व्याख्यान कियो हे. और वहाँ महाप्रभुजी समझावे हें के ठाकुरजीकु जो वस्तु भी समर्पित करें वो अक्लिष्ट होनी चहिये. क्लेशरहित वस्तुको समर्पण करनो चहिये. क्लिष्टवस्तुको समर्पण नहीं होनो चहिये. और वो क्लेश तीन तरहको होवे हे, चित्तक्लिष्ट लोकक्लिष्ट और आत्मक्लिष्ट.

उन तीन प्रकारके क्लेशन्के निषेधके लिए महाप्रभुजी यों आज्ञा करे हें के **"यद् यद् इष्टतमं लोके यच्चातिप्रियम् आत्मनः येन स्यान्निर्वृतिश्चिते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम्"** (त.दी.नि.२।२३९) क्लेशको समर्पण मत करो. ये बात सच्ची हे के तुम्हारे व्यक्तित्वको, तुम्हारे जीवनको जैसे सुख परिवार शरीर स्वास्थ्य एक पेहलु हे, जैसे जीवनके वैभवको भाव, क्रियाकी सामर्थ्य एक पेहलु हे, उन पेहलुनकु तो समर्पित करो. पर तुम्हारो आलस्य भी तो एक पेहलु हे न! भई शरीर हे तो आलस्य भी तो आयगो. अब अपन् क्या कहेंगे के आलस्यकु भी तो ठाकुरजीकु समर्पित करनो चहिये. क्रियाको तो समर्पण रोज करे ही हें, आज तो हम आलस्यको समर्पण कर रहे हें. यों भी कहें के आज तो हम बीमार हे तो बीमारीको भी समर्पण आज हम करेंगे.

हमारे एक परिचित एक बार बीमार भये तो हमने कही के चलो देखवे जाय. वहाँ जाके हमने बीमारीके बारेमें पूछताछ करी तो उनने कही के क्या बताऊँ महाराज! पहले महाराज तो इतने समर्थ होते हते के अपने कोई भक्तकु रोग होय तो अपने शरीरमें ले लेते हते. पर आज-कलके महाराजन्में तो वो सामर्थ्य कहाँसु खोजी जा सके! अब मैं सोचवे लग्यो के ये केहनो क्या चाह रहे हे? एक तो हम वहाँ स्वास्थ्य पूछवे गये और उनने हमकु

ये बोधपाठ पढ़ा दियो. मैंने कही कोईको स्वास्थ्य पूछवे जानो ये तो बड़ी मुश्किल कथा हो गयी. गुजरातीमें एक कहावत हे के "होम करतां हाथ दाझ्या". एक तो होम करवे बैठे ऊपरसु हाथ जले. एक तो अपन् स्वास्थ्य पूछवे जाय और ऊपरसु वाको रोग अपने शरीरमें लेके आये! अब क्या कहे वाकु. ऐसे ही अपन् ठाकुरजीकु विनती करें के महाराज! हमकु कॅन्सर् हो गयो हे तो आप ये रोग अपनेमें ले लो. ठाकुरजीकु ही परेशानी के अपन् यहाँ सेवाके लिए बिराजे, नहीं तो काहेकु सुननो पड़े ये सब. अपने क्लेश हे वो तो अपने हे और रहेंगे. और क्लेश हे वो ऐसो नहीं हे के दुःखद नहीं होवे हे. पर महाप्रभुजी ये कहे हें के **"त्रिदुःखसहनं धैर्यम्"** (वि.धै.आ.६) अपने दुःखकु सहन करनो चाहिये. महाप्रभुजी यों भी नहीं कहें के धैर्य ही रखो. महाप्रभुजी यों भी कहे हें के **"प्रतीकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन् नाग्रही भवेत्"** (वि.धै.आ.७)यदि तुम दुःखकु दूर कर सकते हो तो अपने उपायनूसु उन दुःखनूकु दूर करो. यदि नहीं करोगे तो वो तुम्हारी सेवामें विघ्न करेंगे. और तुम दुःखी होंगे तो सेवामें भी दुःखता प्रकट होयगी. दुःख सेवा तक पहुँचे वासु पहले यदि वा दुःखकु तुम अपने उपायनूसु दूर कर सकते हो तो करो. क्योंके ये मौका नहीं आवे के जब तुम ठाकुरजीके समक्ष जा रहे हो, तो तुम जा दुःखसु दुःखी हो रहे हो, वा दुःखकु करके जाओ.

गोकुलनाथजीके दूसरे सन्दर्भके वचनामृत हे, पर बहोत समझवेवाले वचनामृत हे. जब आप काश्मीरसु वापस पधार रहे हतें तो एकने कही के नींद बहोत आ रही हे. कछु भगवत्चर्चा करें. तो आपने कही के अपन् बैठके कुछ लौकिक चर्चा करें. नींद उड़ावेके लिए लौकिक चर्चा करें, जब नींद उड़ जायगी तो भगवत्चर्चा करेंगे. नींद उड़ावेके लिए भगवत्चर्चा करनी, मानें नींद उड़ावेको विनियोग भगवत्चर्चामें नहीं हो सके. ऐसे ही नींद नहीं आ रही हे तो

अपन् कीर्तन करवे बैठ गयें. अरे भई, जाग रहे हो वामें भगवत्कीर्तन करो. वामें कोई दोष नहीं हे. नींद नहीं आ रही हे या लिए कीर्तन करवे बैठ गये तो ऐसो विनियोग नहीं हो सके.

इन भागवत कथान्में ऐसे ही होवे हें. सुबहसु श्याम तक बड़ी लंबी कथाएं चलें. श्रोता बिचारे बैठे-बैठे सो जाय. कथावाचक देखे के जैसे ही कोई श्रोताकु झोका आ रह्यो हे वैसे ही कहे, "बोलो श्रीकृष्णचन्द्रकी जय, बोलो श्रीगोवर्धननाथकी जय, बोलो श्रीयमुने महारानीकी जय". बेचारो श्रोता जग जाय. श्रोताकु जगावेके लिए गोवर्धननाथकी जय काहेकु करो भई! जगे भये श्रोतान्कु यह बात सुनाओ के श्रीगोवर्धननाथकी जय. जगावेके लिए गोवर्धननाथकी जय नहीं हे. जगावेके लिए कुछ चूटियें भर दो, वाके मुंहपे पानी छांट दो. वाकु सभामें फटकार दो. ये सब भक्तवृत्ति नहीं केहवावे. क्योंके ये अपनो क्लेश हे, वाको विनियोग नहीं हो सके हे. वक्ताकु क्लेश हे के श्रोताकु नींद आ रही हे. क्लेशकु अपन् कुछ और उपायसु दूर करेंगे, वाको भगवान्में विनियोग नहीं करनो चहिये. चित्तक्लिष्ट लोकक्लिष्ट आत्मक्लिष्ट ये सेवामें नहीं हो सके हे.

(क्लेशात्मक धुआँन्के प्रकार)

और विस्तारसु महाप्रभुजी यहाँ तक समझावे हें के "**विक्षेपाद्**[१] **अथवा अशक्त्या**[२] **प्रतिबन्धाद**[३] **पिक्वचित्, अत्याग्रहप्रवेशे**[४] **वा परपीडा**[५] **दिसम्भवे तदा सेवा त्यक्तव्या.**" (त.दी.नि.२।२५०) क्यों त्यक्तव्या? वाको मूलमें ध्यान दो. [१] **विक्षेपाद्** = मनमें यदि अतिशय विक्षेप हे और अपन् यदि सेवा करेंगे, तो सेवामें कोई न कोई क्लेश प्रकट होयगो. [२] **अशक्ति** = या शरीरमें अशक्ति आ गयी हे और फिर भी हठसु अपन् सेवा करेंगे तो कोई न कोई क्लेश तो होयगो. [३] **प्रतिबन्धाद्** = घरके बड़े-बूढ़े ये मानते होय के सेवा नहीं करनी चहिये, मंदिरमें जाके ही दर्शन कर लेने चहिये तो उनके

सामने यदि अपन् सेवा करेंगे तो वो झगड़ा करेंगे के घरमें ये क्या नाटक शुरु कर दियो हे! तो घरमें ये प्रतिबन्ध हे अब या प्रतिबन्धमें जा बखत अपन् सेवा शुरु करेंगे तो गाली सेवाकु और ठाकुरजीकु पड़ेगी. यासु महाप्रभुजी मना करें के या प्रकारके प्रतिबंधमें सेवा शुरु मत करो. थोड़े दिन विप्रयोगको अनुभव करो पर सेवा मत करो [४] **अत्याग्रहप्रवेशे** = अतिआग्रह हो गयो के अपन्कु तो ये लानो ही हे. याके बिना तो सेवा हो ही नहीं सकेगी. अत्याग्रह जब भयो तो कोई न कोई क्लेश होयगो और होयगो ही. मतलब छप्पन भोग धरनो हे, बड़े-बड़े मटका भरके बूंदीके लड्डू बनाने हे. अब अपने पास पैसा नहीं हे तो गांवमेंसु पैसा मांगने. लाओ पैसा, लाओ पैसा. गाम गाली दे रह्यो हे के बार-बार पैसा मांगवे आ जाय. कोई धंधा हे के नहीं. अभी पिछले साल ही तो पैसा दिये हते. ये सब क्या हे? ये सब अत्याग्रह हे. ऐसे अत्याग्रहसु ठाकुरजीकु सेवा अपेक्षित नहीं हे. सहजतासु जो अपने पास उपलब्ध हे वासु अपनेकु सेवा करनी चहिये. शबरीने कोई रसगुल्ला ठाकुरजीकु भोग नहीं धरे हते. जो बेर वाके पास हते, वो भोग धरे हते. ठाकुरजीकु जो सहज उपलब्ध हे वामें रुचि हे. क्योंके वो क्लेशरहित हे और जा वस्तुकु जुटावेमें अपनेकु ही क्लेश हो रह्यो हे, वाकु लेके जब अपन् सेवामें जायेंगे तो वो क्लेश सेवा तक भी जायगो. जब वो सेवा तक जायगो तो वो धुआँके समान अप्रिय लगेगो. ठाकुरजी कोई शनिश्चर देवकी सेवा तो हे नहीं के इतनो तेल तो चढ़ानो ही पड़ेगो, नहीं तो दशा छूटेगी नहीं. ठाकुरजी तो परमानंद स्वरूप हे. उनकी कोई दशा अपन्कु नहीं लगी हे शनिश्चरकी तरह के तेल चढ़ाओ तो ही उतरेगी दशा, नहीं तो नहीं उतरेगी. ठाकुरजी तो अपने यहाँ प्रेमसु, स्नेहसु बिराज रहे हें. या कारण यदि ऐसो क्लेश हो रह्यो हे तो वो सेवा छोड़ देनी चहिये. महाप्रभुजी केह रहे हें के वा सेवाको तुम आग्रह मत रखो. [५] **परपीडा** = तुमने सेवाको आग्रह कियो. तुम परिवारमें सबसु बड़े हो और सब तुमसु छोटे

हें. वे सब तुम्हारे कारण तकलीफ पा रहे हें. तुम फिर भी सबकु सेवामें जबरदस्ती आवेके लिए कहो. जाकु अपन् 'बेगार' कहे हें. बेगारकी सेवा करवानी यासु सेवा नहीं करनी चार गुनी बेहतर हे. क्योंके बेगारकी सेवा करवावेसु ठाकुरजीकु क्लेशको समर्पण होयगो. भावको समर्पण नहीं होयगो.

(स्नेहको सिद्धान्त)

एक बात समझो के ज्ञानको विरोधी अज्ञान अथवा अन्यथाज्ञान हे. ठाकुरजीको सच्चो स्वरूप अपन् नहीं जाने तो क्या केहवावे के अपनकु अज्ञान हे और ठाकुरजीको जैसो स्वरूप हे वासु विपरीत कोई स्वरूप हे, तो अन्यथा ज्ञान. पर अज्ञान और अन्यथाज्ञान को भक्तिके साथ इतनो झगड़ा नहीं हे. क्योंके भक्तिकी शुरुआतको माहात्म्यज्ञानको जो पेहलु हे वाको अज्ञान और अन्यथाज्ञान सु झगड़ा हे. वाके आगेको जो पेहलु हे, सुदृढ़ सर्वतोधिक स्नेह वाको न तो ज्ञानसु, न अज्ञानसु और न अन्यथाज्ञानसु कोई झगड़ा हे. यासु ही अपने यहाँ यदि ठाकुरजीके सपना आवे तो वाकु मिथ्या नहीं मान्यो जाय. दुनियादारीको यदि कोई सपना आ रह्यो हे तो वो झूठो भी हो सके हे और सच्चो भी हो सके हे. पर महाप्रभुजी यों कहे हें के ठाकुरजीको यदि अपनकु सपना आवे तो वाकु भ्रम या मिथ्या नहीं माननो. क्योंके ठाकुरजी अपनसु वा माध्यमसु बोलवेके लिए समर्थ हे. सपना अज्ञान तो नहीं पर अन्यथाज्ञान तो हे न! मानो के अपन् ठाकुरजीकी सेवामें नहीं हें पर अपनकु सपना आयो के ठाकुरजीकी सेवा हो रही हे तो ये अन्यथा ज्ञान हो गयो. ठाकुरजीकी सेवा यदि सपनामें भी हो रही हे तो महाप्रभुजी कहे हें के वो प्रमाण हे. अपन् अन्यथासु कोई चीजकु जान नहीं सके हें. जैसे सांपकु अपनने रस्सी समझ ली, वो तुलसीदासजीवाली कथा, तो ये अन्यथाज्ञान हे. वो तो तुलसीदासजीको माहात्म्य हतो के सांप उनकु काट्यो नहीं. पर हमने यदि सांपकु रस्सी समझके पकड़नो

चाह्यो तो तो वो काटेगो ही. पर ठाकुरजीमें ये सामर्थ्य हे के स्नेहवश यदि हमने ठाकुरजीकु अन्यथा भी समझ लियो तो ठाकुरजी अपने वा भावको पोषण ही करेंगे, शोषण नहीं करेंगे. शर्त केवल इतनी हे के वो अन्यथाज्ञान ठाकुरजीके बारेमें स्नेहमूलक होनो चहिये.

अपने यहाँ वो डोकरीकी वार्ता हे. जाने बालकृष्णलालकु ठाकुरजी नहीं माने. क्योंके वाने मदनमोहनजी जान रखे हतें के ठाकुरजी मदनमोहनजी जैसे ही होवें. बालकृष्णलालकु वाने अन्यथा ज्ञानसु ये माने के ठंडीके मारे ये सिकुड गये लगे हें. तो वाको भाव ठाकुरजीने पोषण कियो के नहीं कियो! परेकी वार्ता देखो. गुंसाईजीकी खडाऊसु टकराके एक पत्थर ही तो उड़यो हतो. पर वाने तो नाम भी खोटो ही मान रख्यो हतो, परे. क्योंके वाकु सब परे-परे करते हतें तो वाने सोची के ठाकुरजी भी 'परे' हें शायद. वो पत्थर जब उड़यो तो परे-परे भई. वाने सोची के आज ठाकुरजी पधरा दिये मोकु! तो परेसु भी वाकु सानुभाव प्रकट भयो के नहीं भयो? स्नेहमें न तो अज्ञान बाधक हे और न अन्यथाज्ञान बाधक हे. भक्तिको पहलो अंश हे माहात्म्यज्ञान, वाको अज्ञान और अन्यथा ज्ञानसु थोड़ो झगड़ा हे. और उत्तरांश स्नेहकु ज्ञान अज्ञान और अन्यथा ज्ञान भी चले. स्नेहकु या बातकी दरकार नहीं हे के जाकु तुम स्नेह कर रहे हो, वाकु तुम अच्छी तरहसु समझ रहे हो, या नहीं समझ रहे हो अथवा कुछ और ही समझ रहे हो. भई स्नेह कर रहे हे, बस इतनी बात ही पर्याप्त हो गयी. स्नेहको ऐसो सिद्धांत हे.

अपन् ये बात समझें के अपने परिवारके पिता पुत्र भाई सभीकी तो क्षणभंगुर देह हे इनकु क्या स्नेह करनो! आज तो जी रहे हें, कल मर जायेंगे. अब समझो के ये सत्य ज्ञान हे. पर कल मर जायेंगे ये ध्यान अपन् स्नेहके कारण नहीं कर रहे हें के ये देह क्षणभंगुर हे. क्योंके स्नेह या बातकु सोचवेकी दरकार नहीं रखे हे. फिराक गोरखपुरी बहोत बड़े शायर भये हे. उनने एक शेर लिख्यो

हे के "गुन्चे तेरी जिन्दगीपे रश्क होता हे, तू एक तबस्सुमके लिए खिलता हे. तो गुन्चेने कहा हंस कर ऐ बाबा, एक तबस्सुम किसे यहाँ मिलता हे?" फूलकु केह रह्यो हे के तू बस एक बार खिलवेके लिए जी रह्यो हे. वो फूल केह रह्यो हे के "एक बार जीवनमें खिलनो कहाँ मिले हे लोगनूकु!" बहोत सारे मनुष्यनूके जीवन ऐसे ही होवे हे के बिना खिले ही मुरझा जावे हे. मोकु तो कम-स-कम एक बार खिलनो तो मिल्यो. ये कोई कम बात हे! फूलकी क्षणभंगुरताको सिद्धांत फूलके प्रति बाधक होवे हे? जाकु या बातको ख्याल रहेगो के अरे फूल तो केवल एक तबस्सुमके लिए खिले हे, वो तो फूलकु कभी चाह ही नहीं सकेगो. चाह कौन सकेगो, जाकु फूलसु स्नेह हे. एक नहीं आधी तबस्सुमके लिए भी फूल खिले, तो भी स्नेहके कारण पसन्द आवेगो. अध खिली कलीमें भी कितनो सौन्दर्य भर्यो भयो हे, ये जो पुष्पके प्रेमी हे, वो ही समझ सके हे. **"ताको भाव अनिर्वचनीय हे."** ये बात मत भूलियो, वामें कुछ क्षणभंगुरताको ज्ञान बहोत अधिक मायने नहीं रखे हे. और अपनो ये अन्यथा ज्ञान के ये अधखिली कली हे, वो बहोत मायना नहीं रखे हे. बस फूल खिल्यो भयो हे, ये बात पर्याप्त हो गयी.

कोई भी पाऊडर् सॅन्ट् या इत्र लगाओ. वाकी सुगंधकी अवधि केवल तुमकु पांच-दस मिनट ही आयगी. वाके बाद दूसरेनूकु आ सके हे, पर तुमकु नहीं आयेगी. दूसरेनूकु आ सके घंटा भर या अधिकसु अधिक दिन भर. यासु ज्यादा कोई भी सुगंध नहीं रहे हे. अब अपन् कहें के सुगंधको जीवन कितनो क्षणभंगुर हे! यासु लगाके फायदा क्या? तो सवाल ये उठे हे के यदि सुगंध नहीं लगानी तो क्या दुर्गंध लगानी? सुगंध यदि क्षणभंगुर हे तो क्या लगानी नहीं? ऐसे नहीं हो सके. जा बखत अपन् ठाकुरजीकु स्नेह कर रहे हें, वा बखत ऐसे नहीं सोच्यो जा सके हे.

(स्नेहमूलक अहंता-ममताको भक्तिमें विनियोग)

दो अलग बात हे. एक अज्ञानमूलक स्नेह, अन्यथाज्ञानमूलक स्नेह और स्नेहमूलक अज्ञान एवं स्नेहमूलक अन्यथा ज्ञान इन दोनों बातनूमें भेद समझो. अपनूकु अज्ञानमूलक स्नेह भयो या बातकु महाप्रभुजी बहोत अभिनंदनीय नहीं माने हें. ऐसे ही अन्यथा ज्ञानमूलक स्नेह भयो, याकु भी महाप्रभुजी अभिनंदनीय नहीं माने हें. पर यदि स्नेहके कारण कोई अज्ञान अथवा अन्यथा ज्ञान हो रह्यो हे, मानें स्नेहके कारण तुम या बातकु भूल गये जैसे व्रजभक्तनूके सामने ठाकुरजीने गिरिराज उठायो और कई-कई लीलाएं ऐसी करी जो लोकोत्तर लीलाएं हतीं और जिनकु एक बखत कोई देख ले तो जीवनभर नहीं भूल सके, ऐसी चमत्कारपूर्ण लीलाएं हतीं. पर क्योंके व्रजभक्तनूकु स्नेह हतो तो उन सारी लीलानूकु भूलके व्रजभक्तनूने अपने स्नेहकु अपने अज्ञानकु कायम रख्यो के ये तो हमारे व्रजको बालक हे. ये व्रजभक्तनूको स्नेहमूलक अज्ञान हतो. 'अज्ञान' मानें भ्रमके कारण पैदा होतो स्नेह और वाके कारण पैदा होती भयी भ्रान्ति. महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के स्नेहके कारण यदि तुमकु कुछ भ्रान्ति हो रही हे के प्रभु मेरे पास पधार रहे हें, महाप्रभुजी कहे हें के ये तो भक्तिकी पराकाष्ठा हे. नहीं भी पधारें तो भी. जैसे कोई स्नेहीको हम इंतजार कर रहे हें तो जब भी दरवाजा खटके तो लगे के वो आयो. तो ये तो स्नेहकी पराकाष्ठा हे. जा बखत क्षण-क्षणपे स्नेहके कारण भ्रान्ति हो रही हे, वो तो स्नेहकी पराकाष्ठा हे. स्नेहमें भ्रान्ति पैदा करवेकी ताकत हे. बुद्धिमानके भीतर भी भ्रान्ति पैदा करवेकी ताकत स्नेहमें हे. वा स्नेहकी ताकतकु महाप्रभुजी स्वीकारे हें. पर अज्ञानकी ताकत और भ्रान्तिकी ताकत महाप्रभुजीने नहीं स्वीकारी हे. अज्ञान और भ्रान्ति में भी ये ताकत हे के वो स्नेहकु पैदा कर सके हे पर याकु महाप्रभुजी कहे हें के ये सांसारिक स्नेह हे. अज्ञान और अन्यथाज्ञान के कारण जो स्नेह हे वाकु तो महाप्रभुजी 'संसार' मान रहे हें. पर स्नेहके कारण जो अज्ञान या अन्यथा ज्ञान पैदा

हो रह्यो हे वाकु त्याज्य न मानके ग्राह्य मान रहे हें. स्नेहको झगड़ा अज्ञान या अन्यथाज्ञानसु नहीं हे. महाप्रभुजी केह रहे हें के भगवत्स्नेहके कारण कोई अहंता पनपी के मैं ठाकुरजीको सेवक हूँ, मैं ये बात नहीं करूँगो मैं अन्याश्रय नहीं करूंगो, **"ब्रह्मा रुद्र त्यां कोण बापड़ा श्रीहरिनां मन मोहे"** (वल्लभाख्यान-१।८) ये सब स्नेहके कारण पनपी भयी अहंताको विरोध महाप्रभुजी नहीं करें. अहंताके कारण कोई स्नेह पनप रह्यो हे वाको विरोध तो करे हें. अहंताके कारण ठाकुरजीसु स्नेह नहीं करनो हे पर स्नेहके कारण यदि अहंता जगी, तो सो ज्ञान या ब्रह्मज्ञान वापे न्योछावर हे. ऐसे ही भगवत्स्नेहके कारण ममता जगी, तो वा ममतापे महाप्रभुजी मुक्तिकु न्योछावर कर रहे हें. पर ममताके कारण यदि आपकु भगवत्स्नेह जग्यो तो कुछ गड़बड़ हे.

हमारे बम्बईकी एक बात मैंने आपकु बतायी हती के एक मुखियाजी मेरे पास आये. उनने कही के "महाराज एक ठाकुरजी पधरा दो निधिस्वरूप." मैंने कही के "निधिस्वरूप कहाँसु पधराऊँ?" उनने कही के "क्या करे बहोत जरूरत आ पड़ी हे." मैंने पूछी "ऐसी क्या जरूरत आ गयी?" उनने कही के "हमारे पिताजी भी मुखिया हते और हम चार भाई हतें. बहोत सम्पदा हती घरमें. अब हम चारों भाई कमा रहे हें, पर वैसी सम्पदा नहीं हे. अब मैंने निश्चय कियो हे के तीनों भाई तो अपने कामपे लगे भये हें पर मैं तो मुखिया बनूंगो. मुखिया बनूं तो ठाकुरजी चहिये. और ज्यादा कमायी तो निधिके ठाकुरजीसु ही होवे. कितने महाराजन्के पास गयो." उनने निधिके ठाकुरजीकी अनाप-शनाप रेट् बताई परन्तु अंतमें उनने एक मंदिर खोल लियो. अब देखो भक्ति तो कर रहे हे, ठाकुरजीसु स्नेह भी हे. पर ममताके कारण भक्ति भयी हे, भक्तिके कारण ममता नहीं भयी. या तरहकी जो भक्ति हे के ठाकुरजीकी सेवा करेंगे, मंदिर चलाऐंगे तो घरमें लीला-लहर हो

जायगी. जैसे हर वार्तामें आवे हे के "पाछें ठाकुरजी सानुभावता जतावन लागे" ऐसे ही "पाछें ठाकुरजी द्रव्य देन लागे." ये पुष्टिमार्गकी वार्ता नहीं हे. ये वार्ता तो संसारकी वार्ता हे. क्योंके अपन् अपनी ममताके कारण ठाकुरजीकी भक्ति कर रहे हें. भक्तिके कारण ठाकुरजीसु ममता नहीं कर रहे हें.

ठाकुरजीमें जो स्नेह हे, वा स्नेहके कारण जो क्लेश हो रह्यो हे, वा क्लेशकु तो महाप्रभुजी धुआँ नहीं माने हें. पर कोई लौकिक क्लेशके कारण तुम यदि ठाकुरजीकी भक्ति कर रहे हो तो वाकु महाप्रभुजी कहेंगे के तुम धुआँ पैदा कर रहे हो. क्लेशको निवारण करो. क्लेशकु सहन करो. **"त्रिदुःखसहनं धैर्यम्"** (वि.धै.आ.६) तुमसु सहन नहीं होतो होय तो महाप्रभुजी कहे हें के **"शुद्धाश्च सुखिनश्चैव ब्रह्मविद्याविशारदाः, भगवत्सेवने योग्या."** (भाग.सुबो.१।१।३) जो शुद्ध हे, जो सुखी हे, जो ब्रह्मविद्या विशारद हे, वो ब्रह्मसेवाके योग्य हे. कारण क्या? नहीं तो अपन् अपने क्लेशन्को विनियोग ठाकुरजीमें करेंगे. ठाकुरजीकी सेवा महाप्रभुजी घर-घर पधरानो चाह रहे हें. जैसे एक पिता अपनी बेटीकु व्याहनो चाहे और जा घरमें व्याहनो चाहे वा घरकी सारी परिस्थितिकी जानकारी इकठ्ठी करे वा सावधानीसु महाप्रभुजी ये समझानो चाह रहे हें के भई धुआँ ठाकुरजीकु अप्रिय हे. मैं तुमकु ठाकुरजी पधरा दऊँ पर धुआँसु इनके नेत्र रोते भये मत कर दीजियो. अब वो धुआँ कौन सो? जो महाप्रभुजीने बतायो **"विक्षेपाद् अथवा अशक्त्या प्रतिबन्धादपि क्वचित्, अत्याग्रहप्रवेशे वा परपीडादिसम्भवे"** (त.दी.नि.२।२४७) "... **तदा सेवा त्यक्तव्या"** (त.दी.नि.प्र.२।२४७) वा स्थितिमें सेवा मत करो यदि तुमकु मानसिक विक्षेप हे, शारीरिक अशक्ति हे. तुमकु कोई पारिवारिक प्रतिबंध हे, तुमकु यदि धर्मको अत्याग्रह हो गयो हे या यदि तुमसु परपीडा हो रही हे. तो या तरहकी तुम्हारी अहंता-ममता जो क्लेश उत्पन्न कर रही हे, वाको विनियोग तुम सेवामें मत करो. क्योंके ठाकुरजीकु

धुआँ सबसु ज्यादा अप्रिय हे. या परिस्थितिमें महाप्रभुजी पसंद करे हें के सेवा छोड़ दो. वो महाप्रभुजी जो घर-घरमें सेवा पधरानो चाह रहे हें. वो घर-घरमेंसु छुड़वानो भी चाह रहे हें. सेवा करवेकी शर्त हे के वा घरमें धुआँ नहीं होनो चहिये. घरमें क्लेशको धुआं नहीं होनो चहिये, तो परमानंद प्रभु अपनो वहाँ बिराजेगो. क्लेशको धुआँ जहाँ हे, वहाँ परमानंदरूप प्रभु बिराज नहीं सके हें.

अपन् पुष्टिमार्गीयन्ने क्लेशके धुआँमें ही ठाकुरजीकु पधरावेको निश्चय कियो हे. वास्तविकता ये हे के मंदिरन्में जितनो क्लेश हे, उतनो घर-गृहस्थीमें नहीं हे. जैसे नागरीदासजीने कही के ''सबै कलह संसारमें और राज कलहको मूल'' ऐसे ही ''सबह कलह संसारमें मंदिर कलहको मूल.'' क्या करें? कलहको मूल मंदिर हो गये हे. धुआँ सर्वथा ठाकुरजीकु अप्रिय हे. ये बात अपन्कु समझनी चहिये और याको भाव भी अनिर्वचनीय हे. यदि समर्पणको भाव, यदि स्नेहको भाव, यदि सेव्यकु सुख प्रदान करवेको भाव अपने हृदयमें स्पष्ट हे, तो या बातकु अपने हृदयमें अनुभव करवेमें जरा भी तकलीफ नहीं आयेगी. और यदि ये सब भाव स्पष्ट नहीं हे तो ये धुआँ क्यों प्रभुकु अप्रिय हो रह्यो हे, ये समझमें आनो बहोत कठिन हे. वाको सीधोसो कारण समझो के हर चूल्हा जलावेवालेकु धुआँ तो सहन करनो ही पड़ेगो. चूल्हा नहीं जले ऐसी गृहस्थी हो कैसे सके हे! संन्यासी या भिखारी ऐसो हो सके हे के चूल्हा नहीं जलावे. पर जो गृहस्थ हे वहाँ चूल्हा तो जलेगो और जहाँ चूल्हा जलेगो वहाँ धुआँ तो होयगो. हमारे घरमें भी हमारी दादीजीने धुआँ मंदिरकी तरफ नहीं आवे, वो छतके रास्ते बाहर निकल जाय, याके लिए कैसी-कैसी प्रबन्ध करायी हे, ये छतपे जाके देखो तो आश्चर्य होवे हे. ऐसे ही ये अपने शारीरिक पारिवारिक आत्मिक और सामाजिक जो धुआँएं हें वो प्रभुकी तरफ नहीं जाने देने चहिये. ये सब यद्यपि अपनी अहंता-ममतासु जुड़े भये हें तो भी वाके

निकासकी कोई व्यवस्था रखनी चहिये. वो धुआँ अपने सेव्यके तरफ ना जाय. चूल्हा जलेगो तो धुआँ तो होयगो. यामें तो कोई संशय नहीं हे. अहंता-ममता हे तो क्लेश तो होयगो ही. ''दिल ही तो है न संगोखिश्त, दर्द से भर न आयें क्यूं, रोयेंगे हम हजार बार कोई हमें रुलायें क्यूं'' अपन् रो रहे हें तो रो लें पर कमसु कम ठाकुरजीके सामने नहीं रोयें. अपनो रोना अपन् अनवसरमें रोयें. महाप्रभुजी ये बात समझावेके लिए केह रहे हें के **''धुआँ ठाकुरजीकु अत्यंत अप्रिय हे. और तासों भी अत्यंत अप्रिय हे भक्तको द्वेषी''** 'भक्तको द्वेषी' मानें जो सेवा कर रह्यो हे वाके साथ अपन् द्वेष करें और कहें के अपन् पुष्टिमार्गीय हे तो समझ लो के अपन् पुष्टिमार्गीय नहीं हे. क्योंके ठाकुरजीकु भक्तको द्वेषी प्रिय नहीं हे तो याको भी भाव अनिर्वचनीय हे. अपन् कल याको भी निर्वचन करेंगे आज अपन् यहाँ रखे.

प्रश्न: अज्ञानमूलक स्नेहको उदाहरण क्या?

उत्तर: सबसु पहले तो स्नेह ममताके कारण होवे. और जिन-जिन वस्तुन्में अपन् ममता रख रहे हें, वो बिना अज्ञानके संभव ही नहीं हे. जाकु अपन् मेरो केह रहे हें, मतलब जासु अपन् जुड़े भये हें. अब मैं जुड़यो भयो हूँ वामें कमसु कम और अधिकसु अधिक अपनो शरीर ही तो आयगो. जैसे अपन् बच्चाकु मेरो कहें और वाको लालन-पालन करें तो बच्चा खुश होके अपनो मानेगो. नहीं तो वो अपनो ही नहीं मानेगो. अपन् बापकु मेरो कहें पर वाकी आज्ञामें रहे तो ही तो अपनो मानेगो नहीं तो कहेगो निकल घरसु. तो जाकु मेरो मान रहे हें वहाँ थोड़ो अज्ञानको मॅकेनिज़्म् तो काम कर ही रह्यो हे और वासु अपन् स्नेह भी तो कर ही रहे हें. जहाँ ममता टूटी जैसे अतिप्रिय कोई होय और मर जाय तो शरीरसु कौन ममता रखे हे? बल्कि डरे हें. सूरदासजीने कही हे ये बात के जाकु प्रिय समझते हतें वाके प्राण छूटवेके

बाद प्रेत समझके वासु डरे हें. जाकु प्रियतम समझते हतें और वो आके खड़ो हो जाय तो भूत भगावेवालेकु बुलाके वाकु भगावें. यासु तुम समझ सको के अज्ञानमूलक स्नेह कैसो होवे.

(अक्लेशात्मकभावके लिये [क] विवेक- [ख] धैर्य- [ग] आश्रय)

कलके प्रसंगमें अपनूने ठाकुरजीकु धुआँ अप्रिय हे वो देख्यो. 'धुआँ' मानें क्लेश. वो क्लेश कई प्रकारको हो सके हे, चित्तक्लेश लोकक्लेश आत्मक्लेश. महाप्रभुजीकी ये बात आपकु बताई. याके बाद विवेकधैर्याश्रयमें विवेककु धैर्यकु और आश्रयकु प्राप्त करवेके, जो चार-चार प्रकार बताये हें, उन चार-चार प्रकारनूमें जो चार उपाय बतायें उनकु अपन् उल्टो करें तो वो पुष्टिमार्गीय क्लेश हे. महाप्रभुजीने विवेकधैर्याश्रय ग्रंथमें क्लेशके रूपमें वाको निरूपण नहीं कियो हे. क्योंके विवेकधैर्याश्रयमें महाप्रभुजी विवेक धैर्य और आश्रय को निरूपण करे हें. और विवेक धैर्य और भगवदाश्रय कु निभावेके चार चार उपाय वहाँ बताये. पर समझवेकी बात इतनी हे के यदि अपनी परिस्थिति या आवश्यकता के अनुरूप, इन उपायनूकु अपन् नहीं अपनावें, तो वो परिस्थिति महाप्रभुजीके हिसाबसु क्लेशात्मिका होवे हे. यासु वा क्लेश या धुआँ के निवारणके लिए, जैसे पुराने घरनूमें धुआँ निकलवेके लिए चिमनी होती हती. हमारे घरमें यहाँ दादीजीने बड़ी-बड़ी चिमनी बनायी हे, जासु के ठाकुरजीके मंदिरमें धुआँ न जाय. ऐसे वस्तुतः महाप्रभुजीने विवेकधैर्याश्रयरूप चिमनी बनायी हे वा क्लेशकु बाहर काढ़वेके लिए. जासु वो अपनी भक्तिकु या जो भक्तिसु भजनीय प्रभु हे, उनकु वो परेशान न करे. उनके नेत्रनूमें वो जलन पैदा न करे, वा प्रकारके उपाय महाप्रभुजीने विवेकधैर्याश्रयमें बताये हे. सुनते ही, या पाठ करते ही वस्तुतः वो क्लेश दिखलाई नहीं देगो. क्योंके वामें विवेक धैर्य और आश्रय के चार उपाय ही दिखलाई देंगे. पर जब उन उपायनूकु उल्टो करके देखेंगे तो अपनूकु वो क्लेश समझमें आ जायगो.

(विवेकसु अक्लेशात्मकभाव)

सबसु पहले महाप्रभुजीने अपनूकु ये बात समझायी के "**विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति**" (वि.धै.आ.१) यदि अपनूकु पुष्टिमार्गमें शरणागत होके रेहनो हे, या केवल शरणागतिसु संतुष्ट न होके भक्ति भी करनी हे, या भक्तिके जो भी प्रकार हें, जैसे सेवात्मक कथात्मक या तीर्थाटनात्मक, उन प्रकारनूकु यदि अपनूकु अपनानो हे तो सबसु पहले ये विवेक रखनो बहोत जरूरी हे के "**[क] विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति**" और "**[ख] त्रिदुःखसहनं धैर्यम् आमृतेः सर्वतः सदा**" और "**[ग] अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः**" (वि.धै.आ.१-६-११) "**विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति**" जब अपनूने विवेकको स्वरूप मान्यो के पुष्टिमार्गीय विवेक क्या? जो कुछ होनो हे वो भगवदिच्छासु ही होनो हे. जैसे कल आपकु मैंने बतायी हती के पुष्टिमार्गकी वॉकेब्युलरी अलग हे. वाकी कभी डिक्शनरी बने तब मजा आवे. पुष्टिमार्गमें शब्द प्रयोग कैसो? वामें ये बात ध्यान देवेकी हे के अपने यहाँ जो पुष्टिमार्गकी दृष्टिसु होनी चहिये, यदि ऐसी कोई बात हे, चाहे वो अपने पुरुषार्थसु सिद्ध करी होय, या अपनूकु कोईने सहायता करके सिद्ध करवा दी होय, या अनायास सिद्ध हो गयी होय, तो वाकु अपन् भगवत्कृपा माने हें. भगवत्कृपासु ऐसे भयो. चाहे वो अपने पुरुषार्थसु सिद्ध भयो होय, पर ऐसे नहीं माननो के मैंने अपने पुरुषार्थसु ये कार्य सिद्ध कियो. काम सिद्ध करवेमें चाहे कोई औरने सहायता करी, तो अपनूकु यों नहीं माननो चहिये के वाकी सहायतासु ये कार्य सिद्ध भयो. यों माननो के भगवत्कृपासु ही कार्य सिद्ध भयो. ये देखो पुष्टिमार्गीय 'विवेक' हे. जहाँ कोई कार्य अनायास सिद्ध हो जाय तो वहाँ अपनो ये सोचनो सरल हो जाय हे के भगवत्कृपासु ये कार्य सिद्ध भयो. पर कई बखत अपन् ज्योतिषीनूकी चपेटमें आ जाय. ज्योतिषी तो ये बता दे के गुरु या शनि की दृष्टिसु ये काम सम्पन्न भयो. जा भी कारणसु भयो ऐसो, यदि ज्योतिषी बतातो

होय वो सुन लेनो. वाकु कालो झंडा नहीं दिखानो. पर हर समय मनकु ये बात समझाते रहनो के ये ग्रह क्या करेगो? ज्यादासु ज्यादा यदि ग्रह कुछ कर सके हे तो भगवदिच्छासु जो होनो हे, वाकी सूचना ग्रहने अपनकु दे दी. जैसे रेल कब आवेवाली हे वाकी सूचना प्लॅटफॉर्मवालो पहले ही दे देवे हे. मानो के प्लॅटफॉर्मवालेने ये सूचना दे दी के फलानी गाड़ीकी या समय तक आवेकी संभावना हे तो वाके केहवेसु तो गाड़ी आवेवाली नहीं हे. वो तो केवल गाड़ी आवेकी संभावनाको समय बता रह्यो हे. याही तरहसु ग्रह जो कुछ भगवदिच्छा हे वाकी सूचना दे रहे हे. यासु ज्यादा अपनकु नहीं माननो चहिये. ये पुष्टिमार्गीय विवेक हे के **''विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति''**को अपनो भाव दृढ़ हे के जो कुछ भी हो रह्यो हे वो भगवदिच्छासु ही हो रह्यो हे. और अपनी वॉकेब्युलरी ऐसी हे के जो अपनकु अभिलषित हे, वो यदि हो रह्यो हे तो वो भगवानकी कृपासु ही हो रह्यो हे. जो अपनकु अभिलषित नहीं होय ऐसो भी तो कुछ हो ही सके हे. अपनी हर अभिलाषा पूरी होय ये तो आवश्यक नहीं हे. अपन् पुरुषार्थ करें या अपनी कोई सहायता करे तब भी अपनी हर अभिलाषा पूरी होय, ये भी जरूरी नहीं हे. और अनायास कोई चीज मिल जाय पर वो अपने पास टिकी रहे, ये भी कोई जरूरी नहीं हे. जैसे आप क्रिकेट् देखें. वामें फील्डरके हाथमें कॅच् तो आ जाय पर कोई बखत वो छूट भी जाय हे. अनायास बॉल् वाके हाथमें आ जाय पर वो वाकु पकड़ नहीं पावे और बॉल् हाथमेंसु निकल जाय हे. जीवनकी भी कथा या क्रिकेट् जैसी ही हे. अनायास कोई बॉल् अपने पास आ जाय हे. अपन् वाकु पकड़वेके लिये लपके भी हें पर लपकवे जांय तब-तक बॉल् हाथमेंसु छूटके कहीं और चली जाय हे और जो अपने सामने खेल रह्यो हे वो एक-आध रन् वापे बना लेवे हे. जरूरी नहीं हे के अपनी अभिलाषाएं सारी पूर्ण होवें. ये भी जरूरी नहीं हे के अपनी सारी अभिलाषाएं अपूर्ण

रहें. ये सारो चककर पचास-पचास प्रतिशतको हे. पचास प्रतिशत अपनी अभिलाषा पूर्ण होवेकी संभावना हे और पचास प्रतिशत अपूर्ण रेहवेकी संभावना हे.

या रहस्यकु समझ जाय तो अपनेकु विवेक खोवेको अवसर कभी आयगो नहीं. पुष्टिमार्गकी बोलचालके हिसाबसु, कोई घटना यदि अपनी अभिलाषाके अनुसार भयी, तो वो भगवत्कृपा हे. और अपनी अभिलाषाके अनुसार नहीं भयी तो वो भगवदिच्छा हे. ये अपनी पुष्टिमार्गीय वॉकेब्युलरी हे. पर या भगवदिच्छा और भगवत्कृपा के मध्यमें अपनो विवेक निरंतर चलते रहनो चहिये. अपने लाभ सुख और हानि की कथा भगवदिच्छा और भगवत्कृपा के बीचमें चलनी चहिये. लाभकु अपन् भगवत्कृपा मानें और हानिकु अपन् भगवदिच्छा मानें. ये हे **''विवेकस्तु हरिः सर्वं निज-इच्छातः करिष्यति''** महाप्रभुजीने बतायो के ये विवेक पुष्टिमार्गमें शरणागतिके स्तरपे रेहनो हे तो भी और भक्तिके पथपे बढ़नो हे तो भी, ये विवेक कभी भी अपनेकु छोड़नो नहीं चहिये. अब ये विवेकधैर्याश्रय ग्रंथ पढ़वेसु तुरंत सिद्ध नहीं हो जायगो. पर निरंतर अपने मनकु ये विवेक समझानो पड़ेगो. या तो अपने विचारसु या भावनासु या वाणीसु या बातकु निरंतर बोल-बोलके अपनो मन धीरे-धीरे या बातमें गढ़ जायगो. भगवत्कृपा और भगवदिच्छा अपन् बोलनो शुरु करेंगे तो धीरे-धीरे मनको संस्कार हो जाय हे. जैसे एक कहावत हे के बूंद-बूंद करके घड़ा भरे हे. ऐसे निरंतर अपन् अपने आपकु ये समझाते रहें के जब भी अपनेकु लाभ भयो तो अपन् फूलें नहीं. कोईने अपनेकु सहायता दी या अनायास कुछ मिल जावे तो वासु अपन् इतने हर्षित न हो जाय. हर जगह भगवत्कृपा, ये कमसु कम अपनी वाणीमेंसु स्फुरित होनों चहिये और अच्छी बात करनी हे तो ये बात अपने विचारमें दृढ़ हो पाय तब होय. वासु भी अच्छी बात होयगी जब अपने हृदयकी भावना ही ऐसी गढ़ा जायगी के जो

कुछ भी हो रह्यो हे वो भगवत्कृपासु या भगवदिच्छासु हो रह्यो हे. ऐसो होय तो अपनो पुष्टिमार्गीय विवेक सिद्ध हो गयो. सर्वोत्तम बात ये हे के इन तीनोन्सु, मानें अपनी वाणीसु विचारसु और हृदयकी भावनासु जब ये सिद्ध हो जाय के **''विवेकस्तु हरिः सर्वं निज-इच्छातः करिष्यति''**, तब जाके अपनो पुष्टिमार्गीय विवेक सिद्ध भयो जान्यो जाय और तब फिर क्लेशकी संभावना भी बहोत कम रेह जाय हे. क्योंके अपन् भगवान्के शरणागत हें. वाकी इच्छासु ही सब हो रह्यो हे. सहज संभव हे के जो हो रह्यो हे, वो अपनेकु अभिलषित नहीं होय, पर जाकी इच्छासु हो रह्यो हे, वो होवेपे फिर अपनेकु घबरावेको इतनो कारण नहीं हो जा रह्यो हे.

जैसे एक उदाहरणसु आपकु समझाऊँ के जा डॉक्टर्पे अपनेकु विश्वास हे, वो कोई रिएक्शन् आवेवाली दवा दे, जाकु खाते ही अपन्कु चक्कर आने शुरु हो जाय या पेट दुःखवे लगे या आंसू आवे लगे, ऐसी कोई दवा वो दे पर यदि अपनेकु वा डॉक्टर्पे भरोसा हे तो वा तकलीफकु अपन् सहन कर सके हें. क्योंके जो डॉक्टर्ने दवाई दी हे, वासु जो रिएक्शन् आ रह्यो हे, वो साधारण हे पर यासु जो फायदा होवेवालो हे वो बहोत हे. ये कब हो सके, जब वा डॉक्टर्पे अपनेकु भरोसा होय तब. डॉक्टर्कु भी ये पता होवे हे के थोड़ी तकलीफ होयगी या दवासु पर अंतमें रोग निवृत्त हो जायगो. ऐसे जो भी कुछ हो रह्यो हे, जो अपनेकु अभिलषित नहीं भी हे पर यामें भगवान्ने कुछ अपनो भलो ही विचार्यो होयगो. अभी अपनेकु समझमें नहीं आ रह्यो हे पर बादमें समझमें आ सके हे. याके उदाहरण वार्तान्के वचनामृतमें मिले हें. ये एक पुष्टिमार्गीय विवेकको प्रकार हे. और यदि या विवेककु अपन् जी सकें तो जीवनमें बहोत सारे क्लेशन्की संभावनाएं कम हो जांय.

(क-१ प्रार्थनात्मक क्लेश)

पर महाप्रभुजी या बातमें बहोत सावधान हें. जब आप ये केह

रहे हें के **''विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति, क-१ प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्राय-संशयात्, सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च''**. (वि.धै.आ.१-२) महाप्रभुजी अपनेकु ये समझानो चाह रहे हें के क्लेशमूलक भक्ति अपनेकु नहीं करनी हे. प्रार्थना अपन् प्रभुसु कब करे हें, जब अपनेकु क्लेश हो रह्यो हे और वा क्लेशकु प्रभु दूर करें, ऐसी प्रार्थना अपन् प्रभुसु करे हें. और समझो के क्लेश दूर होनो हे तो वाके चांस् भी तो पचास प्रतिशत ही हे. प्रार्थना प्रभु मानेंगे वो चांस् पचास प्रतिशत हे. और नहीं मानेगे वो भी चांस् पचास प्रतिशत हे. समझो के आपकी प्रार्थना प्रभुने मान ली और आपकु अभिलषित फल दे दियो तो आपकी भक्ति निरूपाधिक नहीं होयगी. प्रभुने मेरी प्रार्थना सुनी, वाके कारण भक्ति होयगी. और वाके कारण पैदा भयी भक्तिमें यदि दुबारा कभी मुसीबत आवेपे प्रभुने मानो प्रार्थना नहीं सुनी, तो वो खंडित हो सके हे. क्योंके वो सोपाधिक भक्ति हे. जैसे परिवारके उदाहरणसु अपन् समझ सके हें के कोई भी परिवारको सदस्य यदि अपनी बात मान रह्यो हे तो वो अपनेकु बहोत प्रिय लगे हे. अचानक कभी वो अपनो निर्णय बदल दे और कहे के हमकु तुम्हारी बात नहीं माननी हे, तो वहाँ महाभारत चालू हो जाय. जब भी वाने ये कह्यो तब अपन् ये भूल जाय के आजसु पहले वाने कितनी बात अपनी मानी हती. बस अपन् गिननो शुरु कर दे हें के याने हमारी ये बात नहीं मानी. वो सारो चोपड़ाको हिसाब, जो बात मानवेको हतो वो ज़ीरो हो जाय हे. और नयो, नहीं बात मानवेको, चालू हो जाय हे. चाहे तो वो भाई-भाईकी कथा होय, या बाप-बेटाकी कथा होय, या पति-पत्नीकी कथा होय या सास-बहूकी कथा होय. चाहे निन्यानवें बातें मानी होय और सोंवी बात नहीं मानी तो निन्यानवेकी गिनती ज़ीरो हो जाय हे और 'ये बात नहीं मानी', वाकी चालू हो जाय हे. ऐसो क्यों हो जाय हे? क्योंके अपनी आदत ऐसी गढ़ा जाय हे के जो अपन् कहेंगे वो तो मानेगो. पर एक बार

भी वामें थोड़ो विद्रोहको भाव जग्यो के ये बात नहीं मानूंगो, तो अपनो क्लेश शुरु हो जाय हे.

मानो के पतिने पत्नीसु कही के एक लोटी जल लाईयो और वाने लाके दे दियो तो लगेगो के पत्नी बड़ी अच्छी हे. और एक बार पत्नीने कह्यो के खुद उठके क्यों नहीं ले लो तुम? तो समझो के झगड़ा शुरु. अब हो सके के वो थकी भयी होय, बीमार होय और निन्यानवे बखत वाने यासु पहले जलकी लोटी दी भी होय. पर वो सब शुरु हो जाय हे के "अरे, एक जलकी लोटी ही तो मांगी हे, और वो भी लाके नहीं दे रही हे." ये ही कथा बाप-बेटामें होवे हे, भाई-भाईमें होवे हे, सास-बहूमें होवे हे. पर ये कथा ठाकुरजीके साथ नहीं करनी चहिये. यासु ही महाप्रभुजी याकु ना कहे हें के **"प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्राय-संशयात्"** काहेकु तुम ठाकुरजीकु प्रार्थना करो हो! जो भी तुमकु भक्ति करनी हे, वो इन बातनकु दूर रखके करो. तुम्हारी तकलीफकु तुम भुगत लो. इन तकलीफनकु दूर करवेके लिए तुम व्यर्थमें ठाकुरजीकी प्रार्थना मत करो. क्योंके जो कुछ ठाकुरजी कर रहे हें वो कुछ न कुछ तुम्हारे भलेके लिए ही कर रहे होंयेंगे. या तरहकी भावना रखके जब तुम भक्ति करोगे तो तो तुम क्लेशसु भक्ति नहीं करोगे. और यदि तुम अपने क्लेशनिवारणके लिए भक्ति करोगे, तो समझो के तुम्हारो कभी क्लेशनिवारण नहीं भयो तो तुम्हारी भक्तिको भाव खंडित हो सके हे. यासु ही महाप्रभुजी कहे हें के **"प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्राय-संशयात्, सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च"** (वि.धै.आ.२) क्यों? क्योंके जा बखत तुम प्रार्थना कर रहे हो के हमारी तकलीफ क्या हे, ये तोकु खबर नहीं हे. हम तोकु भगवान् माने हें तो भी तोकु खबर नहीं हे. यासु हमकु केहनो पड़ रह्यो हे के तुम हमारी तकलीफ दूर करो. अब अपन्ने प्रार्थना तो कर दी के हम तेरो छप्पन-भोग कुनवारा

कर देंगे, पलना झुला देंगे, गिरिराजजीकी परिक्रमा करेंगे, सवा मन दूध चढ़ा देंगे. ऐसी-ऐसी मनोतीयें मानें. यदि ठाकुरजीने मान ली तो अपनी भाव-भक्ति ऐसी उछाला मारे हे के जैसे दुनियामें परम भगवदीयके अवतार अपन् ही प्रकट हो गयें होंय. पर जैसे ही वाने नहीं मान्यो तो वैसे लगे के या देवतामें अब कुछ कम चमत्कार लग रह्यो हे, चलो अब दूसरे देवताके पास. गिरिराजजीसु नहीं हो रह्यो हे तो अब कान्तानाथजीकु खोजो, कान्तानाथजीसु नहीं हो रह्यो हे तो कैलाशजीकु खोजो. या तरहको चक्कर जीवनमें शुरु हो जायगो.

हमने एक दोहा लिख्यो हतो "लप्पूपंडाकी लगन जैसे नदी तरनको सेतु, रहत न चित, इत उत फिरत, परिचय संचय हेतु." हर देवतासु फिर परिचय करवेकी इच्छा लप्पूपंडाकु होयगी. क्यों? क्योंके वाकु निश्चय ही नहीं होवे के कौनसे एक देवताकु भजे, जासु अपनो काम पूरो हो जाय. हर देवतासु परिचय करके आ जाय के तुम हमारी बात ध्यान रखियो. सब देवतानकु केह आवे. वाकी लगन कैसी हे के वो हर देवताकु अपनी तकलीफकी नदीकु पार करवेको सेतु समझे हे. "रहत न चित, इत उत फिरत" वाको चित्त एक देवतापे ठहरे ही नहीं हे, इधर उधर डोले हे. सब देवतानके साथ परिचय करवेमें, प्रार्थना करवेमें के कोई तो काम कर देगो.

या लिए महाप्रभुजी प्रार्थना करवेकी ना पाड़े हें. क्योंके क्लेशके कारण जो भक्ति हो रही हे, वाकु महाप्रभुजी कदापि पुष्टिभक्ति तरीके मान्य करवेकु तैयार नहीं हें. अब देखो ये भाव के हम प्रभुसु प्रार्थना नहीं करेंगे. ये बात जब अपन् कहेंगे, तो एक तरीकेको अभिमान अपनेकु हो रह्यो हे के हम प्रभुसु प्रार्थना नहीं करेंगे. वो अभिमान भी कोई न कोई रूपमें क्लेशकु पैदा करेगो ही. क्योंके

अभिमान तो कोईको नहीं रह्यो जो अपनो रहेगो! जब बड़े-बड़ेनके अभिमान नहीं रहे तो अपनो कैसे रेह जायगो. महाप्रभुजी कहे हें के यदि तुमकु ये विवेक निभानो हे के "**विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति.**" (वि.धै.आ.१) तो सबसु पहले तो प्रभुसु प्रार्थना नहीं करनी चहिये. अर्थात् क्लेशमूलक भक्ति नहीं करनी चहिये.

(क-२ अभिमानात्मक क्लेश)

अब यदि तुमकु ये समझमें आ जाय के प्रार्थना नहीं करनी तो जैसे अंग्रेजीमें एक मुहावरा हे के गुड् फॉर् नथिंग्. मानें कोई कामको नहीं. मतलब, न तो अपन् प्रार्थना कर सकें और न अपनो कुछ काम होतो होय तो ऐसे भगवान्को फायदा क्या? "जैसे साजन घर भले तैसे भले विदेश" ऐसे भगवानकु भजवेसु फायदा क्या? या प्रकारको अभिमान अपने हृदयमें जग्यो तो ये क्लेशात्मक अभिमान हे. कहीं न कहीं ये क्लेश उत्पन्न करेगो, धुंआ उत्पन्न करेगो के जाके कारण पुष्टिभक्तिमें बहोत घुटन पैदा हो जायगी. यासु महाप्रभुजी केह रहे हें के क्लेश निवृत्त करवेके लिए अभिमानकु छोड़नो दूसरो उपाय हे. और "क-२ **अभिमानश्च सन्त्याज्यः स्वाम्यधीनत्व-भावनात्.**" (वि.धै.आ.१४-३) प्रार्थना नहीं करनी हे, वाके लिए प्रभुकी अधीनता अपनकु नहीं स्वीकारनी, ऐसी बात नहीं हे. यदि अपनेकु प्रार्थना करनी हे तो अधीनता बहोत सरल लगेगी. जैसे जा सरकारी खातामें प्रार्थना करके अपनेकु अपनो काम निकलवानो हे, वा खाताको अफसर अपनेकु बड़ो अच्छो लगे हे. और जा खातासु अपनेकु काम नहीं निकलवानो हे, वाको अफसर अपनेकु निकम्मो जैसो लगेगो के तुम्हारे-हमारे क्या मतलब! क्योंके अपनेकु वासु काम नहीं निकलवानो हे. ऐसे ही जब प्रभुसु कुछ काम ही नहीं निकलवानो हे, तो प्रभु अपनेकु प्रभु ही नहीं लगेगो. अपनकु तब वाके अधीनताकी भावना ही नहीं होयगी. महाप्रभुजी यों केह रहे हें के तुम्हारी प्रार्थना नहीं करवेकी वृत्ति, तुम्हारे अभिमानमें विकसित नहीं हो जानी चहिये. ये सावधानी

तो रखनी पड़ेगी. वो सावधानी रखवेके लिये कहे हें "**स्वाम्यधीनत्व-भावनात्.**" मैं तो अपने स्वामीके अधीन हूं, मैं क्यों प्रार्थना करूं.

(क-३ हठको क्लेश)

और "क-३ **आपद्-गत्यादि-कार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा**" (वि.धै.-आ.४) अब अभिमान नहीं करनो, स्वामीके अधीन रहनो. तो क्या स्वामीकी ओरसु जो हो रह्यो हे, वो ही करनो? अपनी ओरसु कुछ उद्यम या उपाय करनो ही नहीं? समझो के अपनी अधीनताको भाव अपन् इतने अतिरेकमें बढ़ा लें के अपन् कुछ उद्यम या उपाय ही नहीं करे. जैसे के जो कछु होयगो वो भगवदिच्छासु ही होयगो, हम जीवेके लिये कुछ उद्यम या उपाय नहीं करेंगे? याकु समझावेके लिए एक कल्पित कथा हे.

एक आदमीकु ये भाव दृढ़ हो गयो के जो कुछ होयगो वो भगवदिच्छासु ही होयगो. एक दिन वाके गाममें बाढ़ आयी. वा गाममें जो बचावेवालें हतें वे नाव लेके वाके घरपे आये. तो वाने कही के तुम कौन बचावेवाले? हमकु तो भगवान् बचायगो. बचावेवालेन्ने सोची के होयगी कोई बात, वामें हम क्यों बीचमें पड़ें! वे चले गयें. थोड़ी देरमें और पानी बढ़यो तो वाकु अपने घरकी छतपे जानो पड़यो. वहाँ फिर वाकु हॅलिकॉप्टर्वाले बचावेके लिए आये. उनने वाकु कही के आ जाओ, पानी बहोत बढ़ रह्यो हे, डूब जाओगे. तब भी वाने कही के तुम कौन बचावेवाले, हमकु तो भगवान् बचायगो. थोड़ी देर बाद पानी और बढ़यो और वो आदमी बेह गयो. मरके वो स्वर्गमें पहुंच्यो तो वाने भगवानकु कही के मैंने तो तोपे भरोसा कियो और तूने ही मोकु डुबा दियो. तब भगवान्ने कही के मैंने तो दो बखत आदमी भेजे हतें तोकु बचावेके लिए. तेने ऐसे क्यों सोची के वे आदमी मैंने नहीं भेजे हते! वो तो मेरे ही भेजे भये आदमी हतें पर जब वे आये

तो हर बार तूने ऐसो अभिमान कियो के मोकु तो भगवान् ही बचावे आवे. ऐसे अभिमानके कारण भी पुष्टिमार्गमें दुःख पैदा होवे हे, होवे हे और होवे ही हे. तो ऐसो अभिमान अपनुकु नहीं करनो चहिये. मानें **''अभिमानश्च सन्त्याज्यः स्वाम्यधीनत्व-भावनात्''** और **''आपद्-गत्यादि-कार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा''** या तरीकेके जो आकस्मिक कार्य हे, वामें हठी नहीं होनो चहिये, मृदु होनो चहिये. क्यों? क्योंके अंतमें अपन् भक्तिमार्गके पथिक हें, हठयोगके पथिक नहीं हें. अपन् अनुरागके पथिक हें और अपनो भगवान् कोई ऐसो भगवान् नहीं हे, जो सातवें आसमानपे ही बैठ्यो भयो होय. अपनो भगवान् सर्वरूपधारी हें तो अपनेकु वाकु ये चांस् देनो चहिये के वो कोई भी रूपमें आके अपनो काम कर सके हे. व्यर्थमें अपनेकु ऐसो अभिमान करके नहीं बैठनो. क्योंके विवेकको जो मूलरूप मैंने आपकु बतायो के जो कुछ हो रह्यो हे, जो अपनुकु अभिलषित हे वो भगवत्कृपासु हो रह्यो हे और जो अपनुकु अभिलषित नहीं हे, वो भगवदिच्छासु हो रह्यो हे. या विवेकसु आप वंचित हो रहे हो. और जब या विवेकसु आप वंचित हो रहे हो, तो आप पुष्टिमार्गमें दुःखके बीज खुद बो रहे हो. ये बाहरकी कथा मैं नहीं कर रह्यो हूं. ये पुष्टिमार्गीय दुःख अथवा क्लेश कैसे पैदा होवे ये बात महाप्रभुजीने समझायी हे.

(क-४ आग्रहको क्लेश)

अब **''क-४ अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्र-दर्शनम्''** (वि.धै.आ.५) हर बखत अपने धर्मको आग्रह रखनो ये एक अच्छी बात हे. पर हठको आग्रह रखनो, मशीनकी तरह जड़ हो जानो, तो महाप्रभुजी कहे हें के वो क्लेश पैदा करेगो और करेगो ही. कई लोग यों समझे हें के जैसे गोविंददास भल्ला हते वो जल भरते हते तो महाप्रभुजीने कही के ''तुम श्रीनाथजीके यहाँ मंडान्मेंसु लो'' उनने कही के ''देवअंश कैसे लेऊँ?'' वाके बाद महाप्रभुजीने कही के

''तुम हमारे यहाँसु लो'' तब उनने कही के ''गुरुअंश कैसे लऊँ?'' तब महाप्रभुजीने कही ''तो तुम सेवा छोड़ दो'' तो उनने सेवा छोड़ दी और बादमें केशवरायजीके यहाँ उनकी गति भयी. गोस्वामी बालक याकु या तरहसु कहे हें के या वार्ताके आधारपे देवद्रव्य खानो चहिये. ये तो ऐसी कथा भयी के जैसे कोईने महाभारतकी कथा सुनायी और पूछी के यामें तुम क्या समझे? तो उत्तर मिल्यो के जब द्रोपदी जैसी सतीके पांच पति हतें तो अपन् भी दो-एक रख सके हें न! कथाको सार तो यों होवे के द्रौपदीकु अर्जुन जैसे पाँच शूरवीर पति हतें, वो भी वाकु नहीं बचा सके, एक-दूसरेको मुंह देखते रहे. भगवान् हते तो सभामें लाज रेह गयी. नहीं तो बाकी क्या रेह गयो हतो? ये तो ग्रहण कियो नहीं. ऐसी फालतूकी बीन बजावे लग जाय के यासु देवद्रव्य खानो चहिये. या बातकु समझावेके लिए ये वार्ता नहीं हे. भल्लाजीकी वार्ता या बातकु समझावेके लिए हे के **''आपद्-गत्यादि-कार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा, अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्र-दर्शनम्''** धर्म और अधर्म को विवेक रखनो चहिये. धर्म क्या हे? अधर्म क्या हे? वाकु देखो. अपनी हठकु मत देखो. 'धर्म' मतलब कर्तव्य क्या हे? 'अधर्म' मतलब अकर्तव्य क्या हे? याको विवेक रखो. तुमने हठ पकड़ लियो के हम तो यों ही करेंगे तो भल्लाजीवाली गति होनी ही हे. तुम अपनो क्लेश खुद आमंत्रित कर रहे हो. भल्लाजीने अपनो क्लेश खुद आमंत्रित कियो. महाप्रभुजी शुरुआतसु ही ये बात समझाते आयें के क्लेशरहित होके सेवा करो. ऐसे ढंगसु सेवामत करो जामें क्लेशके अलावा कुछ नहीं होवे. श्रीनाथजीने खुद महाप्रभुजीकु सूचित कियो के **''तिहारे सेवक मोकु बहोत क्लेश देत हे''** महाप्रभुजी तुरत अड़ेलसु जतीपुरा तक, एक-एक घरमें तलाश करते भये पधारें के कौन श्रीनाथजीकु क्लेश दे रह्यो हे! हर वैष्णवकी सेवा सहज देखी पर जब भल्लाजीकु देख्यो तो लग्यो के इतने हठसु क्लेशसहित सेवाके बजाय, सेवा नहीं करनी बेहतर हे. इतने हठसु सेवा करवेसु प्रभुकु भी क्लेश

होवे हे. **''हठस्त्याज्यश्च सर्वथा''** ये महाप्रभुजीके विवेकको स्वरूप हे याके अंतर्गत भल्लाजीकु कही के ''तुम श्रीनाथजीके भंडारमेंसु ले लो.'' बात भल्लाजीने ठीक कही हती के ''देवद्रव्य कैसे लऊँ.'' तब महाप्रभुजीने ये नहीं कही के देवद्रव्य ले लो. समझो के देवद्रव्य खायो जा सकतो होतो तो महाप्रभुजी भी ये केह सकते हतें के देवद्रव्य खा लो, कौनने कही के नहीं खायो जा सके देवद्रव्य. जैसे आज-कल बालक केह रहे हे के ''अपनो ठाकुर तो देव ही नहीं हे. वो तो ब्रह्म हे. तो देवद्रव्य कहाँसु होयगो!'' महाप्रभुजी सुबोधिनीकी शुरुआतमें ये केह रहे हें के **''वन्दे श्रीकृष्णदेवम्''** (सुबो.मं.१) और वो कहे हे के कृष्ण देव ही नहीं हे. महाप्रभुजी भी केह सकते हतें के भल्लाजी, अपनो ठाकुर तो देव ही नहीं हे तुम यहांसु खा लो. पर महाप्रभुजीने ऐसे नहीं कही. उनने कही के ''चलो सच्ची बात हे. तुम मेरे यहाँसु ले लो.'' तो उनने कही के ''गुरुअंश कैसे लऊँ''

(देवद्रव्य-गुरुद्रव्यको विवेक)

अब यामें एक खास रहस्य समझवेको हे. वो आपकु या लिए समझानो चाहूं हूँ क्योंके निरंतर वैष्णवनकु या वार्ताके द्वारा बहकायो जाय हे. थोड़ो विषयांतर हे पर फिर भी मैं आपकु समझानो चाहूँ हूँ. या वार्ताको रहस्य ये हे के कोई भी द्रव्य, कौनको हे और कौनको नहीं हे, याके शास्त्रमें दो निष्कर्ष हें. वो द्रव्य वाके पास शास्त्रविहित प्रकारसु आयो या निषिद्ध प्रकारसु आयो? जैसे आपके खीसामें सौ रूपया हे. आप अनाज खरीदवे बाजार गये. दुकानदारने गेहूँके वाजिब दाम आपकु बताये. आपने अपने रूपया वाकु दिये और वासु अनाज लियो. अब ये आपको रूपया वाने लियो, ऐसो नहीं कह्यो जायगो. क्योंके बदलेमें वाने आपकु अनाज भी तो दियो हे. अब वो रूपया द्रव्य आपको नहीं रह्यो. क्योंके या प्रकारको जो विनिमय हे, वो शास्त्रविहित हे. जहाँ शास्त्रसु विहित विनिमय

हे और एकको द्रव्य या भांतिसु दूसरेके पास जावे तो वो द्रव्य पहलेको नहीं कह्यो जायगो. अब मानो के कोईने कोईके खीसामें हाथ डालके पैसा ले लिए. शास्त्रके अनुसार दूसरेको लियो भयो द्रव्य निषिद्ध प्रकार हे, ऐसो कह्यो जाय हे.

कड़ीवाले राजेश बावाने मोकु एक बड़ी मजेदार बात बतायी. उनके तातजी महाराज पुरुषोत्तमलालजीके कोई सेवक बम्बईमें रहते हते. बावा जब भी बम्बई पधारते तो उनसु अपनी आवश्यकताकी वस्तुएं मंगवाते. वो जब भी लाते तो दसके बीस करके लाते. एक दिन बावाकु ख्याल आ गयो के ये दसके बीस करके ला रहे हे. उनने उनसु कही के ''तुम तातजी महाराजके सेवक हो और या तरहसु हमकु ठगो हो!'' उनने कही के ''महाराज! बाहर तो सब आसुरीद्रव्य हे. दैवीद्रव्य तो आपके यहाँ ही हे. आपको नहीं लें तो और कौनको ले!'' अब ये तो बड़ी मुश्किल आ गयी दैवीद्रव्यकी. हर माल तुम दसको बीस करके दे रहे हो और ताना ये के दैवीद्रव्य तो आपके पास ही हे. तो प्रकार शास्त्रविहित नहीं हे. और कोई नहीं मिल्यो तुमकु ठगवेकु! एक गुरुको पोता ही मिल्यो! ऐसे सिद्ध पुरुष भी होवे हे दुनियामें.

आप भी सुनोगे तो आपकु लगेगो के वाने वैष्णव होते भये गुरुको द्रव्य खायो. पर यदि गुरु स्वेच्छासु कुछ दे रह्यो हे तो क्या एक-दूसरेकु भेंट देवेको अधिकार नहीं हे? बाप यदि स्वेच्छासु बेटाकु दे रह्यो हे तो क्या वाको ये अधिकार नहीं हे? दादाजीने हमकु कई चीज दी तो क्या हमकु लेवेको अधिकार नहीं हतो? ऐसे ही वैष्णव भी महाराजकु यदि स्वेच्छासु भेंट धर रह्यो हे तो क्या वो वैष्णवद्रव्य हो गयो? आप स्वेच्छासु यदि धर रहे हो तो वो आपको नहीं रह्यो हमारो हो गयो. याही तरहसु यदि हम स्वेच्छासु आपकु दे रहे हें तो वो हमारो नहीं रेहके आपको हो

गयो. पर यदि कोईसु ठगाई करके ले रहे हे तो वो परद्रव्य कह्यो जायगो.

अब समझो के श्रीजी प्रसन्न होके कोईकु अपनो कड़ा दे रहे हें तो वो श्रीजीको नहीं केहवायगो. वो जाकु दियो वाको केहवायगो क्योंके श्रीजीने अपनी प्रसन्नतासु वाकु दियो. पर यदि वह चुरायो श्रीजीके यहाँसु, तो वो 'परद्रव्य' केहवायगो. वा बखत महाप्रभुजीने ऐसी व्यवस्था करी हती के जो श्रीनाथजीकु व्रजवासीनूकी आड़ीसु भोग आवे वो भोग सरवेके बाद सेवक टहलूआनमें बांट दियो जाय. ये बात ख्याल रखियो के श्रीनाथजी घरकी प्रणालीसु या पुष्टिमार्गकी प्रणालीसु वहाँ नहीं बिराजे हते. वो देवालयकी प्रणालीसु ही बिराजे हते. या कारण वहाँ देवालयको प्रकार महाप्रभुजीने रख्यो हतो. याके कारण वार्तामें ऐसो स्पष्ट उल्लेख आवे हे के "तातें देवालयकी प्रणाली रखनी" यहाँ याके कारण महाप्रभुजीने ये आज्ञा करी के श्रीनाथजीके यहाँसु ले लो. व्यर्थमें इतनो क्लेश क्यों करो हो! वामें सोचे समझे बिना भल्लाजीने कही के "देवद्रव्य कैसे लऊँ!" तो महाप्रभुजीने कही के "चलो तुमकु ऐसो लगतो होय के श्रीनाथजीको प्रसाद देवद्रव्य हे", जबकि वो व्यवस्था महाप्रभुजीने श्रीनाथजीकी आज्ञाके अनुसार ही खड़ी करी हती, तो श्रीनाथजी ही देनो चाह रहे हते. श्रीनाथजी देनो चाह रहे हते ये अपनूकु नहीं पता चल सके हे. पर महाप्रभुजीकु तो पता हती के श्रीनाथजीकी कैसे बिराजवेकी इच्छा हे. यासु ही महाप्रभुजीने वो व्यवस्था खड़ी करी हती. तब महाप्रभुजीने उनकु दूसरो विकल्प दियो के "मेरे यहाँसूं ले लो." अब जब महाप्रभुजी स्वयं देनो चाह रहे हें तो वो गुरुद्रव्य कैसे भयो? वार्ता पढ़ोगे तो आपकु पता चलेगो के प्रायः महाप्रभुजी गुसांईजी के पास जितने वैष्णव आते हतें उनकु महाप्रभुजी गुसांईजी प्रसाद लिवाते हतें. उनके मनमें कभी ऐसो भाव नहीं आतो हतो के गुरुद्रव्य हम कैसे खावें. क्यों? क्योंके कोई वैष्णव चोरके प्रसाद नहीं खातो हतो.

महाप्रभुजी उनकु स्वयं लिवाते हतें. जब गुरु स्वयं प्रसाद लिवा रहे हें तो वामें गुरुद्रव्यको प्रश्न कहाँ उपस्थित भयो? पर वाने हठ पकड़ी हती न! तो वा हठके कारण वाने सोच्यो के हम गुरुद्रव्य क्यों ले? तो महाप्रभुजीने कही के सेवा छोड़ दो, वो पाछे स्वीकार ली. हठके कारण केशवरायजीके यहाँ मुसलमान हाकिमके हाथ उनकी बादमें अनहोनी गति भयी.

या वार्ताको उद्देश्य ये बतानो नहीं हे के देवद्रव्य या गुरुद्रव्य खायो जा सके हे. न तो देवद्रव्य खायो जा सके हे और न गुरुद्रव्य खायो जा सके हे. पर यदि देव या गुरु चलके स्वयं दे रह्यो हे, तो वो न देवद्रव्य रेह गयो, न गुरुद्रव्य. वो अपनो हो गयो. ऐसे ही जब वैष्णव अपनी ओरसु गुरुकु या देवकु भेंट करे, तो वो गुरु या देव को द्रव्य केहवायगो, वैष्णवको द्रव्य नहीं केहवायेगो. ये बात इच्छया एक-दूसरेकु देवेकी हे. जैसे कन्याको अपहरण कब केहवावे? जब माता-पिता वाके दानकी इच्छा न रखते होंय, जैसे संयुक्ताकु पृथ्वीराज उठाके ले गयो, वो 'अपहरण' केहवावे हे. पर यदि माता-पिता स्वयं कन्याको विवाह करनो चाहते होंय और जमाई जब कन्याकु ले जाय तो वाकु अपन् ये तो नहीं कहेंगे के वो कन्याकु हरके ले गयो. क्योंके लड़कीके माता-पिता कन्यादान चाह रहे हें. अब वो कन्या माता-पिताकी नहीं रेह गयी, जमाईकी हो गयी. कितने हद तक, माता-पिताके यहाँ कोई मरे तो अविवाहित कन्याकु दस दिनको सूतक लगे पर विवाहित कन्याकु या घरको केवल तीन दिनको सूतक रेह जाय. पर पतिके घरको दस दिनको सूतक पालनो पड़े हे. जब देवेवालो वाकु देनो चाहे हे और लेवेवालो वाकु ले रह्यो हे तो वो अपहरण नहीं केहवावे, अपहार अथवा दत्तापहार नहीं केहवावे हे. ये वार्ता ये केहवेकी नहीं हे के देवद्रव्य खानो चहिये और नहीं खाओगे तो भल्लाजी जैसी दुर्गति होयगी. ऐसी-ऐसी गलत पट्टी पढ़ावे हें. न देवद्रव्य

खायो जा सके हे, न गुरुद्रव्य खायो जा सके हे. पर यदि देव स्वयं दे रह्यो हे तो वो देवद्रव्य नहीं केहवायगो. ऐसो कई वार्तान्में याको उल्लेख आवे हे के श्रीनाथजी अपने बंटाको लड्डू खुद दे आये. मट्टूजी महाराजको प्रसंग हे. वो जब चार बरसके छोटे हते तब छुपके श्रीनाथजीकी शैयाके नीचे सो गये. अनोसर होवेके बाद रातकु उनकु भूख लगी तो श्रीनाथजीने अपने बंटामेंसु उनकु लड्डु दियो के लो खाओ. तो क्या उनने देवद्रव्य खायो? नहीं जब श्रीजी स्वयं दे रह्यो हे और अपन् नहीं ले रहे हें तो अपन् दुर्भागी हें. वो देवद्रव्य नहीं केहवावे हे. ऐसे ही गुरु स्वयं दे रह्यो हे और अपन् नहीं ले रहे हें तो अपन् दुर्भागी हें. पर एक-दूसरेकु छल करके एक-दूसरेकी इच्छाके विरुद्ध कोई वस्तु ली नहीं जा सके हे.

कोई भी चीजको आग्रह यदि करनो होय तो धर्म और अधर्म को विवेक करो. मानें क्या कर्तव्य हे, क्या कर्तव्य नहीं हे, या बातको विवेक करो. या बातको हठ मत पकड़ो के तुमने जो सोच्यो वो ही सच हे. या बातको आग्रह मत रखो. ऐसो सोचवेसु कहीं न कहीं वो दुःखको कारण बनेगो और वामेंसु ऐसो धुआँ छूटेगो के वो तुम्हारी आँखमें और जिनकी तुम सेवा कर रहे हो उनकी आँखमें भी जलन पैदा करेगो. ऐसो धुआँ अपन्कु नहीं पैदा करनो चहिये. **''विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति.''** या प्रकारको धुआँ अपनी सेवाके प्रकारमें पैदा नहीं होवे, याके निवारणके लिए महाप्रभुजीने विवेकधैर्याश्रयमें विवेकके चार उपाय बताए हें. अब धैर्यको विवेचन अपन् कल करेंगे.

(धैर्यसु अक्लेश)

''प्रभुकु धुआँ अप्रिय हे'' और **''धुआँ क्लेशरूप हे''** या प्रसंगमें, विवेकधैर्याश्रयके विवेचनमें चार प्रकारके अविवेकन्के उपचारको दर्शन

कियो. यामें प्रार्थनात्मक क्लेश, अभिमानात्मक क्लेश, हठको क्लेश और आग्रहको क्लेश, इन बातनूको विचार कियो.

याके बाद विवेकधैर्याश्रयमें धैर्यको निरूपण आयो हे और वा धैर्यकी साधनाके चार उपाय बताये हे. धैर्यकी परिभाषामें महाप्रभुजी कहें के **''त्रिदुःख सहनम्''** आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक तीनों दुःखनूकु सहन करनो याकु 'धैर्य' कहे हें. पर साथ ही साथ महाप्रभुजी या बातको खुलासा करे हें के इन दुःखनूकु सहन करवेके उपाय कितने हें. वे आपने चार उपाय बतायें. सहज प्रतिकार, सहन और जिन कारणनूसु दुःख हो रह्यो हे ऐसे वाचिक कायिक मानसिक व्यापारनूकु आरंभ ही नहीं करनो. अनारंभ और असामर्थ्य की भावना भी अपन् केह सकें. ये चार उपाय बताये, जिनसु धैर्य भली प्रकारसु निभ सके हे. पहले मैंने आपकु ये बात समझायी हती के धैर्य और वाकु निभावेके उपायनूमें क्लेश प्रकट नहीं हो रह्यो हे. पर याकु उल्टो करें तो क्लेशस्वरूप प्रकट होयगो. जैसे प्रतिकारको उल्टो करेंगे तो अप्रतिकार. सहनको उल्टो करेंगे तो असहन. **''स्वयमिन्द्रिय-कार्याणि काय-वाङ्-मनसा त्यजेत्''** (वि.धै.आ.८) काया वाणी और मन सु अनारंभ, मानें जिन कारणनूसु दुःख हो रह्यो हे, वा तरीकेके कायिक व्यापार या वाचिक व्यापार या मानसिक व्यापार कु नहीं करनो. क्योंके नहीं करें तो दुःख ही नहीं होय, क्लेश ही नहीं होय. पर यदि करें तो वो दुःखरूप हो जाय हे और सबसु बड़ी बात महाप्रभुजीने अंतमें आज्ञा करी के सारो दुःख अपने आपकु अपन् समर्थ माने हें तो होवे हे. जब अपने आपकु समर्थ नहीं मानें तो आधे दुःख अपने आप दूर हो जाय हें.

अभी गये साल आस्ट्रेलियासु एक प्रॉफेसर् भारत घूमवे आये हते. मेरो और उनको परिचय भयो. वो जब आये तो बहोत उत्तेजित हते. मैंने उनसु पूछी के कौन बातपे आप इतने उत्तेजित हो. तो

उनने मोकु कही के ''मैंने यहाँ फुटपाथपे लोगनूकु नहाते देख्यो हे. हमारे देशमें ऐसी स्थिति यदि कोईकी हो जाय तो देशमें विद्रोह हो जाय.'' मैंने कहीके ''यहाँ तो सब गरीब ऐसे ही नहावें हें.'' तब उनने कही के येही बात मोकु उत्तेजित करे हे के यहाँको गरीब कितनो असमर्थ माने हे. गरीब हमारे देशमें भी हें पर ऐसी स्थितिमें यदि वे आ जावें तो बगावत कर देंगे. सरकारकु चलवे नहीं देंगे. वाके बाद एक और बात वाने बतायी के छोटे बच्चानूकु फुटपाथपे नहाते देखके उनने पूछी के ''फोटो खींचे तुम्हारो.'' तो बच्चानूने हंसके फोटो खिचवाये. उनके यहाँ हंसनो तो दूर या स्थितिमें मारामारी हो जाय यदि कोई ऐसी स्थितिमें फोटो पाड़वेकी पूछे तो!! अपने भारतकी संस्कृतिमें वो बात रही भयी हे. तो या लिए महाप्रभुजी केह रहे हें **''अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्य-भावनात्''**

(आश्रयसु अक्लेश)

और महाप्रभुजी ये भी केह रहे हें के इन चारों उपायनूमेंसु कोई भी उपाय तुमसु नहीं होय तो भी चिंताकी बात नहीं हे. **''अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वम् आश्रयतो भवेत्''** तुमसु इन चारोंनूमेंसु कोई भी उपाय नहीं कियो जा सके हे तो तुम भगवानूके शरणकी भावना करो. जो भी कुछ विवेक और धैर्य हे, वो भगवदाश्रयसु सिद्ध होयगो. महाप्रभुजीके बताये उपायनूकु उलटफेर करवेसु पुष्टिमार्गमें कैसे क्लेशरूपता आवे हे, ये आपकु समझावेको प्रयास कियो. यामें ध्यानसु समझवेकी बात ये हे के अपनूकु भगवत्सेवा करनी हे और भगवत्सेवा प्रभुकु सुख देवेके बजाय असुख देवेवाली हो जायगी. क्योंके क्लेशयुक्त सेवाकी अपेक्षा न तो प्रभुकु हे और न अपनूकु हे. जा सेवाके प्रकारसु अपनूकु क्लेश होतो होय; मनमें वाणीमें कायामें आस-पड़ोसमें या परिवारमें, वा सेवाके प्रकारपे काबू पानो चहिये. मूल बात अपनी ये हती. क्योंके ये जो क्लेश हे वो ऐसो धुआँ हे के जासु अपनी आंखमें जलन होनी स्वाभाविक हे.

(विवेक-धैर्यकी पृथक्ता और अविवेकको स्वरूप)

यामें धैर्यकी बात और विवेककी बात कहाँ पृथक हो रही हे वो समजो! जैसे अपन् अपने घरमें ठाकुरजीकी जो सेवा कर रहे हें, वामें ठाकुरजीको एक पेहलु कृष्ण हे, एक पेहलु भगवान् हे, एक पेहलु परमात्मा हे और एक पेहलु ब्रह्म हे. ऐसे ही अपन् जो सेवा कर रहे हें वा सेवाको एक पेहलु ब्रह्मसंबंध हे, एक पेहलु परमात्मस्नेह हे, एक पेहलु भगवन्माहात्म्यज्ञान हे, एक पेहलु कृष्णकथा हे और एक पेहलु तनु-वित्तजासेवा हे. कृष्णकथाकी भावनाको एक पेहलु हे और अपन् तक जो पहुंच रह्यो हे वो तनुवित्तजा हे. मानें अपने धनसु अपने तनसु अपने परिवारजनन्के साथ जो सेवा कर रहे हें, वो वाको निष्कृष्ट पेहलु हे. यामें जो बात ध्यानसु समझवेकी हे वो हे ब्रह्मसंबंधको जो करण बतायो, वामें क्लेशको कोई बहोत बड़ो प्रसंग नहीं हे. पारमात्मिकस्नेहकी बात बतायी वामें कोई क्लेशको बहोत बड़ो प्रसंग खड़ो नहीं होयगो. पर जहाँसु भगवन्माहात्म्यकी बात शुरु होवे हे, वहाँसु क्लेशको प्रसंग खड़ो होनो शुरु होवे हे. क्योंके भगवन्माहात्म्यके कारण अपन्कु भगवान्के साथ अविवेक करवेकी इच्छा होवे हे. महाप्रभुजीने समझायी के भगवान्सु प्रार्थना मत करो. अब प्रार्थना नहीं करें तो अभिमान हो जाय. ये भी समझायो के अभिमान भी मत करो.

(ब्रह्म-परमात्माके पेहलुमें क्लेशकी अप्रासंगिकता)

भागवतमें वाकु बहोत सुंदर ढंगसु समझायो हे के माँके पेटमें जा बखत बच्चा होवे वाकी लात क्या माँकु नहीं लगे हे? या जब बच्चा गोदीमें होवे तो क्या माँकु लात नहीं मारे हे? पर वा लातकु कौन माँ अपमान मानेगी? वाकु कोई माँ अपमान नहीं माने हे. क्योंके माँ अपने बच्चाकु संजोके बैठी भयी हे. वाकी लात अपमान नहीं हे. पर जब बच्चा पेटमें भी नहीं हे और गोद भी छोड़ दे हे और फिर लात मारे तबसु अपमानको प्रसंग

खड़ो हो जाय हे. भागवत या बातकु समझावे हे के **"किम् अस्ति नास्ति व्यपदेशभूषितं"** तुम ब्रह्म हे, ये कहो. ब्रह्म नहीं हे, ये कहो. परमात्मा हे, ये कहो. परमात्मा नहीं हे, ये कहो. तुम्हारे ऐसे केहवेसु ब्रह्म या परमात्मा के अस्तित्वमें न तो कोई प्रश्न खड़ो होवे हे, और न वाको अनादर ही होवे हे, तुम्हारी या प्रकारकी लातन्सु. क्योंके तुम वाके पेटमें हो वाकी गोदमें हो. **"उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुः अधोक्षजागसे, किम् अस्ति नास्ति व्यदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियद्अपि अनन्तः"** (भाग.पुरा.१०।१४।१२) गर्भस्थ बालक यदि माँके पेटमें लात मारे तो क्या वो लात लगी केहवायेगी? तुम ब्रह्मकु परमात्माकु 'हे' कहो, 'नहीं हे' कहो वासु कोई फरक नहीं पड़े हे. क्योंके तुम वाके भीतर हो और वो तुम्हारे भीतर हे. तुम 'हाँ' केह रहे हो तो तुम अपने आपकु 'हाँ' केह रहे हो. तुम 'ना' केह रहे हो तो तुम अपने आपकु 'ना' केह रहे हो. वामें वाको क्या अपमान?

(भगवान्के पेहलुमें अविवेकको प्रसंग)

पर जहाँ भगवान्को पेहलु आवे हे वहाँ 'हाँ' 'ना' को पेहलु प्रकट हो जाय हे. क्यों? क्योंके ब्रह्म तुम भी हो सको हो, परमात्मा तुम्हारे भीतर भी छुप्यो हो सके. पर जो भगवान्वालो पेहलु हे, वाको कुछ माहात्म्य हे के अपन् अज्ञानी हें वो सर्वज्ञानी हे. अपन् अनीश्वर हें, वो सर्वेश्वर हे. अपन् असमर्थ हें, वो सर्वसमर्थ हे. अपनो कोई आध्यात्मिक आधिदैविक यश नहीं हे, वाको यश हे. अपन् संसारमें अनुरक्त हें, वो विरक्त हे. ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य वामें सहज हे. अपन्में ये गुण होयगो भी तो हासिल किये भये होयगे, सहज नहीं होंयगे और सीमित होंयगे, असीमित नहीं हो सके हें. महाप्रभुजी एक बहोत सुंदर बात कहे हें के दुनियाभरकु जीतके आवे आदमी और घरमें पत्नीकी पिटाई सहन करनी पड़े हे. तो ऐश्वर्य कहाँ गयो? ये बात समझवेकी हे के

अपनो ब्रह्मके साथ तादात्म्य हो सके हे पर जो भगवान्को माहात्म्य अपन्में नहीं हे. यासु ही जब अपन् भगवान्कु अस्वीकार करे हें तब सारे प्रश्न पैदा होवे हें के ये उचित हे के अनुचित हे. बिलकुल वाही तरहसु के जब बच्चा बड़ो हो जाय और फिर माँकु लात मारे तो ये उचित काम हे के अनुचित याको प्रश्न खड़ो होवे हे. लात नहीं केहवावे हे. ऐसे ही ब्रह्म और परमात्मा के पेहलुमें लात, लात नहीं हे. कोई निंदा,निंदा नहीं हे. कोई अस्वीकृति, अस्वीकृति नहीं हे. क्योंके वो तो अपनी हकीकत हे. पर भगवान्के पेहलुमें स्वीकृतिको कोई एक मतलब हे. स्वीकृति आस्तिकता हे, अस्वीकृति नास्तिकता हे. स्वीकृति ईश्वरवादिता हे, अस्वीकृति अनीश्वरवादिता. स्वीकृति शास्त्रके आधारपे समुचित श्रद्धा हे, अस्वीकृति अपने बौद्धिक तर्कन्को दुरुपयोग हे. ये सब कब उठे के जब भगवान्के माहात्म्यको प्रश्न उठ्यो तब.

(कृष्णके पेहलुमें अविवेकको प्रसंग)

ऐसे ही कृष्णके बारेमें भी जब बात आवे के कृष्णकी स्वीकारिता और अस्वीकारिता, मानें गिन्यो जा सके ऐसो विचार, व्यवहार, भाव जासु कुछ निष्कर्ष निकाल्यो जा सकेगो. ब्रह्म और परमात्मा पे कोई निष्कर्ष नहीं निकल सके हे.

(गृहठाकुरके पेहलुमें अविवेकको प्रसंग)

अब अपने दायराकु और थोड़ो संकीर्ण करें तो अपने घरके ठाकुरकु तुम स्वीकार रहे हो के नहीं! औसतन पुष्टिमार्गीय घरके ठाकुरकु आलू-मूलीकी तरह माने हें. मंदिरन्में बिराजते ठाकुरके वैभवसु वाको बड़ो माहात्म्य माने हें. ये मूलमें पुष्टिमार्गीय भावनासु सर्वथा विपरीत बात हे. क्योंके वार्तान्कु याद करो, जहाँ प्रत्येक वैष्णवकु महाप्रभुजी जब ठाकुर पधरातें तो केहतें के **"मैं तोकों अपनो सर्वस्व पधराय रह्यो हूँ. तू याकों अपनो सर्वस्व करि जानियो."** हर वैष्णवके

घरमें जो ठाकुर बिराज रह्यो हे उनकु वा वैष्णवकु अपनो सर्वस्व माननो चहिये. और दूसरे ठाकुरजीके अनादरको प्रश्न नहीं हे पर अपने घरके ठाकुरकु अपनो सर्वस्व माननो चहिये. ये बात गुंसाईजीकी वार्तामें आवे हे के जब सात स्वरूपको मनोरथ हो रह्यो हतो तब शोभा बेटीजी दरसन करवे पधारें तो गुंसाईजीने उनसु पूछी के तुम अपने ठाकुरकी सेवासु पहुँची? तब उनने कही के वो तो मेरे घरको ठाकुर हे, वासु तो कभी भी सेवासु पहुँच लऊँगी, ये दरसन मोकु कहाँसु मिलते! वार्तामें स्पष्ट आवे हे के **"तब आप खीजिकें, गारी देके कहे 'जो तेरे यहाँ कोऊ और बिराजत हे?'"** जब अपन् अपने माथे बिराजते ठाकुरजीकु सर्वस्व मानिके सेवा करेंगे तब तो वा सेवामें पुष्टिमार्गीयपनो आयगो. अन्यथा तो सेवामें पुष्टिमार्गीयपनो नहीं आयगो. ये सेवाको पेहलु हे यामें क्लेशको प्रश्न बहोत बढ़-चढ़के आ रह्यो हे. ब्रह्म और परमात्मा के पेहलुमें वो क्लेशको प्रसंग नहीं आ सके हे.

भगवान् कृष्ण और घरको ठाकुर, इनमें घरके ठाकुरमें क्लेशको प्रसंग सबसु बढ़-चढ़के आयगो. वो अपन्कु आज समझनो हे. तो जब अपन् घरके ठाकुरकु कोई प्रार्थना कर रहे हें वो वाके कौनसे पेहलुसु प्रार्थना कर रहे हें? वाके भगवान्वाले पेहलुसु. क्योंके भगवान् सर्वसमर्थ हें और अपन् असमर्थ हें अपन् अपनी असमर्थताके पेहलुसु भगवान्कु प्रार्थना कर रहे हें. अपन् भगवान्के सर्वसमर्थ होवेके पेहलुकु तो स्वीकार रहे हें, पर वाके सर्वज्ञके पेहलुकु अस्वीकार रहे हें. क्योंके सर्वज्ञ होय तो प्रार्थनाकी जरूरत क्या हे? जो तुम्हारी तकलीफ हे वाकु तो वो सर्वज्ञ होवेके कारण जाने ही हे. वाकु तुम और अधिक क्या जताओगे! अपन् भगवान्की हकीकतकु आधी-अधूरी स्वीकारे हें. वाकु सर्वसमर्थ तो जाने हें पर सर्वज्ञ नहीं माने हें. वा भगवान्की अधूरी हकीकत जानवेसु कुछ मनमें अविवेक पैदा होयगो, ये अविवेकको स्वरूप हे.

जैसे अक्सर मैं एक बात समझाऊँ के अपन् अपनी लड़कीको ब्याह करे हें. वामें वाकु गहना-जेवर देवें. फिर भी अपन्कु डर लगतो होवे के जमाई खा तो नहीं जायगो. गहना-जेवर अपन् घर रखें और लड़कीकु सुसराल भिजवा दे. मतलब साफ हे के कीमती लड़की नहीं हे, कीमती गहना-जेवर हे. लड़कीकु जला दे तो चलेगो पर गहना जेवर खा जाये जमाई, ये नहीं चलेगो. मतलब अपने मनमें कैसो अविवेक हे के जा लड़कीकु अपन् ब्याह रहे हें वाके बारेमें अपने कैसे ख्याल हें!

ये अपने हिन्दुस्तानकी बड़ी विकराल हकीकत हे के आदमी कन्यासु शादी नहीं करके वाकी सम्पत्तिसु शादी करे हे. अपने देशको ये बड़ो दुर्भाग्य हे पर यासु बड़ो दुर्भाग्य ये हे के माँ-बाप भी लड़कीकु ब्याहके भेज दे हें और सम्पत्तिकु रख ले हें के खा न जाय. तो जा लड़कीकु अपन् स्नेह कर रहे हें वासु ज्यादा अपन् सम्पत्तिसु स्नेह कर रहे हें. और अपन् ये भी सोच रहे हें के सम्पत्ति तो लड़कीकी हे. अरे भई! सम्पत्ति अगर लड़कीकी हे तो तुम क्यों चिंता कर रहे हो, वाकु छोड़ दो. ऐसे आधे-अधूरे विवेकन्सु, अधकचरे विचारन्सु, जीवनमें क्लेश होवे हे, होवे हे और अवश्य होवे हे. अपन् अपनो विचार स्पष्ट रखें तो बहोत सारी क्लेशकी बातें दूर हो जाय.

(अहंतासु अविवेक)

या तरहसु भगवान्के पेहलुसु प्रार्थना करवेमें, या भगवान्सु प्रार्थना नहीं करनी हे, या अभिमानकु रखवेमें के भगवान् क्या करेगो? जो कुछ करनो हे सो तो हमकु ही करनो हे, कुछ न कुछ क्लेश तो होवे ही हे. बहोत सारे लोग ऐसे सोचे हें के भगवान् क्या करेगो? कर्म तो हमकु करनो हे. ईश्वर क्या करेगो? फल तो हमें अपने कर्मन्सु मिलेगो. ईश्वर ज्यादासु ज्यादा क्या करेगो?

हमारे कर्मन्के अनुसार ही तो फल देगो. या प्रकारको अभिमान अपनेमें जगा ले हें. अब सोचो के कर्ममें इतनो बड़ो सामर्थ्य होतो तो आदमीके भीतर ये विडंबना पैदा ही नहीं होनी चहिये हती के जा कर्मकु वो सच्चो मान रह्यो हे, अच्छो मान रह्यो हे, वा कर्मकु करवेमें वाको स्खलन क्यों होवे? जैसे जा व्यक्तिने सब कुछ त्याग दियो, संन्यास ले लियो. जैसे मैंने कल आपकु बात बताई हती के हरिद्वारमें कई आश्रमन्में टी.वी.के अँटीना लगे भये हे, एयर्कंडिशन् लगे भये हें. कई आश्रमन्में कुत्ता पाले भये हें. यदि तुमने संपत्ति त्याग दी हे तो फिर इकड्डी करवेकी आवश्यकता क्या?

एक आश्रममें मैं एक बार गयो हतो. वहाँ लोगन्ने कही के आप हमारे यहाँ भोजन करो. मैंने कही के मैं तो यहाँ तीन दिनके लिए एक कॉन्फरन्समें आयो हूँ. मेरे पास तीन दिनके लिए एक डिब्बामें अपने ठाकुरजीको प्रसाद हतो तो अपन्कु वहाँ क्यों खानो? अंतमें वो मेरे पीछे पड़ गये के नहीं आपकु तो कुछ न कुछ हमारो आतिथ्य स्वीकार करनो पड़ेगो. मैंने उनकु कही के देखो, आप लोग संन्यासी हो, मैं गृहस्थ हूँ. आप लोगन्कु मेरे यहाँ आतिथ्य स्वीकार करनो चहिये. गृहस्थको संन्यासीके यहाँ क्या आतिथ्य? उनने कही के नहीं कुछ तो आपकु लेनो ही पड़ेगो. जब उनने बहोत कही तो मैंने कही के चलो आप क्या दे रहे हो. उनने अपनो कबाट खोल्यो तो आप मानोगे नहीं के वाकु देखके मेरी आँखें चोंधिया गयी. कोई गृहस्थीके घरमें इतनी गिफ्ट्-आईटम् नहीं होंयगी ऐसी आईटमन्सु कबाट भर्यो हतो!

यदि अपन्ने सब कुछ त्याग दियो हे और कर्मके लिए अपन् इतने स्वतंत्र हें के परमेश्वर क्या करेगो? जो कर्म करनो हे सो करनो हे. ये बात तो साफ हे के जब अपन्ने संन्यास लियो

तब वामें ये सोच्यो के जो कुछ होनो हे हमारे त्यागसु होनो हे, वामें परमेश्वर क्या करेगो? फिर त्याग तुमसु बराबर क्यों नहीं हो पावे? अपन् पुष्टिमार्गके संदर्भमें सोचें के अपन्ने ब्रह्मसंबंध लेके ये संकल्प कियो के हम सब कुछ समर्पण करेंगे. हमारे घरमें, हमारे तनसु, हमारे परिवारके सब जन हिल-मिलके तेरी सेवा करेंगे. वो संकल्प अपनो क्यों पूरो नहीं हो पावे! यदि कर्ममें इतनो सामर्थ्य होतो तो ये सब होनो चहितो हतो.

हमारे दादाजीके पास एक क्रान्तिकारी जैनमुनि आते हते. मैं तब छोटो हतो पन्द्रह सोलह बरसको. उनने मोसु पूछी के आप जीवनमें क्या करनो चाहो हो? मैंने उनकु कही के "अभी कुछ नक्की नहीं हे के क्या करनो हे." तब मैं दादाजीसु पढ़ रह्यो हतो. उनने कही "ऐसे कैसे चलेगो? आपकु संकल्प करनो चहिये के क्या बननो हे, क्या करनो हे ये आपकु पता होनी चहिये के कर्मकी इतनी सामर्थ्य हे के यदि आप संकल्प करो तो तीस दिनके भीतर भारतके राष्ट्रपति बन सको हो." मैं छोटो हतो चकरा गयो के मुनिजी बहोत बड़ी बात कर रहे हे. अपन् यामें क्या कर सके हें? थोड़े दिन बाद वो मुनिजी अमेरिका गये. वहाँ जाके उनने शादी कर ली. मुनि होवेके संकल्पको क्या भयो? ऐसो विचार मोकु आयो. जब तुमने संकल्प कियो और वा संकल्पकी, कर्मकी शक्ति इतनी मान रहे हे. मुनि हो गये फिर अचानक शादी क्यों कर ली?

बात साफ हे के अपन् कर्म कर सके हें, नहीं कर सके हें ऐसी बात नहीं हे. पर कर्मकी शक्ति इतनी नहीं हे के वा कर्मके कारण अपन् ये दावा कर सकें के अपन् ये कर्म करेंगे तो ये बन जायेंगे. अपन् करनो चाहें तो भी नहीं कर सके हें.

दुर्योधनको एक बड़ो सुंदर वचन हे "**जानामि धर्मं नच मे**

प्रवृत्तिः, जानामि अधर्मं नच मे निवृत्तिः. केनापि देवेन हृदि स्थितेन, यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि" (पाण्डवगीता.५७) मैं जान रह्यो हूँ के धर्म क्या हे, अधर्म क्या हे. पर वो धर्म मोसु पाल्यो नहीं जाय हे. वो अधर्म मोसु छोड्यो नहीं जाय हे. ये क्या स्थिति हे मेरी! "**केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि**" परमात्मा मेरे भीतर बैठके आँखकी पुतलीकी तरह मोकु नचा रह्यो हे, वा तरहसु मैं नाच रह्यो हूँ.

अपन् या बातकु भी जाने हें के हर मिनिस्टर् जब वो सौगंध ले हे के भारतके हितमें संपूर्ण कार्य करेंगे. भारतको जामें अहित होय वो कार्य नहीं करेंगे. पर बनवेके बाद अपने ही हितको कार्य करते होवे हें, भारतके हितको कोई विचार नहीं करे हें. वा संकल्प-सौगंधको क्या भयो? ये सब उदाहरण मैं आपकु या लिए दे रह्यो हूँ के ये केवल धर्मके क्षेत्रकी, राजनीतिके क्षेत्रकी, अध्यापनके क्षेत्रकी कथा नहीं हे. डॉक्टर् जा बखत डॉक्टर् बने हे वा बखत एक शपथ दिवायी जाय हे के या ज्ञानसु तुम जनताकी सेवा करोगे. कभी जनताको आर्थिक शोषण नहीं करोगे. पर हर डॉक्टर् कितनो शोषण कर रह्यो हे! मेरे दांतमें एक दिन दर्द भयो तो मैं एक डॉक्टरकु दिखावे गयो. वा डॉक्टरने कही के तुम्हारे तो सब दांत सड़ गये हें, सब निकालने पड़ेंगे. ये आजसु आठ-दस बरस पहलेकी बात हे. वाने कही के सारे दांत तोड़ने पड़ेंगे और हर दांत तोड़वेके डेढ़ सौ रूपया. मैंने सोचीके डेढ़ सौ रूपया तो दे दऊँ पर सारे दाँत तुड़वाने पड़ेंगे. मैं रघुनाथलालजीके पास गयो. उनने कही के तुम कोई डॉक्टरके चक्करमें मत पड़ो, एक वैद्यको मंजन हे, वो करो. आज-तक एक भी दाँत निकलवावेकी जरूरत नहीं पड़ी. देखो, जाने ये संकल्प लियो के वो जनताकी सेवा करेगो वो जनताकी सेवा कर नहीं सके हे. ये सब तो बहोत बड़ी बात हे. एक छोटेसे विद्यार्थीकु लो, जाने संकल्प लियो हे के वाकु मॅट्रिकमें पास

होनो हे. पर वो भी परीक्षा पास आवे तब ही पढ़े हे. बाकी आखो बरस वाकु पढ़ाईमें मन नहीं लगे हे. वाकु कहो के तेने संकल्प लियो हे के तू मॅट्रिक्में पास होयगो, तू पढ़. पर वो नहीं पढ़े हे, पढ़ नहीं सके हे. अपने कर्मनकी इतनी शक्ति होती के जो भी अपन् संकल्प करें, वो कर ही सकते होते, तो मनुष्यकी ये अवस्था होनी नहीं चहती हती. ये या बातको प्रमाण हे के अपने भीतर सामर्थ्य नहीं हे. संकल्प हो सके हे. कोई बखत सामर्थ्य होवे हे पर संकल्प नहीं होवे हे. जैसे हनुमानजीकी कथामें आवे हे के हनुमानजीमें समुद्रकु लांघवेकी सामर्थ्य हती, पर उनकु संकल्प नहीं हतो के जाऊं के नहीं जाऊं. तब सबने उनकु कही के तुम वायुके पुत्र हो तुमकु क्या तकलीफ हे! तब वो तैयार भये.

कभी अपने भीतर सामर्थ्य होवे तो संकल्प नहीं होवे हे, कभी संकल्प होवे हे पर सामर्थ्य नहीं होवे हे. या प्रकारकी अपने जीवनकी विवशताएँ हें. उन विवशताके रहते भये भी यदि अपन् या प्रकारको अभिमान रखें के भगवानसु प्रार्थना नहीं करनी हे. भगवान् क्या होवे हे? जो कछु करनो हे सो तो हम ही करेंगे. वो अभिमान अपनो निरर्थक हे. ये अभिमान अपने भीतर क्लेश पैदा करेगो ही. भगवानके सामने अपनो अभिमान टिकवेवालो नहीं हे. भगवान् अपनो अभिमान टिकवे नहीं देवे हें. न राजनीतिज्ञको न साधुको न शैतानको न शिष्यको न गुरुको. कोई न कोई स्थितिमें भगवान् एक झटका दे ही दे हें. जैसे गाड़ी दौड़ती होय हे और स्कूलके पास बम्पर् बना दे हे. अपने जीवनमें कई बम्पर् ऐसे आ जाय हें के अपने अभिमानके कारण दौड़ती भयी गाड़ी झटका खावे और नीचे गिरा देवे हे और अपनो नियंत्रण खो जाय हे. वा प्रकारकी स्थिति हे.

(अहंतासु जुडे नकारात्मक-सकारात्मक क्लेश)

यासु ही महाप्रभुजी केह रहे हें के यदि तुमकु क्लेशरहित सेवा

करनी हे तो तुमकु दो बातनकी सावधानी रखनी पड़ेगी. एक तो तुमकु प्रार्थना नहीं करनी हे. और दूसरी प्रार्थना नहीं करवेको अभिमान भी नहीं करनो हे. अभिमान नहीं करनो वाके लिए अपन् हठीले नहीं बनेगे. बिन हठीले रहेंगे. आग्रह अपन् ऐसो रखेंगे के धर्मत: क्या कर्तव्य हे और क्या अकर्तव्य हे, ये सारी बातें अपने विवेककी हे. और याको उलट अपनो अविवेक ही क्लेश बने हे. ये विवेक अपनी अहंताकी बुद्धिसु जुड़ी भयी बात हे. अपन् समझे हें के जो व्यक्ति चापलूस हे वामें अहंकार नहीं होय हे. ऐसो नहीं हे के जो व्यक्ति चापलूस हे वामें अहंकार नहीं होय हे. ऐसो नहीं हे, चापलूस व्यक्तिको अहंकार स्वयंसु संतुष्ट नहीं होवे हे तो वो दूसरेके कंधापे बंदूक रखके अपने अहंकारकु संतुष्ट करनो चाहे हे. याके विपरीत कई बार अपन् यों समझे हें के शेखी बघारवेवालो व्यक्ति अहंकारी होवे हें. पर कई बखत ऐसो व्यक्ति भीतरसु टूट्यो भयो होवे हे.

प्रार्थनाकी चापलूसी अथवा शेखीको अभिमान, अपनी अहंतासु जुड़े भये नकारात्मक या सकारात्मक क्लेश हें, जो अपनी सेवामें आड़े आ सके हें. प्रभुके सामने न अपनकु नकारात्मक अहंता करनी हे. 'नकारात्मक अहंता' मतलब चापलूसी करनी, 'सकारात्मक अहंता' मतलब अभिमान, हें दोनों अहंताके ही प्रकार. मैं एक बड़ो मजेदार श्लोक या संदर्भको आपकु सुनाऊँ. दो भक्त आपसमें मिलें. भक्त तो क्या, भक्ताभास कहें तो अधिक उचित हे. तो एकने कही के "आप कौन" तो वाने कहीं के "के यूयम् ? हरिपादपद्मनिरतश्रीपादपायूदक-क्लिद्यन्मूत्रलुठन्पिपीलकवधूदासा:" जो भगवदीय भये हें उनके चरण और शौचप्रक्षालनके लिये वापरे गये जलमें लोटने-पोटने वाली चींटीके दास हे. तो दूसरे भगवदीयको दैन्याभिमान आहत हो गयो सो वाने कही "ऐसे भगवदीय जब लघुशंका कर दे, वामें घास उगे, वा घासकु खावेवालो गधा, वा गधाके पैरपे लगी भयी जो रज हे, वो रज

हम हे!'' अपनो छोटोसो परिचय न देके इतनी दीनता प्रकट करनी और वामें भी पाछें कॉम्पिटीशन् के आपने कितनी बखत दासानुदास बोल्यो. दूसरो कहे के चार बखत. तो वाने कही के अच्छा! हम आठ बखत बोलेंगे दासानुदास, ले बेटा अब क्या करेगो! ये दैन्य भयो के अहंकार? अरे दैन्यमें भी पाछें अहंकार आड़े आ रह्यो हे. मनुष्यकी स्थिति ऐसी विकट हे जो दैन्य करके भी अपनो अहंकार छल जाय और अहंकार करके कभी दैन्य छल जाय हे. वा प्रकारको अपनो मानस हे. अविवेक अपनी अहंतासु जुड़े भये क्लेश पैदा करे हे.

(अधैर्यके कारण क्लेश और धैर्य[ख/१-४] सु अक्लेश)

अब अधैर्य अपनी ममतासु जुड़े भये क्लेश पैदा करे हे. क्योंके धीरज अपनो कब छूटे हे? जब जा वस्तुनूमें अपनने अपनी ममता जोड़के रखी हे और वा वस्तुनूमें जब-जब व्याघात आवे तब-तब धीरज छूटवे लगे हे! यासु ही अविवेक अपनी अहंतासु जुड़ी कथा हे और अधैर्य अपनी ममतासु जुड़ी कथा हे. अपने यहाँ ठाकुरजीकी सेवामें अपनी अहंताको भी विनियोग करनो हे और अपनी ममताको भी विनियोग करनो हे. अपनी अहंताको विनियोग अपन् अपने शरीरकु सेवामें लगाके और अपनी ममताको विनियोग अपने वित्त और अपने परिवार सु करे हें. यासु ही तनुवित्तजा सेवा कही. क्योंके तनु अपनी अहंताको प्रतीक हे और वित्त अपनी ममताको प्रतीक हे. यासु ही वा अहंता-ममताकु अपन् सेवामें जोड़ेंगे. अब वा जोड़वेकी प्रक्रियामें कई बखत ममताकु जोड़वेमें अपनो धैर्य छूटनो शुरु होयगो.

धैर्य क्यों छूटे हे वो महाप्रभुजी बता रहे हें के त्रिदुःख सहन करनो हे. कोई भी दुःख आ पड़े वाकु सहन करनो हे. और वा सहन करवेकी प्रक्रियामें कभी अपनो अहंकार छलवे आ जाय हे. जैसे हम भक्त हें और हमकु दुःख सहन करनो हे और करनो

ही हे, चाहे वाको प्रतिकार हो भी सकतो होय तो भी दुःख तो हम सहन करेंगे ही. या प्रकारको अप्रतिकारात्मक दुःख सहन करवेको अहंकार. दुःख यदि टाल्यो जा सकतो होय, फिर भी वाकु नहीं टालवेकी जो वृत्ति हे, वो धैर्य नहीं हे. कोई जातकी एक मानसिक अधीरता हे. जैसे कोई रोग छोटीसी दवाईसु मिट रह्यो हे. पर हम दवा नहीं लें और कहे के महाप्रभुजीने आज्ञा करी हे के **''त्रिदुःखसहनं धैर्यम्''** हम तो या दुःखकु सहन करेंगे. ऐसे करवेसु तो रोग बढ़ेगो और अंतमें क्लेश पैदा होयगो ही. अपने यहाँ वार्तामें बहोत सुंदर आवे हे के महाप्रभुजी और चैतन्य महाप्रभु जा बखत जगन्नाथपुरी पधार रहे हतें तो चैतन्य महाप्रभु बनमेंसु पधारें और महाप्रभुजी राजमार्गसु पधारें. पाछें जब दोनों एक-दूसरेसु मिलें तब चैतन्य महाप्रभुने कही के ''हम बनमेंसु गये तो बहोत आनंद आयो''. तब महाप्रभुजीने कही के ''बनकी अपेक्षा हम राजमार्गसु जानो अधिक पसंद करे हें.'' तब चैतन्य महाप्रभुने कही के ''क्यों आपकु प्रभुपे विश्वास नहीं हे?'' तब महाप्रभुजीने कही के ''ऐसी बात नहीं हे. हमकु तो प्रभुपे पूर्ण विश्वास हे पर हमारे बनमेंसु जावेके कारण प्रभुकु कितनो श्रम होवे हे, ये आपने विचार्यो?'' यदि दुःखको अपने द्वारा ही प्रतिकार हो सकतो होय तो व्यर्थ प्रभुकु क्यों श्रम दें? राजमार्गपे चलवेमें यदि अधिक सुरक्षा हे तो व्यर्थमें प्रभुकु क्यों श्रम देनो?

[ख-१] **प्रतिकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन् नाग्रही भवेत्.** त्रिदुःख सहन करनो ये अच्छी बात हे पर याको अर्थ ये नहीं हे के दुःखको प्रतिकार कियो जा सकतो होय तो भी दुःख सहन करनो. और यदि समझो के प्रतिकार नहीं हो सकतो होय तो सहन करनो.

[ख-२] **भार्यादीनां तथान्येषाम् असतश्चाक्रमं सहेत्** जो भी अपने परिवारके जन हें, अपने सम्पर्कमें आवेवाले जो असत् पुरुष हें,

वे सब तुमकु तकलीफ पैदा करेंगे, जब तुम सेवा करोगे. वाकु सहन करवेको तुम निश्चय करो. सहन तो करनो ही पड़ेगो. कोई भी काम होय जैसे ॲवरेस्ट्पे चढ़ें, ट्रॅकिंग् करें तो वामें कष्ट होय तो सहन करनो ही पड़े हे. अपन् रोग मिटावेके लिए ऑपरेशन् करावें, तो दस-पंद्रह दिन कुछ तो कष्ट सहन करनो ही पड़ेगो न!

ख-३ **स्वयमिन्द्रिय-कार्याणि काय-वाङ्ग-मनसा त्यजेत्** प्रतिकार हो सकतो होय तो प्रतिकार करनो चहिये. और प्रतिकार नहीं हो सकतो होय तो सहन करनो चहिये. पर सबसु अच्छी बात ये हे के जिन कारणन्सु दुःख हो रह्यो हे, कायिक मानसिक या वाचिक, उन कारणन्कु ही पैदा मत होवे दो, जो दुःख अपनेकु पैदा होवे. और वो पैदा होवे लग जाय तो **"त्रिदुःखसहनं धैर्यम्"** पर वासु अच्छी बात ये हे के उन वाचिक कायिक अथवा मानसिक व्यापारन्कु करो ही मत जिन कारणन्सु तुम्हें दुःख होवे. यदि तुम्हें कारण पता चले तो. कई बखत अपन्कु पता ही नहीं चले हे के कौनसी बात करवेसु कौनसो दुःख पैदा होयगो. अपन् क्या करेंगे तो क्या दुःख पैदा हो जायगो, अपन् क्या बोलेगें तो क्या दुःख पैदा हो जायगो या अपन् क्या सोचेंगे तो क्या दुःख अपन्कु पैदा हो जायगो? उदाहरणके लिए एक बात बताऊँ. अपन्ने कोईके बारेमें ऐसे सोची के ये मेरो मित्र हे और वाने अपनो कोई काम नहीं कियो तो अपन्कु बड़ो भारी दुःख होयगो. कोई दूसरो नहीं करे तो क्या अपन्कु दुःख होयगो? पर याको अर्थ ये नहीं हे के कोईकु अपन् मित्र ही नहीं बनावें. पर कोईकु भी या हद तक मित्र मत सोचो के यदि कोई काम वो नहीं करे तो अपनेकु दुःख होवे. वा हद तक ही वाकु मित्र सोचो के दोनों साथ रेह पायें.

मोकु कई बालक यों कहे हें के हम आपकु गुरु माने हें.

तो मैं उनसु कहूं हूँ के आप भी महाप्रभुजीके वंशज और मैं भी महाप्रभुजीको वंशज. आप मोकु गुरु मानोगे और मैं आपकु चेला मानूंगो तो कुछ न कुछ क्लेश होयगो ही. अपन् यों क्यों नहीं करें के महाप्रभुजीके बताये पथपे अपन् बांहमें बांह डालके साथ-साथ चलें. न आप मेरे आगे चलो न मैं आपके आगे चलू. जब-तक चल्यो जा सकेगो तब-तक चलेंगे, नहीं चल्यो जा सकेगो तो गुडबाय् कहेंगे. पर आगे-पीछे चलवेकी बात महाप्रभुजीके पथमें कहाँसु आयी? जब महाप्रभुजीको पथ हे तो कौन-कौनसु आगे चल सके हे! अपन् सबकु या पथपे हिल-मिलके चलनो हे. और ये ही बात हर बखत वैष्णवन्कु भी मैं केहनो चाहूँ हूँ के ये महाप्रभुजीको पथ हे और या पथपे अपन् सब हिल-मिलके चलेंगे तब तो चल पायेंगे. और कोई आगे पीछे चलेगो तो आगेवालो यदि खड्डामें गिर्यो तो क्या अपनेकु भी गिरनो? ऐसे जैसे कोई कार रातके अंधेरामें चल रही होय अचानक वाकु कुछ दीख जाय और वो ब्रेक् मारे तो पीछेवाली सब कार वासु भिड़ जावें. अंधेराकी कथा सब ऐसी ही होवे हे. अपन्कु कोई बात पूरी तरहसु समझ आवे नहीं. अपनी समझ कहाँ-तक होवे, जहाँ-तक अपनी हेड्लाइट् जाती होय. वाके आगे तो अंधेरा ही दीखे हे. जब अपन्कु यासु ज्यादा दीखनो नहीं हे तो क्यों न अपन् साथ-साथ चलें? हिल-मिलके सब साथ चलें. आगे और पीछे चलवेकी दोनों वृत्तिन्सु अच्छी, या मार्गमें साथ चलवेकी हे. मानो यामें कोई एकने गलती करी तो दूसरेकु घबरावेकी कोई बात नहीं हे.

या प्रकारकी सहजताकी वृत्तिसु जब अपन् या पथपे चलेंगे तब तो कोई क्लेश नहीं होयगो. और आगे-पीछेकी वृत्तिसु जब चलनो चाहेंगे तो कुछ न कुछ तो क्लेश होनो ही हे. क्योंके अपनेकु पूरो मार्ग तो दिखलाई दे नहीं रह्यो हे. मार्ग तो उतनो ही दिखलाई दे रह्यो हे जितनी अपनी हेड्लाईट् जा रही हे, हेड्में

रही मतिकी लाईट्!

ख-४ **अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्य-भावनात्** यासु ही महाप्रभुजी आगे केह रहे हें के व्यर्थमें अपन् अपनेकु इतनो समर्थ मानें के सारी तकलीफकु अपन् सहन कर सकेंगे, झेल सकेंगे. याके बजाय एक बखत अपन् यों समझ लें के अपन् क्या कर सकें. जैसे कोई पक्षी उड़े तो अपनकु भी उड़वेकी इच्छा होवे हे. पर अपन् अपनी बात समझ लेवे हें के भगवान्ने पंख नहीं दिये तो अपन् कैसे उड़ेंगे? अपन् अपने असामर्थ्यकु एक बखत समझ लें. ऐसो कौनसो व्यक्ति होयगो जो या बातको क्लेश करतो होय जो अपने पंख नहीं हे. ऐसे कोई करे तो अपन् वाकु बेवकूफ ही तो कहेंगे. क्योंके भगवान्ने अपनेकु पंख दिये ही नहीं हें तो यामें क्लेश करवेकी बात क्या हे? पंख नहीं मिलवेकी असामर्थ्यकी भावना कर लो, नहीं उड़वेको क्लेश अभी खतम हो जायगो. पर जब तुम ये भावना कर रहे हो पंख होते तो हम भी उड़ सकते हते, ये कौआ, कबूतर क्यों उड़ सक रहे हें? तब तुम एक क्लेशकु आमंत्रण दे रहे हो. जब भी व्यर्थमें अपन् अपने सामर्थ्यकी भावना करे हें तो बहोत सारे क्लेशनकु अपने हृदयमें बसवेको आमंत्रण देवे हें. और अंतमें अपनो धीरज खोनो पड़े हे. याके लिए महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के "**अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्य-भावनात्.**" और यदि तुम केह रहे हो के हमारे मनकी स्थिति ऐसी हे के यदि हम अपने आपकु असामर्थ्यशाली मानें तो हम टूट ही जायेंगे.

(शरणभावनासु अक्लेश)

महाप्रभुजी आगे केह रहे हें के छोड़ सारी बात, केवल भगदाश्रय ग्रहण कर. "**अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वं आश्रयतो भवेत्.**" भगवान्की शरणभावना कर, वासु तुम्हारे सारे क्लेश दूर होंयगे. भगवान्की शरणभावनाको विचार अपन् आगे करेंगे. क्लेश रूपी धुआँको इन विवेक-धैर्य-आश्रयसु कैसे संबंध हे, या बातकु समझनो बहोत जरूरी हे. और इतनी

व्यावहारिक गाइड्-लाइन् महाप्रभुजीने विवेकधैर्याश्रय ग्रंथमें दी हे. और तब ही समझमें आ सके हे के अविवेक और अधैर्य सु पुष्टिभक्तिमार्गकी सेवाप्रणालीमें कैसे-कैसे क्लेश अपन् खड़े कर ले हें. या बातकु अपन् समझ जाएं तो बहोत सारे क्लेश स्वतः ही दूर हो सके हें.

(सिंहावलोकन)

कल-तकके प्रसंगमें अपन्ने जा विषयको अवगाहन कियो, वो ये के अपने सेव्यस्वरूपके ब्रह्म होवेमें और वा ब्रह्मके अपन् नाम-रूप-कर्म हें. ये होवेमें क्लेशको कोई प्रसंग नहीं हे. वो परमात्मा हे, अपन् जीवात्मा हें. या परमात्मा-जीवात्माभावमें भी कोई क्लेशको प्रसंग नहीं हे. पर जब वाके भगवान् होवेको पेहलु अपन् अपने समक्ष लावे हें और वा प्रकारसु व्यवहार करे हें, वा समयसु क्लेशके कुछ प्रसंग आवे हें. और वो प्रसंग मूलतः अविवेकवाले प्रसंग हें जाको विवेकधैर्याश्रम ग्रंथमें, विवेक और वाके चार उपायन्के तहत महाप्रभुजीने उपदेश दियो.

ठीक याही प्रकारसु वाको कृष्ण होवेको दूसरो पेहलु हे. वा कृष्ण होवेके पेहलुमें भी क्लेश होवेकी संभावना हो सके हे. वो कृष्ण हे और अपन् वाकी कथाकु फिरसु जीनो चाह रहे हें. जो कथा व्रजमें घटी, वाकु अपन् फिरसु जीनो चाह रहे हें. ये बात मैंने तुमकु समझायी हती के जब सूरदासजीने ये गायो के "तब ता दिन तें वे लोग सुख-संपत्ति न तजे." तब महाप्रभुजीने वा कड़ीकु पूरी करके "सुनि सूर सबन्की यह गति जे हरि चरण भजें." अपनी जो सेवा हे वामें कृष्णकथाकु अपन् फिरसु जीये हें.

(कृष्णलीलाकी भावनासु सेवामें अक्लेश)

जैसे रामलीला पर यामें अंतर केवल इतनो हे के रामलीलाके

प्रसंग नवरात्रि दशहरा पर्यंत होवे हें. अपने यहाँ अपनी साधनाप्रणालीमें कृष्णकथा जीवेको जो उपक्रम हे, वो बारह महीना ही नहीं बल्कि तेरह महीनाको हे. तेरहवों महीना अधिक मासको केहवावे हे. याही लिए युगल गीतमें तेरह गुना दो, ऐसे छब्बीस श्लोक रखे गये हें. वाको अभिप्राय भी महाप्रभुजीने ये ही बतायो हे के भगवद्भजन तो नित्यक्रमके तहत अपनेकु बारह महीना ही नहीं, अधिक मासमें भी करनो हे. और या तरहसु जब अपन् कृष्णकथाकु जी रहे हें, याही कारण अपन् प्रतिवर्ष जन्मोत्सव दानोत्सव शरदोत्सव अन्नकूट होली ये सब मनावे हें. ठाकुरजीकी कृष्णकथाकु अपन् सेवामें जीनो चाहे हें. ये कृष्णकथाकु जीनेकी भावनासु जुड़यो भयो हे. ये क्रियान्सु जुड़्यो प्रकार नहीं हे. क्योंके क्रियासु तो अपन् तनु-वित्तजा सेवा करेंगे. क्रियासु तो अपन् ठाकुरजीकु जगायेंगे पौढ़ायेंगे. पर भावनासु अपन् ये सोचेंगे के यशोदाजी जगा रहे हें, यशोदाजी पौढ़ा रहे हें. क्रियासु अपन् ठाकुरजीकु अन्नकूट भोग धरेंगे, पर भावनासु अपन् ये सोचेंगे के ठाकुरजी गिरिराजजीकु भोग धर रहे हें. ये भावनाको स्वरूप हो गयो. और याही लिए अपने यहाँ जो अन्नकूट सजे हे वो सीधो नहीं सजे हे, पर गिरिराजजीकी तरह सजायो जाय हे. राजभोग अपने यहाँ सीधो चोकीपे सजे हे. जासु ठाकुरजीकु आरोगवेमें अनुकूलता रहे. पर अन्नकूट अपने यहाँ ऐसे सजायो जाय के जैसे गिरिराजजीपे होय. ये सारी कथाकी भावनाएं अपने यहाँ हें, जाकु अपन् अपनी सेवाकी प्रणालीके अंतर्गत जी रहे हें. ये कृष्णकथाकु जीनेकी प्रक्रिया हे. जैसे डोल अपन् बांधे हें, उष्णकाल आवे तो श्रीयमुनाजी भरे हें. अब श्रीयमुनाजी एक थालसु ज्यादा तो अपन् भर नहीं सके हें. यमुनाजी भी अपन् कृष्णकथाकु जीवेके लिए भरे हें. "मैयामें रथ चढ़के डोलूंगो." अपन् रथकु अपने घरमें फिरावे हें पर भावना ऐसी कर रहे हें के जैसे ठाकुरजी जिद्द कर रहे हें के "यशोदा रथ देखनकों आयी." ये अपनी साधनाप्रणालीमें कृष्णकथा जीनेको जो प्रकार हे, वाके कारण कुछ क्लेश हो सके

हे. उन क्लेशन्कु कैसे दूर करने? वा कृष्णकथाकु जीनेके प्रकारमें अपनी भावनाको प्रश्न हे.

उत्तमोत्तम अवस्था तो ये हे के सेवाके क्रममें गूंथी भयी जो लीलाभावना हे, उन लीलाभावनामें अपनो मन रमे. पर सहज संभव हे के उन लीलाभावनामें अपनो भाव अभी सिद्ध नहीं भयो होय. यासु अपनो मन उतनो नही रमे. वाके लिए प्राचीन भगवदीयन्ने सारे पद बनाये. उन पदन्कु गाके, गुनगुनाके, याद करके वा लीलामें मनको विनियोग कर सके हें. अभी ये नयो प्रकार कॅसेट्न्को निकल्यो हे. जा बखत वा सेवाको क्रम चल रह्यो हे वा बखत उनकु सुने. वासु अपनी क्रियात्मक सेवाकु कृष्णकथा बनावेमें अपनेकु सहायता मिले हे. और कृष्णकथा जीनेको जो प्रकार हे वामें अपन्कु वासु सुविधा मिलेगी. या सुविधाके अंतर्गत कोई क्लेश उत्पन्न हो सके हे. क्योंके ये बात हृदयकी हे, ये बात वाणीकी हे. हृदय और वाणी के द्वारा यदि कृष्णके रूपमें अपन् अपने ठाकुरजीकु स्वीकार नहीं पाये तो तकलीफ होनी हे और होनी ही हे.

(लीलाभावनारहित क्रियात्मिका सेवाके कारण क्लेश)

जैसे आज पुष्टिमार्गको क्लेश याही कारणसु हे के वैष्णव अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकु कृष्णके रूपमें नहीं स्वीकार पावे हें. मंदिरमें बिराजमानकु ही कृष्णरूपमें स्वीकार पावे हें. वासु सेवामें कृष्णकथा जीनेकी जो तन्मयता होनी चहिये वो प्राप्त नहीं होवे हे. यासु वो सेवा क्रियात्मक होके क्लेशरूप हो ही जाय हे. ये बड़ी सहज बात हे के कोई भी काम जब अपन् तन्मयतासु अथवा भावसु कर रहे हें, तो क्लेश नहीं होय हे. पर जब क्रियात्मकरूपमें करे हें तो क्रियाको भार अपनेकु लगे ही हे. अक्सर हर घरमें शादी-ब्याह होते रहे हे. उनमें आदमी कितनी दौड़ा-दौड़ करे हे! पर उत्साहमें वो थकान नहीं लगे हे. पर वो ही काम जब कोई जबरदस्ती

करवावे, तो अपन् थकके चूर हो जायेंगे. क्योंके क्रियात्मकरूपमें कर रहे हें. जैसे अपनेकु कोईसु मिलवे जानो हे, टहलवे जानो हे पर टहलवेमें अपनो मन लग्यो भयो हे तो कितनी भी दूर अपन् चलेंगे तो भी थकान नहीं लगेगी. पर जहाँ अपनेपे प्रतिबंध लगायो के इतनो तो चलनो ही हे तो तुरंत थकान लगेगी. अक्सर लोग यों कहे हे के माला फेरे तो नींद आ जाय. याको मूल कारण ये ही हे के मालामें रुचि होवे नहीं हे और क्रिया करनी पड़े हे. जब मन लगे नहीं तब नींद आवे हे. वाही बखत समझो के कोई टी.वी. चला दे तो आती भयी नींद भी उड़ जाय. क्यों? क्योंके मन वामें लग जाय हे. अक्सर ये कथा होवे हे के लंबी कथामें भी अपनेकु नींद आवे लग जाय हे. क्योंके मन वामें लगे नहीं हें. अपन्कु क्रियात्मकरूपसु वामें लगनो पड़े हे. तब एक मानसिक थकान आवे ही हे. वा थकानके कारण थोड़ो बहोत क्लेश होवे ही हे. वाकु दूर कैसे करनो?

(भावनात्मकसेवासु या धैर्यसु अक्लेश)

याको ही उपाय बतायो के वा कथाकु गाके करो, सोचके करो. जब भावनाकु सोचके करोगे तो मनमें वा कथाकी रुचि उपजेगी. और जब रुचि उपजेगी तो सेवा क्रियात्मक न होके भावनात्मक हो जायगी. जैसे ही भावनात्मक भयी तो जा लेवल्पे महाप्रभुजी अपनेकु पहुंचानो चाह रहे हें **''चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्धयै तनुवित्तजा''** तुम अपने तनसु वित्तसु अपने माथे बिराजते ठाकुरजीकी सेवा करो. धीरे-धीरे तुम्हारो मन ठाकुरजीमें लग जायगो. वो भावना तुम्हारी सिद्ध हो जायगी. क्योंके जब अपन् भावना कर रहे हें तो अपने मनको विनियोग भी ठाकुरजीकु कर रहे हें. क्यों? क्योंके जब तनको धनको और मनको विनियोग अपन् कर रहे हें तो चित्त भी प्रवण होयगो. भावनाके प्रकारसु मनकु चित्तकु भगवान्में लगावेकी बात हे, वामें हर बखत धैर्यको विपरीत स्वरूप अधैर्य काम करे हे. धैर्य

हृदयकी बात हे, बुद्धिकी बात नहीं हे. कोई भी वस्तुको विवेक अपन् बुद्धिसु करे हें. पर धैर्य यदि धरनो हे, वो बुद्धिकी बात नहीं हे. हृदयकी बात हे. जब अपन् अधीर होयंगे तो अपनी सेवाके भावनात्मक पक्षपे असर पड़ेगो. या अधैर्यके कारण सेवाकु अपन् क्रियात्मक रूपसु करेंगे, पर यदि अपनेमें धैर्य हे तो चित्तकु भी भगवान्में लगाके सेवा कर सकेंगे. अपनी तनु-वित्तजा सेवाके प्रकारमें वा प्रकारको कोई क्लेश प्रकट नहीं होयगो, क्योंके अपने चित्तमें धैर्य हे.

(मानसिक अधीरता)

हमारे बम्बईकी कथा खूब जानी पहचानी और अनुभव करी हे. वैष्णव वहाँ दर्शन करवेके लिए सुबह आवें तो घरसु सागको झोला साथ लावें. क्योंके साग भी खरीदनो हे, दर्शन भी करनो हे. हमारे बड़े मंदिरके बाहर तो सागवालें आके बैठे ही हें. क्योंके वैष्णव दर्शन करवे आ रह्यो हे तो साग भी खरीदेगो ही. कुछ लोग सुबह टहलवेके लिए भी आवें के चलो टहलनो भी हो जायगो और दर्शन भी हो जायेंगे. ऐसे भी कई सिद्ध पुरुषन्के मैंने दर्शन किये हें के भोजन करके वाकु पचावेके लिए हमारे यहाँके गिरिराजकी परिक्रमा करे हें. कोई पचास करे कोई सौ करे. मैंने एककु बुलाके पूछी तो वाने कह्यो के महाराज, समुद्रकिनारे टहलवे जाय तो वहाँ ट्राफिक्की वजहसु कितनी तकलीफ होवे हे! अब ये दो काम एक साथ हो जाय हें. गिरिराजजीकी परिक्रमा या लिए करें!!! गिरिराजजी भी परेशान और अपन् भी परेशान. क्योंके पता ही नहीं चलके भोजन पचानो हे के भजन पचानो हे. तो ये सारी मनकी अधीर वृत्तिके परिणाम हे.

(धैर्यकी महत्ता)

भक्तिके लिए मनमें जो धीरज चहिये वो खो चुक्यो हे. वो धीरज क्यों खोवे हे? वाके महाप्रभुजीने चार कारण बताए हें, जो

मैंने कल विवेचन कियो हतो. एक तो **''त्रिदुःखसहनं धैर्यम्''** या सिद्धांतकु बराबर समझ्यो नहीं. त्रिदुःख सहन करवेकी धीरज अपनेमें इतनी सहज होनी चहिये के यदि वाको प्रतिकार हो सकतो होय तो प्रतिकार करनो चहिये. और प्रतिकार नहीं हो सकतो होय तो सहन करवेकी धीरज होनी चहिये. जब दोनों तरफसु अपन् तैयार होंयगे तब धीरज निभेगी. **''भार्यादीनां तथान्येषाम् असतश्चाक्रमं सहेत्''** और **''स्वयमिन्द्रिय-कार्याणि काय-वाङ्ग-मनसा त्यजेत्''** जिन कारणन्सु अपनेकु दुःख उपस्थित हो रह्यो होय, जैसे कायिक मानसिक अथवा वाचिक व्यवहारके कारण, उनपे थोड़ीसी निगाह रखते आनी चहिये. देखो निगाहकी बात समझवे लायक हे. जैसे अपन्कु कोई प्रकारके व्यवहारकी आदत पड़ गयी होय वा व्यवहारसु ही अपन् हर एकके साथ मिलते भये होवे हें. जैसे कोईके साथ दोस्तीकी आदत पड़ गयी होय तो वासु अपन् दोस्ताना व्यवहार ही करेंगे. कोईके साथ यदि दुश्मनीको व्यवहार हो गयो तो जब भी मिलेगो वाकु जली-कटी ही सुनावेको व्यवहार रखेंगे. वाणीसु मनसु और कायासु अपन् या प्रकारको व्यवहार करे हें. वा व्यवहारसु वाकु क्लेश होवे हे, पर अपन्कु भी क्लेश होवे हे. अपनो भी मन अधीर होवे हे. क्योंके जब अपन् अपनी काया वाणी या मन सु कोईके प्रति ऐसो व्यवहार कर रहे हें, तो अपन्कु भी ऐसी तैयारी रखनी पड़ेगी. जब वो अपने साथ ऐसो व्यवहार करे तो वो सहन करवेकी क्षमता होनी चहिये. अपन् होलीमें छेड़के गाली खावें. वो गाली नहीं दे तो वाकी छतपे पत्थर फेंकके गाली खावें. एक बात समझो के या तो हृदयमें वो मस्ती होनी चहिये के पत्थर फेंकके गाली खावेकी मजा ले सकें. वरना कोई गाली दे तो अपने मनमें क्लेश तो होयगो ही. जब क्लेश होय तो वाको प्रतिकार करनो आनो चहिये. जैसे वो गाली दे तो वाकु डराके, धमकाके गाली देवेसु रोकनो चहिये. नहीं डरे तो सहन करनो आनो चहिये. जैसे गलीमें कुत्ता भोंके तो अपन् वासु लड़वे तो नहीं जांय हें. अथवा ऐसो भी

हो सके हे के जिन कारणनूके कारण वो अपनेकु गाली दे रह्यो हे, ऐसो व्यवहार वाके सामने अपन् प्रकट ही नहीं करें. वो अपनी कायाको या अपनी वाणीको या अपने मनको व्यवहार होय. ऐसो व्यवहार अपन् प्रकट नहीं करेंगे तब तो वो गाली ही नहीं देगो. गाली तो मैं उदाहरणके लिए केह रह्यो हूँ. अब समझो के इन तीनोंनूमेंसु कुछ भी नहीं हो सकतो होय तो अपने असामर्थ्यकी भावना करनी के अपन् क्या कर सकें! या ही तरहको वातावरण चल रह्यो हे. सबकु गाली पड़ रही हे तो अपनूकु भी पड़ रही हे. हमकु भी बहोत बालकनूने गालीके पत्र लिखे. हमने उनकु कही के यदि आपकु इच्छा होय तो अपन् एक दिन गालीकी अंताक्षरीको प्रोग्राम रख लें. आप भी आ जाओ मंचपे और मैं भी आ जाऊँ. अपन् एक-दूसरेकु गाली दे. पर शर्त ये रहेगी के गाली दुहरानी नहीं हे. जो छेल्ले तक गाली देगो वो जीत जायगो. गाली देवेसु कोई निर्णय नहीं आ सकेगो. पर खेलकी इच्छा हे तो चलो अपन् खेल लें. तो समझो के अपनूकु गाली पड़े तो वाकु खाते आनी चहिये. नहीं तो सहन करते आनी चहिये. नहीं सहन कर पायें तो असामर्थ्यकी भावना करनी.

महाप्रभुजीके हिसाबसु कुल मिलाके ये चार पाया हें जामें धैर्यको भवन खड़ो रेह सके हे. ये धैर्यको भवन खड़ो रह्यो तो आपको मन अधीर नहीं होयगो और आपको मन सेवाकी भाव-भावनामें लगेगो. यदि मन अधीर भयो तो वाकी असर सेवाकी क्रियापे नहीं पड़ेगी पर हृदयकी भाव-भावनापे पड़ेगी.

एक मजाककी बात हे वाकु गंभीरतासु मत लीजियो पर आंखों देखी हे या लिये बता रहयो हूँ. एक बच्चीके माथामें जूं बहोत हो गयी. वाकी मां जूं निकालते-निकालते यमुनाजीके पद "तिहारो दरस मोहि भावे" गा रही हती. अरे भई जमुनाजीके पद फिर

कभी गा लो. या जूं फिर कभी निकाल लो. दोनों बातनूकु क्यों मिलाओ हो! हद हो गयी ये तो. कहाँको पद, कहाँ गावेको, कहाँ जोड़ रहे हें! अपनूकु अपनी अधीरताके कारण कुछ पता ही नहीं चले हे. हमें यमुनाजीके पद गावेकी फुरसत ही नहीं हे तो या मारे जूं निकालवेके समय गावें. अधीर मनमें ऐसे ऊधम होने ही हें. जूं निकालनो बुरी बात नहीं हे. न यमुनाजीके पद गानो बुरी बात हे पर दोनों गलत समयमें करनो बुरी बात हे. या प्रकारको गलत जुड़नो अधीर मनको सूचक हे और वाकी निवृत्तिके अर्थ महाप्रभुजीने सेवा धीरजसु होय, याके लिए वाके उपाय बताये. या बातकु पूरी तरहसु समझावेके लिए मैंने कलके विषयको आज भी आवर्तन कियो.

(विभिन्न स्थितिमें आश्रयको प्रसंग)

याके बाद तीसरो विषय आश्रयको हे. या आश्रयके विषयमें महाप्रभुजीने सेवा करते समय कितने प्रकारसु क्लेश हो सके हे, वाकु बहोत सुंदर गिनती गिनाके बतायो हे.

दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे।
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते॥
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः।
अहंकार-कृते चैव पोष्य-पोषण-रक्षणे।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथान्तेवास्यतिक्रमे॥
अलौकिक-मनःसिद्धौ सर्वथा शरणं हरिः॥

(वि.धै.आ.१०-१२)

अपने हर व्यवहारके पेहलुनूमें महाप्रभुजीकी दृष्टि कितनी पेनी हे ये या बातसु पता चले हे. महाप्रभुजी केह रहे हें के तुम जा बखत भक्ति करवेकु प्रवृत्त होयेंगे वा बखत कोई न कोई दुःख

आ पड़ेंगे. अब वो दुःख कितनी भांतिके हो सके हें, माथामेंसु जूं निकालवेसु लेके कॅन्सरके रोग तक. दुःख ऐसी वस्तु हे के जाके कारण व्यक्ति अपनो विवेक और धैर्य दोनों खो सके हें. क्योंके अंतमें मनुष्य कमजोर हे. हर विवेक अपन् संभालके रखे हें. धीरज धरते होवे हें पर जा समय दुःख आ जाय हे वा समय विवेक-धैर्य रखनो, बड़ी कठिन बात हो जाय हे. यासु ही महाप्रभुजी गिना रहे हें के किन-किन परिस्थितिमें अपनो विवेक और धैर्य खोवेकी संभावना हे.

सबसु पहलो **दुःखहानी** अपन् अपने दुःख खत्म करनो चाह रहे हें पर वो दुःख खतम नहीं हो रहे हे. अपनेकु याके कारण क्लेश होयगो और वो क्लेश सेवामें भी कहीं न कहीं प्रतिफलित होयगो. तासु अपनी सेवा भाव-भावनाके साथ, तन्मयताके साथ, चित्तकी प्रवणताके साथ होनी चहिये, वो हो नहीं सकेगी.

वाके बाद **तथा पापे** अपन् समझ रहे हें के ये बात गलत हे, नहीं करनी चहिये. पर हो जा रही हे. जैसे कल मैंने आपकु बतायो के कर्म करवेको अपन् संकल्प करें और यदि वो अपनी इच्छानुसार हो जाते होते तो जो ऋषि-मुनिन्ने जिनने हवाको भक्षण करके तप कियो, वो अप्सराके नाचपे क्यों अपनो तप छोड़ देते! अर्जुन, जाने इतने बड़े-बड़े युद्ध लड़े, जब वाके भाई आये तो क्यों वाके पसीना छूट गये! क्या वो डरपोक हतो? डरपोक तो वो नहीं हतो. वो केह रह्यो हे के "गाण्डीव मेरे हाथसु छूट रह्यो हे". क्योंके वहाँ वाको गुरु दादा भाई बहनोई सब सामने खड़े हें. उनके सामने कैसे लड़्यो जा सके हे? या प्रकारकी स्थितिमें कर्मपे अपनो काबू नहीं रहे हे. जो इतनो बड़ो योद्धा हतो, पर जा बखत कृष्णने लीलास्मरण कियो और वा अर्जुनकु कही के तुम इन सब रानीनकु ले जाओ तो वाकु भीलन्ने लूट लियो.

वहाँ अर्जुनने भी ये ही कही हे के "कहाँ गयी मेरी शक्ति!" यदि कर्म करवेकी सचमुचमें अपनेमें कुछ शक्ति होती, तो ऐसो क्यों होतो? एक बात समझो के अपन् कर्म करवेमें अशक्त नहीं हें पर संपूर्णरूपसु सशक्त भी नहीं हे ऐसी अपनी स्थिति हे. कुछ अपन् कर सके हें. कुछ अपन् करते भये भी नहीं कर सके हें. कुछ अपन् करनो चाहें और उल्टो ही हो जाय हे. यदि अपनी सर्वसमर्थतामें कुछ शक्ति होती तो विद्यार्थी क्यों फेल् होतो! डॉक्टर क्यों अपनी सही चिकित्सा नहीं कर पावे हें! लीडर क्यों अपनी शपथ पाल नहीं पोवे हे! धर्माचार्य क्यों धर्मके उपदेशके रूपमें विचित्र बात केहवे लग गये! वो धर्माचार्य क्यों अपने-अपने धर्मनकु छोड़के गामके धर्मनकु केहवे लग गये! ये क्यों हो गयो! क्योंके आदमी कर्म करवेमें संपूर्णतया सशक्त नहीं हे. थोड़ो बहोत हे. थोड़ी बहोत शक्तिकु आदमी कभी सच्ची दिशामें वापर ले हे, कभी खोटी दिशामें वापरे और कभी वापरे ही नहीं हे. याके कारण अपनेसु कुछ न कुछ पाप होतो रहे हे. जो मैंने कल आपकु दुर्योधनके उदाहरणसु कही के "**जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः**" धर्मकु मैं जानूं हूँ पर धर्मको आचरण नहीं कर पा रह्यो हूँ. "**जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः**" अधर्मकु भी जानू हू पर वासु निवृत्त नहीं हो पा रह्यो हूँ. इतनो मैं कमजोर हूँ. इतनो दुर्योधन ही कमजोर हे ऐसी बात नहीं हे. अपन् सब या बातमें कमजोर हें. या प्रकारकी अधकचरी सामर्थ्यके कारण अपनेकु कर्म करते भये कुछ न कुछ पाप तो होयगो. और वो पाप गामसु छुपा सकें पर मनसु तो नहीं छुपा सकेंगे. और अपनो मन जब अपनेकु कचोटेगो, वा बखत अपनेकु क्लेश होयगो ही. और यदि गामकु पता चल्यो तो गाम भी गालियें देगो. तब तो और भी क्लेश होयगो. तब वा समय भी सेवामें या क्लेशके कारण व्यवधान आयगो ही. याके लिए ही महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के **तथा पापे** अपन्ने कुछ पाप करनो नहीं चाह्यो हे पर सामाजिक परिस्थितिके कारण पाप हो जा रहे हे.

भये एक भयको वातावरण खड़ो हो जा रह्यो हे. वा भयके वातावरणके कारण जब अपन् चित्तकु भगवत्प्रवण करवे जा रहे हें, वा बखत कोई भय लग गयो तो चित्त भगवत्प्रवण होवेके बजाय भयप्रवण हो जायगो.

कामाद्यपूरणे अपन्ने कोई ऐसी कामना करी और वो पूरी नहीं हो रही हे. वा बखत अपन् भगवत्सेवा केवल क्रियासु ही कर सकेंगे. शरीरसु कर लेंगे और बहोत जोर मार्यो तो वाणीसु भी कर लेंगे. पर जो चित्त भगवत्प्रवण होनो चहिये, वो नहीं हो पायगो. क्यों? क्योंके वा क्लेशके कारण अपनो चित्त विचलित हो जायगो.

हम बम्बईमें सत्र चलाते हते. तो हमने सबकु कही के "बीस पच्चीस जने आओ तो सबकु हम आनंदसु पढ़ा सके". हुओ क्या के एकके साथ कई लोग आ जाय. या तरहसु सत्तर अस्सी लोग इकट्ठे हो गये. मेरी पढ़ावेकी प्रक्रिया ऐसी हती के मैं जाकु पढ़ाऊँ, वाकी कॉपी देखूं, वाकु जांचू. अब इतनी कॉपी मोकु जांचनी पड़ें और मेरो कुछ काम नहीं होवे. अब जांचू तो मोकु पता भी चल जाय के कौनने खुद नहीं लिख्यो हे, दूसरेकी कॉपी करके लिख्यो हे. मैंने उनकु कही के "आप यदि कोई कारणसु दूसरेकी कोपी करके लिख रहे हो तो वापे कमसु कम ऊपर लिख दो के आपने कॉपी कियो हे. जासु मेरो चॅक् करवेको टाइम् तो कम हो जाय!" पर वे लिखें नहीं. मैंने भी कही के "चलो चलवे दो ऐसे ही".

एक बखत ऐसो प्रसंग आयो के जूनागढ़को केस चल्यो. वामें जज्ने यों कही के "पुष्टिमार्गके ठाकुरजी तो पब्लिक्के ही ठाकुरजी हें. घरको कोई ठाकुर तो होवे ही नहीं हे. तपेलीको ठाकुरजी ही घरको ठाकुर होवे हे". तब वा बखत मैंने वहाँ जाके हल्ला मचायो

के घरके और तपेलीके ठाकुरजी, ऐसो भेद ही खोटो हे. तब वाने पूछी के तपेलीके ठाकुरजी क्या? तब वहाँ सामनेवालो वकील हतो वाने कुछ सम्प्रदायके सिद्धांत तो पढ़े नहीं हते. वाने कही के "'तपेली' मानें जो दाल-शाक बनावेको बर्तन होवे वामें ये लोग ठाकुरजीकु पधरावे हें". जज्ने कही के "वामें क्या होवे?" वकीलने कही के "ये लोग वामें रखके पूजा करे हें." मैंने खडे होके कहयो के "ये गलत केह रह्यो हे." जज् बोल्यो के "बीचमें मत बोलो. जब तुम्हारो वारा आयगो तब बोलियो." गलत-गलत बात बोलें और अपनेकु चुप बैठनो पड़े. ऐसे ही वाने पूछी के "ये महाराज कौन होवे हे?" तो वकीलने कही के "जनताको पैसा ठाकुरजी तक जो पहुँचावे, ऐसी मोरी हे महाराज!" मोकु बड़ी ग्लानि भयी के यदि अपन् मोरी हे तो धिक्कार हे अपने जीवनपे जो, गटरके जैसो, यहांको पानी वहां निकाले.

पलनाके मनोरथको तो वाने ऐसो भयंकर अर्थ कियो के जा औरतकु बच्चा नहीं होवे वो पलनाको मनोरथ करावे हे. मैंने कही के "भाई, ये गलत बात केह रह्यो हे". जज्ने कही के आप चुप बैठो. वहाँकी कार्यवायीकु सुनके अपनो दम घुटे. सिद्धांत पढ़ें नहीं, अपन् समझानो चाहें तो सुने नहीं और जज्मॅन्ट् दे दियो के ये सब महाराज मोरी हें. ऐसी खराब स्थिति भयी वहाँ. मैंने कही "चलो जज् नहीं समझे तो नहीं समझे, अपन् वैष्णवकु तो समझावें." तब मैंने एक शपथपत्र बनायो के जो या शपथपत्रपे हस्ताक्षर करेगो वो ही सत्रमें बैठेगो. मैं समझ्यो के अब ठीक हो गयो. पर शिविरमें आवेवाले ऐसे चतुर. एक शपथ वामें ये हती के जो भागवत, पैसा लेके सुनायी जाती होय वो हम नहीं सुनेगे. कुछ दिन बाद एकने आके कही के "हमने नहीं सुनी". मैंने कही के "हमने तो सुनी के तुम वहाँ गये हते!" उनने कही, "हां, गये तो हते पर खंभाके पीछे खड़े भये हते. वाके सामने नहीं गये."

अरे भई क्या नाटक हे ये! एक भाई आये और केहवे लगे के "हमने देवद्रव्य खानो बंद कर दियो हे. अब हम मोहनथाल और मठरी नहीं खावे हें. केवल पेड़ा और बरफी ही खावे हें." अरे पेड़ा बरफी या मोहनथाल को कोई भेद हे, जहाँ देवद्रव्यको सवाल हे! तो वो कहे के सब चीजकी ना करो तो कैसे चले! कुछ तो चहिये.

एक भाई आये. उनने कही के "हम तो जा रहे हें नाथद्वारा और आपकी शपथ आड़े आ रही हे." मैंने कही के "नाथद्वारा आनंदसु जाओ, वामें शपथ कैसे आड़े आ रही हे?" उनने कही के वहाँ तो सब देवद्रव्यको प्रसाद ही आवे. वहाँ कैसे चलेगो? मैंने कही वहाँ जाके आनंदसु सेवा करके घरके ठाकुरजीको प्रसाद लीजियो. उनने कही "वो तो ठीक हे पर वहाँ जो शक्करबूरा भरके जो पूरी आवे, वैसी पूरी तो हमसु बने नहीं हे. नहीं खावें तो कैसे चले!" मोसु कही के "एक बखत आप खाओ तो आपकी शपथ भी टूट जायगी".

कामाद्यपूरणे अपन् सोचें के सिद्धांत पालेंगे पर वो बूरा भरके जो पूरी आवे तो सब चोपट हो जाय. तब मोसु कही के आप उपाय बताओ के क्या करें? मैंने कही "मैं क्या उपाय बताऊँ, तुम ही बताओ." तब उनने कही के "आप आज्ञा करो तो हम शपथ तोड़ दें." मैंने कही के "आपने मेरी शपथ तो ली नहीं हती. महाप्रभुके चरणन्की शपथ ली हती. आपकु तोड़नी हे तो तोड़ दो. मैं यामें क्या कहूँ. ये शपथ तो यदि आपकु शिविरमें आनो होय तो पालवेकी बात हती." वो बोले के "नहीं आयेंगे शिविरमें." कुछ दिन बाद फिर दूसरी बखत शिबिरमें आवेकी मोसु केहवे लगे. **कामाद्यपूरणे** इन अपूर्ण कामनान्की पंचायत ऐसी हे के आदमीकु निर्णय ही नहीं होवे हे के क्या करनो और क्या नहीं

करनो. इतनो आदमी कमजोर हे और या कमजोरीके कारण अपनो चित्त सेवामें प्रवण नहीं हो सके हे. वहाँ श्रीनाथजीके दर्शनकु भी जाते होंयगे तो बूराकी पूरीपे लार टपकती होयगी. पता नहीं श्रीनाथजीके दर्शन होवें के बूरा बुरकी भयी पूरीके दर्शन होवे हे. पता ही नहीं चले. हमसु भी कही के एक बखत आप भी खाके देखो तब बताओ, ऐसी स्थिति हे.

भक्तद्रोहे अपन्सु कोई भक्तको द्रोह हो गयो. जाकु अपन् भक्त मान रहे हें पर वाकी सब बात मान नहीं पा रहे हें तो कुछ न कुछ वाको द्रोह तो होयगो ही.

भक्त्यभावे भगवान्के प्रति अपनी भक्ति पैदा नहीं होवे हे. पूरीके प्रति पैदा हो जाय हे.

भक्तैश्चातिक्रमे कृते कोई भक्तने अपनो अपमान कर दियो.

अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः तुमसु विवेक और धैर्य निभ्यो तो भी और नहीं निभ्यो तो भी भगवान्कु अपनी शरण मानें.

(शरणं गृहरक्षित्रोः)

ये हिन्दीकी शरण अलग हे. महर्षि दयानन्दने भी कही हती के वल्लभसंप्रदायवालें मूर्ख हें के कृष्णकु अपनी शरण माने हें. **"श्रीकृष्णः शरणं मम"** अरे भई, वल्लभसंप्रदायवालें मूर्ख नहीं हें. आपकु संस्कृत नहीं आवे हे. मूल कथा ये हे. शरणको अर्थ हिन्दीमें अलग हे और संस्कृतमें अलग हे. संस्कृतमें अर्थ हे **"शरणं गृहरक्षित्रोः"** (अम.को.३।३।४५०) 'शरण'को अर्थ यातो होवे हे गृह या रक्षक. **"श्रीकृष्णः शरणं मम"**को अर्थ यातो श्रीकृष्ण मेरो घर हे या(और) श्रीकृष्ण मेरो रक्षक हे. पर हिन्दीमें अर्थ ऐसो होयगो के श्रीकृष्ण मेरी शरणमें हें. दयानन्द सरस्वतीकु संस्कृत नहीं आवे वामें वल्लभसंप्रदाय

क्या करे? वा दयानन्दी शरणकी कथा यहाँ नहीं हे. संस्कृतके शरणकी कथा हे. **अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः** अपनूसु अशक्य होय अथवा सुशक्य होय; विवेक धैर्य और आश्रय, पर सब स्थितिनूमें हरि अपनो शरण हे.

अहंकार-कृते अपनूने अहंकार कियो होय. कब? जो अपनूपे निर्भर हें उनके रक्षणमें अपनूने अहंकार कियो होय.

पोष्य-पोषण-रक्षणे या जिनको अपन् पालन-पोषण कर रहे हें, उनको कोई अपराध कियो या उनने कोई अपराध कियो तब भी भगवानूकु अपनी शरण मानो. व्यर्थमें चित्तकु ठेस न पहुँचाएं. या बातकु महाप्रभुजी समझानो चाह रहे हें के परिवारमें, समाजमें, प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे पर निर्भर हे. अब जो जापे निर्भर हे वासु वाकु दैन्यकी अपेक्षा होयगी. अपन् कोईपे निर्भर हें तो अपनूकु भी होयगो के वाके सामने अपन् थोड़ो दैन्य प्रकट करें.

अथवा **पोष्यातिक्रमणे चैव तथान्तेवास्यतिक्रमे** ये सारे जो संबंध हे; शिष्य-गुरुके, माता-पिता-संततिके, पति-पत्नीके, बड़े-छोटेके, जामें परिवारमें, समाजमें एक-दूसरेपे निर्भर रेहनो पड़े और वामें कोई न कोई, कोई न कोईको अतिक्रमण करे ही हे. मानें मर्यादाकु तोड़े वा समय क्लेश होनो स्वाभाविक ही हे.

(विवेक-धैर्यको आदर्शरूप)

वा क्लेशकु अपन् दो तरहसु काबू पा सके हें. एक तो विवेकसु के भगवदिच्छा. अपने साथ ऐसो ही करावेकी प्रभुकी इच्छा होयगी. जैसे किशनगढ़को ही उदाहरण लें के नागरीदासके भाईने ही उनको अतिक्रमण कियो. उनने वाकु ऐसे नहीं लियो के हमारे भाईने हमारे साथ ऐसो कियो. उनने वाको प्रतिकार भी कियो. उनने अपने भाईकु

हरायो भी. सांकलनूमें बांधके उनकु दरबारमें भी लाए. ये समझावेके लिए के देख, डरपोक होके मैं राज्य नहीं छोड़ रह्यो हूँ. तू क्षत्रिय हे तो मैं भी क्षत्रिय हूँ. सांकलमें बांधके बुलवायो और अपने हाथसु सांकल खोलिके उनकु राज्यसिंहासनपे बैठाके कही के "देख, राज्य ऐसे मिले हे. गद्दारी करवेसु राज्य नहीं मिले हे." बड़े भाई होके उनने प्रतिकार भी कियो और वा बातकु भगवत्संकेत भी मान्यो के भगवान् मोकु राज्य नहीं करवानो चाह रह्यो हे, भक्ति करवानो चाह रह्यो हे तो या खटपटमें मोकु क्यों पड़नो? दोनों बात देखो कैसी निभायी! ये पुष्टिमार्गको आदर्श हे. जो नागरीदासजीको व्यवहार हे, वो पुष्टिमार्गीय विवेक धैर्य और आश्रय को आदर्शरूप हे.

गृह व्यवहार भुरटको भारो सिर पर तें उतरायो।
नागरियाको श्रीवृंदावन भक्ति तख्त बैठायो॥

अपने भाईकी गद्दारीकु विद्रोह नहीं मान्यो पर भगवदनुभाव मान्यो. या बातकु महाप्रभुजी समझानो चाह रहे हें के "**विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति.**" भाईकु ऐसी क्यों प्रेरणा भयी के नागरीदासजी जैसे अच्छे व्यक्तिके सामने विद्रोह प्रकट करे! यामें भाई क्या करेगो ये तो भगवानूकी इच्छा हे, ऐसे मानो. ये सोच हती उनकी.

औरंगज़ेबके बखत इज़राइलूसु एक यहूदी संत आये हते सरमद. पाछे वो मुसलमान हो गये हते. बादमें वो सूफी हो गये. मोकु उनकी सारी रुबाईयां बहोत पसंद आवे. उनकी एक बहोत प्रसिद्ध कथा हे. दारा शिकोह औरंगज़ेबसु बड़ो हतो और दारा शिकोहको गुरु सरमद हतो. उनके लिए यों कह्यो जाय हे के जामा मस्जिदकी पौरपे बैठके पूरो कलमा नहीं पढ़ते. मुसलमानको पूरो कलमा ऐसे हे "ला इलाह इल्लिल्लाह मोहम्मद रसूल अल्लाह." मतलब के भगवानूके अलावा और कोई नहीं हे, वो एक हे और मोहम्मद साहब वाको दूत हे. ये ऐसे मस्तराम हते के आधो ही पढ़ते.

''ला इलाह इल्लिल्लाह'' मानें भगवान्‌के अलावा और कुछ नहीं हे. ये भी नहीं के भगवान्‌को रसूल मोहम्मद हे. लोगन्‌ने फरियाद करी के ऐसे कलमा पढ़ो हो. वाने ऐसी अपनी मस्तीको जवाब दियो के भई! जितनो जान रह्यो हूँ उतनो तो पढ़ रह्यो हूँ. वाके आगे जब जानूंगो, तब पढ़ूंगो. तब औरंगज़ेबने हुकम दियो के मार दो याकु. तब जामा मस्जिदकी सीढ़ीपे वाकु लोग मारवेके लिए आये वा बखत भी वाने इतनी अच्छी रुबाई कही हे के वो ये नहीं मान रह्यो हे के औरंगज़ेब मोकु मार रह्यो हे. वो सूफी हे, या लिए वो अल्लाहकु अपनी माशूक माने हे और खुदकु वाको आशिक. वो कहे हे के ''तोकु अभी भी मेरे प्रेमपे भरोसा नहीं हे जो तू मेरे प्रेमकी परीक्षा ले रही हे. अब तू अगर परीक्षा ले रही हे तो चल मैं याके लिए अपनो गला भी कटवावे तैयार हूँ.'' ये केहतो भयो वो मर्यो. ये केहतो भयो नहीं मर्यो के औरंगज़ेब मोकु मारे हे. देखो याको नाम हे, विवेक और धैर्य.

अपने नागरीदासजीके दोस्त घनानंदजी हतें, उनकी कथा भी कुछ ऐसी ही हे. जब नादिर शाह लूटवे आयो तो वाके सैनिक वृंदावन गये. कोईने नादिर शाहसु शिकायत कर दी हती के घनानंदजी दिल्लीमें मोहम्मद शाहके यहाँ खजांची हतें. उनके पास बहोत धन हे. उनने वहाँ जाके उनसु कही के ''लाओ जर, लाओ जर.'' 'जर' मानें धन. उनने जरको उल्टो कर दियो 'रज' और जमुनाजीकी रज उठा-उठाके उनके माथेपे डाली और कही के ''लो ये लो जर'' यासु बड़ी और जर क्या होयगी! वो सैनिक तो जंगली हते. उनने घनानन्दजीके हाथ काट दिये. वे अपने नागरीदासजीके खास दोस्त हतें. दोनों साथ ही रहते हतें. नागरीदासजी जैसे बहोत उत्तमोत्तम कोटिके भक्त कवि हतें. वे कोई संप्रदायके नहीं हतें पर बहोत अच्छे कवि हतें. उनने भी ये नहीं कही के नादिर शाहने ऐसो कियो. मरते-मरते उनने भी ये ही कही के ''बहोत दिनान्‌की

अवधि आस-पास फिरे खरे अरबरन गहि उठि जानको, कहि कहि आवन संदेसो मनभावनको, गहि गहि राखत हि दे दे सनमानको, अधर लगे हें आज करवे प्रयान प्राण चाहत चलन ये संदेसो 'सुजान'को'' ये मेरे प्रान तेरे पास आज नहीं, बहोत पहले आनो चाहते हते. मैं अपने प्राननकु समझातो के क्यों इतनी उतावल करो हो! जावेके समय वो खुद आ जायगो. पर तू आ ही नहीं रह्यो हे तो ये अब खुद तेरे पास आ रहे हें.

देखो, मरते समयमें भी ऐसी स्थिति. उनके हाथ काट दिये जर देवेके चक्करमें. जब खून ज्यादा निकल जाय तो आदमी मरवे लगे हे. वा समयमें भी उनकु नहीं लग रह्यो हे के मेरे हाथ इन आततायीन्‌ने क्यों काटे. वा समय भी उनकु ये लग रह्यो हे के वो नहीं आयो या लिए मेरे प्राण मेरी अवस्था बतावेके लिए मेरे प्रियतमके पास जा रहे हें. ये विवेक हे-''**विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छात करिष्यति**'' वो धैर्य हे ''**त्रिदुःखः सहनम्**'' जाकु महाप्रभुजी समझा रहे हें **स्वस्यासामर्थ्य-भावनात्** यदि तू नहीं आ सके तो हम क्या कर सकें! हम असमर्थ हें तो अपने प्राण तेरे पास भेज रहे हे. ये धैर्यकी बात हे. यामें दूसरेकु कुछ बुरो मानवेकी बात नहीं हे. दूसरेकु कुछ बुरो नहीं लग रह्यो हे. दूसरेको कुछ अपमान नहीं हो रह्यो हे. जो कुछ हो रह्यो हे वो भगवदिच्छासु हो रह्यो हे. जो कछु हो रह्यो हे वाकु भक्तिके मूडमें कुछ ऐसो अर्थघटन कर रहे हें के जासु भक्तिके भावमें क्लेश नहीं पहुँचे. भक्ति अखंडित रहे. अब यामें रोयो भी जा सकतो हतो के हाय रे, मेरे हाथ काट दिये. तुम बड़े आततायी हो, म्लेच्छ हो. हम हिन्दु हें तुम मुसलमान हो. ऐसी कोई भी दुविधा नहीं हे. उनके मनमें न हिन्दु-मुसलमानको, न आततायी-पीड़ितको कोई चक्कर हे. उनके मनमें केवल एक ही बात हे के मेरो प्रीतम मोसु मिलवे नहीं आ पायो. चलो, कोई बात नहीं. मेरे प्राण वाके पास मैं

भेज दऊँ मिलवेकु. या सोचको नाम 'विवेक', याको नाम 'धैर्य'. या तरहसु जब अपन् सोचनो शुरु करें तो बस बात बन गयी. उन नादिर शाहके सैनिकनूकु पता नहीं हे के वो सारी संपत्ति छोड़के वृंदावन आये हतें. संपत्ति उनकु यदि रखनी होती तो दिल्ली क्या खोटी हती? उनकु कुछ और ही संपत्ति चहिये हती. जैसे नागरीदासजीकु "नागरियाकु श्रीवृंदावन भक्तितख्त बैठायो." वो नागरीदासके मेल-मिलापके, उनकी मन:स्थितिके व्यक्ति हतें. सारी संपत्तिकु छोड़के आये हतें. वृंदावनमें काहेकु संपत्ति इकठ्ठी करेंगे. पर नादिर शाहके सैनिक यदि नहीं समझ सकें तो अपन् क्या करें! **स्वस्यासामर्थ्य-भावनात्** तो असामर्थ्यको भावन कियो इतनो ही नहीं **"विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति"** विवेक और धैर्य को भी उनने भावन कियो के तू मोसु मिलवे नहीं आयो तो कब तक? इन प्राणनूकु समझाके रख्यो हतो के वाके पास मत जाओ पर तू नहीं आयो तो अब ये तेरे पास आ रहे हे. वाकी अवधि अब आ गयी हे. "बहोत दिनानूकी अवधि आस-पास फिरे खरे अरबरन गहि उठि जानकों, कहि कहि आवन संदेसो मनभावनकों, गहि गहि राखत हि दे दे सनमानकों, अधर लगे हें आज करवे प्रयान प्राणचाहत चलन ये संदेसो सुजानकों"

ये भक्तिमार्गीय विवेक-धैर्य हे. ये हृदय भक्तिमार्गीयको हे. या प्रकारको विवेक धैर्य जब अपने हृदयमें प्रकट होयगो, जैसे कुंभनदासजीकी वार्तामें प्रकट बतायो. मानसिंहजी जब आये और उनने देखी. तिलकके लिए उनने आरसी मांगी तब उनकी बेटी बोली "जो आरसी तो पड़िया पी गयी". तब मानसिंहने कही के "मैं रत्नजटित आरसी दिवाऊँ". तब कुंभनदासजीने कही के "वो हमारे क्या कामकी हे!" ऐसी मस्ती हे. "भक्तकों कहा सीकरीसों काम, आवत जात पन्हेया टूटी बिसर गयो हरिनाम" मस्तीके लायक जो भक्तिमय हृदय हे, वामें तो क्लेश उत्पन्न नहीं होयगो. वो मस्ती यदि नहीं हे तो विवेक और धैर्य के उपाय, जो महाप्रभुजीने बताये हे, वो अपनाने पड़ेंगे.

(आश्रय"सु अक्लेश)

यदि वे चार उपाय भी अपन् नहीं अपना पा रहे हें, तो महाप्रभुजी केह रहे हें के फिर कमसु कम इतनो तो करो के जो कछु हो रह्यो हे वाकु भगवदाश्रय भगवत्शरणागति की भावनासु स्वीकारवेकी एक मनोवृत्ति तो बनाओ. जो कुछ सुख दु:ख कष्ट आनन्द जो भी हे, भगवान् मैं तेरी शरणमें हूँ. तू ही मेरो रक्षक हे.

आज समझो के भक्ति नहीं हे तो **अलौकिक मनः सिद्धौ सर्वथा शरणं हरिः.** महाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हें के अलौकिक मनकी सिद्धिके अर्थ जो भक्तिके लायक हे, वाके कारण अपनी भक्ति चेतस्तत प्रवणात्मिका हो जायगी. वा तरहकी शरणभावना मनसु करो. मनमें विवेक और धैर्य अपने आप सिद्ध हो जायगो. जब वो सिद्ध हो जायगो तो चित्तमें कोई तरहको क्लेश होयगो ही नहीं. जो मैंने आपकु बतायो के पड़िया यदि आरसी पी जाय तो क्लेश नहीं. नादिर शाहके सैनिक हाथ काट दे तो चित्तकु क्लेश नहीं. बहादुर सिंहजी, नागरीदासजीके भाई, राज्यमें बगावत कर दे तो चित्तकु क्लेश नहीं. प्रतिकार करवेकी अवस्थामें प्रतिकार भी कियो हे. पर हर चीजकु भगवत्संकेत मानके चलवेकी प्रणालीसु चित्तमें ऐसी मन:स्थिति पैदा होयगी, जो भगवत्सेवा करवे लायक होयगी. हर चीजकु भगवल्लीलाके रूपमें, जीने लायकरूपमें होयगी. ये मन:स्थिति यदि विवेक धैर्य सु नहीं हासिल होती होय तो अंतमें शरणागतिसु हासिल करनी चहिये. वामें इतनो तो अपन् कर सके हें

सर्व-साधन-हीनस्य पराधीनस्य सर्वतः।
पाप-पीनस्य दीनस्य श्रीकृष्णः शरणं मम॥

(श्रीकृष्णशरणाष्टकम्)

इतनो तो अपन् केह सके हें के "जैसे हें ऐसे बस तेरे हें. तू ही हमारी शरण हे."

मम नाथ यद् अस्ति योस्म्यहं सकलं तद्धि तवैव माधव।
नियतस्वमतिप्रबुद्धिः अथवा किं नु सर्मपयामि ते।।
अपराध सहस्र भाजनं पतितं भीमभवार्णवोडदरे।
अगतिं शरणागतं हरेः कृपया केवलम् आत्मसात्कुरु।।

(आळवन्दार स्तोत्र.५३-५१)

तू कृपा करके हमारी शरण बन जा. इतनी तो अपन् भावना कर ही सके हें. इतनी शरणागतिकी भावना भी यदि अपने हृदयमें रहेगी तो जीवनके बहोत सारे क्लेशन्पे अपन् काबू पा सके हें. शरणागतिकी भावनासु वो धुआँ ठाकुरजीकु परेशान नहीं करेगो. वो धुआँ अपनुकु परेशान नहीं करेगो. ये बात महाप्रभुजीने विवेक धैर्य और आश्रय के द्वारा समझायी हे. धुआँ ठाकुरजीकु अत्यंत अप्रिय हे. फिरसु मैं आपकु ये बतानो चाह रह्यो हूँ. ये धुआँ ब्रह्मकु अप्रिय नहीं हे, परमात्माकु अप्रिय नहीं हे. भगवानुकु थोड़ो बहोत अप्रिय हो सके हे. पर कृष्णकु और अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकु ये धुआँ नहीं पसंद हे, नहीं पसंद हे और नहीं पसंद हे. क्योंके वो तुम्हारे भरोसे तुम्हारे घरमें पधार्यो हे. जब तुम खुद परेशान हो तो वो कितनो परेशान होयगो. मानो अपन् कोईके घरमें जाय और वहाँ रोआ-पीट, डंडा चलते होय तो?

हमारे एक परिचित हते. उन पति-पत्नीमें इतनो झगड़ा रेहतो के उनकी बारीमेंसु कभी कुछ उड़तो कभी कुछ. तो जब भी उनके घर जाय तो बहोत संभलके घुसनो पड़तो के पता नहीं माथापे क्या आके लगेगो. ऐसे घरमें जावेमें अपनुकु डर लगे हे. जब निरंतर अपन् अपने गृहकु परिवारकु शरीरकु समाजकु मनकु क्लेशयुक्त रखेंगे तो अपने ठाकुरजीकु अपनी सेवा स्वीकारवेमें परेशानी होयगी. क्योंके ठाकुरजी परमानन्दरूप हे. वा परमानन्दरूप होवेके कारण ठाकुरजीकु सुख नहीं होयगो. ठाकुरजीकु सुख होय, याके लिये अपने क्लेशनुकु

महाप्रभुजी द्वारा बताये विवेक धैर्य और आश्रय के द्वारा वाको निराकरण करनो चहिये. ये बात महाप्रभुजीने बतायी के **"ठाकुरजीकु धुआँ अप्रिय हे और ताते हूं अप्रिय हे भक्तको द्वेषी"** आज अपन् यहाँ रखेंगे.

विवेक बुद्धिको विषय हे पर धैर्य तो हृदयको, चित्तको. कई बार दुःखको क्लेशको प्रतीकार बुद्धिसु करवेमें अपन् सक्षम भी होंय हृदयसु हो नहीं पावे. जैनमतके उद्भट विद्वान न्यायकुमुदचन्द्रोदयकार प्रभाचन्द्र बौद्धमत पढ़वेके लिये छद्मवेष बनाके बौद्ध मठमें घुस गये.

उनने अपनो बौद्धभेष बना लियो. बौद्धभेष बनाके वो बौद्धमठमें पढ़वे गये. वहाँ खूब अच्छो पढ़े. बहोत उच्च कोटीके विद्वान हते. एक दिन क्या भयो के बौद्धमतकी किताबमें कुछ जैनमतको उल्लेख आयो. उनके बौद्ध गुरुजीकु समझ नहीं आ रही हती के ये क्या हे? दो दिन तक उनके गुरुजी सोचते रहे. केहते रहे के सोचके बताऊँगो. इतने दिन पाठ बंद हो गयो. उन दोनोंनुकी धीरज छूट गयी. इनने क्या कियो के चुपचाप वा गलतीकु सुधार दियो जासु वो पाठ आसानीसु समझमें आ जाय. उनके गुरुजीको माथा ठनक गयो के यहाँ कोई जैन घुस आयो हे. उनने सबनूसु पूछी पर सबनूने ये ही कही के हम बौद्ध हे. उनने परीक्षा लेनी चाही क्योंके यदि कोई जैन घुस्यो नहीं हे, तो ये पाठ सुधर्यो कैसे? उनने जमीनपे खड़ियासु महावीर स्वामीकी मूर्ति बनायी. और कही के यापे पैर रखो सब. अब अकलंकने सोची के क्या करनो? वा समय श्वेताम्बर मत नहीं हतो. केवल दिगम्बर मत ही हतो. वाने वा चित्रपे एक सूत डाल दियो जासु वो दिगम्बर तो रह्यो ही नहीं. वापे पैर रखके निकल गयो. वो परीक्षा भी फेल् हो गयी. तब गुरुने सोची के आदमी जो भी हे बहोत चालाक हे. अंतमें उनने एक बात सोची. रातकु अपने तीन-चार विश्वसनीय आदमीनूकु

कही के निगाह रखो और जोरको धमाका करो. मठमें जब सब सो रहे हतें और जोरको धमाका भयो. धमाकासु बौद्ध तो सब उठ गये पर जैनन्में उठते समय नमस्कारको नियम हतो. उनने उठते ही नमस्कार कियो. बस पकड़े गये. देखो ये बुद्धिकी बात नहीं हती. चित्तकी बात हती. सब सो रहे हतें तो बुद्धि तो क्या कर सके! बुद्धि तो या विचारमें उलझी होयगी के ये धमाका कैसो हे? जागके भागनो बैठनो के क्या करनो? बुद्धि तो यामें उलझी होयगी और मन तो सो रह्यो हतो. यासु कोई काम ही नहीं कर रह्यो हतो. अहंकार थोड़ो जग रह्यो होयगो, थोड़ो सो रह्यो होयगो. पर चित्तमें जो बात गढ़ी भयी हती वो ये के भगवान् महावीरकु वंदन करके उठनो वासु वो पकड़े गये. फिर उनकु वहाँसु कोई तरहसु बचके भागनो पड़्यो. ऐसी कथा हे.

अलौकिक-मनः सिद्धौ सर्वथा शरणं हरिः (वि.धै.आ.१३) ऐसी परिस्थितिमें बुद्धि अहंकार मन कुछ काम नहीं कर सके हे. चित्त काम करे हे. जैसे अपन् सोये भये हें, पर अपन्कु ये बात पता रहे हे के हम कहाँ सोये हें. कोई मच्छर तो नहीं काट रह्यो हे. कोई अपन्कु हेला दे तो कैसे अपन्कु पता चले के अपन्कु ही बुला रह्यो हे. अपन् जाग रहे होय तब तो अपनी बुद्धिसु पता चले हे. पर सोते भये तो अपनी बुद्धि सोती होय हे. पर हेला देते ही अपनी नींद कैसी उड़े हे! क्योंके चित्त वा बखत भी जगतो होवे हे. बुद्धि सो जाय हे. जितनी देर अपनी बुद्धि जगे हे उतनी देर आदमी सपना देखे हे. चित्त सपना नहीं देखे हे. जो कुछ बुद्धिने सोच्यो होय, जो बुद्धि चाहती होय, वाके सपना आवे हे. थोड़ी देरमें जब बुद्धि भी सो जाय हे तब अपन्कु गहरी नींद आ जाय हे. कुछ पता नहीं चले के रात कैसे बीत गयी! ये बात चित्तसु पता चली. अहंकारसु पता नहीं चले. मनसु पता नहीं चले. मन तो चंचल हे पर उतनी देर ही जितनी देर

अपन् जागे हें. जागते ही मन चंचल हो जाय हे. जैसे सुबह होते ही पक्षी उड़नो शुरु करे हे. ऐसे मनको भी ये ही सिद्धांत हे. अपन् जागे नहीं के मनको पंछी चारों ओर उड़वे लगे हे. और जब अपन् सो जायें तो मन सो जाय. अपन् सो भी गये होय तो भी अपनो चित्त जागतो रहे हे. पूरी सावधानी रखे हे के कोई मच्छर काट तो नहीं रह्यो हे. कोई बुला तो नहीं रह्यो हे. जैसे रातको पहरेदार होवे ऐसे ही अपनो चित्त हे.

चित्तमें भक्ति प्रतिष्ठित होनी चहिये ऐसे महाप्रभुजी केह रहे हें. मनमें अहंकारमें बुद्धिमें हो गयी वो ठीक बात हे, कोई बुरी बात नहीं हे पर अच्छी बात जाकु कहें के मनसु अहंकारसु बुद्धिसु जो भक्ति अंदर घुसी हे, वो चित्तके सिंहासनपे जाके बैठ जाय तो हरकत नहीं होय. धमाका होय तो भी उनकु ये विचार नहीं आयो के भागो, ये विचार आयो के पहले नमन करो. महावीर स्वामीकु वंदन तो हो ही गयो. ऐसे ही कोई बुलावे अपन्कु. अपनो नाम अपने चित्तमें कितनो चढ़ जाय. समझो अपन्कु नहीं बुलाके अपने नामवाले कोई औरकु बुलातो होय तो भी एक बखत तो अपन् जग ही जाय हे के कोई मोकु तो नहीं बुला रह्यो हे. वहाँ भक्ति बैठी तो बात बन गयी. और वहाँ नहीं बैठी तो स्थिति थोड़ी डगमग हे. क्योंके मन तो चंचल हे और अहंकारको भरोसा नहीं हे वो कब गाड़ी नावपे और कब नाव गाड़ीपे हो जाय. अपन् अहंकारपे भक्तिकु बैठावे जाय और भक्तिमें यदि अहंकार हो गयो तो लेनेके देने पड़ जायेंगे. यासु ही अहंकारके साथ थोड़ो खतरा हे. बुद्धि तटस्थ हे. हर चीजकु वो तटस्थतासु ग्रहण कर लेवे हे. वासु बहोत प्रयोजन सिद्ध नहीं होवे हें. यासु ही महाप्रभुजीने कही हे के **"चेतस्तत्प्रवणं सेवा"** जो बात महाप्रभुजीने वहाँ कही हे, वो ही बात यहाँ विवेकधैर्याश्रयमें केह रहे हें. **"अलौकिक-मनः सिद्धौ सर्वथा शरणं हरिः"** या प्रकारको अलौकिक मन, जो चित्तमें

भक्तिकु बैठा दे. मानें मनकी ऐसी चंचलता हे वो कहीं भी भटके पर भटके भगवान्‌की ही दिशामें, दूसरी दिशामें नहीं.

बड़ोदामें कृष्णमाचारी नामके एक रामानुज संप्रदायके बहोत बड़े विद्वान भये हें. वे रामानुजमतके अलावा बौद्धमतके और भी अच्छे विद्वान हतें. उनने बौद्धमतकी बहोत अच्छी एक पुस्तक लिखी हे. वामें उनने हिन्दुधर्मकी सब विपरीत बातें केवल समझावेके लिए लिखी हती. वे हतें तो अच्छे वैष्णव. वा पुस्तकके अंतमें उपसंहारमें एक बहोत अच्छो श्लोक लिख्यो हे. वो श्लोक मोकु बहोत प्रिय हे. वो ऐसे हे के "**अनेक तन्त्रकान्तारे बहुधा विशतो मम, विष्णुः अव्याहतपन्थाः हृदयाद् मा अपसर्पतात्**" वे कहे हें के "कई मतान्तरके मतभेदमें मेरी बुद्धि तो भटके हे, लिखवेके लिए, सोचवेके लिए और कई बातनूके लिए. ये भटकती रहे हे, वामें मोकु डर नहीं लगे हे. डर मोकु या ही बातको लगे हे के हे विष्णु! तू मेरे हृदयमें आवेके लिए कभी रस्ता भटक मत जईयो" कैसी मीठी बात कही हे! जा तरीकेकी बौद्धमतकी किताब लिखके जामें हिन्दुमत विरोधी सारी बातें कहीं. और अंतमें जाके ये बात उपसंहाररूपमें केह दी. कितनी सच्ची बात हे! "**अलौकिक-मनः सिद्धौ**" ऐसो अलौकिक मन सिद्ध हो जाय तो बस बात बन गयी.

[ग-१] **एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत्** महाप्रभुजी कहे हें के या प्रकारको सरल मन, सहज मन सिद्ध होनो सरल बात नहीं हे. यासु सबसु पहले भगवदाश्रयको चित्तमें भावन करो. **एवं चित्ते सदा भाव्यं** चित्तमें सदा भगवदाश्रयको भावन करोगे तो चित्तमें धीरे-धीरे भक्ति बैठ जायगी. जरूरी नहीं हे के अपनो चित्त भक्तिरससु इतनो आर्द्र बने. पर अपन् अपने चित्तकु इतनी बात तो समझा सके हें के मेरो आश्रय श्रीकृष्ण हे. "**श्रीकृष्णः शरणं मम. श्रीकृष्णः शरणं मम. श्रीकृष्णः शरणं मम**" इतनी बात भी चित्तमें बैठ गयी

तो रस्ता खुल जाय हे. जैसे कृष्णमाचारी केह हे के "**विष्णुः अव्याहतपन्थाः हृदयाद् मा अपसर्पतात्**" ऐसी फिर भक्ति हो सकेगी. याके लिए आगे महाप्रभुजी केह रहे हें के "**एवं चित्ते सदा भाव्यं**" अब कोई कहे के शरणकी भावना भी हमसु नहीं हो पा रही हे. तो आप आज्ञा करे हें के कोई बात नहीं. तुम अपनी वाणीसु ही अपने आपकु समझाओ के "**श्रीकृष्णः शरणं मम**" जब हम अपने आपकु अपनी वाणीसु समझानो शुरु करेंगे तो बात चित्तमें जायगी.

(भक्ति और पूजा की तरतमता)

और वो जब चित्तकी ओर जा रही हे और फिर कभी हम और देवनूको पूजन करें, यहाँ-वहाँ भटकें तो चित्त और वाणी में विक्षेप हो जाय हे. यासु ही महाप्रभुजी केह रहे हें के "**अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च, प्रार्थना कार्यमात्रेपि तथा अन्यत्र विवर्जयेत्**" (वि.धै.आ.१४).

ये देखो, कई लोग ये समझें के पुष्टिमार्ग संकीर्ण हे. हम अन्यदेवके भजनकी मना करे हें, ऐसो ही नहीं हे. हम कृष्णके भजनकी भी मना करे हें. क्योंके अपनो मत ये हे के जा देवकु भजो वाकु अनन्याश्रयसु भजो. यदि तुम शिवकु भज रहे हो तो शिवकु अनन्याश्रयसु भजो. यदि तुम विष्णुकु भज रहे हो तो विष्णुकु अनन्याश्रयसु भजो. यदि कृष्णकु भज रहे हो तो कृष्णकु अनन्याश्रयसु भजो. क्योंके भजन तो एकाकी ही हो सके हे. पूजन अथवा आदर को यदि सवाल हे तो सब देव आदरणीय हे. पर भजन एक मनकी विशिष्ट अवस्थाको नाम हे. वो विशिष्ट अवस्था हमारी सब जगह हे तो वो तो संभव नहीं हे. बातमें कुछ न कुछ गड़बड़ हे. या तो अपन् भक्तिको स्वरूप समझे नहीं हें. या अपन् कुछ न कुछ पाखंड कर रहे हें. भजन सब देवनूको हो नहीं सके हे.

पूजन सब देवन्को हो सके हे. जैसे सत्कार हर अतिथिको हो सके हे. पर हर अतिथिके साथ तादात्म्य या पारिवारिक संबंध निभा नहीं सकेंगे. हर अतिथिको गृहस्थके यहाँ सत्कार हो सके हे पर पारिवारिक तादात्म्य हर अतिथिसु निभानो मुश्किल हे. अपने घरमें जो भी आयो हे वो अतिथिकी तरह ही तो आयो हे. अपनी पत्नी बेटा भाई बहन बहनोई सब यहाँ अतिथिकी तरह ही तो आये हें. कौन यहाँ रुकवेवालो हे! पर जाकु अपन् परिवारके रूपमें ले रहे हें वाके कम रुकवेपे अपनेकु तकलीफ हो रही हे. और जाकु अपन् अतिथिकी तरह ले रहे हें वाके अधिक रुकवेपे तकलीफ होवे हे. पारिवारिक लोगन्के साथ अपन्ने वा प्रकारको भाव स्थापित कियो हे, यासु उनके जावेमें अपन्कु तकलीफ होवे हे. अतिथिके साथ अपन्ने सत्कारको भाव स्थापित कियो हे.

भक्ति भगवान्के साथ रेहवेको भाव हे. महाप्रभुजी या ही लिए सुबोधिनीमें स्पष्ट आज्ञा करें के **''गृहस्थितेः उत्कृष्टत्वं न भगवदीयत्वमात्रेण, किन्तु भगवता सह स्थित्या भगवत्कार्यार्थं वा''** (भाग.सुबो.३।१।६) तुम भगवदीय हो, केवल यासु घरमें रेहनो कोई अच्छी बात नहीं हे. पर भगवत्सेवाके लिए बड़ी अच्छी बात हे. क्योंके अपन् भी घरमें रेह रहे हें और अपने परिवारके सदस्यकी तरह अपनो ठाकुर भी घरमें रेह रह्यो हे. दोनों घरमें रेह रहे हें. वो या लिए रेह रह्यो हे के ये मेरी सेवा करे और अपन् या लिए रेह रहे हें के अपन् वाकी सेवा करें. याके अर्थ दोनों घरमें रेह रहे हें. या तरीकेके पारिवारिक संबंधके साथ जब दोनों घरमें रहे हें तो वो भक्ति हे. वो बात चित्तमें चढ़ेगी. वो बात बुद्धिकी नहीं हे. अतिथिसत्कार तो बुद्धिसु ही होवे. वाके लिए चित्तको बहोत प्रयोजन नहीं हे. अतिथिको सत्कार बुद्धिसु और मनसु अपन् कर सके हें. पर घरमें रेहवेकी जो बात हे वो बुद्धिकी बात नहीं हे, चित्तकी बात हे.

मेरे पड़ोसीको दो बरसको बच्चा मेरे यहाँ खेलतो रेहतो. एक दिन मैं शामकु घूमवे जातो हतो तो मैंने वासु कही के चल मेरे साथ घूमवे. आप मानोगे नहीं के थोड़ीसी दूर जाते ही वाने मम्मी मम्मी केहके रोनो शुरु कर दियो. रोज मेरे साथ खेलतो. पर थोड़ी देरमें ही जब वाकु मम्मी नहीं दीखी तो रोनो शुरु कर दियो. याको नाम 'पारिवारिक भाव' हे. ऐसे अपने हृदयमें वैसो भाव जगे जैसे ''भैयाजी गोकुल कब चलोगे!'' तब तो वो भक्तिको भाव हे.

सत्कारमें तो शास्त्रको विचार आयगो के शास्त्रमें भगवान्के पूजनको कैसे कह्यो हे! जैसी विधि बतायी हे वामें कुछ वैपरीत्य नहीं आ जाय ऐसे करनो. वो कोई भी देवताके साथ हो सके हे. कोई भी वैष्णव विवाहके प्रसंगपे गणपतिको पूजन कर सके हे. वामें कोई अन्याश्रय नहीं हे. मानो अपन् कोई रस्तापे जा रहे हें. वा रस्तापे शास्त्रसु प्रतिष्ठापित कोई मन्दिर आयो तो अपन् वाकु वंदन कर सके हें. देव तो देव ही हे. अपन् अपनेसु हर बड़ेकु वंदन करे हें तो देवकु क्यों नहीं करें? देव तो भगवान्के अवतार हें. पर भजनको भाव साथमें रेहवेको भाव हे. सत्कारके जैसो इतनो छोटो भाव नहीं हे.

[ग-२] **अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च, प्रार्थना कार्यमात्रेपि तथा अन्यत्र विवर्जयेत्** अपन् याही कारणसु ये माने हें के जा देवकु तुम भजो, वाके पूर्णरूपसु आश्रित होके रहो. याही लिए बालबोध ग्रंथमें आप देखोगे तो वहाँ महाप्रभुजी स्पष्ट आज्ञा करे हें **''मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर् भोगश्च शिवतस्तथा, समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम्, अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाश्रितः तदाश्रयतदीयत्वबुद्धयै किञ्चित् समाचरेत्.''** (बा.बो.१७-१८) समर्पणसु आत्मामें तदीयता आयगी. मानें शिवके प्रति तुम समर्पित होंगे तो शिवकी सच्ची तदीयता तुममें

आयगी. विष्णुके प्रति तुम यदि समर्पित होंगे तो तुममें विष्णुकी सच्ची तदीयता आयगी. ये बात गणपतिपे भी लागू हे. **समर्पणेन आत्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम्** मतलब गणपतिजीको भजन जब तुम विघ्न हरवेके लिए कर रहे हो, वो भक्तिकी बात नहीं हे, सत्कारकी बात हे. मानें हम कोई काम प्रारंभ कर रहे हें, कोई मंगल प्रसंग आयो हे, वामें कोई विघ्न न आ जाय ऐसो काम तुम करो और या लिए हम तुम्हारो पूजन कर रहे हें. ये सत्कारकी बात हे, पूजनकी बात हे. भक्तिकी बात नहीं हे. यदि तुमकु गणपतिकी भक्ति करनी हे तो ये प्रकार नहीं हे. महाराष्ट्रमें पहले ऐसे हतो. बादमें लोकमान्य तिलकने गणपतिके पूजनको प्रकार गणेश चतुर्थीके दिनको रख्यो. समझो के गणपतिको यदि कोई भक्त हे, तो गणपतिकी मूर्तिकु विसर्जित कैसे कर सकेगो! यदि भक्त हे तो मूर्तिकु विसर्जित करवेमें वाकी रूह कांप जायेगी.

इन्दौरवाले देवकीनन्दन महाराज हते. वो डेरा इस्माइल खां, जो अब पाकिस्तानमें हे, वहाँ बिराजते हते. उनके यहाँ कोई एक ठिकाने दाऊजीको स्वरूप बिराजतो हतो. उनके मुखियाजीके हाथसु दाऊजीको स्वरूप गिर गयो और खंडित हो गयो. जब उनकु पता चली तो वो तुरंत वहाँ गये. डरके मारे मुखियाने वैसोको वैसो ही दूसरो स्वरूप पधरा दियो. तब देवकीनन्दनजी ने कही के "तेरे बापकी टांग चलते-चलते यदि टूट जाय तो तू अपनो बाप बदलेगो? जब तू अपनो बाप नहीं बदल सके हे तो तेने मेरे दाऊजी कैसे बदल दिये! खंडित हो गये तो क्या भयो? मेरे खंडित दाऊजी ला" ये भक्तिको भाव हे. पूजनमें वो ठीक हे पर भक्तिमें नहीं. पूजनमें आवाहन करे हें तो विसर्जन भी करे हें. भक्तिमें वो देवसत्कारवाली बात नहीं हे. देवके साथ जीवेकी कथा हे. यासु ही गुसांईजीने तुलसीदासजीकु ये कही के "तुम जैसे विष्णुके पद गाओ वैसे तो हमारे यहाँ आठ-आठ हें. पर तुम जैसे रामके पद गाओ हो वैसो

कोई नहीं गावे हे. तासों तुम रामके ही पद गाओ." अपन् ये नहीं कहे हें के अन्यदेवको भजन तुम मत करो. अपन् या बातकु कहे हें के पहले अपने मनमें या बातकु साफ करो के तुम देवको भजन कर रहे हो के पूजन? यदि तुम पूजन कर रहे हो तो करो पर वा प्रणालीकु अपनी भक्ति मत समझो. भक्तिमें विसर्जन-विलोपनकी कथा नहीं हे. भक्तिमें साथ जीवेकी कथा हे. भक्तिमें कोई एक देवकु अपने घर पधरानो हे. वा देवके साथ जीनो हे. जीवनके हर क्रिया-कलापकु वा देवके साथ देवमय बनानो हे. जैसे डोरीमें फूल पिरो ले हें. ऐसे ही वा देवके प्रयोजनसु अपने जीवनके हर क्रिया-कलाप, फूलकी तरह पिरोये भये होने चहिये. याको नाम 'भक्ति' हे.

महाप्रभुजी केह रहे हें के ऐसो अलौकिक मन कब सिद्ध होयगो? तब, जब अपन् अन्याश्रय नहीं करें. अपन् अन्याश्रय करेंगे तो मनमें वा प्रकारकी अलौकिकता नहीं आयगी. कभी एककु कभी दूसरेकु कभी तीसरेकु पूज रहे हें. मानें "रहत न चित्त, इत उत फिरत, परिचय संचय हेतु" वैसी परिस्थिति हो जायगी. यासु ही महाप्रभुजी आगे केह रहे हें **"समर्पणेन आत्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम्, अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाश्रितः"** तुममें तदीयता शिव या विष्णु के प्रति नहीं आयी तो भी कोई चिंताकी बात नहीं हे. केवल आश्रय करो के मोकु शिव अथवा विष्णु को अनन्याश्रय हे. ऐसो भाव यदि रखोगे तो **"तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित् समाचरेत्"** तो भी इतनो तो तुम कर ही सको हो के ऐसो दिन कब आयेगो के मैं शिव अथवा विष्णु को अनन्यभक्त हो जाऊँ. इतनो तो तुम कर ही सको हो. महाप्रभुजीने ये नहीं कही हे के तुम अन्यदेवको भजन मत करो. महाप्रभुजी ये समझानो चाह रहे हें के यदि तुम शिवके भक्त हो तो तुम शिवकी अनन्यभक्ति करो. यदि तुम विष्णुके भक्त हो तो विष्णुकी अनन्यभक्ति करो. यदि रामके भक्त हो तो

रामकी भक्ति करो. यदि कोईके भक्त नहीं हो तो पूजन तो सब देवन्को कर ही सको हो. पर बात साफ रखनी पड़ेगी. जैसे इन्कमूटॅक्स्वाले कहे हे के अपनो अॅकाउन्ट् साफ रखो. या लिए महाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हें के **''अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च. प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि तथा अन्यत्र विवर्जयेत्''** ये बात तब समझमें आ सके हे जब अपन् भजनके मूड्कु समझें. पूजनको मूड् अलग हे. भजनको मूड् अलग हे. अपन् अन्यको भजन नहीं करें. अपन् चलके कोईके मंदिरमें नहीं जाय. रस्तामें आये तो वंदन करवेमें अन्याश्रय नहीं हे. चलके यदि दूसरे देवके मंदिरमें दर्शन करवे जा रहे हो तो जो घरमें बिराज रह्यो हे वो कौन हे. जो घरमें बिराज रह्यो हे, वाकु छोड़के दूसरेके मंदिरमें चलके जानो, तो सवाल ये हो जाय हे के घरमें कौन बैठौ हे? **''प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि''** एक देवकी तुम सेवा कर रहे हो और दूसरेसु प्रार्थना कर रहे हो! ये सब अन्याश्रयके प्रकार हे. महाप्रभुजी कहे हें के जब-तक ये नहीं छोड़ोगे, तब-तक मनमें वो अलौकिकता नहीं आयेगी, जो तुम्हें कृष्णकी भक्तिमें सहायक हो सके.

ग-३ **अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः, ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ** और समझो के तुमकु ये लग रह्यो हे के हम कृष्णको भजन तो करनो चाह रहे हें पर तकलीफ तो फिर भी पैदा हो रही हे. और दूसरे देवकी मानता मानें तो वाको फल तो तुरंत मिलतो दिखलाई दे रह्यो हे. आज मानता मानी और कल मानता पूरी. ऐसी मानताकी लालचमें जब तुम अपने देवपे अविश्वास करोगे तो वाके लिए महाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हें के **''अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः''** (वि.धै.आ.१५) हनुमानजीपे जा बखत मेघनादने ब्रह्मास्त्र छोड़यो तो हनुमानजीने सोची के मैं यदि यासु नहीं बंधूगो तो या ब्रह्मास्त्रको अपमान होयगो. यदि ब्रह्मास्त्रको अपमान होयेगो तो पता नहीं रामचन्द्रजी प्रसन्न होयेंगे या अप्रसन्न होयेंगे? श्रीरामकी

प्रसन्नताको विचार करके हनुमानजी वा ब्रह्मास्त्रसु बंध गये. रावणकु भयो के या बन्दरने इतने तूफान किये तो ब्रह्मास्त्रकु ये तोड़ तो नहीं देगो? याके लिए लोहाकी सांकल उनकु बांधवेके लिए और मंगवाई. तब हनुमानजीने कही के जब ब्रह्मास्त्र चलावेवालो ही वापे विश्वास नहीं कर रह्यो हे तो मैं क्यों रखूं! तब उनने ब्रह्मास्त्र भी तोड़यो और लोहेकी सांकल भी तोड़ डाली. ये बात महाप्रभुजी समझानो चाह रहे हें के अपन् जाकु भज रहे हें, वापे अपनेकु विश्वास नहीं हे और जापे विश्वास हे वाकु भज नहीं रहे हें. धोबीको कुत्ता न घरको न घाटको ऐसो हो जायगो. याके लिए महाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हें के **''अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः, ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ''** ये तो भजनमें सर्वथा बाधक कथा हे.

ग-४ **प्राप्तं सेवेत निर्ममः, यथाकथञ्चित् कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि. किंवा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद् हरिम्** ऐसेमें ब्रह्मास्त्र और चातक की भावना करो के जैसे चातक स्वातिकी बूंदके बिना प्यासो रेह जाय हे. वैसे ही जो मेरो ठाकुर मोकु देगो बस वो ही मोकु चहिये. नहीं देगो तो नहीं चहिये. **''प्राप्तं सेवेत निर्ममः''** ये वृत्ति तुमने करी, तो बस बात बन गयी. पूरे हें वही मर्द जो हर हालमें खुश हें. जो तुमकु मिल रह्यो हे वामें तुम खुश रहो. जो नहीं मिल रह्यो वाकु परवाह इल्ले कर दो. ये जो मनःस्थिति तुमने पैदा करी तब तो आश्रय तुमकु दृढ़ रहेगो. और ऐसी मनःस्थिति पैदा करी के एकको भजन कर रहे हें, दूसरेको नाम जप रहे हें, तीसरेकी माला पहर रहे हें, चोथेको व्रत रख रहे हें, पांचवेकी मानता कर रहे हें तो, वो तो द्रोपदीवाली स्थिति हो जायेगी. जब वाको चीरहरण भयो तब एक भी पांडव वाके काम नहीं आयो. जब द्रोपदीकी ये गति भयी तो अपनी कैसी होयेगी? यासु महाप्रभुजी ये आज्ञा कर रहे हें के **''प्राप्तं सेवेत निर्ममः''** जो मिल रह्यो

हे वाकु त्यागवेकी वृत्ति भी मत रखो और वामें असंतोषकी वृत्ति भी मत रखो. **''यथाकथञ्चित् कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि. किंवा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद् हरिम्''** (वि.धै.आ.१६) या प्रकारसु जो चल रह्यो हे जैसो चल रह्यो हे वामें भगवान्के आश्रयकु तुम रखोगे तो भगवान्में अनन्याश्रय तुम्हारो सिद्ध होयगो.

एक सामान्य बात बताऊँ. आज तो पुष्टिमार्गमें ऐसो कबाड़ा हो गयो हे के अन्नकूटको उत्सव अपन् यो समझें के ये सामग्रीको उत्सव हे. हमने वापे कहानी भी लिखी हती, * सामग्री प्रदर्शनोत्सव. सब लोगन्कु सामग्रीको प्रदर्शन होवे तो मजा आ जाय पर अन्नकूट सामग्रीप्रदर्शनको उत्सव नहीं हे. अन्नकूट ऐसो उत्सव हे के जामें ठाकुरजीने व्रजभक्तन्को अन्याश्रय छुड़ायो. लोगन्के मनमें ये गलतफहमी हे के या देवकु मानेंगे तो वो देव नाराज हो जायगो. या डरसु अपन् सबकु मानवें लग जाय हें. ईश्वर अल्लाह तेरे नाम कहते-कहते धर्मनिरपेक्षता हो गयी. शुरुमें तो ईश्वर अल्लाह दोनों हतें पर बादमें धर्मनिरपेक्ष हो गये. दोनों ही गयें. धर्मनिरपेक्षताकी तरह अपनेकु देवनिरपेक्षता हो जाय हे. पहले तो लगे हे के सब तू ही हे. बादमें देवनिरपेक्षता आ जाय हे. अन्नकूटके लिये महाप्रभुजी बात समझाना चाह रहे हें के देवनिरपेक्षता व्रजभक्तन्कु नहीं जागे. याके लिए ठाकुरजीने स्वयं चलके वो उत्सव करवायो. आज-कल तो प्रजातन्त्र हे. कोई राजा नहीं हे. सब चुनाव जीते भये नेता हे. यदि आपने एककु वोट् दियो और दूसरेकु नहीं दियो तो अच्छो नेता वाको बुरो नहीं मानेगो. टुच्चे नेतान्की बात अलग हे.

भगवान्, चाहे वो कोई भी देव होय, शिव विष्णु या गणपति होय पर क्या वो ऐसो हो सके के वाको बुरो माने? भगवान् ऐसो कभी नहीं हो सके. भगवान्कु अपने भजनकी क्या पड़ी हे?

* द्रष्टव्य परिशिष्ट-२.सामग्री प्रदर्शनोत्सव

वाकु नहीं पड़ी पर अपनूकु वाके भजनकी पड़ी हे. अपन् भजें तो भगवानूको बॅन्क्-बॅलेंस् बढ़ नहीं रह्यो हे और नहीं भजें तो बॅन्क् बॅलेंस् घट नहीं रह्यो हे. कोई भी भगवान् या बातको बुरो नहीं मानेगो. पर एक बात हे के जब कोई भी भगवान् जीवके साथ आत्मीयता प्रकट करे हे के तू मेरो हे, तू मोकु छोड़के औरकु क्यों भज रह्यो हे? वो आत्मीयता ईर्षायुक्त नहीं हे के तू दूसरेकु क्यों भज रह्यो हे. पर वो तो स्नेहवश आत्मीयता दिखा रह्यो हे क्योंके वा जीवकु भगवानूने अपनो मान्यो हे. या कारणसु वाको अन्याश्रय छुड़ानो चाहे हें. ऐसे व्रजभक्तनूकु अपनो मान्यो या कारण उनको अन्याश्रय छुड़ायो. अन्याश्रय छुड़ायो वाको ये अन्नकूट उत्सव हे. ये कोई सामग्रीप्रदर्शनको उत्सव नहीं हे. अपन् यहाँ औसतन लोगनूकु ऐसी भ्रमणा हे के अन्नकूट सामग्रीप्रदर्शनउत्सव हे. जो व्रजभक्त इन्द्रकु भजते हतें के बरसात अच्छी पड़े. फसल अच्छी आवे, घास अच्छी आवे जासु हमारी गाय प्रसन्न रहें. तो भगवानूने कही के "इतनी छोटीसी बातके लिए क्यों पराश्रय कर रहे हो! हाँ यदि तुम इन्द्रकु भजनो चाह रहे हो तो इन्द्रकु भजो वामें कोई दिक्कत नहीं हे." इन्द्रकु भजवेमें कोई बुराई नहीं हे. सच्चाईसु फिर इन्द्रकु ही भजो. फिर मेरे लिए भक्तिकी बात मत करो. और यदि मेरी भक्ति कर रहे हो तो भूल जाओ इन्द्रकु. वो बरसात करे तो ठीक और इन्द्र बरसात करेगो तो भी मै बचाऊंगो और नहीं करेगो तो भी मैं बचाऊंगो. मेरो यदि भजन कर रहे हो तो "**अविश्वासो न कर्तव्यः**" प्रभुने इन्द्रयागके समय अन्याश्रय छुड़ायो वाको उत्सव अपन् मनावे हें. प्रभुने चलके अपनूकु अपनो मान्यो हे.

हमारे बम्बईमें एक गांडा गिरिधरलाल हते. उनकु सब लोग पागल ही केहते हतें. उनको एक शिष्य हतो, जो पुष्टिमार्ग छोड़के अहमदावादमें आर्यसमाजी हो गयो. गिरिधरलालजी याके लिए अहमदाबाद पधारे. वहाँ जाके वाके घर गये तो वाकी पत्नीने कही के "हमारे

पति अब आर्यसमाजी हो गये हे अब तुम महाराजनूको यहाँ कोई काम नहीं हे". और उनको सारो सामान बाहर निकलवा दियो. तब उनने कही के "तू ऐसे कैसे केह सके"? और अपनो सामान वापस वाके घरमें रखवा दियो. वाकी पत्नीने अपने आदमीकु खबर भिजवाई के महाराज यहाँ आके दंगा-फसाद कर रहे हें. जब वो आदमी आयो तब वाकु जोरकी दो बेंत मारी और कही के "तू मेरो होके आर्यसमाजी हो कैसे गयो!" वो बिचारो आदमी डरके मारे वापस आर्यसमाज छोड़के पुष्टिमार्गीय हो गयो. वो परिवार अभी भी पुष्टिमार्गीय हे. गांडा गिरिधरलालको भरोसा नहीं हतो के क्या करे और क्या नहीं. उनके कई भक्त ऐसे हतें जो उनकी बेंत ही खाते. यामें बात ये समझवेकी हे के उनने वा वैष्णवकु अपनो मान्यो. वा अपनत्वको प्रभाव वापे भी तो हतो न! वाने सोच्यो के जब कोई व्यक्ति इतनो अपनो मान रह्यो हे तो छोड़ो आर्यसमाज और वापस पुष्टिमार्गी हो गयो.

ऐसे ही ठाकुरजीने व्रजभक्तनूकु अपनो मान्यो यासु ही उनको अन्याश्रय छुड़ायो. यदि अपनो नहीं मानते तो अन्याश्रय छुड़ावेकी जरूरत ही नहीं हती. गुसांईजीने तुलसीदासजीकु कितनो अपनो मान्यो होयगो या लिए ही तो कही के "तुम रामके पद गाओ" उनकु यदि अपनो नहीं मानते होतें तो ऐसो केहवेकी क्या आवश्यकता हती! कोई कुछ करे वामें अपनो क्या जाय? जो करनो होय सो करो पर नंददासजी गुंसाईजीके सेवक हते और तुलसीदासजी उनके भाई हते, या संबंधसु भी गुसांईजीने उनकु अपनो मान्यो. अपनो मानके ही कही के जैसे तुम रामके पद गा रहे हो ऐसो विश्वमें कोई नहीं गा रह्यो हे. तुम्हारी शोभा रामसु हे और रामकी शोभा तुमसु हे. अपनो सिद्धांत साफ हे.

अपन् यों नहीं मानें के अन्यदेवकु माननो नहीं. सब देवनूकु

मानो पर यदि भक्तिको प्रश्न आ रह्यो हे तो अनन्याश्रय होनो ही चहिये. अनन्याश्रय नहीं करोगे तो वा देवको भजन नहीं कर सकोगे. पूजन कर सकोगे. तू संपत्ति देवेवालो देवता हे तो हम तेरो पूजन करेगें, तू हमकु संपत्ति दे दीजियो. तू विद्या देवेवालो देवता हे, हम तेरो पूजन करें, तू हमकु विद्या दे दीजियो. ये पूजनकी अलग कथा हे. ये भजनकी कथा नहीं हे. ये सब महात्मा गांधीवाली कथा हे. कोई काम कोईसु करवानो होय तो महात्मा गांधीसु हो जायगो. एक महात्मा गांधी (पांचसौ या हजार की नोट) दो तो सरकारके सारे काम हो जाय हें. वो भक्तिकी कथा नहीं हे. भक्तिकी एक अलग कथा हे.

महाप्रभुजीने क्लेशके सारे प्रकार बतायें **"दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे"** (वि.धै.आ.१०) और आश्रय, इन क्लेशनकु किन-किन उपायनसु दूर करेगो ये बतायो. जैसे अपने चित्तसु भावन करनो चहिये. वाणीसु जप करनो चहिये. **"तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम, वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः"** (नवरत्न-९)

अपनकु अन्याश्रय नहीं करनो चहिये और वाको अविश्वास नहीं करनो चहिये. जो भी मिले **"प्राप्तं सेवेत निर्ममः"** (वि.धै.आ.१५) वामें संतुष्ट रेहनो चहिये. या भावसु जब अपन् रहेंगे तब सारे क्लेशनपे अपन् स्वयं काबू पा सकेंगे. और अपनो मन सेवा करवे लायक होयगो. वा प्रकारको मन होयगो तो भजन 'भजन' केहवायगो. अथवा भजन, भजन न रेहके पूजनको ही एक प्रकार हो जायगो. चित्तमें भक्तिकी प्रतिष्ठा नहीं भयी, तो फिर भजन भजन न रेहके एक पूजन मात्र रेह जायगो. याको उपाय बतावेके लिए महाप्रभुजीने या वचनामृतमें कही के **"धुआँ प्रभुकु अति अप्रिय हे."** और या आशयसु अपनने धुआँके संदर्भमें विवेक-धैर्य-आश्रय ग्रंथ देख्यो. आजको विषय यहाँ रखेंगे.

तीसरो वचनामृत कल पूरो भयो. चोथो वचनामृत बहोत बड़ो हे. मोकु लगे के या बखत तो पूरो हो नहीं सकेगो. पर जितनो हो सकेगो उतनो अपन् करेंगे.

एक समय कृष्णदासजीने आचार्यजीसु पूछ्यो के **"भक्त होयके ठाकुरजीकी लीलाको भेद नाहीं जानत सो काहेतें?"**

(माहात्म्यज्ञान और स्नेह को व्यवहारात्मकरूप)

देखो, ये प्रश्न बड़ो सार्थक हे. भक्त होवेको मतलब प्रभुको माहात्म्यज्ञान हे. अब आधी लीला तो शुरु हो गयी क्योंके यदि अपनकु माहात्म्यज्ञान हे तो स्नेह कर पानो बड़ो कठिन हे. और कोईसु स्नेह करें तो वामें माहात्म्यको ज्ञान निभनो बड़ो कठिन हे पर यदि दोनों निभती होय तो कुछ न कुछ लीला तो प्रकट हो ही गयी हे. क्योंके महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के **"ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं तस्माद् नास्त्यधिकः परः"** (त.दी.नि.१।१४) मानें ज्ञानी होके यदि कोई भक्त भी होय तो बहोत बड़ी बात हे. जैसे यशोदाजीकु अर्जुनकु कृष्णके प्रति अतिशय स्नेह हतो. पर जैसे ही अर्जुनकु भगवानने अपनो विराट स्वरूप दिखायो, वाके बाद अचानक अर्जुन ये कहे हें के **"...विहारशय्यासनभोजनेषु एको अथवा अपि अच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वाम् अहम् अप्रमेयम्"** (भग.गीता.११।४२) "मोकु क्या मालूम हती के मेरे दोस्तके अलावा तू परमात्मा ब्रह्म और भगवान् भी हे. मैंने तो अपनी दोस्तीके कारण तेरो मजाक भी उड़ायो हे. कभी खेलते, कभी भोजन करते समय, कभी साथ उठते-बैठते, जाने कितनी बार मैंने तेरो अनादर कियो! अब तेरो ये रूप मैंने जान्यो हे तो तू मोकु क्षमा कर दीजियो." अब देखो, माहात्म्य जानते ही स्नेह कमजोर पड़ जा रह्यो हे.

मेरे साथ भी एक लड़का पढ़तो हतो. वो बादमें अहमदाबाद

चल्यो गयो. वाकु कोई नौकरी मिल गयी. जब साथ पढ़ते हतें तो मैं वाके हॉस्टेल्में जाके रातकु ग्यारह-बारह बजे तक पढ़तो हतो. शायद ही कोई दिन ऐसो गयो होयगो के हम सात-आठ घंटा साथ नहीं बैठे होय! वो भी मोकु श्याम बुलातो हतो. वाकु महाराज वहाराज सु कोई मतलब नहीं हतो. एक बार मोकु अहमदाबाद गीताके नोवें अध्यायपे प्रवचनके लिए जानो पड़यो. वो खबर छापामें भी आयी हती. वाने पढ़ी होयगी सो एक दिन प्रवचनमें आ गयो और मोकु घर ले जावेकी जिद्द करवे लग्यो. हम अपने मुकामसु प्रवचनस्थलपे वैष्णवकी मोटर्में जाते हतें. अब वाके पास स्कूटर् हतो. वाने कही के "बैठ जा स्कूटर पे". मैं भी बैठ गयो. वहाँ मोटर्वाले सब नाराज़ हो गये. केहवे लगे के "आप कैसे स्कूटर्पे जा सको हो इतनी मोटरन्के होते भये!" मैंने उनसु कही के "न तो मैं अपने मुकामपे जा रह्यो हूँ, न मैं महाराजकी हेसियतसु याके यहाँ जा रह्यो हूँ. एक दोस्तके यहाँ जा रह्यो हूँ. अब वो स्कूटर्पे ले जाय, चाहे साइकिल् पे ले जाय. ये तो वाकु देखनो हे. वो यदि पैदल जावेकी कहेगो तो पैदल भी जाऊँगो." मैं वाके स्कूटर्पे पीछे बैठ गयो. वाने थोड़ी देर बाद मोसु कही के "श्याम कुछ गड़बड़ तो नहीं हो गयी! इतने मोटर्वालें खड़े हतें और तू स्कूटर्पे आ गयो." मैंने वासु कही के "तेरे भरोसे तो मैं या स्कूटर्पे आयो और तोकु लगे के कुछ गड़बड़ हो गयी! तोकु ही विश्वास नहीं हे तो बुला फिर मोटर्वालेनूकु." वाने कही के "नहीं कुछ गड़बड़ नहीं हे." मैंने कही के "चल फिर चिंताकी बात क्या हे? मैं कोई मोटर्के संबंधसु तो तेरे साथ आयो नहीं हूँ. अपनो तो दोस्तीको संबंध हे जाके कारण तेरे साथ आयो हूँ." देखो, माहात्म्यज्ञान होवेसु ये होवे हे. वाने कभी ऐसो देख्यो नहीं के चार-पांच मोटर्वालें खड़े हें और स्कूटरपे जावेकी ना पाड़ रहे हें. और अपने साथ पढ़वेवालेको स्कूटर छोड़के, यदि मैं वाके घर अलग मोटर्पे जाऊँ तो मेरे जैसो कठोर हृदय कौन होयगो?

वाके और मेरे संबंध कोई महाराज-वैष्णवके तो हते नहीं. एक सहपाठीके संबंध हते. मैं क्यों स्कूटरपे नहीं जाऊँ? वैष्णवनूकु बुरो लग्यो हतो पर यामें मैं क्या कर सकु? सहपाठीके साथ तो ऐसो ही संबंध रख्यो जा सके. वो तो सबके सामने मोसु 'श्याम' केहके बोल रह्यो हतो. सबकु बड़ो विचित्र लग्यो. और एक बात यामें दूसरे मित्रके साथ ये भयी के मैं दिनमें एक बार कंगी करूँ. मेरे बाल ऐसे ही बिखरे रहे हें. वाकी आदत शुरुसु हती के मेरे बिखरे बाल देखिके अपने हाथनूसु मेरे बाल सीधे करतो. सब वैष्णवनूकु बुरो लग्यो. अब वासु मैं थोड़े ही केह सकतो के यहाँ वैष्णवनूके सामने ऐसे मत कर. वाके और मेरे संबंध ही ऐसे नहीं हते. समझो के जहाँ माहात्म्य होवे हे वहाँ स्नेह घट जाय हे. और जहाँ स्नेह होवे हे वहाँ माहात्म्य थोड़ो घट ही जाय हे.

(लीला = माहात्म्यज्ञान + स्नेह)

पर कहीं माहात्म्यके साथ स्नेह यदि निभ रह्यो हे तो वो लीला हो गयी. फिर वो व्यवहार नहीं रहेगो. स्नेह और माहात्म्य एक व्यवहार हे. वे दोनों लीला नहीं हे. पर जहाँ दोनों निभ पाते होय तो वो लीला हे. ब्रह्म कैसो हे के वाकु कोईसु कोई अपेक्षा नहीं हे, वाकु कुछ चहिये नहीं. या बातकु महाप्रभुजी बहोत सुंदर कहे हें **"किम् आसनं ते गरुडासनाय किं भूषणं कौस्तुभभूषणाय, लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं वागीश किं ते वचनीयम् अस्ति"** (त.दी.नि.मं.प्र.) जाके पास गरुडजी जैसो आसन हे वाकु कौनसे आसनपे बैठायेंगे! जो कौस्तुभमणि धारण करतो होय वाकु कौनसो शृंगार धरायेंगे. लक्ष्मी जाकी पत्नी हे वाकु कितनी भेंट अपन् धर सकेंगे. जो वाणीको पति हे वाकी क्या स्तुति कर सकेंगे! पर यदि वो अपनी स्तुति पसंद कर रह्यो हे, अपनी भेंट स्वीकार कर रह्यो हे, अपने धराये शृंगार स्वीकार रह्यो हे भले ही एक फूलकी माला होय, या गुंजामाला ही होय, अपने घरमें सिंहासनपे बिराजनो स्वीकार रह्यो हे भले

ही वह टूटे लकड़ाको होय, तो ये बात लीला हो गयी. वाकु इन बातनूकी कोई आवश्यकता तो नहीं हे, न अपनी वैसी सामर्थ्य हे. व्यवहार तो ये रह्यो नहीं. तब ये लीला हे. देखो, लीला और व्यवहार को भेद बहोत छोटोसो हे. जैसे एक आदमी गरीब हे. वाके पास खावेकु कछु नहीं हे. चना खाके जी रह्यो हे. चना खानो वाकी विवशता हे पर यदि कोई करोड़पति हे और चना खा रह्यो हे तो वो वाकी लीला हे.

(प्रभुको और भक्तको लीलाभाव)

ठाकुरजी भी अपनेसु अपेक्षा रखे हें के अपन् ठाकुरजीके समक्ष लीला करें. अपन् भी ठाकुरजीसु अपेक्षा रखे हें के ठाकुरजी लीला करें. ये समर्पणको भाव हे. या समर्पणके भावके साथ अपन् जीये तो हृदयमें वो लीलाभाव प्रकट होयगो. अपने घरमें ठाकुरजी पधारे, ये एक लीला हे. अपने हृदयमें भक्तिभाव जाग्यो, ये एक लीला हे. अपनेकु ऐसी पत्नी मिल गयी के जो सेवामें सहयोग दे रही हे, वो एक लीला हे, फिर बच्चा जो पैदा भये वो भी सेवामें सहयोग दे रहे हें, वो भी लीला हे. यदि बच्चा सेवामें सहयोग नहीं दे रहे हें, वो भी एक लीला हे. ये बात महाप्रभुजी केह रहे हें. **''तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंतां द्रुतं त्यजेत्''** (नवरत्न-९) बच्चा या पत्नी यदि सेवाके लिए ना केह रहे हे, या बातकु जब अपन् लीलाभावसु स्वीकारनो शुरु करेंगे तब तो अपनी अहंता-ममता आड़े नहीं आयगी. अन्यथा तो पंचोंका हुकुम सर माथेपे. पर नाला तो हमारी अहंता-ममताको यहीं बहेगो. फिर तो वो सेवाको प्रकार लीलारूपमें नहीं देख सकेंगे.

''भक्त होयके ठाकुरजीकी लीलाको भेद नाहीं जानत सो काहेतें?'' तब श्रीआचार्यजीने कह्यो ''जो विधिपूर्वक समर्पण कह्यो हे, सो नाहीं करत. विधिसों समर्पण पदार्थको ज्ञान नाहीं''

(लीला : एककी अनेकता और अनेककी एकता)

या वचनामृत अपन् या संदर्भमें कर रहे हतें के लीलाको भेद बड़ो नाजुक भेद हे. जाकी गणितमें व्याख्या हो नहीं सके. क्योंके गणित अपन् करें तो एक और दो बराबर होवे नहीं हे. कोई एक बराबर दो करे तो मार्क वाकु शून्य ही मिले. पर लीलाकी वस्तुस्थिति ऐसी हे के एक परमात्मा अनेकरूप धारण करें. जब एक परमात्मा अनेकरूप धारण करें तो ये माननो पड़ेगो के एकमें ऐसी सामर्थ्य हे के वो अनेक हो सके. फिर अनेकमें छुपी भयी एकताकु देखनो. तो अनेकता जो प्रकट भयी वो कैसे प्रकट भयी? वो अनेक नाम रूप क्रिया सु प्रकट भयी जो अनेकता हे वाकु एक माननो और वा एकमें फिर अनेकता माननी. अब गणितके ढंगसु ये बात सोचें तो झूठी पड़ेगी. क्योंके एक बराबर अनेक हो नहीं सके हें पर सृष्टिकी जो लीला हे वामें गणित खोटो हे, लीला खोटी हो नहीं सके हे. क्योंके एक बीजमेंसु अनेक बीज पैदा होवे हें के नहीं? बीज अपन् अनेक नहीं बोवे हें पर एक बीजमेंसु अनेक बीज पैदा हो जाय हे. अब या बातकु गणितके ढंगसु सोच नहीं सकेंगे. क्योंके एक बीजको वजन और अनेक बीजको वजन, यामें तो बहोत फरक हे. जैसे अपन् एक आमकी गुठली बोवे. वामेंसु एक आमको वृक्ष निकले. मानो वामेंसु आम आये तो सौ आम वा एक आममेंसु निकले के नहीं! अब ये गणितके कोई नियमसु समझनो मुश्किल हे पर हकीकतमें ऐसो होवे हे. बीजमेंसु अनेक नाम प्रकट हो जाय. कोई थड़ हे, कोई डाली हे, कोई शाखा हे, कोई पत्ता हे, कोई फल हे. वामें फिर एक गुठली हे. वामें पाछें रूप भी अलग हें. जैसे थड़को रूप हे वैसो डालीको रूप नहीं हे. जैसी डालीको रूप हे ऐसो पत्ताको नहीं हे. सबके रूप-नाम अलग हे, सबके स्वाद अलग हे. तो ये समझो के गणितको नियम जब एक आमकी गुठलीपे लागू नहीं होय हे, तो भगवान्पे कैसे लागू होयगो? जब एक आमकी गुठली और वृक्ष, गणितके

सिद्धांतपे चोकड़ी लगा दे हे तो भगवान्‌की सामर्थ्यकु कैसे नाप सकेगो! बेचारे आमकी गुठलीमें तो बहोत कम सामर्थ्य हे. लंगड़े आमकी गुठलीमें वो सामर्थ्य नहीं हे के वो कोई और प्रकारको आम उगा सके पर भगवान् तो सर्व प्रकारको आम उगा सके. भगवान् तो सर्वसामर्थ्यशाली हे. वा एकमेंसु जो अनेकता प्रकट भयी हें वा अनेकताकु सबसु पहले तो अपनेकु स्वीकारते आनो चहिये के एकमेंसु अनेकता प्रकट भयी हें. अब आदमीकी लाचारी ये हे के गणितके कारण, दिमागकु बंद करके ये सोचवे लग जाय हे के एकता तो सत्य और अनेकता मिथ्या हे. या गणितके कारण जो अपने दिमागके बंद खानान्‌कु पहले खोलनो पड़ेगो. ये गणितकी बात आमपे सच्ची नहीं पड़ रही हे तो परमात्मापे सच्ची कैसे पड़ेगी! अपनो व्यवहार चलावेके लिए गणित अच्छो हे पर गणितकी जो कम्पार्टमॅन्ट्‌वाली बात हे वो हकीकतपे कभी लागू हो नहीं सके हे. जैसे ये एक हाथ हे, और यामें अंगुली हें. एक बराबर पांच और पांच बराबर एक. अब स्कूल्‌में ऐसो कोई कहे तो गड़बड़ हो जाय पर अपनी हथेलीमें ये हकीकत तो समायी भयी ही हे. एक हाथ बराबर पांच अंगुली और पांच अंगुली बराबर एक हाथ. तो एक बराबर पांच हो गयो. पर जिनने गणितके खानान्‌में अपने दिमागकु बंद कर रख्यो हे उनकु लगे के या तो एकता सच्ची और अनेकता खोटी अथवा अनेकता सच्ची और एकता खोटी.

इन खानान्‌कु डब्बान्‌कु तोड़नो पड़ेगो यदि सृष्टिकु समझनो हे तो. ये एकता और अनेकता के बीचमें जो अपन्‌ने दीवार खड़ी करी हे वो सच्ची नहीं हे. गणितके लिए सही हो सके पर दुनियाकी हकीकतकु समझवेके लिए ठीक नहीं हे. नंददासजी कहे हे के **"नंददास चातककी चोंच सब घन कैसे समाय!"** जैसे चातककी चोंचमें सारो घन नहीं समा सके हे. ऐसे ही अपनी छोटीसी खोपड़ीमें परमात्माको सारो रहस्य नहीं समा सके हे पर वो नहीं समा सके यासु अपन्‌

छोटी-छोटी बातन्‌कु, उदाहरणकु देखके वाकु समझवेको प्रयास तो कर सके हें. जैसे चावल सीजे के नहीं वाके लिए सारे चावल तो नहीं देखे हें. एक-दो दानाकु देखे हें और वो सीजो भयो होय तो सारे चावल सीजे भये जाने हें. ऐसे ही एकता और अनेकता को जो रहस्य हे वाकु एक-दो उदाहरणसु देखिके समझ तो सके हें के परमात्मा एक होते भये भी अनेक भयो हें. वासु प्रत्येक अनेकतामें परमात्माकी एकता समझनी चहिये और परमात्माकी एकताकु समझते भये ये ही नहीं समझ लेनो चहिये के परमात्मा बस एक ही हे. क्योंके सब कुछ एक हे ये समझके अपन् चलेंगे तो परमात्माके अनेक रूपन्‌को मजा अपनेकु लेनो नहीं आयगो. जैसे चनाकी दाल एक ही हे, पर वाकी पतली दाल बन सके, खिचड़ी बन सके, भुजैना बन सके. अब अपन् कहे के ये सब रूप तो मिथ्या हे, केवल दाल ही सत्य हे तो हमने वाके विभिन्न रूपन्‌को मजा तो नहीं लियो न! जा बनावेवालेने इतने सारे स्वाद वा दालमेंसु प्रकट किये, वाकु अपन् सब मिथ्या मानके एक ही तपेलामें सब मिलाके खा जाय तो बनावेवालेकी मेहनत भी बेकार गयी, वाको अनादर होय. प्रभुने इतनी अनेकता प्रकट करी. अपन् वाकु स्वीकारें नहीं, क्योंके मूलमें तो वो एक हे. मूलमें तो सारी दाल भी एक ही हे. वाकु कच्ची ही खा जाओ. वाके अलग-अलग स्वादन्‌को मजा क्यों ले रहे हो!

कुछ लोग द्वैतकु मिथ्या माने हें, कुछ अद्वैतकु मिथ्या माने हें. महाप्रभुजीके अनुसार न द्वैत मिथ्या हे और न अद्वैत. इन दोनोंके बीचको भेद ही मिथ्या हे. अपनो मौलिक फरक यहाँ ही हे के जैसी दीवार औरन्‌ने खड़ी करी हे द्वैत और अद्वैत के बीच, ऐसी कोई दीवार हे नहीं. महाप्रभुजीने कोई चीजको अनादर नहीं कियो हे. न तो ज्ञानको और न स्नेहको. मैं एक सॅमीनार्‌में गयो हतो. वहाँ ऐसी ही चर्चा चल रही हती. मैंने उनसु कही के देखो यदि

आपकु मेरो मत सिद्ध करनो हे के गलत हे तो भी मेरो मत सही स्वीकारनो पड़ेगो और यदि ये सिद्ध करनो हे के आपको मत सच्चो हे तो भी मेरो मत स्वीकारनो पड़ेगो. उनने कही ऐसे कैसे आप केह सको हो? तब मैंने उनकु कही के वो या लिए के यदि आप सोच रहे हो के मैं बिलकुल झूठो हूँ तो आप मोसु चर्चा ही क्यों कर रहे हो! आप क्या मूर्ख हो और यदि आप मान रहे हो के मैं बिलकुल सच हूँ तो आप चर्चा क्यों कर रहे हो! बस मान लो. जब भी आपकु मोसु चर्चा करनी हो तो थोड़ो मेरो माननो पड़ेगो, थोड़ी अपनी बात रखनी पड़ेगी. ये ही बात हम सिद्धांतमें कहे हें के द्वैतमें थोड़ो भेद मानों और थोड़ो अभेद मानों.

यदि ये ही आप मान रहे हो के जो हम केह रहे हें बस वो ही सत्य हे बाकी सब मिथ्या हे तो क्या आप अपने प्रतिबिंबसु झगड़ रहे हो? यदि आपकु मोसु झगड़ा भी करनो हे तो मोकु तो माननो ही पड़ेगो. मतलब द्वैत और अद्वैत दोनोंकु माननो पड़ेगो. महाप्रभुजीके 'शुद्धाद्वैतवाद'को ये ही अर्थ हे के एक न तो इतनो एक हे के अनेक हो ही नहीं सके और न इतनो अनेक हे के एक हो नहीं सके. ऐसो माननो के अद्वैत द्वैत हो ही नहीं सके या द्वैत अद्वैत हो ही नहीं सके, महाप्रभुजीके अनुसार, दोनों बातें गलत हें. एक ही अनेक हुओ हे, एक भी सच हे और अनेक भी सच हे. याको नाम 'शुद्धाद्वैत'.

(दासत्वको सामान्य प्रकार)

कलके प्रसंगमें **''लीलाको रहस्य, भेद क्यों नहीं जान पावे हें''** या कृष्णदासजीके प्रश्नके उत्तरमें महाप्रभुजीने जो जवाब बतायो के **''विधिपूर्वक समर्पण नाहीं करत हे. और समर्पण जो पदार्थ हे, वाको रूप ही नहीं जानेंगे, तो लीलाको रहस्य समझ आनो**

कठिन हे.'' ये सब अपन्ने कल और परसों, दो दिनके विवेचनमें देख्यो. वाके बादके वचनामृतमें महाप्रभुजीने जो दूसरो मुद्दा उठायो हे जो **''अहंता-ममता, अपनी सत्ता-अहंकार को समर्पण. जो अब दास भयो—प्रभु आधीन हों—प्रभु जो करें सो सर्वोपरि हे, यह भेद अपनेमें नाहीं हे.''**

ये बात फिरसु बहोत महत्त्वपूर्ण हे और समझवेके लिए अपने यहाँको दास्यभाव हे वाकु स्पष्ट रूपसु समझनो चहिये. जैसे 'दास्य'को एक अर्थ होवे हे, जो आजके चालूखाताके व्यवहारमें नौकरी करवेवालो. वैसे आज-कल नौकरी करवेवालेकु 'दास' नहीं कहें क्योंके 'दास' शब्दको अर्थ अलग हो गयो. पर दासको एक स्वरूप नौकरीको हो सके हे. दूसरो स्वरूप जैसे गाय घोड़ा कुत्ता पोपट इनकु अपन् पालें. जा तरहसु उनकु पालनो होय वा तरहसु पालें. जैसे तोताकु पिंजरामें बंद करके, बैलकु हलमें जोतके, गायकु दूध दुहवेके लिये. जोकि वाके बछड़ाके लिए हे अपन् ये नहीं सोचे हें के इनकु कितनी तकलीफ होती होयगी. प्राचीनकालमें ऐसो हतो के बछड़ा जब दूध पी ले, वाके बाद गाय दुही जाती हती. पर कौन आज या नियमकु पाल रह्यो हे! प्राचीनकालमें जमीनकी कठोरताके हिसाबसु बैलन्की संख्या नक्की होती हती. शास्त्रमें कह्यो हे के कंकड़वाली जमीनमें एक बैलसु जुतवावेको अर्थ बैलकी हिंसा हे. कमसु कम दो बैलन्सु खेत जोतो जानो चहिये. जैसे अपन् जानवरनकु पाले हें, उनकु भी अपन् अपने दास तरीके रखे हें. आज-कल लोग बकरा और मुर्गी कु खावेके लिये भी पाले हे. उनके पोल्ट्री बना-बनाके उनकु खावेके लिये पैदा करे हें, जैसे कोई खेती होय. वामें उनकु अपने अधीन होनो पड़े.

एक अधीनताको प्रकार ये भी हे के काम निकालवेके लिए अधीन होनो. जब-तक काम नहीं निकले तब-तक वाकी हाँमें हाँ

मिलाके दासता स्वीकारनो, ये भी एक प्रकारकी दासताको प्रकार हे. जैसे अपने मिनिस्टर् चुनावके बखत एक-एक वोटर्के घर जाके, चहिये तो दंडवत् भी लगा दे और चुनाव जीतवेके बाद मिले भी नहीं हे. कुछ लोग वॉलेन्टरी सर्विस् भी करे हें. कुछ लेनो नहीं, कुछ देनो नहीं पर तकलीफ पाते आदमीकी सेवा करनी. ये भी एक दासताको प्रकार हे. ऐसे अच्छे लोग भी होवे हें. सभी खराब हें ऐसो नहीं हे. कुछ ऐसी संस्थाएं और व्यक्ति भी होवे हें, जो स्वयंसेवी होवें. मानें कोईसु कुछ अपेक्षा रखे बिना समाजकी व्यक्तिकी सेवा करते होवे हें. अपने माता पिता पत्नी बेटा भी अपनो काम करते होवे हें. वो भी एक दासताको प्रकार हे. मित्र भी मित्रको कुछ काम करे ही हे.

(पुष्टिमार्गीय दासत्वको स्वरूप : अंशांशीभाव)

पर पुष्टिमार्गमें जो दासत्वकी अपन् बात करे हें वामें ऊपर कहे भये मॉडेलन्मेंसु एक भी मॉडेल् अपन्में नहीं बैठे हे. अब आज तो वो पद्धति रही नहीं, जैसे सूरदासजी कहे हे ''बिना मोलको चेरो'' दास-दासी, गाय-घोड़ाकी तरह खरीदे जाते हतें. कोई बखत कहींसु भाग्यो भयो, मुसीबतको मार्यो कोईके घर आके दास बन जातो. ऐसे दास होवेके कई प्रकार हे. ये मूल बात समझवेकी हे. क्योंके इनमें मूलमें जो दासत्व हे वामें अंशांशीभाव नहीं रह्यो भयो हे. परमात्मा अंशी हे और जीवात्मा अंश हे और वो होवेके कारण वाको दास हे. या बातकु ध्यानसु समझो के जा दासत्वकी अपन् बात कर रहे हें वामें अंशांशीभाव मूलमें रह्यो भयो हे. ये कोई व्यवहार प्रयुक्त अथवा विवशता प्रयुक्त अथवा कोई कॉन्ट्रॅक्ट् प्रयुक्त अथवा कोई द्वैत जाकी लाठी वाकी भैंसके प्रकारन्में नहीं हे. जैसे लाठीके डरसु भैंस मनुष्यकी दास बन जाय हे. वा प्रकारको परमात्माके साथ अपनो दासत्व नहीं हे. परमात्मा जिवा सके हे, मार सके हे पर अपन् वा लिए परमात्माके दास नहीं हे. ये बड़ो

विलक्षण दासत्व हे. याकु उपरोक्त प्रकारनूसु समझ पानो थोड़ो कठिन हो जाय हे. अपन् याकु या उदाहरणसु समझवेको प्रयास करेंगे. समझो एक रेलगाड़ी चल रही हे. जहाँ रेलगाड़ी जायगी वहाँ वाको डब्बा भी जायगो ही. क्यों? क्योंके रेलगाड़ी अंशी हे और डब्बा वाको अंश हे. ये डब्बाको रेलगाड़ीके प्रति दासत्व हे, ये कैसो दासत्व हे के रेलगाड़ी बनी कैसे? डब्बानूके जुड़वेसु और डब्बा वाके अधीन हे. जहाँ रेलगाड़ी जायगी वहाँ डब्बानूकु जानो पड़ेगो. या प्रकारको अपनो दासत्व हे. यामें कोई द्वैतभाव नहीं हे के परमात्माके हाथमें लाठी हे और डरके मारे अपन् दास बन गये हें. डरके मारे थोड़ी अपन् वाके दास बने हें! परमात्माके हाथमें लाठी हे तो वो लाठीसु मारेगो तो खुदकु ही तो मारेगो. दूसरेकु कैसे मार सके हे! जैसे अपनूकु खुजली आती होय, तो अपन् वा अंगकु मारे हें. ऐसे ही परमात्मा यदि कोईकु मारेगो तो वो वाकु ही तो लगेगो. जैसे शरीरके एक हिस्साने दूसरे हिस्साकु लप्पड़ लगायी तो जो हिस्सा लप्पड़ खा रह्यो हे वो 'दास' केहवायगो और जो मार रह्यो हे वो स्वामी पर वामें लगावेवाले और खावेवाले को कोई एक अभेदको हिस्सा हे.

याके कारण वामें या प्रकारको दासत्व नहीं हे के जैसे जाकी लाठी वाकी भैंस. ये या प्रकारको दासत्व हे जैसे समुद्र और लहर. हर लहर समुद्रको ही तो हिस्सा हे. लहरकी दृष्टिसु देखो तो लहर समुद्रमें उठे हे, लहरावे हे और किनारा तक आते-आते खतम हो जाय हे. हम एक बखत समुद्रमें नहा रहे हतें. दिल्लीसु एक सरदारजी आये हते. उनने पूछी के हम भी नहा ले? वो कभी समुद्रकी लहरनूमें न्हाये नहीं हते. उनके सामने जैसे ही लहर आयी तो उनने अपनो हाथ वा लहरके सामने रख दियो. अब कहीं हाथसु समुद्रकी लहरनूकु रोक्यो जा सके! वा लहरने सरदारजीकु पटक दियो. उनके नाक-मुंहमें सब पानी भर गयो. हमने उनसु कही के सागरकी

लहर जब भी आवे तो वाकु रोकवेको प्रयास मत करो. वाके आगे सर झुका दो. वो न तुमकु पटकेगी और न तुम्हारे नाक-मुंहमें पानी भरेगो. बस तुम सागरके साथ लहराते रहोगे.

समुद्रकी लहर जब उठे हे तो ऐसो लगे हे के पता नहीं कहाँ तक पहुँचेगी. पर किनारा तक आते-आते कहाँ खतम हो जाय. अब देखो के ये लहरको उठनो, वाको गरजते भये बढ़नो और किनारापे आते-आते खतम हो जानो, याकी मीमांसा करें तो ये लहर जा सागरमेंसु उठ रही हे वा सागरकु समझनो पड़ेगो. लहरा तो सागर ही रह्यो हे, पर उठ लहर रही हे. और कोई भी एक लहरके खतम होवेपे सागर खतम नहीं हो जा रह्यो हे. ऐसे ही हर जीवात्मा वा परमात्मा रूपी सागरमें छुपी भयी एक लहर हे. हर लहर एक नाम रूप और कर्म के रूपमें सागरको ही अंश हे. ये बात समझवेकी हे.

हर लहर सागरकी दास हे, वाके अधीन हे, सुनामीकी न होय तो, और वो कभी सागरकी मर्यादाकु लांघे नहीं हे. वासु दूर आते-आते खतम हो जाय हे. ऐसे ही हर जीवात्माकी उत्पत्ति स्थिति और लय परमात्मामें होवे हे. लहरकी सागरके प्रति अधीनता या दासत्व, वो डंडा और भैंस वालो नहीं हे. वो बहोत मधुर दासत्व हे. यहाँ राजस्थानके किसाननूको उदाहरण जो मैं अक्सर दऊँ हूँ. अपने आपकु आरामसु बैठवेके लिए रस्सीसु बांधके बैठे हें. वामें बड़ो मजा आवे हे. अब तो कपड़ा पहरवेको तरीका बदल गयो पर पहले पगड़ी और अंगोछा होते हते जासु वो किसान अपने आपकु बांधके बैठते. वो बंधनमें कोई जातको राग-द्वेष नहीं हे. वामें अधीनता तो हे क्योंके अपन् बंध तो गये न! अब तो बंधन खुलेंगे तब ही अपन् छुटेंगे. वो अपनो खुदके ऊपर बंध्यो भयो बंधन हे. या मायनेमें अपन् खुदके दास हो गये. परमात्माको

बंधन याही प्रकारको हे और ऐसी ही मधुरता लिये भयो हे.

(लीलामें पुष्टिमार्गीय दासत्व समर्पणसु)

या मधुरताके संबंधपे अपन् ध्यान देके महाप्रभुजीके या वचनकु समझेंगे के "**अहंता-ममता, अपनी सत्ता-अहंकारको समर्पण करके जो अब दास भयो.**" अपन् यों मान रहे हें के अपनी सत्ता कुछ अलग हे, परमात्माकी सत्ता कुछ अलग हे. अपनो अहंकार अलग हे, परमात्माको अहंकार अलग हे. परमात्माके अहंकारसु टकरातो भयो अपनो अहंकार हे. अक्सर अखबारमें कई बखत आपने भी पढ़यो होयगो. सूफी संतन्को एक प्रसिद्ध वाकया हे. एक प्रेमीने अपनी प्रेमिकाके दरवाजापे जाके खटखटायो. अन्दरसु आवाज आयी "कौन" तब प्रेमीने कही "मैं". अन्दरसु आवाज आनी बंद हो गयी और दरवाजा नहीं खुल्यो. थोड़ी देर बाद वाने फिर दरवाजा खटखटायो. अंदरसु फिर आवाज आयी "कौन", प्रेमीने कह्यो "तू". झटसु दरवाजा खुल गयो. देखो यामें 'मैं' और 'तू' में बड़ो भेद मान्यो हे. दरअसल 'मैं' और 'तू' में अपने यहाँ ऐसो भेद नहीं हे और ध्यानसु समझो के व्यवहारमें भी ऐसो भेद नहीं हे. जब मैं 'मैं' बोल रह्यो हूँ तो 'मैं'को अर्थ श्याम गोस्वामी हे. पर जब आप लोग 'मैं' बोलोगे तब वाको अर्थ कुछ और ही हो जायगो. जब मैं 'तू' बोलूंगो, तो वाको अर्थ आप हो जाओगे पर जब आप 'तू' बोलोंगे तो वाको अर्थ 'मैं' हो जाऊँगो. याके कारण ही इन 'मैं' और 'तू' कु व्याकरणमें सर्वनाम कह्यो गयो हे. जो वो बोले वाके बारेमें ही ये इंगित करे हे. 'मैं' और 'तू' में लचीलोपन हे. इतनो कठोरपनो नहीं हे के 'मैं' बोलवेपे कोई एक ही अर्थ निकले. ये ऐसो भेद हे.

हमारे एक परिचित भीतरियाजी हते. उनकु ठाकुरजीके हर पात्रसु बोलवेकी आदत हती. जैसे तपेलीसु केहते के "अरी तू चलेगी

के यहीं बैठी रहेगी" फिर स्वयं ही वा तपेलीकु उठाके ठाकुरजीके पास पधराते. अब यहाँ कहाँ 'मै' और 'तू' को भेद रेह गयो! खुद ही 'मैं' हें और खुद ही 'तू' हे. बचपनमें मैंने एक कहानी सुनी हती के एक मास्टरजीने बच्चाकु पढ़ायो 'माइ हेड्' मानें मेरा सिर. वा बच्चाने याद कियो के 'माइ हेड्' मानें मास्टरजीका सिर. घरमें वो आयो तो पिताने पूछी के "माइ हेड् मानें?" बच्चाने जवाब दियो के "'माइ हेड्' मानें मास्टरजीका सिर" वाके पिताने वाकु फटकार लगाई और कह्यो के "'माइ हेड्' मानें मेरा सिर" स्कूल्में फिर मास्टरजीने पूछी तो बच्चाने जवाब दियो "'माइ हेड्' मानें पिताजीका सिर." मास्टरजीने फटकार लगाई और कही के "अरे, 'माइ हेड्' मानें मेरा सिर." अब बच्चा बहोत असमंजसमें पड़ गयो. वाने फटकारसु बचवेको एक उपाय निकाल्यो के स्कूल्में 'माइ हेड्' मानें मास्टरजीका सिर और घरपे 'माइ हेड्' मानें पिताजीका सिर. फिर एक दिन क्या भयो के स्कूलमें इन्स्पेक्टर् आयो. वाने भी वा बच्चासु दुर्भाग्यवश ये ही पूछ लियो के "बच्चे! 'माइ हेड्' मानें क्या?" बच्चाने कही के "नहीं बतायेंगे. पहले आप बताओ के पूछ कहाँ रहे हो. घरमें या स्कूलमें!" इन्स्पेक्टरकु बड़ो आश्चर्य भयो. वाने कही "यामें घर और स्कूल् को क्या मतलब? तुम बताओ माइ हेड् मानें क्या?" बच्चाने जवाब दियो के "वो इसलिए के घरमें इसका मतलब हे पिताजीका सिर और स्कूलमें मतलब हे मास्टरजीका सिर." इन्स्पेक्टरने कही "अरे बेवकूफ 'माइ हेड्' मानें मेरा सिर" बच्चाने कही के "कहाँपे?" क्योंके घर और स्कूल के अलावा तीसरी तो कोई जगह हे नहीं.

कुल मिलाके बच्चा 'माइ'को मतलब समझवेकु तैयार नहीं हे. अपनी भी स्थिति कुछ वैसी ही हे. अपन् भी अपने 'अहं'को मतलब समझवेकु तैयार नहीं हें. जब अपन् 'अहं' बोल रहे हें, तो वो अपनो अहं हे. और जब वो बोल रह्यो हे तो अपनो

'अहं' भी वाको अहं हे. और वाको अहं अपनो अहं हे. पर वाके अहंमें और अपने अहंमें ऐसो भेद कर दे जैसे 'माइ हेड्' मानें मास्टरजीका सिर. वो कथा तो समाप्त हो जायगी. क्योंके 'माइ हेड्' मानें मेरा सिरको मतलब तो ये ही हे के जो सबपे लागू होय. अब यदि अपन् यों समझें के प्रत्येक आदमी वाको सिर तो कितने नाम याद रखेंगे अपन्? रमेशको दिनेशको के महेशको, कौन को? ये याद अपन् रखें के 'माइ' मानें 'मैं' तो बस सारी बात बन गई. 'अहं'को संबंध इतनो लचीलो हे के वो हरेकके साथ चले. तो 'अहं' और 'तू' को जैसो सबन्ने भेद खडो कियो, महाप्रभुजी वैसो भेद खड़ो नहीं करनो चाहे हें.

महाप्रभुजी ये समझानो चाह रहे हें के ब्रह्म जा बखत् 'अहं' बोले हे, वामें अपन् सब आ जाय हें. और जब अपन् 'अहं' ज्ञानसु बोल रहे हें तो वामें ब्रह्म आ सके हे. यदि अपन् अज्ञानसु बोल रहे हें तो अपनो ही अहं आयगो. या बातकु समझावेके लिए ज्ञानमार्गने **''अहं ब्रह्मास्मि''**की उपासना बतायी. यामें यदि **''अहं ब्रह्मास्मि''** रेहते भये, अपन् अहंपे भार दे रहे हें, तो एक मतलब होयगो. और यदि अपन्ने ''ब्रह्म 'अस्मि'''पे भार दियो तो वाको दूसरो मतलब हो जायगो. 'मैं' ब्रह्म हूँ और मैं 'ब्रह्म' हूँ इनमें दो अर्थ हो जा रहे हे.

जैसे आज-कल ट्रक्के पीछे लिख्यो रहे हे के 'मेरा भारत महान'. यामें अपन् केह सके हें के मेरा भारत महान और मेरा भारत महान. इन दोनों बातन्में अंतर आ गयो. जब पहेली बात बोल रहे हें, वामें अपनो अहंकार आ रह्यो हे और दूसरी बातमें भारतकी महानता आ रही हे. मेरी महानता नहीं आ रही हे. वा महान भारतको मैं एक नागरिक हूँ ऐसी बात आ रही हे. अपनी भारतके प्रति दासता हे वो या तरहसु अपने आपकु भारतके प्रति

समर्पित करे हे. एक ट्रक्पे मैंने ये भी लिख्यो देख्यो के ''सौमेंसु अस्सी बेईमान तो भी मेरा भारत महान'' पर जो कुछ भी होय पर यामें एक बात समझवेकी हे के भार 'मेरा'पे हे या भारतकी महानता पे! दोनों बातन्में बहोत अंतर पड़ जाय हे. याही तरहसु यदि ''मैं ब्रह्म हूँ''में 'मैं'पे यदि भार आयो तो 'माइ हेड्' मानें मेरा सिर हो जायगो. और यदि ब्रह्मपे भार आयो तो वाको अर्थ बिल्कुल अलग हो जायगो. शब्द वोके वो ही हें पर अर्थ बदल जा रह्यो हे.

भारतके प्रति अपनी अधीनता हे यामें अपन् नहीं तो भारत क्या हे? क्या भारत कोई भूभागको नाम हे? भूभाग तो कभी जुड्यो भी हो सके और कट्यो भी हो सके. तो भूभागको नाम तो भारत नहीं हे. जैसे वा भूमिमेंसु एक हिस्सा पाकिस्तान हो गयो, तो वामें भारत कहाँ रह्यो? एक भाग लंका हो गयो, एक भाग बंगलादेश हो गयो, तो वो भारत कहाँ रह्यो? भूभाग कट सके हे, और जुड़ सके हे. जिनने नागरिकशास्त्र पढ़यो होयगो वाकु मालूम होगी के राष्ट्रकी परिभाषामें कितने अंश वामें गिनाये जाय हें. राष्ट्रमें भूमि होनी चहिये, वामें कोई संस्कृति होनी चहिये, वाको कोई नागरिक होनो चहिये, उनकी कोई व्यवस्था होनी चहिये, कोई संविधान होनो चहिये, वाको नाम 'राष्ट्र' केहवावे हे. अकेलो कोई जमीनको नाम भारत नहीं हे, अकेले व्यक्तिन्को नाम भारत नहीं हे. पर इन सबको परमात्माके जैसो जो अंशी हे, वाको नाम 'भारत' हे. अपन् सब भारतके अंश हे. अपन्सु भारत गढ़ा रह्यो हे और अपन् भारतसु गढ़ा रहे हें. जब अपन् ''मेरा भारत महान'' बोले हें, तो 'मेरे'पे भार न होके, 'भारत'पे भार आनो चहिये. ऐसे ही अपनी परमात्माके प्रति ऐसी मधुर दासता हे के अपन् परमात्माके अंश हे और परमात्मा अपनो अंशी हे. याके कारण हम परमात्माके दास हें. या लिए दास नहीं हे के वासु अपनेकु कुछ काम निकालनो

हे, वाकी मानता माननी हे, बेटा-बेटीकी शादी करवानी हे, धंधा चलवानो हे. याके लिए क्या दासता स्वीकारनी! याके बजाय तो नहीं माननो अच्छो.

ये सारी बात मैं आपकु पुष्टिभक्तिके दृष्टिकोणसु समझा रह्यो हूँ, जनरल् दृष्टिकोणसु नहीं. पुष्टिभक्तिके दृष्टिकोणसु इन सामान्य कारणनूसु स्वामी मानवेके बजाय, नहीं माननो बेहतर हे. वाकु स्वामी माननो और अपने आपकु दास माननो तो या अर्थमें माननो के वो मेरो स्वामी हे, मेरो अंशी हे और मैं वाको दास हूँ, वाको अंश हूँ या अर्थमें माननो. या अर्थमें माननो के परमात्मा एक सागर हे मैं वाकी लहर हूँ. वो एक भारत हे मैं वाको एक नागरिक हूँ. वो मोसु बन रह्यो हे और मैं वासु बन रह्यो हूँ. ये मधुरभाव, जो अंशांशी भावसु गढ़ रह्यो हे, वा भावको अपनो दासत्व हे. जब वो अंशांशीभाव अपनेमें आवे तो अपने अहंकारकु न तोड़वेकी, न वाकु छोड़वेकी जरूरत हे. बस, अपनो अहंकार, जो भारतसु कटके दीख रह्यो हे, वाकु भारतसु जोड़वेकी जरूरत हे. मानें मैं भारतीय हूँ. ऐसे ही जो अपनो अहंकार, जो परमात्मासु कट्यो भयो दीख रह्यो हे, जाकु अपन् ब्रह्मसंबंधमें 'तिरोभाव' कहे हें, वा अहंकारकु परमात्मासु जोड़वेकी जरूरत हे. मैं ब्रह्मको और ब्रह्म मेरो. वा तरहसु अपने अहंकारकु परमात्मासु जोड़ो. ब्रह्म मेरो अंशी और मैं वाको अंश. ब्रह्म मेरो उपादान और मैं ब्रह्मको कार्य. ब्रह्म मेरो तत्त्व और मैं ब्रह्मको नाम रूप और कर्म. या तरहसु अपने अहंकारकु जब परमात्माके साथ जोड़के जो दासत्व आयगो, वो 'पुष्टिमार्गीय दासत्व' हे. वा दासत्वके आवेपे कभी अहंकार अपनूकु तकलीफ नहीं देगो. कभी या अहंकारसु अपन् दरवाजा खटखटायेंगे तो ठाकुरजी याको बुरो नहीं मानेगे. क्योंके वो ऐसो अहंकार हे ही नहीं. वो तो ऐसो मधुर अहंकार हे के जामें परमात्मा भर्यो भयो हे और परमात्माके अहंकारमें अपन् भरे भये होयेंगे. या प्रकारके

अहंकारकु आपसमें शॅयर् करवेको, या प्रकारकी ममताकु आपसमें शॅयर् करवेकी जो बात महाप्रभुजी समझावे हें के **''कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिः उच्यते''** (त.दी.नि.३।५।२५) मानें कृष्णकी अधीन हो जानो केवल मर्यादा हे पर कृष्णको भक्तके अधीन हो जानो, ये पुष्टि हे. तो स्वामी जहाँ भक्तके अधीन हे, भक्त जहाँ स्वामीके अधीन हे, ये परस्पर अधीनताको दासत्व हे. वामें न तो अपनो अहंकार ब्रह्मकु खुचेगो और न ब्रह्मको अहंकार अपनेकु डरावनो लगेगो. नहीं तो ब्रह्मको अहंकार डरावनो लग सके. जैसे शेरको अहंकार जब वो दहाड़े हे तो डरावनो लगे हे. जैसे कोई गलीको गुंडा होय वाको अहंकार, जब वो कहे हे के ''जानता हे मैं कौन हूँ'' तब डरावनो लगे हे.

मैंने या वारेमें एक चुटकुला पढ़यो हतो. एक शेरकु अहंकार हो गयो के मैं जंगलको राजा हुं ये सब माने हें के नहीं याकु देखनो. वो जंगलमें निकल्यो. एक बकरी मिली तो शेरने पूछी के ''जाने हे मैं कौन हूँ'' बकरीने कही ''आप शेर हो, जंगलके राजा'' आगे भेड़िया मिल्यो और भी जानवर मिले. सबनूने मंजूर कर लियो के आप जंगलके राजा हो. आगे एक मस्त हाथी मिल्यो. शेरने पूछी ''ए जाने हे के मैं कौन हूँ.'' हाथीने कही ''क्या बात हे?'' तब शेरने कही ''जाने हे के मैं जंगलको राजा हूँ?'' हाथीकु गुस्सा आयो. वाने वा शेरकु सुडमें लपेटके उठाके पटक दियो. शेरने कही ''अरे भई, यामें नाराज होवेकी क्या बात हे. नहीं पता हे तो पूछ लो न के मैं कौन हूँ!'' वाको अहंकार खंडित हो गयो. अपनो अहंकार तब-तक ही प्रबल रहे हे, जब-तक अपनूकु कोई उठाके फेंक नहीं दे हे.

अपनो अहंकार ब्रह्मके अहंकारके सामने ठंडो नहीं पड़ेगो यदि अपनो वो मधुर संबंध होय तो. जैसे शास्त्रमें कह्यो गयो हे के

''पुत्रात् शिष्याद् इच्छेत् पराजयम्'' पुत्र यदि अपनसु ज्यादा गुणवान भयो तो अपनकु वो ज्यादा खुचे नहीं हे. शिष्य अपनसु ज्यादा विद्यावान भयो तो वो अपनेकु ज्यादा खुंचे नहीं हे. ऐसे ही अपनेकु ब्रह्मको अहंकार डरावनो नहीं लगेगो और ब्रह्मकु अपनो अहंकार खुचेगो नहीं. अपन् दोनोंके अहंकार एक-दूसरेसु ऐसे हो गये हें के जैसे ''मेरो मन और वा ढोटा एकमेक कर सान्यो.'' जैसे दालकु और चावलकु अपन् सान लें. पुष्टिमार्गीय दासत्व अपनकु समझमें आयगो. वरना समझमें नहीं आयगो. वो दासत्व समझमें आयो तो लीलाको भेद समझमें आयगो. और यदि दोहरो दासत्व रख्यो, जाके कई मॉडेल् मैंने आपकु पहले बताये हें, तो और बहोत कुछ आ जायगो जैसे घिघियानो. शेर कैसे हाथीके सामने घिघियायो. पर वो लीलाको भेद समझमें नहीं आयगो. ये दासत्वके माध्यमसु लीलाको भेद महाप्रभुजी समझानो चाह रहे हें. आजको प्रसंग अपन् यहाँ रखेंगे.

(समर्पणको त्रिकोण)

कृष्णदासजीकी वार्तामें आये भये प्रसंगमें ''**भक्त होयकें लीलाको भेद समझ नहीं आवे**'' वाकी मीमांसा करते भये महाप्रभुजीने सबसु पहलो भार समर्पणपे दियो. समर्पणकी जो विधि हे वा तरहसु समर्पण नहीं करे हें और वाको जो तात्पर्य हे वाकु बराबर नहीं समझे हें. दो-तीन दिनके चिंतनमें अपन् जो कुछ भी समर्पणको विचार कर सकते हतें वो कियो. एक बात यामें खास समझवेकी हे, समर्पण कहो के ब्रह्मसंबंध कहो, एक ही बात हे. समर्पण अपने यहाँ एक प्रकारको संबंध हे और कोई भी संबंधकी जब चर्चा उठे हे, तब हर समय अपन् सोचें तो समझमें आ सके हे के संबंधके दो छोर तो होने ही चहिये. कौनको कौनसु और क्या संबंध. दो छोर तो कमसु कम होने ही चहिये. अधिक भी हो सके हें. अपन् याकु द्विकोण कहें तो दोकोण तो होवे ही हे.

कुछ त्रिकोण चतुष्कोण पंचकोण षट्कोण अष्टकोण नवकोण और दशकोण संबंध भी हो सके हे. आप कहोगे के यहाँ ज्योमेट्रीकी बात कहांसु आ गयी! पर ध्यानसु समझो. जैसे पिता-पुत्रको द्विकोण संबंध हे. एक पिता एक पुत्र. भाईको भी द्विकोण संबंध हे. पर यदि चाचा केह रहे हो तो ये द्विकोण संबंध नहीं रह्यो. चाचा कौन? पिताको भाई. मैं, मेरो पिता और वाके भाई होवेके कारण वो मेरो चाचा. ये त्रिकोण संबंध हो गयो. ऐसे ही अपन् चेचेरो भाई कहेंगे तो वो चतुष्कोण संबंध हो जायगो. या बातकु समझनो जरूरी हे के कोई भी संबंधको द्विकोण होनो ही जरूरी नहीं हे. वो त्रिकोण चतुष्कोण कोई भी हो सके हे. अपन् या शृंखलाकु बढ़ाते जायें तो अपने संबंध कितने भी कोणके हो सके हे. पर जो नहीं हो सके हे, वो ये के संबंध कभी भी अकेले व्यक्तिको नहीं हो सके हे. एक व्यक्ति अकेलो हे, तो अपन् यों कहे हें के वाको कोई संबंधी नहीं हे. संबंध हे तो कमसु कम दो होने जरूरी हें. यदि थोडी देर ध्यानसु विचारो तो बात समझमें आयगी के अपनो समर्पणको संबंध कितने कोणको संबंध हे? कौन समर्पण कर रह्यो हे? कौनकु समर्पण कर रह्यो हे? क्या समर्पण कर रह्यो हे? जिनने ब्रह्मसंबंध लियो हे उनकु या बातको ख्याल आयगो के ब्रह्मसंबंधको पहलो हिस्सा हे वो पहलो कोण हे. जामें ये कह्यो जाय हे के अहंता मैं ठाकुरजीसु बिछड़ गयो हूँ इत्यादि. दूसरो कोण हे के भगवान् कृष्ण मैं भगवान् कृष्णकु समर्पित कर रह्यो हूँ. तीसरो कोण हे के ममता मेरो जो कछु हे वो प्रभुकी सेवाके लिये हे. जब तीसरो कोण अपन् गिना दें तो समर्पणको संबंध पूरो हो गयो. समर्पणको संबंध जो मैंने लिखके दियो हे, वाकु मंत्रसु जब मिलाके देख लोगे तो सरलतासु ख्याल आ जायगो. अक्सर अपन् मंत्र बोल जाय पर खुलासा नहीं होवे हे के कहाँसु बात शुरु भयी और कहाँ खतम भयी. मैं जब भी कोईकु ब्रह्मसंबंध दऊँ हूँ तो लिखके या बातको खुलासा ओर कर दऊँ हूँ के जो मंत्र अपन् कर रहे

हें वो समझमें आनो चहिये. जैसे अपन् कोई टी.वी. लावे तो वाकु कैसे चलानो ये तो समझे हें. ऐसे ही अपनी ब्रह्मसंबंधकी अष्टाक्षरकी दीक्षाकु अपन् थोड़ो समझें तो अपनकु मजा आयगो.

कितनी बडी और अच्छी बात महाप्रभुजीने अपनेकु समझायी हे. यासु ही मैं हमेशा नम्बर् देके वाकु लिखू हूँ. मूलमंत्रमें कभी नम्बर् दियो नहीं गयो हतो. पर यासु फायदा ये होवे हे के अपनकु समझमें आ जावे हे के यामें कितने कोणको संबंध बन रह्यो हे. यदि ये बात अपनकु स्पष्ट तोरपे समझमें आवे तो अभी तकको जो विवेचन अपन्ने कियो वो **"समर्पणकी विधिसूं समर्पण नाहीं करत हें, वो पदार्थ नाहीं समझत हें."** जो बात महाप्रभुजीने बतायी, ये तीसरे कोणके बारेमें हती. वा तीसरे कोणके तहत, पहलो कोण भी समझायो हे. क्योंके 'मैं' भी वामें हे, अहंता आयी हे और ममता आयी हे. दो कोण वामें समझाये हें. अब वाके बाद जो कोण हे 'भगवान्'. वाके बारेमें अब महाप्रभुजी आगे समझानो चाह रहे हें. जो अभी-तकके विवेचनमें अपन्ने देख्यो वो पहले दो कोणनके बारेमें हतो के "मैं कौन, मेरो क्या?" अहंता और ममता के समर्पणकी बात अपन्ने सोची.

(अहंता-ममताकु भगवान्सु जोड़वेकी सौम्य विधि[१-२])

अब आगे भगवान् कृष्णकी बात महाप्रभुजी समझानो चाह रहे हें. और वो समझावेके पहले महाप्रभुजी वा बातकु समझावेके लिए; जैसे मकानमें घुसवेके लिए एक दरवाजा होवे हे, ऐसे एक दरवाजा महाप्रभुजी खोलनो चाह रहे हें. और ये दरवाजा बड़े साफ-सुथरे तोरपे महाप्रभुजीने पंचश्लोकीमें और सर्वनिर्णयग्रंथमें समझाये हे के—

[१] **धनं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते, कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीत कृष्णोऽनर्थस्य वारकः** धन कोई इकट्ठे करवे लायक वस्तु

नहीं हे. पर वाकु छोड़्यो भी नहीं जा सके हे. वो दुनियाकी एक हकीकत हे और जो धनकु छोड़ देवे हें वो भी पाछें कोई छल-छद्म करके कोई न कोई भांतिसु धन इकट्ठे करते ही होवें पाछे कोई छल-छद्म करके कोई न कोई भांतिसु धन इकट्ठे करते ही होवे हे. महाप्रभुजी कहे हें के जब अपनी धनके साथ ये स्थिति हे तो क्यों न या धनकु अपन् भगवत्सेवामें लगानो शुरु करें! अपन् जब या धनकु भगवत्सेवामें लगायेंगे तो धनमें रह्यो भयो जो अनर्थ हे वो दूर होयगो. **"धनं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते, कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीत कृष्णोऽनर्थस्य वारकः"** (त.दी.नि.२।२५६) कृष्णके लिए धन वापरनो शुरु करो. यासु धनमें रह्यो भयो जो अनर्थ हे वो कृष्ण दूर कर सकेगो. जो बात कई बखत अपन् सिद्धांतरहस्यमें चर्चा कर चुके हें **"गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना, गंगात्वे न निरूप्या स्यात् तद्वद् अत्रापि चैव हि"** (सि.र.८) जैसे कोई भी नदी या गंदीनाली जो गंगामें मिले हे वो गंगा बन जाय हे. वैसे ही अपनो धन यदि अपन्ने सेवामें वापर्यो तो वो सेवाको भगवदंश बन जायगो. साथ-साथ महाप्रभुजी ये भी आज्ञा कर रहे हें के "गृहं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते, कृष्णार्थं तन् नियुञ्जीत कृष्णः संसारमोचकः" (त.दी.नि.२।२५५) घर भी कोई ऐसी चीज नहीं हे जाकु अपन् अभिनंदित कर सकें. शास्त्रमें तो यहाँ-तक कह्यो हे के आदमी घर बनावे, वहाँसु हिंसा शुरु हो जाय हे. जब अपन् घर बना रहे हें तो कोई न कोई प्रकारकी हिंसा तो होयगी ही. एक साधारण उदाहरण दऊँ. जैसे अपन् घर बनाके रेह रहे हें और घरमें मच्छर काट रहे हें तो फ्लिट् छांटनी पड़ेगी. चूहा घुसेगो तो वाकु भगानो ही पड़ेगो. तो हिंसा तो भयी न! अपन् यों समझे के घर अपन्ने बनायो तो अपनो ही हे पर जानवरनकु तो ये पता नहीं हे. वो यों समझें के अगर तू यामें घुस पायो तो तेरो घर हे. और मैं घुस पा रह्यो हूँ तो ये मेरो क्यों नहीं हो सके हे! जानवरकु तो ये समझ

नहीं आवे के तुमने याकु पैसा देके खरीद्यो हे. घर बनायो तो वामें हिंसा तो होवे ही हे. शास्त्र यामें यों कहे हे के घर धन अपनी ममताको प्रतीक हे. इनकु जब अपन् भगवान्के साथ जोड़ेंगे तो जो हिंसाके द्वारा पाप भये हें, वो होय तो होय पर अपन् यों केह सकेंगे के या घरमें अपन् भगवान्के साथ रेह रहे हें. जो कपड़ा अपन् पहरे हें तो गंदो तो होयगो. पर वाकी थोड़ी धुलाई करते रहें तो साफ होयगो फिर गंदो भी होयगो तो फिर साफ होयगो. ये प्रक्रिया चलती रहेगी. पर अपने पास साफ करवेकी प्रक्रिया नहीं होय तो वो थोड़े दिनन्में इतनो गंदो और बदबूदार हो जायगो के वाकु पहरनो मुश्किल हो जायगो.

आपकु शायद मालूम नहीं होयगी के लद्दाखमें बीस एक साल पहले ऐसो हतो के बरसमें एक उत्सवके दिन पहाड़सु वे लोग नीचे नदीमें उतरके नहातें. और कपड़ा बदलते फिर वो कपड़ा अगले वर्ष ही धुलते. वो ही कपड़ा चलते. अब तो वहाँ ये प्रक्रिया बदल रही हे. क्योंके वहाँ अब नीचेके लोग जावे लगे हें. नहीं तो बरसमें वे लोग एक ही दिन नहातें और कपड़ा बदलतें. पहाड़सु कौन रोज नीचे उतर सके हे! अब कल्पना करो के एक बरस कोई वो ही कपड़ा पहरे तो क्या हाल होयगो!

ऐसे ही जब अपन् या देह रूपी वस्त्रकु बिना धुलाईके पहरे ही जा रहे हें, पहरे ही जा रहे हें. वामें रोग हो रह्यो हे, बीमारी हो रही हे पर थीगड़ा लगा-लगाके पहरे ही जा रहे हें, तो क्या यामें कोई धुलाईकी प्रक्रिया अपनाओगे के नहीं? जैसे कबीरदासजीने कहीके "जसकी तस रख दीनी चदरिया, झीनी रे झीनी" जैसी रामने मोकु ये चदरिया दी हती, वामें मैंने कोई दाग नहीं लगायो. अरे! अपन् जसकी तस नहीं रख पावें, तो कमसु कम धो तो सकें. वो लद्दाखवालो सिद्धांत अपनो हे के जन्मसु जो

कपड़ा अपन्कु मिल्यो वाकु मृत्यु पर्यन्त अपन् धोवें ही नहीं!

जैसे जल-साबुन्सु या भौतिक देहकी धुलाई होवे हे, वैसे ही अपने आध्यात्मिक देहमें भी मोह-मायाकी जो गंदगी हे, वाकी धुलाईकी कुछ प्रक्रिया तो होनी चहिये. वामें ज्ञानकी, वैराग्यकी, तपकी, संन्यासकी, कर्मकी, दानकी कई प्रक्रिया हें. वामें महाप्रभुजीने एक सौम्य प्रक्रिया बतायी. जैसे पुराने जमानामें कपड़ाकु खूब पीटते, एक वो प्रक्रिया हती और एक अब हे के थोड़ो घोल बनाके, वामें भिगोके धोके सुखा दो और कपड़ा साफ हो जाय हे तो ये सौम्य प्रक्रिया हो गयी. महाप्रभुजीने एक सौम्य प्रक्रिया बतायी हे के या देहकु धनकु तुम भगवदर्थ वापरनो शुरु करो. जो तुम स्वअर्थ वापर रहे हो वाकु तुम भगवदर्थ वापरनो शुरु करो. जो घर धन तुम अपने लिए वापर रहे हो, वाकु भगवदर्थ वापरनो शुरु करो. और जब वा रूममें, गोखलामें, या कौनामें अपन् भगवान्कु पधरायेंगे और वाके साथ अपन् रेहनो शुरु करेंगे तो बात बदल जायगी. देखो, वात वोकी वो ही हे. रेहनो घरमें ही हे पर एक सौम्य प्रक्रिया धुलाईकी शुरु हो जायगी. हर बखत अपनी भक्ति ये समझाती रहेगी के या घरमें केवल तुम ही नहीं रेह रहे हो, भगवान् भी रेह रह्यो हे. तुम सिर्फ अपने लिए ही नहीं रेह रहे हो, कोई औरके लिए रेह रहे हो. जा बखत अपन्कु ये भाव स्थिर भयो के अपन् या घरमें भगवान्के लिए रेह रहे हें, तब बात बदल जाय हे. सब चीज जैसे खाना धन रूम कार सब चीज मेरे लिए हे. तो कोई चीज दूसरेके लिए भी तो होनी चहिये.

समाजमें जब अपन् पैदा भये तबसु अपन् अपनी अहंता और ममता के कारण, ये मानके चले हें के सब वस्तु मेरे लिए ही हे. पर ऐसो कभी हो नहीं सके हे. सब वस्तु कोई एकके लिए हो नहीं सके हें. एक सामान्य उदाहरण दऊँ तो आपकु ख्याल आयगो के जैसे अपन् सांस ले रहे हें. अपन् सोचें के सांस अपने

लिए ले रहे हें पर जो सांस अपन् छोड़ रहे हें, वो वृक्षके लिए हे. अपनी छोड़ी भयी सांस वृक्षके लिए हे और वृक्षकी छोड़ी भयी सांस अपने लिए हे. परस्पर निर्भरतापे ही या सृष्टिको क्रम चल रह्यो हे. एक दूसरेपे निर्भर हे, दूसरो तीसरेपे निर्भर हे. अपन् यों समझें के अपन् अनाज खा रहे हें पर किसान अनाज पैदा कर रह्यो हे, तो ही तो अपन् खा रहे हें. और वा अनाज देवेके बदलेमें किसानकु भी कुछ मिलतो होयगो तो ही तो किसान अनाज पैदा करेगो. नहीं तो वो भी भूखो मर जायगो. किसानकी भी अपनी कुछ आवश्यकताएं हें पर या एक-दूसरेपे निर्भरताकी पद्धतिकु घटा-घटाके अपन् मोहवश ये सोचें के सब वस्तु बस मेरे लिए ही हे. 'सब मेरे लिए ही हे' याको अपन् इलाज सोचें तो एक ये हे के सब छोड़ दें. एक इलाज ये हो सके.

हमारे बम्बईके पास घाटकोपर् एक सबर्ब हे. वहाँ हमारो एक बार प्रवचन हतो. वहाँ एक लड़की वैराग्यवादी हती. वाने मोसु कही के "महाराज! आप भक्ति कर रहे हो पर अंतमें जीवनको ध्येय क्या? मैंने वासु कही के जीवन तो खुद एक ध्येय हे. याको और क्या ध्येय हो सके हे? यदि तुमने जीवनको कोई ध्येय बनायो तो वो भी जीवनमें ही तुम्हें हासिल करनो पड़ेगो. जीवनमें वो ध्येय हासिल नहीं भयो तो वाके लिए तुममें कुछ न कुछ मोह हे. तब वाने मोसु कही के तो जीवनमें ध्येयकु हासिल करके या संसारमें ही रचे-पचे रेहनो, क्या आप याकु ही भक्ति केह रहे हो? वाके बजाय तो वो त्यागी-संन्यासी कितने अच्छे हे जो घर-संसार छोड़के साधु बन जा रहे हे!" मैंनें वासु कही के "देखो, बात तो तुम्हारी ठीक हे पर एक साधुके लिए शास्त्रमें कमसु-कम-तीन घरकी, कोईमें सातकी ऐसी भिक्षाको नियम हे. एक साधुकु यदि तीन गृहस्थ नहीं मिले तो वो जीयेगो कैसे? ये बताओ. अब यदि सब साधु हो जायेंगे तो वो भिक्षा कहाँसु लेंगे! रसोई तो

साधु बनायेंगे नहीं? वो वृक्षसु या आकाशसु तो भिक्षा लेगो नहीं. वाकु कमसु-कम तीन और अधिकसु-अधिक तेरह गुना तो गृहस्थ चहिये ही. जा गृहस्थके कारण वा साधुको साधुपनो निभ रह्यो हे, वाके बारेमें तुम ऐसी दुर्भावना क्यों रख रहे हो? तुमकु यदि साधु बननो हे तो वामें कुछ बुराई नहीं हे. ये त्याग भी या देहकी एक धुलाई ही हे. वैराग्य तप ये सब एक धुलाईके प्रकार हे. पर वो प्रकार कपड़ाकु कूट-कूटके धोवेके प्रकार हे.

और एक धुलाईको प्रकार ये भी हे के अपन् सोचे के मैं गृहस्थ हूँ, मैंने घरमें अन्न पकायो हे वो कोई साधुके लिए भी हे, कोई भिक्षार्थीके लिए भी हे. यदि तुमकु भगवान्में निष्ठा हे तो भगवान्के लिए भी हे. या तरीकेसु जो तुम अन्न पका रहे हो, वो तुम्हारी सौम्य धुलाई हो गयी. असलमें साधु भी तो वो ही काम कर रह्यो हे. वो तुमकु ज्ञान दे रह्यो हे, तुम वाकु अनाज दे रहे हो. कोईकु कपड़ा चहिये. कोईकु अन्न चहिये, जाके पास जो हे वो दे रह्यो हे. ये जगत् जीवन या तरहकी परस्पर निर्भरतासु ही चले हे. अनिर्भर कोईको जीवन चले, ये या जगत्में संभव नहीं हे चाहे कोई कितनो भी बड़ो त्यागी होय, वैरागी होय! क्योंके हर त्यागी-वैरागीकु छापामें विज्ञापन तो देनो पड़ेगो के या गाममें आ गये हें दर्शन करवे आ जाओ. छापा भी साधु-महाराजपे निर्भर हे के उनसु पैसा लेके वो भी चल रह्यो हे. हर जगह या प्रकारकी निर्भरता तो हे ही. पर अपनी अहंताके वश अपन् यों मान लें के हम कोईपे निर्भर नहीं हे, ये संभव नहीं हे. अथवा अपनी ममताके वश अपन् ये मान लें के मैं सबपे निर्भर रहूँगो. मेरेपे कोईकी जिम्मेदारी नहीं, ये भी एक ममताको अतिरेक हे. तुम ऐसे कैसे सोच सको हो! कोई तुम्हारेपे निर्भर होयगो, तुम कोईपे निर्भर होयेंगे. वृक्षको और प्राणधारीन्को आपसी निर्भरताके भावको जो संबंध हे वामें जैसी अपनी अहंता-ममताकी स्वस्थता

रहेगी, वो स्वस्थता केवल अपनी अहंता या अपनी ही ममता बढ़ा लेवेसु कभी हो नहीं सके हे.

वाकी सौम्य धुलाईकी प्रक्रिया महाप्रभुजीने समर्पणकी प्रक्रियासु बतायी हे. समर्पणकी प्रक्रियामें तुम अपने आपकु इतनो तो समझाओ के जा घरमें रेह रहे हो वापे कोई औरको भी अधिकार हे. हम ये नहीं केह रहे हें के तुम घर छोड़के चले जाओ. हम ये नहीं केह रहे हें के तुम त्याग करो. पर जा घरमें तुम रेह रहे हो, जो तुम धन कमा रहे हो, जा परिवारको तुम पालन कर रहे हो, वामें ऐसो भाव तो जगाओ के ये परिवार, ये धनको पालन मैं भगवत्सेवा भगवद्भक्ति के लिए कर रह्यो हूँ. या प्रकारको तुमने सौम्य भाव जगायो तो मनको संस्कार बदल जायगो. तुम्हारी अहंता-ममताके विस्फोटमें बहोत शांति आ जायगी. और ये बात धीरे-धीरे तुम्हारी समझमें आ जायगी के कोई राजा होय के भिखारी होय, परस्पर एक-दूसरेपे निर्भर हुये बिना कोई जी नहीं सके हे.

सर्वभावसु वाको भावन करो के मेरी माता भी तू हे, पिता भी तू हे, सखा भी तू हे, बंधु भी तू हे, घर भी तू हे, धन भी तू हे. अष्टाक्षरमें ये रहस्य कह्यो हे. कुछ लोगनकु अजीब लगेगो पर ये बात ध्यानसु समझो के अपनो घर भी ठाकुरजी हे. अपनो रक्षक भी ठाकुरजी. अपनो मालिक भी ठाकुरजी हे और अपनो बालक भी ठाकुरजी हे. सब कुछ अपनो ठाकुरजी हे. या सर्वभावसु जब तुम सेवा करोगे तो अपनो खोटो अहंकार और क्षुद्र ममता सेवामें आड़े नहीं आयेंगे. नहीं तो कुछ न कुछ गड़बड़ होयगी ही. क्योंके ये अहंता-ममताको संबंध ऐसो विचित्र हे के प्रभु तो निभानो चाहें तो निभा देंगे पर अपनमें वो ताकत नहीं हे. एक बात समझो के जैसे अपन् कोईकु माने हें, ये अपनो प्रिय बेटा हे. वाकु अत्यधिक प्यार करें. जितनो अधिक प्यार करेंगे

उतनो वो गुंडा हो जायगो. फिर एक दिन वो सरपे चढ़े तो अपन् यों सोचें के हमने तो इतनो प्यार कियो और ये तो नालायक निकल्यो. तो गुनहगार तुम के गुनहगार बेटा! माथे कौनने चढ़ायो वाकु? तो होवे क्या हे के अपन् अपनी अहंता-ममताकु सोचे-समझे बिना कोईपे बढ़ा दे और कोईपे घटा दे और वाके कारण अंतमें अपनकु खुद दुःखी होनो पड़े हे.

[२]**संगः सर्वात्मना त्याज्यं स चेत् त्यक्तुं न शक्यते** याके लिए महाप्रभुजी कहे हें के अपनी वृत्ति ऐसी बनाओ के हमकु निसंग नहीं, भगवदीयको संग प्राप्त करनो हे. जब भगवदीयको संग करोगे, तो भगवदीय तो भगवानके बिना हो नहीं सके हे. और यदि भगवानके साथ हे तो वो भगवदीय होयगो ही. जब भगवदीयको संग करनो शुरु करोगे तो भगवानको संग तुमकु मिलेगो. यासु ही भक्तिवर्धिनीमें ये बात बतायी के **"अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः, अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति"** (भ.व.८). ये जो बात बतायी के कैसे भगवदीयको संग करनो, याकी एक सिफत महाप्रभुजीने बतायी हे के **"अदूरे विप्रकर्षेवा"** (भ.व.८) न तो इतने पास जाओ के टकरा जाओ. समझो भगवदीय खड्डामें पड़ रह्यो हे तो तुमें भी खड्डामें पड़वेकी जरूरत नहीं हे. और यदि भगवदीय पहाड़ चढ़ रह्यो हे तो तुमकु पहाड़ चढ़वेकी भी जरूरत नहीं हे. पर वाको संग या तरहसु करो के वाके संगके कारण तुमकु भगवत्संग मिलनो शुरु होवे. एक बात समझो के भगवत्संग कोई भगवदीयके संगसु मिलनो ही शुरु होयगो. समझो के अपनकु कोई गीत पसंद आ रह्यो हे और यदि आपने वो गीत गुनगुनायो नहीं तो पूरो पसंद नहीं आ रह्यो हे. पूरो गीत पसंद तभी कह्यो जायगो जब वाकु गुनगुनावेको मन करे. ये सहज संभव हे के आपकु सबके सामने गावेमें शर्म आती होय. ऐसो होय तो बाथरूममें गुनगुना लो. गीत पसंद आ रह्यो हे तो गुनगुनानो भी चहिये. और गुनगुनायेंगे तो

कोई दूसरो सुनेगो भी. ये परस्परकी निर्भरता हे. भगवदीयके संगसु अपनेकु भगवत्संग मिलेगो. और भगवत्संग मिलेगो तो ही तुमकु भगवदीयको संग मिलेगो. क्योंके तुम संग चाहोगे तो ही तो तुमकु संग मिलेगो. तुम स्वयं भगवत्संग नहीं करके लौकिक विषयनूको संग कर रहे हो तो कोई भगवदीय तो संग करेगो नहीं अपने साथ.

''मृगाः मृगैः संगमुपव्रजन्ति, गावश्च गोभिः तुरंगाः तुरंगैः, मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः, समानशीलव्यसनेषु सख्यम्'' हिरन, हिरनकी टोलीमें ही फिरेगो. घोड़ा, घोड़ाकी टोलीमें ही फिरेगो. ऐसे ही लोकमें यों कहे हे के मूर्खकु कभी समझदार आदमीको संग पसंद नहीं आयगो और जो समझदार आदमी हे वाकु मूर्खको संग पसंद नहीं आयगो. ऐसे ही यदि अपन् भक्तिपथके पथिक हें, तो अपनूकु भगवदीयको संग पसंद आयगो ही. अपनूकु यदि भगवदीयको संग पसंद आ रह्यो हे तो अपनूकु भगवत्संगी होनो ही पड़ेगो. नहीं तो अपनो भगवत्संग निभवेवालो नहीं हे, या बातकु समझियो.

एक बहोत अच्छो प्रेरक प्रसंग हे जो अक्सर मैं दोहराऊँ हूँ. आजसु सो डेढ़सो साल पहले रामकृष्ण परमहंसको प्रसंग हे. एक बार रवीन्द्रनाथ टेगोरके परिवारवालेनूने चैतन्य महाप्रभुके जीवनपे एक नाटक कियो. वामें एक वेश्या जो बहोत अच्छो अभिनय करती हती वाकु चैतन्य महाप्रभुको पात्र दियो. ये परिवारवाले चाहते हतें के रामकृष्ण परमहंस यदि आके ये नाटक देखें तो या नाटकको बहोत प्रचार हो जायगो. रोज जा-जाके ये लोग उनसु देखवे पधारवेकी विनती करतें. नाटकमें जब कोई वा पात्रको अभिनय करे हे तो उनको आवेश वामें होवे हे. रामकृष्णने कही के यदि आवेश होवे तो नाटक नहीं चलेगो और आवेश नहीं होवे तो ही नाटक चलेगो. पर जब बहोत दिन उनके पीछे पड़े, तो एक दिन नाटक देखवे रामकृष्ण परमहंस गये. वो वेश्या इतनो अच्छो अभिनय करती हती

के वाने बिलकुल चैतन्य महाप्रभुको हुबहू चित्रण कर दियो. नाटकके बीचमें ही रामकृष्ण परमहंसने, क्योंके वो तो एकदम मस्तराम हते, वा वेश्याके चरण पकड़ लिये. अब वो वेश्या आवेशमें इतनी भावविभोर हो गयी के वाने नाटक छोड़के संन्यास ले लियो. रामकृष्णकी बात के ''आवेश रहेगो तो नाटक नहीं चलेगो,'' सच्ची पड़ी. वा वेश्याकु पता नहीं क्या भयो, वाने सोची के इतने बड़े संन्यासी मेरे पैर पड़ रहे हे या वेशके कारण, तो सचमुचमें संन्यासी क्यों नहीं हो जानो! जा बखत अपन् भगवत्संग कर रहे हें और अपनूकु भगवदीयको संग भयो, तो ये सारे विषयावेशके नाटक खतम हो जायेंगे और अपनूकु भी भगवत्संग हो जायगो.

(समर्पणकी सार्थकता)

वो भगवत्संग यदि अपनो भयो तब तीसरो कोण हे के भगवान् कृष्णकु मैं समर्पण कर रह्यो हूँ, वो अपनूकु समझमें आनो शुरु होयगो और भगवल्लीलाको भेद अथवा रहस्य खुलनो शुरु होयगो. याके कारण ही महाप्रभुजी आगेके वचनामृतमें भगवदीयको संग बता रहे हें के **''अपनी योग्यता मानि भगवदीयको संग नाहीं करत हे तातें योग्यता मानें तब प्रभु अप्रसन्न होई जात हे. ये यह मारग दैन्यको हे. सो दैन्य नाहीं हे. इत्यादिक अंतरायतें अपनो स्वरूप भगवदीयको स्वरूप और ठाकुरजीको स्वरूप नाहीं जानत हे''** देखो, तीन कोण समर्पणके यहाँ बताये हें. **अपनो स्वरूप** जो अहम्में आयो. दूसरो **भगवदीयको स्वरूप.** वो कैसे के जा बखत अपनूने समर्पण कियो, वा बखत अपनो परिवार सब भगवदीय बन जा रह्यो हे. वा बखत ये मेरो परिवार नहीं बन जा रह्यो हे. वा बखत अपनूकु ये भाव जगानो चहिये के मैं और मेरो परिवार सब भगवानूके हें. जब ये भाव जग्यो तो सबसु पहलो संग भगवदीयको अपनूकु अपने परिवारमें मिलेगो. यासु धीरे-धीरे बढ़ते भये, जो भगवत्सेवा करतो होय, लीला गान करतो होय, कथा करतो होय, वाके संगकी इच्छा

अपनुकु जागृत होयगी और वा इच्छाके कारण अपनो भगवत्संग बढ़तो जायगो. और जब ये बढ़यो तो समर्पणको तीसरो कोण के भगवदीयको स्वरूप और ठाकुरजीको स्वरूप क्या हे, वो जानवे लग जायगो. अब वो समर्पण सार्थक हो गयो.

आज अपन् यहाँ रखेंगे. कल जो **ठाकुरजीको स्वरूप** हे जाकु समर्पण करनो हे, वाकु अपन् विस्तारसु जानवेको प्रयास करेंगे. कल अपन् पूरो करवेको प्रयास करेंगे क्योंके परसों मोकु जानो हे. चार वचनामृत पूरे होयगे, पर इन चारनकु भी आप ध्यानसु समझवेको प्रयास करोगे और इनको आवर्तन करोगे तो इन चार वचनामृतमें मार्गको बहोत सारो रहस्य प्रकट कियो हे. तो आज यहाँ रखेगें.

(प्रश्नोत्तर)

(समर्पित और प्रसादी को विवेक/सिद्धान्त)

प्रश्न : घरमें प्रभुसेवाका सुन्दर क्रम हे तथा घरमें प्रभुसेवाका प्रसाद भी लेते हें. परन्तु प्रभुके राजभोग या शयनभोग होनेके पश्चात् यदि कोई अतिथि आता हे तो उसका सत्कार करना गृहस्थका धर्म हे. ऐसी परिस्थितिमें प्रभुको पुनः राजभोग या शयनभोग धराया जा सकता हे के नहीं? अपने मार्गमें प्रभुके समर्पण करके ही उपभोग करनेका क्रम हे. ऐसी परिस्थितिमें प्रभु सेवाके साथ इसको कैसे निभाना चहिये?

उत्तर : बहोत सुन्दर और प्रॅक्टीकल् डिफीकल्टीको प्रश्न हे. समझवेकी बात यामें ये हे के अपनो समर्पणपे बहोत प्राधान्य हे. महाप्रभुजीने समर्पणपे बहोत मुख्यता दी हे. इतनी मुख्यता महाप्रभुजीने प्रसादकी नहीं रखी हे. पर नब्बे या निन्यान्वें प्रतिशत अपन् पुष्टिमार्गीयनुकु ये भ्रमणा हो गयी हे के अपने यहाँ प्रसादकी प्रधानता हे. कुछ मौलिक प्रश्न हें जाकु अपन् समझ लें तो अपने मार्गमें आती भयी जो तकलीफें हें उनको स्वतः ही खुलासा हो जाय हे. आज अपन्

प्रसादकु समर्पित और समर्पितकु प्रसाद, ऐसे एकमेक मानके चले हें. पर ये हकीकत नहीं हे. क्योंके बहोत सारी समर्पित वस्तुएं प्रसाद नहीं हो पायेंगी और बहोत सारो प्रसाद संभव हे के ठाकुरजीकु समर्पित नहीं हो पायगो. जो ठाकुरजीकु समर्पित हे और जो ठाकुरजीकी प्रसादी हे, वाकु एक मानवेकी भ्रमणा नहीं रखनी चहिये. अब याको एक साधारण उदाहरण देके आपकु समझाऊँ. मानो अपनी आँखमें नम्बर् आ गयो तो अपनुकु चश्मा तो पहननो ही पड़ेगो. मेरी आंखकी बिगड़वेकी शुरुआत ऐसे भयी हती के गोरखपुरकी छपी भयी भागवतके अक्षर पढ़वेमें तकलीफ होवे लगी. कोईने कही डॉक्टरकु दिखाओ. डॉक्टरकु दिखायो तो वाने कही "आपकु तो नम्बर् आ गयो हे. चश्मा लगानो पड़ेगो." अब ये हाल हो गयो हे के झीने अक्षर तो छोड़ो, चश्माके बगैर मोटे अक्षर भी दिखने बंद हो गये. ठाकुरजीकु शृंगार भी धरानो होय तो चश्माके बगैर आत्मविश्वास नहीं आवे हे. चश्मा पहरवेके बाद आंखकी आदत ऐसी हो जाय हे. अब या चश्माकु ठाकुरजीको प्रसादी कैसे करनो! क्या ठाकुरजीके नेत्रपे धराकें? ठाकुरजी कहेंगे के "नम्बर तो तोकु आयो हे मोकु क्यों धरा रह्यो हे?" अब या चश्माकु प्रसादी कैसे करूं? पर यदि या चश्माकु पहनके यदि मैं ठाकुरजीके शृंगार कर रह्यो हूँ तो चश्मा समर्पित तो हुओ ही न! क्योंके समर्पित वस्तु वो हे के जो वस्तु सेवाके उपयोगमें आ सकती होय वाकु सेवाके लिए हाजिर करनी. अब प्रभुके सेवा-शृंगार धरावेमें यदि चश्मा नहीं पहरूं तो विश्वास ही नहीं आवे. आंखकी ऐसी आदत पड़ गयी हे. शृंगार धरावेमें चश्मा उपयोगी हो रह्यो हे, तो चश्मा समर्पित हे. पर या चश्माकु कोई प्रसादी कहेगो, तो कथा मुश्किल हो जायगी क्योंके ठाकुरजीकु ये धरायो नहीं जा सकेगो. ऐसी एक आइटम् नहीं, ये तो मैंने मजाकके तोरपे आपकु गिनायो. पर जीवनमें ऐसी हजारन् वस्तुएं होवें के जिनकु अपन् ठाकुरजीकु धरा नहीं सके हें जैसे ये घड़ी हे. याकु ठाकुरजीकु कैसे धरानो!

हम जब छोटे हतें तो नाशिकमें एक मन्दिरमें विष्णु भगवान्के दर्शन किये. विष्णु भगवान् चतुर्भुज स्वरूप. उनके आधे भागपे गरुड़ बांध दियो और आधे भागको शृंगार लक्ष्मीजीको कियो. लक्ष्मीजीके हाथमें घड़ी भी बांधी और पाकिट भी लटकायो के नाथ, जमाना बदल गयो हे अब तुम भी अप्-टू-डेट् बनो. अप्-टू-डेट् तो बन जाय पर लक्ष्मीरूपमें तो भगवान् भी परेशान के यामें विष्णु कहाँसु खोजूं मैं. समझोके यदि तुमकु उपद्रव करनो हे तो करो पर ठाकुरजीकु घड़ी धरावेकी जरूरत नहीं हे.

आपने कभी श्रीनाथजीकी पीठिकाके ध्यानसु दर्शन किये होय तो वामें एक दौड़तो भयो मेंढ़ा हे. गाय हे, मोर हे, शेष पत्नी हे, गो भक्त हे, पोपट हे. कई लोगनकु ऐसी भ्रमणा हे के श्रीनाथजीको स्वरूप गिरिराजजीकु धारण करवेको स्वरूप हे पर अपन् पुष्टिमार्गीयनकु ये ही मालूम नहीं हे के श्रीनाथजीको स्वरूप हे क्या? नब्बे प्रतिशत लोगनकु ये नहीं मालूम. जिन श्रीनाथजीपे सारी दुकान चल रही हे वो श्रीनाथजीको स्वरूप अपनकु पता ही नहीं हे. श्रीनाथजी गोवर्धन धारण करवेको स्वरूप नहीं हे. श्रीनाथजी गोवर्धनकी गिरिकंदरामें ठाड़े हें तो जब स्वयं गोवर्धनकी गिरिकंदरामें ठाड़े हे, वो गोवर्धनधारण क्यों करेंगे? नाम गोवर्धनधरण हे पर ठाड़े स्वयं कंदरापे हें. ये जो गोल हे वो गिरिराजजीकी कंदरा हे. कंदराके द्वारपे आप खड़े होके, भक्तनकु बुला रहे हें के मेरे पास आओ. दूसरे श्रीहस्तकी मुट्ठी बंद हे, याके लिए के तुम्हारो हृदय मेरे वशमें हे. और ये कंदरापे चिन्ह हे, उन सबको भाव बड़ेनने समझायो हे.

वामेंसु जो 'मेंढ़ा' मानें भेड़ हे वो कालको प्रतीक हे. और काल आपकी पीठिकामें हे. वासु ये बात बतावे हें के आप कालसु अतीत हें वाके अधीन नहीं हें. गाय हे वो भक्तजीवको प्रतीक हे. मोर मुक्तजीवको प्रतीक हे. ऐसे ही शेष हे वो वेद, और

शुक हे वो श्रीस्वामिनीजीको पढ़ायो भयो शुक हे, जो श्रीठाकुरजी मस्तकपे धारण करे हें.

अब जब काल आपके अधीन हे तो कालकु दर्शावेकी वस्तु आपकु धराके प्रयोजन क्या? ठाकुरजीकु घड़ियाल धरानो होय तो धराओ सजावटके लिए पर धरावेकी जरूरत नहीं हे, क्योंकि कालसु आप अतीत हे. अपने सरमें दर्द हो रह्यो हे और अपन् सॅरीडोन् खा रहे हें. वाकु ठाकुरजीकु भोग धरें?. क्योंके महाप्रभुजी केह गये हें के " **असमर्पित-वस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्**" (सि.र.४)

हमारे गोस्वामी परिवारमें एक बहूजी हते. हकीकतकी बात बता रह्यो हूँ, हंसवेकी बात नहीं हे. उनकु ये जिद्द आ गयी के महाराजश्रीकु आरोगाये बिना कुछ लेनो नहीं हे. या नियमसु महाराजश्री इतने परेशान हो गये, क्योंके जब बहूजीकु प्यास लगे तब महाराजश्रीकु कहे के "पानी पियो." महाराजश्री कहे के "मोकु प्यास नहीं हे." कहे के "पीनो पड़ेगो क्योंके मैंने नियम लियो हे." चाय पीनी होय तो पहले महाराजकु चाय पीनी पड़ती. या कारण महाराज लुकते-छुपते फिरते. अब ऐसो नियम अपन् भी ले लें तो भगवान् भी लुकतो-छुपतो फिरेगो के आयो भक्त. महाराजके लीला पधारवेपे ही या झंझटसु वो छूटे. जब-तक आप भूतलपे रहे तब-तक बहूजीको नियम कायम ही रह्यो. जब भी, जो भी, बहूजीकु खानो होय तो जबरदस्ती महाराजकु खानो पड़तो. क्यों? क्योंके "**असमर्पित-वस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्**" (सि.र.४) अब ठाकुरजीके साथ ऐसे लफड़ा लगा दे तो ठाकुरजी परेशान हो जायेंगे. सुखके बजाय सेवा, दुःख हो जाय.

ठाकुरजीकी सेवामें काम आवेवाली जो भी वस्तु हे, वो समर्पित हे. अब वो ठाकुरजीके साक्षात् काममें आ रही हे तो प्रसादी हे. साक्षात् काममें नहीं आ रही हे तो समर्पित हे. जैसे या घड़ीकु

पहरके मैं ठाकुरजीकी सेवाको समय साध सकु तो ये घड़ी समर्पित तो हो जायगी पर प्रसादी नहीं भयी. महाप्रभुजीके ग्रंथ उठाके देख लो, कह्यो हे के असमर्पित वस्तुको त्याग करो. अनप्रसादी वस्तुको त्याग करो ऐसो कहीं नहीं लिख्यो हे. समर्पित कैसे? काममें आती वस्तुको कोई भी ढंगसु सेवामें अपन् उपयोग खोज पावें, वो समर्पित हो गयी. यासु ही महाप्रभुजी कहे हें के अपन् शादी कर रहे हें और यदि अपनेकु ये भाव हे के मेरी सेवामें मोकु मेरी एक जीवनसंगिनी चहिये, तो हो गयो समर्पण. अपनो परिवार सब सेवासु पहुँच रह्यो हे तो हो गयो समर्पण. अब ये सहज संभव हे के अपने घरको बच्चा स्कूल जा रह्यो हे और सेवासु नहीं पहोंच पा रह्यो हे पर आते-जाते ठाकुरजीके दर्शन कर रह्यो हे और इतनो वाकु समझमें आ रह्यो हे के ठाकुरजीको प्रसाद मोकु लेनो हे, तो हो गयो वाको समर्पण. अब समर्पितकु अधिकसु अधिक प्रसादी कैसे बनानो, ये आपकी इच्छा और सामर्थ्य की बात हे.

जैसे एक सामान्य बात बताऊँ के पुराने जमानामें ठाकुरजीकी इतनी बड़ी पिछबाई, इतने बड़े साज क्यों धराते? वाको मूल कारण ये हतो के कपड़ाके बड़े थान लेते वाकी पिछवायी बनवाते और घरमें जब कोई शादीको या कोई और प्रसंग आतो तो वा पिछवायीके टुकड़ा करके वाके सबके कपड़ा सिल जाते और ठाकुरजीकु नयो साज बनवाते. वो समर्पित भी हतो और प्रसादी भी हतो. अब ये तो सूझ-बूझकी बात हे के आप अपनी समर्पित वस्तुकु प्रसादी कैसे बना पाओ. पर खोटी जिद्द पकड़वेकी जरूरत नहीं उन बहूजीकी तरह के जो हम वापरेंगे वो प्रसादी होनो आवश्यक हे. अरे भई, तकलीफ हो जायगी, ऐसे पीछे पड़ोगे तो!

मैं एक बखत हजारी बाग घूमवे गयो हतो. मोकु जानो हतो बनारससु कलकत्ता पर हमारे दादाजीके मित्र वहाँ हते. दादाजीने मोसु

उनकु मिलवेकी कही. वहाँ टाईगर् सेंचुरी भी हे. मैंने सोची के उनसु मिल भी आयेंगे और टाईगर् सेंचुरी भी देख आयेंगे. उनने मोकु कभी देख्यो नहीं हतो. न मैंने उनकु कभी देख्यो. रातकु घने जंगलके बीच उनको घर हतो, वहाँ मैं पहुंच्यो. वो बिचारे घबरा गये के रातकु महाराज पधारे तो क्या करनो? उनने मोसु पूछी के "दूध पीयोगे?" अब इतनी यात्राके बाद थोड़ी भूख तो हमकु भी लगी हती. हमने कही के "ले लेंगे." उनने भेंसके दूधको बड़ो गिलास लाके रख दियो. हम बम्बईके पानी मिले दूधके पीवेवाले, वो कहाँसु पचे! हमने थोड़ी ना-नुकुर करी तो वो बोले के "अरे, जवान हो के बुढ्ढे?" अजब आपत्ति आ गयी. मैंने सोची चलो पी लो. उनने फिर एक गिलास लाके रख दियो. मैंने बहोत मना करी तो इतनी जोरसु बोले के "पियोऽऽऽ." डरके वो गिलास भी पी लियो. अब पूरी रात पेटकी हालत खराब. मैंने सोची के यासु अच्छो तो टाईगर् सेंचुरीमें टाईगरनके बीच ही रेह जातो तो अच्छो होतो. सारी रात परेशानीमें बीती. ये समझो के या तरहसु अपनकु कोई दूध पिवावे तो ये सुख हे के दुःख? दुःख ही हे.

या तरहसु कोई सेवा करे तो वामें तो दुःख ही हे. अपनेकु सिरदर्द हो रह्यो हे. सॅरिडॉन् खानी हे और अपन् ठाकुरजीकु कहें के "आरोगो." ठाकुरजी बेचारे माखन-मिश्रीके बजाय सॅरिडॉन् आरोगते हो जाय. तो परेशानी हो गयी के नहीं! यदि सॅरिडॉन् खाके आपको सिरदर्द मिट रह्यो हे और आप सुखसु सेवा कर पा रहे हो तो आपकी सॅरिडॉन् समर्पित हे. प्रसादी होय के नहीं होय. वाकी चिंता मत करो. याके कारण ही महाप्रभुजीने बड़ी सावधानीसु **"असमर्पित-वस्तूनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्"** कह्यो हे. ऐसे नहीं कह्यो के अप्रसादी वस्तुनां तस्माद् वर्जनम् आचरेत्. क्योंके यदि हर वस्तुकु अपन् प्रसादी बनावे जायेंगे, वामें न ठाकुरजीकु सुख होयगो न अपनकु सुख होयगो. और सारी सेवा एक ऐसो भयंकर त्रासजनक क्रियाकांड हो जायगो

के सब परेशान हो जायेंगे. समर्पणको भाव यदि अपन् समझें तो यामें कोई त्रास हे नहीं. बहोत सरल सहज ये मार्ग हे. प्रभुसेवाके लिए उपयोगी हे तो समर्पित हे. महाप्रभुजी तो यहाँ तक कहे हें. **''उद्वेगहानि गंधर्वाद्''** भई, बहोत दिमाग परेशान हे, थकान हो गयी हे तो अच्छो संगीत सुनके आपको चित्त शांत होतो होय तो संगीत सुन लो. क्यों? क्योंके संगीत सुनवेके बाद आप सेवा तो सुखसु कर सकोगे. ये बात समझवेकी हे. वो संगीत आपने ठाकुरजीकु नहीं भी सुनायो तो कोई चिंताकी बात नहीं हे. क्योंके संगीत सुनवेसु आपकी चिंता शांत हो रही हे और वाके बाद आप सेवा सुखेन कर पा रहे हो तो बस बात बन गयी.

ऐसे अपने यहाँ ऐसो नियम हे, पुरुषोत्तमजीने ऐसो लिख्यो हे के मानो अपने यहाँ कोई शादी-ब्याह आयो. तो जातके परिवारके कुलके कई लोग आयेंगे. सहज संभव हे के कोई वैष्णव होय और कोई नहीं भी होय. सबके साथ अपन् ये तो दावा नहीं कर सके हें के हम पुष्टिमार्गीय हें, तो तुम भी पुष्टिमार्गीय हो जाओ. अपने निकट संबंधीनकु भी अपन् पुष्टिमार्गीय बनवेकी जबरदस्ती तो नहीं कर सकेंगे! जब सब संबंधी आयेंगे तो सबके साथ पुष्टिमार्गीय नियम तो निभा नहीं पायेंगे. समझो के कोई ऐसो होय के वाकु कुछ लेनो-देनो नहीं होय तो वाकु तो अपन् प्रसाद लिवा सकें पर कोई ऐसो भी तो हो सके के कट्टर शिवभक्त होय तो वाकु तो आप ठाकुरजीको प्रसाद नहीं लिवा पाओगे. तो अपने यहाँ ऐसी व्यवस्था बतायी हे के ऐसी परिस्थितिमें ठाकुरजीसु आज्ञा लेके भंडारमेंसु शादी-ब्याहको खर्च करनो. प्रसंगके बाद फिर हिसाबसु करनो. जब अपन्ने ठाकुरजीसु आज्ञा मांगके अतिथिनकु जिमायो, तो अपनेकु अनप्रसादीको दोष नहीं लगे हे. अनप्रसादी होय तो होय पर अपन्ने ठाकुरजीसु आज्ञा मांगी हे. तो आज्ञा तो ठाकुरजीकी हे ही न!

एक बात बताऊँ के महाप्रभुजीने तो यहाँ तक खुलासा कियो

के **''भार्यादिः अनुकूलश्चेत् कारयेद् भगवत्-क्रियाम्, उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत्''** (त.दी.नि.२।२३२) तुम्हारी पत्नी पति बाप बेटा भाई काका भतीजा, ये सब जिनसु तुम्हारो परिवार बन रह्यो हे, यदि ये सब तुम्हारे मतके हें और ठाकुरजीकी सेवामें सहायक हें तो सब मिल-जुलके सेवा करो ऐसो महाप्रभुजी कहे हें. जैसे रथके पहियाके सारे आरा केन्द्रमें आके एक हो जाय हे ऐसे परिवारके सारे सदस्य यदि ठाकुरजीकु केन्द्र बनाके एक होते होंय तो बड़ी उत्तम बात हे. और यदि एक नहीं हो पा रहे हें, यहाँ-तक कहे हें के चाहे वो तुम्हारी पत्नी होय के पति होय के बेटा होय, यदि वो सेवामें अनुकूल नहीं हे तो वासु सेवा जबरदस्ती मत करवाओ. क्योंके जबरदस्ती करवावेसु होयगो क्या? अभी तो परिवारमें तुम्हारो डंडा चल रह्यो हे और तुम अपनी पत्नीसु डंडाके जोरपे सेवा करवाओगे पर वो तो भाववाली हे नहीं. तो ठाकुरजीकु गाली देके ही सेवा करेगी. ठाकुरजीकु गाली वाने दी या तुमने खवायी? जब अपन् अपनी पत्नीसु या बेटासु जबरदस्ती सेवा करवा रहे हें और वाकी अनुकूलता, वाकी श्रद्धा, वाकी निष्ठा सेवामें नहीं हे, पर क्योंके अपन् पति हें और पत्नीके पास कोई चारा नहीं हे, यासु वो कर रही हे. ऐसे ही बेटाके साथ भी होयगो. पर जब वो जबरदस्ती करेगो तो वाकु ठाकुरजीपे खीज आयगी. वो ये ही बाट देखतो रहेगो के कब ये प्रकरण खतम होवे और कब मैं छुट्टो होऊँ. या प्रकारकी जबरदस्तीकी सेवासु प्रभुकु सुख तो नहीं होयगो. कोई अपनी सेवा जबरदस्ती करे तो!!!

हमारे बम्बईकी एक बात बताऊँ. एक मांजी बहोत अच्छे भक्त पर वाके घरवालें सब नास्तिक हतें. वो मांजी बहोत भाववाले हते. मैंने उनकु कई बार समझायो के ''तेरे घरवालें सब नास्तिक हें, तू अपने भावनकु अपने हृदयमें रख''. जब भी वाके घर कोई प्रसंग होय मोसु कहे के ''आप पधारो''. मैं भी परेशान के क्या

करूँ? ऊपरसु साफ दिखे के परिवारवालेन्में कोई भाव नहीं हे. अंतमें क्या भयो के उनके घरमें कोई विवाहको प्रसंग हतो. वाने अपने बेटाकु कही के ''जाओ श्याम बाबाकु पधराके लाओ''. वाके बेटान्ने जो शब्द मोसु कहें वो आपके सामने दुहरा रह्यो हूँ. वाने कही ''हम तो आपकु तकलीफ देनो नहीं चाहते हतें पर मांजी माने नहीं या कारण आपकु बुलावे आये हें'' अब सोचो या प्रकारके निमंत्रणपे जब मोकु जानो पड़े तो कितनी ग्लानि होयगी! मैंने भी वाकु केह दी के ''मैं भी आपके यहाँ आके आपकु तकलीफ नहीं देनो चाहूँ पर क्या करें! आप अपनी मांजीकु समझा दो. नहीं तो हम दोनों फंसे पड़े हें''. जैसे बैलगाड़ीमें बैल जुत जाय हे ऐसो हाल हे. ऐसी स्थिति हे. वा प्रकारकी सेवामें सुख नहीं हे, वामें स्नेह नहीं हे. वामें आत्मा दोनोंकी कचोटती होवे हे. ऐसे ही कोईसु अपन् जबरदस्ती सेवा करवावें तो. जबरदस्ती सेवा तो बेगार ही लगेगो. वो सेवा नहीं हे. सेवा भक्त्यात्मक होनी चहिये. बेगाररूप नहीं होनी चहिये. याके लिए महाप्रभुजीने स्पष्ट आज्ञा दी के **''भार्यादिः अनुकूलश्चेत् कारयेद् भगवत्-क्रियाम्''**. वासु पहले पूछ लो के तेरी इच्छा हे के नहीं, तोकु मजा आ रह्यो हे के नहीं. मजा आ रह्यो हे तो चल अपन् दोनों साथ हे. महाप्रभुजी केह रहे हें के सेवाको प्रकार इतनो संक्षिप्त ही रखो के वामें अपनी पत्नीकी या पतिकी अपन्कु गरज ही नहीं पड़े. जो कुछ अपनेसु निभ सकतो होय वो सेवा. कोईकु जबरदस्ती वामें पार्टी मत बनाओ. तीसरी बात महाप्रभुजी और आज्ञा कर रहे हें के **''उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत्''** (वहीं) यदि उदासीन हे तो स्वयं करो और प्रतिकूल हे, मानें वो सेवामें यदि विघ्न कर रहे हे तो महाप्रभुजी केह रहे हें के **'त्यजेत्'** छोड़ दो. छोड़ दो वाकु. और आगे महाप्रभुजी ये भी खुलासा कर रहे हें के ये सहज संभव हो सके हे के तुम छोड़ नहीं पाओ, क्योंके परिवारमें कैसी परिस्थिति पैदा होवें, यापे तो कोईको नियंत्रण हे नहीं. ऐसी

स्थितिमें महाप्रभुजी केह रहे हें के ''सेवा छोड़ दो. ठाकुरजीको केवल स्मरण करो''. या बातकु अच्छी प्रकारसु समझो के जा कारणसु घरमें क्लेश होतो होय, ऐसी सेवा करवेसु फायदा क्या? याके बारेमें महाप्रभुजी केह रहे हें के ''तुम स्मरण करो, जासु क्लेशकी कोई संभावना नहीं रेह जाय. मनमें मनोरथ रखो के कोई दिन ऐसो आयगो के जब अपन् सेवा कर सकेंगे. पर जब-तक वो दिन नहीं आवे तब-तक व्यर्थमें सेवाको आग्रह मत रखो. प्रभुको स्मरण करो. अष्टाक्षरको जप करो. प्रभुकी लीलाको भावन करो के जामें क्लेशको कोई प्रसंग ही उत्पन्न नहीं होय''. ये महाप्रभुजीकी व्यवस्था हे, समर्पणकी व्यवस्था हे.

अब ये बात समझो के यदि कोई अतिथि आयो और इच्छा हे तो ठाकुरजीकु जगा लो. वार्तामें ऐसे भी प्रसंग आवे हें के ठाकुरजीने कही के ''आज मैंने दो बार राजभोग आरोग्यो''. और ऐसे भी प्रसंग आवे हें के उनने ठाकुरजीकु नहीं जगायो और अतिथिकु ही खवायो. तब भी ठाकुरजीने कही के आज मैंने दो बखत राजभोग आरोग्यो. ऐसे भी प्रसंग आवे हें. अब तो ये घरके बच्चा जैसी बात हे के घरके मेहमानके लिए वस्तु बने तो बच्चा जिद्द करे हे के मेरे लिए क्यों नहीं.

हमारे कोटाके घरकी ही बात हे. कोई मांजी महाराज हते. उनके तीन बालक हतें. प्राचीन कालमें ऐसो नियम हतो के शयनमें ठाकुरजीकु पूरी धरी जाती हती, रोटी नहीं धरी जाती. बालकन्कु पूरी पसंद नहीं हती. उनने अपनी ऊपरकी रसोईमें रोटी बनानी शुरु करी. अब उनकी आंख कमजोर हती. वो नाम ले लेके बालकन्कु बैठाती. एक दिन वो नाम पूछके रोटी परोस रही हती. वहाँ मथुराधीशजी पधारे. उनकु वो 'मधुमां' केहती हती. जब नाम पूछ्यो तो उनने (ठाकुरजीने) कहीं ''मधुमां''. तब चोंकके वो बोले के ''आप यहाँ

कैसे पधारे? आपकु तो पूरी भोग धरी हती!'' तब मथुराधीशजीने कही के ''आप तो सब रोटी खा रहे हो और मोकु तो पूरी धरी. रोटी मोकु क्यों नहीं धरी!'' देखो ऐसी सहज बात बच्चाकु हो जाय हे के नई वस्तु बन रही हे तो ये मोकु क्यों नहीं दे रहे हे! ऐसे ही कृष्णलीलामें भी जब इन्द्रकु धर रहे हतें तो **''मैं हंस मांग्यो मायपे भोजन देरी मोहि...गोद बैठ गोपाल कहत व्रजराय सों''** (गोवर्धनलीला अन्नकूटके पद) बच्चाकु सहज ये हो जाय हे. अब यदि ऐसो भाव आपकु भी हो रह्यो हे तो धरनो हे तो धर दो. और यदि आपकु ऐसो लग रह्यो हे के ठाकुरजीकु भोग धर्यो हे. अब व्यर्थमें ठाकुरजीकु परिश्रम नहीं देनो तो व्यर्थमें 'आरोगो' कहवेकी जरूरत नहीं हे. जो अतिथि आयो हे, वैष्णव आयो हे, वाकु प्रसाद लिवा दो. वो भी समर्पित तो हे ही प्रसादी होय के नहीं होय. पर एक बात क्या हे के जैसे गुजरातीमें एक कहावत हे के ''दाईनो घोड़ो रमतो-जमतो छुट्टो'' ऐसे अपन् कहें के ''अच्छा अब समझ गये ठाकुरजीकु तो भोग धरवेकी आवश्यकता ही नहीं हे अब तो सब समर्पित हे. खाओ पीओ मौज मारो. या प्रकारके नाटक करवेकी आवश्यकता नहीं हे. क्यों? क्योंके ऐसो विचार अपनकु तभी आयगो जब ठाकुरजीके प्रति अपनो सेवाको भाव शुद्ध नहीं होय. यदि अपनो भाव शुद्ध हे, तो ऐसो विचार आयगो ही नहीं. जब अपने बालकके प्रति अपनो लालन-पालनको भाव शुद्ध हे, तो जो मेहमानके लिए बन्यो हे, वो बालक मांगे तो वाकु भी खिलायेंगे. और यदि बालक थकके सो रह्यो हे, तो जरूरी नहीं हे के वाकु जबरदस्ती जगाके खिलाएं पर कई बखत ऐसो भी होवे हे के पापा गये हे और बहोत देरमें पापा आये हे, तो बालककु जगा भी ले के देख पापा आ गये.

(स्नेहमूलक लौकिकी रीति : सेवा)

ये सारी इतनी लचीली बातें हें और याको कोण श्रीहरिरायजीने

ऐसे बतायो के **''सेवायां लौकिकी रीति स्नेहः तत्र नियामकः''** सेवा कैसे करनी? तो श्रीहरिरायजी कहे हें के ''जो लोककी रीति हे वाकु बस प्रभुसु जोड़ दो. वाको नाम 'सेवा' हे''. लोकमें अपन् कोईकी आवभगत कैसे करें, कोईको लालन-पालन कैसे करें, वाकु बस प्रभुसु जोड़ दियो तो हो गयी सेवा. भाव आ गयो **''स्नेहः तत्र नियामक''** आज-कल तो क्रीम् आ गयी हें पर यहाँ किशनगढ़के जवानसिंहजी महाराज जन्माष्टमीकी रातकु मलाई हाथमें चुपड़के सोते हते के ठाकुरजीकु नरम हाथ लगे. ये क्या कोई शास्त्रकी रीति हे? नहीं. लौकिकरीति हे के बच्चाकु कड़क हाथ नहीं लगे. गुसांईजी बीन बजाते हतें. वासु उंगलिया कटती हती. तो महाप्रभुजीने टोक दियो के ऐसो काम क्यों करो के ठाकुरजीकु तुम्हारो कट्यो भयो चुभे. मत बजाया करो. गुंसाईजीकु बहोत शौक हतो तब भी छोड़ दियो. उनकु तो टोक्यो और ठाकुरजीकु सुनावेके लिये दूसरे बीनकार तो आप रखते ही हतें. ये तो आपसकी बात हे. लौकिक रीतिकी बात हे.

जैसे बहोत सुंदर प्रसंग आवे हे के हमारे रणछोड़नाथजी तातजी हतें उनको ऐसो नियम हतो के ठाकुरजीकी सेवासु पहोंचके ठाकुरजीके बर्तन सब अपने हाथसु मांजते. एक बखत कांकरोलीवाले महाराज वहाँ पहोंचे. उनने पूछी ''ये आप क्या करो हो?'' उनने कही के ''ये सेवा नहीं हे क्या? ये भी तो सेवा हे'' तब कांकरोलीवाले महाराजने कही के ''हां ये सेवा तो सबसु ऊंची हे पर या सेवासु हाथ कड़क हो जाय हे और ठाकुरजीकु श्रम होय. याके कारण हम ये सेवा नहीं करे हें''. अब बताओ कौन इनमें सच्चो! भई, जाको जो भाव वो सच्चो. दोनों ही अपनी जगह सच्चे हें. हमारे तातजीको भाव ऐसो हतो के ये सेवा तो मुख्य सेवा हे और स्वयं करतें. उनके समयमें कोईकु मथुराधीशजीके चरणस्पर्श भी नहीं होते हते ऐसो कहे हें. लीला पधारे वा दिन मुखियाजीकु चरणस्पर्श

भये. कोईकु मथुराधीशजीकु छूवे नहीं देते हतें. इतने सेवाके आग्रही हतें. इतनी सेवा करके भी मन नहीं भरतो हतो तो ठाकुरजीके बरतन मांजवे और बैठ जाते और वो कांकरोलीवाले महाराजको भाव ऐसो हतो के ये सेवा तो हम नहीं करें यासु तो हाथ कड़क हो जाय हें और ठाकुरजीकु शृंगार धरावे तो खुंचे हे. ये रीति लौकिक हे. वोही जवानसिंहजी मलाई लगाके रातकु सोते. हाथकु नरम करवेके लिए ये लौकिक रीति ही हे न! पर हरिरायजी वामें समझावे हें के "**स्नेहः तत्र नियामक**" जो भी रीति अपना रहे हो वो स्नेहसु अपनाओ. स्नेहसु अपनाओगे तो प्रभुकु भी रुचेगी और अपनकु भी आनंद आयगो.

हमने एक भगवदीयके बारेमें ऐसे सुनी के ठाकुरजीके शृंगार धराके आधो अनार छीलके धर देते. दूसरे एक भगवदीयने कही के ये क्या करो हो? पुष्टिमार्गमें तो ठाकुरजीकु फल अच्छी तरह सिद्ध करके धरे हें. तब उनने कहीके हम शृंगार धराके और सामग्री सिद्ध करवे जाय तो वामें देर लगे हे. सिद्ध करके धरे तो ठाकुरजी फटाफट आरोग जाय तो इतनी देर मन कैसे लगे! आप जब-तक एक-एक दाना निकालके आरोगें तब-तक हमारी सामग्री सिद्ध हो जाय. याके कारण हम आधो अनार धरे हे. "**सेवायां लौकिकी रीति स्नेहः तत्र नियामकः**" ठाकुरजीके सामने आधो संवर्यो अनार धरनो पर वाको भाव कितनो मीठो हे! अनार सिद्ध करवेमें कोई ऊब हो रही हे. ऐसी बात नहीं हे. भाव ऐसो हे के राजभोगकी सामग्री करवेमें समय लग रह्यो हे इतनी देर ठाकुरजीको मन काहेसु लगानो! ये बात कौन उनकु समझा रह्यो हे? उनको ठाकोरजीके प्रति स्नेह समझा रह्यो हे. जैसे कह्यो हे के "कीजिये जो भी दिलमें आये शकील लेकिन उसकी रज़ामन्दी ..."

जो मनमें आय करो पर इतनो ख्याल तो होनो चहिये के

वा कामसु वाकु खुशी हो रही हे के नहीं! सब बात सच्ची हे और वो खुश नहीं हो रह्यो हे तो सब रीति खोटी हे. "**सेवायां लौकिकी रीति स्नेहः तत्र नियामकः**" अपनकु भाव भयो के ये सामग्री ठाकुरजीकु क्यों नहीं भोग धरनी! जगाओ ठाकुरजीकु. जैसे अपन् अपने बच्चाकु जगा दें. यदि अपनकु ऐसे लगे के मेहमान आयो तो अपने ठाकुरजीकु व्यर्थमें परिश्रम क्यों दें! तो मत जगाओ ठाकुरजीकु. समर्पण तो अपनो हे ही.

एक बात बताऊँ तामस-फलप्रकरणको अनुवाद करवेके लिए अमेरिकासु मेरे पास एक पादरी आयो. दो साल वो मेरे पास पढ़वे आतो. कभी-कभी तो बारह-बारह घंटे साथ बैठके काम करते. बारह घंटा कोई साथमें बैठे और वासु जल या खावेकु अपन् नहीं पूछें तो कितनो अमानवीय व्यवहार लगे! मैंने वासु कही के "देखो हमारे यहाँ कुछ अनप्रसादी तो हे नहीं, पर यदि तुम कहो तो बाजारसु तुम्हारे लिए ब्रेड्, बिस्कुट् मंगा दऊँ." अब यदि ब्रेड्-बिस्कुट् मैं मंगाऊँ तो वैष्णवनकु जिज्ञासा तो हो ही जाय के महाराजके घर ब्रेड्-बिस्कुट् क्यों जा रह्यो हे? अब वो आयो हे तो मंगानो पड़ेगो, क्योंके कुछ तो सुविधा अपनकु वाकी सोचनी पड़ेगी. मैंने फिर पूछी के "यदि तुमकु चलतो होय तो जो ठाकुरजीको भोग मेरे यहाँ हे वो तुमकु दे दऊँ." वाने मोसु साफ कही के "हमारे धर्ममें स्पष्ट मनाई हे के दूसरे देवके आगे धर्यो प्रसाद हम खा नहीं सके हें. पर एक बात ये हे के मैं आपके यहाँ पढ़वे आयो हूँ और टीचर्की हेसियतसु जो भी कुछ नाश्ता आप मोकु करवाओगे वो मैं ले लऊँगो." मैंने वासु कही "तू भी एक बात स्पष्ट समझ ले के मेरी भी ऐसी भावना नहीं हे के तोकु प्रसाद खवाके ईसाईसु हिन्दू बना दऊँ. मैं तो या मतको हूं के तू अच्छो ईसाई रेह और मैं अच्छो पुष्टिमार्गीय रहूँ. अपन् दोनों अपने-अपने धर्मके पाबन्द रहें." तब वाने कही के "आप दियो करो मोकु." बादमें आनंदसु

सब लेतो. आगे यहाँ-तक उपद्रव भयो के वो हतो चेइन् स्मोकर्. अब जब वाके जावेको टाइम् पास आवे लग्यो, तब वाने कही के गोस्वामीजी अब ये कैसे पूरो होयगो? मैंने वासु कही के यदि अब पूरो करनो हे तो एक ही उपाय हे के रात-रात भर बैठके अपन् पूरो करें. पांच-छह रात लगेगी पर रातमें कोई डिस्टर्ब नहीं करेगो. वाने भी कही के चलो कर लें. अब रातकु वाकु स्मोकिंग्के बिना जग्यो नहीं जाय. थोड़ी देर काम करे फिर बाहर जाय स्मोकिंग्के लिए. मैंने वासु कही के "ऐसे तू करेगो तो ये कब पूरो होयगो ग्रंथ!" वाने कही के "आप अनुमति दो तो मैं या कमरामें ही फूकु." अब तो बड़ी मुश्किल हो गयी. पर काम जब पूरो करनो ही हे तो करनो पड़े. यासु मैंने कही चल भाई और कोई इलाज नहीं तो फूंक ले या कमरामें ही. रात भरमें वो एक-आध पॅकेट् खतम कर देतो. वो तो सुबह छह बजे चल्यो जातो और मैं वहाँ थकके पड्यो रेहतो. अब सुबह-सुबह वैष्णव वहाँ आते चरणस्पर्शके लिए और वो वहाँ आके सूंघते और समझते के रातकु मैंने फूंकी हे. और तो कोई दीखतो नहीं वहाँ. मैंने सोची के अब तो फंस गये अपन्. वा कमरामें इतनी बास भर जाती तो वैष्णव तो ये ही सोचतें के पता नहीं यहाँ महाराजकी क्या लीला चल रही हे! अगले दिनसु मैं भी वा कमरामें ताला मारके भाग गयो. ये बात समझवेकी हे के जो घरमें आयो हे वाकी क्या तकलीफ हे, वाकु कछु तो समझनो पड़ेगो ही. साधारणतया अपन् कोईकु भी ऐसे कामकी अनुमति देवें नहीं पर वा समय परिस्थिति ऐसी हती. वाको और कोई इलाज नहीं हतो, तो देनी पड़ी. नहीं देतो तो काम पूरो नहीं होतो. फिर मोकु भी ताला मारके सुबह-सुबह भग जानो पड़तो.

ये बात समझो के घरमें बहोत सारे नियम अपन्कु पालवेके होवे हें और अपन्कु पालने चहिये. "**असमर्पित-वस्तूनां तस्माद्

वर्जनमाचरेत्''को नियम पालनो चहिये. ''**निवेदिभिः समप्यैव सर्वं कुर्याद् इति स्थितिः**'' (सि.र.५) वाकु समझके पाले तो सोनामें सुगंध आ जाय. पर उन बहूजीकी तरह नासमझीसु पाले तो नियम तो वो ही हे पर बहोत बड़ो एक नाटक खड़ो हो जाय हे. वो साधनाके बजाय एक नाटक बन जाय हे. अपनी साधनाकु व्यर्थमें नाटक काहेकु बनानो! वाकु सहजतासु अपनी लौकिक बुद्धिसु, जैसे हो सके वाकु निभावेको प्रयास करनो चहिये. यासु ही श्रीपुरुषोत्तमजीने स्पष्ट खुलासा कियो हे के अपने परिवारको कोई भी सदस्य यदि सेवामें अनुकूल नहीं होय तो इतने मात्र हेतुसु अपने परिवारके सदस्यको त्याग नहीं करनो चहिये. क्यों नहीं करनो चहिये? क्योंके सेवा करनो अपनो कर्तव्य हे और अपन् कर रहे हें. पर वो भी अपने जैसे भाववालो हे और मिल-जुलके कर रह्यो हे तो ठाकुरजीकी बड़ी कृपा हे. पर यदि वो नहीं कर रह्यो हे और अपन् वाको इतनी बातपे त्याग कर रहे हें, पुरुषोत्तमजी केह रहे हें के ''देखो, वासु कितने नुकसान होंयगे. एक तो वो अनुकूल नहीं हे वाको कारण हे के वाके हृदयमें भाव नहीं हे. जबरदस्ती वासु भावके बिनाकी सेवा करानी ही नहीं चहिये. [१]**भाव बिनाकी सेवा करावेसु सेवा, सेवा नहीं रेहके केवल कर्मकाण्ड रेह गयो. भक्ति नहीं रेह गयी.** दूसरी बात, या तरहसु यदि अपन् जबरदस्ती करेंगे तो अपनेकु पाप लगेगो. क्यों? [२]**क्योंके परिवारको पालन-पोषण भी अपनो धर्म हे. तो व्यर्थमें त्याग करवेसु अपनेकु अपराध लगे हे.** तीसरी बात के या तरहसु यदि अपन् त्याग करेंगे तो और चाहे कुछ होय के न होय पर सबसु बड़ी बात हे के [३]**अपनी सेवाकी अपकीर्ति होयगी.** अपनी सेवाकी अपकीर्ति क्यों होने देनी चहिये!'' ऐसे तीन हेतु श्रीपुरुषोत्तमजीने वहाँ गिनाये हें. यासु जब भी अनुकूल नहीं हे, तब त्याग नहीं करनो. पर यदि इतनो समझोता करवेके बाद भी यदि घरमें विरोध हो रह्यो हे तो महाप्रभुजी केह रहे हें के छोड़ दो घर. और नहीं छोड़ सकते होय तो सेवा छोड़ो. या तरीकेके

खुलासासु सारी बात यहाँ समझायी गयी हे. समर्पणको और असमर्पणको जो भेद हे, वो मैं समझूं के अब समझमें आनो चहिये. जैसे हर मन्दिरमें जो प्रसाद मिल रह्यो हे वो प्रसाद तो हो सके हे पर समर्पित नहीं हे. क्योंके वो ठाकुरजीके नामसु मांग्यो भयो पैसा हे वामें अपनो समर्पण कहाँ भयो? जैसे घरमें कोई मेहमान आयो. वाके नामपे पड़ोससु अपन् मांगके लावें. वामें पड़ोसी भी दुःखी. घरमें मेहमान मेरे आये और दुःखी तुम. वाके नामपे मेहमानकु खवाके हम कहें के हमने खूब मेहमान नवाजी करी. गामसु पैसा लेके कौनसी मेहमान नवाजी भयी? दूसरी बार वाकु पता चलेगो तो आयगो ही नहीं मेहमान बनके कहेगो के ''ये सब आपके चरणनूको प्रताप हे''.

एक लोभीसु कई लोग बहोत जिद्द करते हतें के हमकु दावत दो. लोभी अक्सर उनसु बचतो रेहतो. पर एक दिन जब लोगनूने बहोत कही तब वाने सबकु बुलायो. सब लोग वाके घर गये और जूता-चप्पल बाहर उतारके अंदर बैठे. वे चप्पल बेचिके उन सबनूके लिये खावेकु ले आयो. तब लोगनूने कही के आज तो आपने खूब दावत दी. तो वाने कही के ''ये सब आपके चरणनूको प्रताप हे.'' या तरहसु ठाकुरजीकी सेवा करनी के सब आपके चरणनूको प्रताप हे, तो ठाकुरजी भी परेशान हो जायेंगे के ये मेरी सेवा कहाँ हो रही हे! ये तो मेरे चरणनूको प्रताप हे. मेरे नामकु बेच-बेचके तुम खा रहे हो. ऐसी सेवाको तो कोई सार ही नहीं हे. मंदिरनूमें प्रसादी तो मिलेगो पर समर्पित नहीं मिलेगो. और किशोरी बाईकी वार्तामें स्पष्ट आवे हे जब वाने ठाकुरजीके नामसु मांग्यो तो ठाकुरजीने स्पष्ट ना केह दी के ''**मैं नहीं आरोगूंगो. क्योंके तू जो मोकु भोग धरे वाकु आरोगवे आऊँ हूँ. पर तू जो मेरे नामपे मांगे ऐसे भिखारी बेड़ासु मैं बंध्यो भयो नहीं हूँ**''. प्रसाद होय के नहीं होय, पर ठाकुरजीके नामपे मांग्यो भयो पैसा समर्पित तो नहीं हे, असमर्पित

ही हे. यासु मंदिरनूमें जो भी कछु भोग आ रह्यो हे वो असमर्पित ही हे और अपन् घरमें यदि ठाकुरजीकु भोग नहीं भी धर रहे हें फिर भी वो समर्पित ही हे. जैसे मैंने आपकु सॅरिडॉन्के उदाहरणसु बतायो. ये बात समझोके हर समर्पित प्रसादी नहीं होवे हें. **पुष्टिमार्गमें ये प्रश्न सबकु बहोत परेशान करे हे याके कारण मैंने याको खुलासा कियो हे.**

अब अपन् अपने प्रसंगपे आवें. ये वचनामृतको थोड़ो-बहोत सार मैं आपकु समझा दऊँ. जैसे कल मैंने आपकु बतायो के समर्पण एक त्रिकोणात्मक संबंध हे. कायको समर्पण, कौनको समर्पण और कौनकु समर्पण? पुष्टिभक्तको समर्पण. कौनकु समर्पण? पुष्टिप्रभुकु समर्पण. कायको समर्पण? अपनी देह प्राण इन्द्रिय, अपनी अहंता और ममता सु जुड़ी भयी अपनी हर वस्तुको समर्पण. समर्पण मानें प्रभुकी सेवाके लिए वाकु उपयोगमें लानो. साक्षात् धरायेंगे तो प्रसादी हो जायगो. साक्षात् नहीं धरायेंगे तो अनप्रसादी रहेगो पर समर्पित तो रहेगो, रहेगो और रहेगो ही. या बातके खुलासाके बाद अब कौनकु समर्पण? **पुष्टिप्रभुकु.** वाके बारेमें महाप्रभुजी आगे केह रहे हें के **"तातें श्रीठाकुरजीको स्वरूप और लीलाको भेद जानत नाहीं. उत्तम भक्तको संग करे और भागवत सुबोधिनीजी आदिग्रंथको अहर्निश अवगाहन करे तो भगवद्भाव उत्पन्न होय."**

जैसे अनारकी बात मैंने आपकु बतायी. ये बात पुष्टिमार्गकी कोई भी किताबमें लिखी भयी नहीं हे. जैसे महाराज जवानसिंहजीकी बात मैंने आपकु बतायी. पुष्टिमार्गकी कोई भी विधिमें ये बात लिखी भयी नहीं हे. वो तो जो स्वयं भक्त हे और सेवा स्वयं कर रह्यो हे, वाके हृदयमें उमड़ते भाव हे. ऐसे भक्तनूको अपन् संग करेंगे तो थोड़ी अपनूकु भी अंत:प्रेरणा मिलेगी के ठाकुरजीकु कैसे रिझायो जा सके हे. भक्तनूके संगसु प्रभुको संग कैसे करनो याकी

एक तहजीब आयेगी. कोई फॉर्मॅलिटीकी तहजीब नहीं पर स्नेहकी तहजीब आयेगी. कैसे भावसु सेवा करनी! जैसे एक सामान्य उदाहरण बताऊँ के नाथद्वाराको एक प्रसंग हे. उष्णकालमें श्रीनाथजीकु मोजा धराने हतें, तो मोतीके मोजा धरायें. क्योंके मोजा धरावें तो गर्मी लगेगी श्रीनाथजीकु. अब मोजा धरावेको भाव आयो और मौसम गर्मीको, तो मोतीके गूंथ-गूंथके मोजा धराये जांय. तो ये बड़ी नाजुक बातें हें.

हमारे बम्बईमें अभी दो-तीन बरस पहले जो अधिकमास आयो हतो. बिलकुल हकीकत आपकु बता रह्यो हूँ. ठाकुरजीके बारह महीनाके उत्सवनूको मनोरथ अधिक मासमें कियो. अन्नकूटको मनोरथ. वामें भारी शृंगार. खूब सारो मोम लगा-लगाके ठाकुरजीसु कुश्ती लड़-लड़के खूब भारी शृंगार धराये. और फिर दर्शनकी सबकु मजा आवे याके कारण बड़ी-बड़ी फ्लड्-लाइट् ठाकुरजीपे डाली. वाकी इतनी गर्मी पैदा भयी के सारो मोम पिघलके शृंगार बड़ो हो गयो. अपन् कहें के आ हा! ठाकुरजीकी सेवामें मजा आ गयो. अरे मजा आयो के ठाकुरजीके साथ कुश्ती लड़ रहे हो! चौरासी वैष्णवकी वार्ता याद करो के जयपुरके राजा मानसिंहने जब व्रजकी यात्रा करी तो सब मन्दिरनूमें सोनाके हीराके शृंगार किये हतें और ठाकुरजीकी बड़ी भारी सजावट करी. और वो जब श्रीनाथजीके दर्शन करवे गये तो केवल सफेद वस्त्र और सफेद गुंजा हती. दो-तीन हलके मोतीनूकी माला हती. उनने कही के "यहाँ जैसी शांति मिली ऐसी शांति कहीं नहीं मिली". ये प्रभुके सुखके विचारमें जो नजाकत हे वो अपने पुष्टिमार्गमें **"सेवायां लौकिकी रीति स्नेह: तत्र नियामक:"** हे.

(उपसंहार)

ये बात अपन् सेवा करते भयें जो व्यक्ति हें, उनको संग करे तो समझमें आवे. वरना तो समझमें नहीं आ सके हे. ग्रंथनूकु

पढ़वेसु इतनो समझमें नहीं आ सके हे. यासु महाप्रभुजी कहे हें के **''उत्तम भक्तको संग करे. श्रीभागवत सुबोधिनी आदि ग्रंथन्‌को अहर्निश अवगाहन करे. तब भगवद्‌भाव उत्पन्न होय. श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन्‌के विषे सदैव रहत हें. तहाँ सेवा करिके बंधे हें. तहाँ एतन्मार्गीय वैष्णवके हृदयमें ठाकुरजी बिराजत हें. तातें भगवदीयन्‌को संग करनो. तहाँ गज्जन धावन आदि वैष्णवन्‌को दृष्टांत दिये.''**

महाप्रभुजीने अपने सेवक गज्जन धावनको दृष्टांत दियो. देखो ये कैसी विलक्षण कथा हे के नाथद्वारामें जो नवनीतप्रियजी हें वे उनकु महाप्रभुजीने पधरा दिये हतें. पधरा दिये फिर भी नवनीतप्रियजीको स्वरूप महाप्रभुजीके हृदयमेंसु उतर्यो नहीं. यासु महाप्रभुजीको मन निरंतर नवनीतप्रियजीपे चलतो रेहतो हतो. अब जब पधरा दिये तो वापस मांगने कैसे? महाप्रभुजीके मनमें निरंतर ये द्वंद रेहतो. नवनीतप्रियजीने या द्वंदकु समझ्यो और उनने गज्जन धावनकु आज्ञा करी के चल अपन् दोनों महाप्रभुजीके साथ रहेंगे. सो महाप्रभुजीकु तो नवनीतप्रियजी पधराने ही हतें और नवनीतप्रियजी यदि गज्जन धावनसु प्रसन्न रेहते होय तो गज्जन धावनकु क्यों नहीं पधराने. महाप्रभुजीने नवनीतप्रियजी और गज्जन धावन दोनोंन्‌कु अपने यहाँ रखे. वो यहाँ-तक कि जब अक्काजीने गज्जनकु पान या फल लेवेकु भेज्यो तो महाप्रभुजी नाराज हो गये के तुमने गज्जन धावनकु क्यों भेज्यो? ये सारी बातें इतनी नाजुक हे के जब भक्तको संग करें तब ही सेवाको भाव समझमें आ सके हे. महाप्रभुजीने अपनेकु बतायो के **ये पुष्टिप्रभुको स्वरूप हे, ये भक्तके अधीन स्वरूप हे और भक्तको भावात्मक स्वरूप हे. वा भावसु अपन् सेवा करें. वा भावसु अपन् समर्पण करें.** वा भावसु अपनो स्वरूप पहचानके कोशिश करें. वामें नकल करवेसु नहीं होयगो. अपनी वार्तामें आवे हे के महाप्रभुजीके प्रवचन सुनवे जाती हती. सामग्री गरम हती और चमचा घरमें हते नहीं तो चमचाके भावसु दातन धर दिये. एक भगवदीयने आके देख्यो और वाकी

प्रशंसा करी. एकने सोच्यो के सामग्रीमें दातनकी प्रशंसा हो रही हे तो हर सामग्रीमें वो भी दातन पधरावे लग्यो. ये नकल करवेसु नहीं आयगो. ये कब आयगो के अपन् ठाकुरजीको भाव समझें, सेवाको भाव समझें, समर्पणको भाव समझें. जो सहज हे वाकु सहज रेहवे दे तो ये सारी बात समझमें आयगी. **''सहज प्रीत गोपाल ही भावे, सहज प्रीत कोकिला वसंते''** सहज प्रीत जैसी कोयलकी वसंत ऋतुमें हे ऐसी अपनी प्रीत प्रभु विषयक होय तब अपनी सेवा लीलात्मक हो जाय और लीलाको रहस्य अपनेकु समझमें आवे लगे.

''दृढ़ इन चरनन केरो भरोसो॥
श्रीवल्लभनखचन्द्रछटा बिन सब जग मांझ अंधेरो॥१॥
साधन और नहीं या कलिमें जासों होत निवेरो॥
सूर कहा कहे द्विविध आंधरो बिना मोलको चेरो॥२॥

।। परिशिष्ट-१ ।।

।। दान बड़ो के दाता ।।

* **वार्ताप्रसंग :** तब गुसांईजी दामोदरदासजीसों पूछे **"जो तुम श्रीआचार्यजीको कहा करिके जानत हो?"** तब दामोदरदासने कह्यो **"हम तो आचार्यजी महाप्रभुन्‌को जगदीश सों संसारमें सब कोउ कहत हें जो सबतें बड़े जगदीश श्रीठाकुरजी हें, तिनतें अधिक करि जानत हें."** तब गुसांईजी दामोदरदाससों कहें **"जो तुम ऐसे क्यों कहत हो, जो श्रीठाकुरजी तो बड़े हें."** तब दामोदरदासने गुसांईजीसों कह्यो **"जो महाराज! दान बड़ो के दाता बड़ो? काहुके पास धन बहोत हे तो कहा करे? देई ताको जानिये. और आचार्यजी महाप्रभुन्‌को सर्वस्व धन श्रीनाथजी हे. सो हम जैसे जीवन्‌कों आपु दान कियो हे. तातें हम आचार्यजीको सर्वते बड़े करि जानत हे."** (दामो.वा.प्र.३)

वार्ताएं पढ़के देखो के जा भक्तके घर ठाकुर बिराज्यो वा भक्तकी सारी बात ठाकुरजीने स्वीकार करी फिर वा ठाकुरको बर्ताव वाको प्रकार वाको व्यवहार सब वा भक्तके अनुरूप हो जाय हे. ये शास्त्रार्थकी स्थापना वचसा नहीं हे कायासु हे. जब कायासु ये शास्त्रार्थ स्थापित हो रह्यो हे या कारणसु ही महाप्रभुजीने प्रत्येक लीलाके शास्त्रार्थ बताये हें के या लीलाको शास्त्रार्थ ये भयो. वा शास्त्रार्थके अनुसार लीला नहीं हे. वो कृष्णलीलानुसारी शास्त्रार्थ हे. वा शास्त्रार्थकु अच्छी तरहसु समझके महाप्रभुजीने कृष्णकी कौनसी लीलासु कौनसो शास्त्रार्थ प्रकट भयो और वामेंसु अपनेकु क्या लेनो

* यद्यपि "दान बड़ो के दाता" ये श्रीदामोदरदासजीको वचन हे, आचार्यजीको नहीं परन्तु इन वचनकु लेके अपनी अल्पमति या मूर्खता के वश जैसे वल्लभपंथी या अन्य अपने स्वार्थके हेतु विमूढ़ होवेके कारण या वचनको दुरुपयोग करे हें. सो यहां दामोदरदासजीकी वार्ता प्रसंगमें अन्यत्र प्राप्त उपरोक्त बात यहां प्रासंगिक होवेसु जोड़ी हे.

और क्या नहीं लेनो? वो तो स्वच्छंद हे, सब तरहके शास्त्रार्थ स्थापित कर रह्यो हे. जैसे एक बात समझो के सौ गाली देवेवालेकु मुक्ति दे रह्यो हे तो क्या अपनेकु गाली देनी! महाप्रभुजी ना पाड़ रहे हें के ना गाली मत दो. इतनो ही नहीं ये भी केह रहे हें के क्रिटिसाइज़् (निंदा) भी मत करो. "कौन यह खेलवेकी बानी" भी मत कहो "भली यह खेलवेकी बानी" कहो. ये शास्त्रार्थ स्थापित कर रहे हें महाप्रभुजी. शास्त्रार्थको निष्कर्ष अपनेकु समझानो चाह रहे हें के कृष्णलीलामें कई शास्त्रार्थ स्थापित भये हें वामेंसु कौनसो शास्त्रार्थ अपनेकु भक्तिसाधनाके लिए उपयोगी हे! जितनो शास्त्रार्थ अपनेकु भक्तिसाधनाके लिए उपयोगी हे उतनो शास्त्रार्थ; जा बखत अपन्, साधनाके तौरपे जियेंगे उतने शास्त्रार्थके तहत अपन् कृष्णके संयोग और वियोग कु जियेंगे. तब अपनी सेवा, साधना नहीं रेहके लीला हो जायगी और वाकी लीला, लीला नहीं रेहके अपनी साधना बन जायगी. नहीं तो लीला तो द्वापरमें हो गयी. वो अपनी साधना कैसे बन पायगी! ये बात समझो के कालकी पीछेकी गति तो हे नहीं. वाकी तो एक ओरकी ही गति हे. भूतसु वर्तमान, वर्तमानसु भविष्य, वर्तमानसु भूतमें कैसे जायो जा सके! अपन् तो वर्तमानमें हें तो कृष्णकी लीला अपनी साधना कैसे बन सके हे? वो यों बन सके हे क्योंके भक्तिके नामको शास्त्रार्थ हे या भक्तिके नामके शास्त्रार्थसु भगवान्‌ने बहोत सारे नियम तोड़े हें. वाणीके द्वारा स्थापित नियमन्‌कु तोड़के कायाके द्वारा कई नियम स्थापित किये हें. उन कायाके द्वारा स्थापित नियमन्‌मेंसु कितनो अपनेकु लेनो वा बारेमें महाप्रभुजीको रोल् आ रह्यो हे. वा कृष्णलीलामेंसु कितनो हिस्सा अपनेकु जीवे लायक हे और कितनो हिस्सा लीला हे पर जीवे लायक नहीं हे बतौर जीवनप्रणालीकी साधना.

जैसे एक उदाहरणके तौरपे केह रह्यो हूं के ठाकुरजीने पूतना मारी. अपन् अपनी सेवाप्रणालीमें ठाकुरजीकु ये नहीं कहें के तू

पूतना मार. क्यों नहीं कहें क्योंके अपन् व्रजकी लीलाके अनुसार सेवा कर रहे हें. पूतना व्रजमें ही तो मारी हती पर महाप्रभुजी केह रहे हें के वो पूतनावध अपनी साधनाको अंग नहीं हे यासु वाकु अपन् अपनी सेवामें नहीं लेंगे. कृष्णलीला तरीके वाकु गाओ पर अपनी सेवामें एसो मनोरथ मत करो के एक पूतना बनाओ और वहां बीचमें ठाकुरजीकु बिठाओ. फिर वाकु कहो के "तू मार". ऐसे सब मनोरथ अपने यहां नहीं होवें. ठाकुरजीने गिरिराज धारण कियो तो अपन् ठाकुरजीके श्रीहस्तपे पत्थर धर दें और कहें के "याकु धारण करके रखो" ऐसी सब बात अपने यहां नहीं बताई हे. ये उनको सिरदर्द हे. अपनेकु गिरिराजपूजन करनो हे **"बड़रन्कों आगे ले मोहन गिरि गोवर्धन पूजन जात."** वा कृष्णलीलामेंसु कितनो ॲलिमेंट् (अंश) लेनो और कितनो ॲलिमेंट् ॲलिमिनेट् करनो याको एक खूबसूरत गुलदस्ता महाप्रभुजीने भक्तिसाधनाको बनायो हे.

ये वल्लभपंथी बेवकूफ हें जो या बातको **"दान बड़ो के दाता"** याको ये अर्थ करे हें के दाता बड़ो क्योंके यदि दाता दान नहीं दे तो दान अपनेकु कैसे मिले! अरे खोपडी चलाओ बन्दर मत बनो.

दान देवेके लिए मूड़ी नहीं होय तो दाता क्या करेगो? दान उपलब्ध कौनने कियो? दाताके हाथमें दानकी पूंजी आयी कहांसु? वल्लभलीलासु आयी के कृष्णलीलासु आयी? आखी सेवाप्रणाली कृष्णलीलापेसु गढ़ी गयी हे. अपन् जब ये केह रहे हें के **"दान बड़ो के दाता"** तो दाता बड़ो हे क्योंके वो नहीं देतो तो दान कहांसु मिलतो! अरे यदि दान ही नहीं होतो तो देतो क्या? जैसे मैंने अपने दादाजीकी बात बतायी के जब उनकु आशीर्वाद नहीं देनो होतो तो बस हां-हां कर देतें. तो महाप्रभुजीसु भी कोई ऊट-पटांग मांगे तो वो भी बस 'हां-हां' ही कर देते होंयेंगे. कृष्णलीलाके

कारण वो कॅपिटल् (दान) महाप्रभुजीके हाथमें आयो हे. वामेंसु अपनेकु सब साधना-प्रणालीके लिए नहीं दियो हे. बहोत अच्छी तरहसु विचारके छांटके अपनेकु कह्यो हे के कृष्णलीलाको इतनो हिस्सा तुम अपनी साधना-प्रणालीमें अपना सको हो. वाकी लीलाकु नीचे उतार सको हो. ऐसो करवेसु तुम्हारी साधना-प्रणाली वा लीलाके लेवल्पे पहोंच सके हे. या अर्थमें दाता बड़ो हे. या अर्थमें दाता बड़ो नहीं हे के वो दानसु बड़ो हे पर या अर्थमें दाता बड़ो हे के वाकु ये विवेक हे के क्या देनो और क्या नहीं देनो क्योंके यदि अविवेकसु दान होवे तो गुसांईजीने स्वयं ही श्लोक लिख्यो हे के **"विचार्यैव सदा देयं कृष्णनाम विशेषतः अविचारितदानेन स्वयं दाता विनश्यति"** वा दाताको विनाश होयगो वो चिंता महाप्रभुजीने कितनी बखत प्रकट करी.

जा बखत अजगरकु चींटियें खा रही हतीं तो महाप्रभुजी उदास हो गयें. सबन्ने पूछी के "आप उदास क्यों हो?" तो आपश्रीने कही के **"ये पिछले जनममें गुरु हतो, दाता हतो और ये सारी चेंटियें शिष्य हतीं पर ये उनको उद्धार नहीं कर सक्यो. या लिए याकु ये खा रही हें."** महाप्रभुजीकु क्यों नर्वस्नेस् आयी? वो या लिए के इतनो बड़ो दान यदि मैंने बिना सोचे समझे दे दियो तो वाको और मेरो दोनोंको अनर्थ होयगो, करके वहां ये प्रसंग भयो के **"श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि"** (सि.र.१) वो चिंतामें बिराजे भये हतें तो ठाकुरजीने स्वयं उनकु प्रकट होके कही के **"ब्रह्म-संबंध-करणात् सर्वेषां देह-जीवयोः, सर्व-दोष-निवृतिर्हि दोषाः पंचविधाः स्मृताः"** (सि.र.२) मानें **"समर्पणेन आत्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम्"** (बा.बो.१८) ये दान स्वयं दाताके पास आयो हे करके दाता, दाता बन सक्यो हे. दान यदि आतो ही नहीं या विधिसु तो दाता क्या देतो? दाता तो स्वयं चिंतामें हतो पर दाताको बड़प्पन यामें हे के दान तो पूरो-पूरो आ गयो पर अर्थीकु कितनो देनो

के जासु वाको नुकसान नहीं हो जाय.

बच्चाकु अपन् खेलवेके लिये पिस्तौल दें और वाने बंदूक चला दी तो बच्चा अपराधी के देवेवालो दाता अपराधी? बच्चाकु खेलवेके लिए पिस्तौल नहीं दी जा सके. महाप्रभुजीको बड़प्पन या अर्थमें हे के उनने ये विचार कियो हे के जैसे छलनीमें अपन् गेहूं छानें ऐसे कृष्णलीलाकु छानके वामेंसु जो चीज साधनाके लिए अपनायी जा सके हे वे सारी अपनाके अपनी सेवाप्रणालीमें रख दी. देखो, कृष्णलीलामेंसु इतनी-इतनी सेवा अपन् अपनी साधना-प्रणालीमें जीयेंगे. वा लीलाकु जब अपन् अपनी साधना-प्रणाली बना लेंगे तो अपनी साधना कृष्णलीला बन जायगी. अपनी सेवा, लीलामें परिवर्तित हो जायगी. वाके लिए महाप्रभुजी केह रहे हें के अलौकिकसामर्थ्य फल हे क्योंके लौकिकसामर्थ्यसु तुम कृष्णसेवा कर सको हो पर वा सेवाकु लीला नहीं बना सको हो, पर क्योंके प्रभुने वचन दियो हे के ब्रह्मसंबंध करवेसु कृष्णसेवामें दोष आड़े नहीं आयेंगे वो कृष्णसेवा **"निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे विशते सदा"** (से.फ.-४) याके कारण समर्पितको उपभोग अलौकिकसामर्थ्यके रूपमें स्थापित कर दियो. वहां दाताको बड़प्पन आ रह्यो हे. दानको तो बहोत प्रकार या वाके विभिन्न रूप हो सके हें. उन सबकु अपन् देवेकी विचारें तो कोई कृष्णकु गाली देगो, कोई वाकु जहर पिलावेगो, कोई वाकु निगलवे जायगो, कोई वाकु खावे जायगो, तो क्या ये सेवा होयगी?

हमारे मुम्बईमें जब रोटीमें श्रीनाथजी प्रकट भये तो मोकु सब बुलावे आये के तुम चलो भाखरीमें श्रीनाथजी प्रकट भये हें. मैंने उनकु कही के "वो यालिए प्रकट भये हें के अब श्रीनाथजी मान गये हें के अब ये सब मोकु खाये बिना मानेंगे नहीं, तो चलो भाखरीमें प्रकट हो जाओ." "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत तिन देखी तैसी" श्रीनाथजीकु अब निश्चय हो गयो हे के ये सब

अब असुर पैदा हो गये हें, बकासुर अघासुर. स्वरूपमें प्रकट होके क्या करनो हे? रोटीमें ही प्रकट हो जाओ. तुम्हारो मनोरथ पूर्ण **"भक्तमनोरथ पूरकाय नमः"**

या रहस्यकु समझो के अपने यहां अघासुर-बकासुर की एक भी लीलाकु सेवामें नहीं लियो गयो हे. नल-कूबरकु भी पेड़ पटक्यो तो अपन् ठाकुरजीकु ऊखलसु बांधके पेड़के बीचसु खींचे नहीं हें. ये सब अपने यहांकी सेवामें नहीं लियो गयो हे. वे बिचारे असुर नहीं हें और वो लीला भी कृष्णलीला हे ही पर महाप्रभुजीने वाकु अपनी सेवाप्रणालीमें नहीं ली. उनने बहोत सोच-समझके कृष्णलीलामें कौन-कौनसे शास्त्रार्थ स्थापित हो रहे हें वाकी गहरी पेठ रखके कृष्णलीलामेंसु तकरीबन बीस प्रतिशत लीलान्कु अपनी सेवा-प्रणालीमें रख्यो. बाकी अस्सी प्रतिशत लीलाएं श्रवण-कीर्तनके भरोसे छोड़ दी गयी हें. इन सब लीलान्को श्रवण-कीर्तन-स्मरण करो पर इन लीलान्को अर्चन वंदन और पादसेवन मत करो. तुमकु यदि ये लीला गानी होय तो गा सको हो. जो के इन सबकु अपन् लीलाकी तरह भी नहीं गावे हें, माहात्म्यके पदके रूपमें ही गावे हें.

जैसे कुछ पद अपने यहां प्रभुके माहात्म्य तरीके गाये जाय हें. कुछ पद सेवाके मंत्र तरीके गाये जाय हें. मानें जा बखत अपन् जो सेवा कर रहे हें वा बखत सेवामें जो भावना होनी चहिये वा भावनाकु उभारवेवाले वे पद हें. जैसे एक पद हे **"कहा आछी व्हे जई है जात सुन जसुमति तुम बड़रन् आगे जो छिन एक बितात."** अपन् ठाकुरजीकु अभ्यंग करा रहे हें. वा बखत क्या भावना करनी! जैसे **"नंदको लाल पालने झूले"**, जब अपन् ठाकुरजीकु पालने झुला रहे हें तो वा लीलाको जो गान हे वो अपनी सेवामें मंत्रकी तरह आ रहे हें. दूसरे वा तरहके पद सब माहात्म्यके रूपमें ही आ रहे हें. तुमने नल-कूबरको उद्धार कियो, तुमने पूतना मारी,

देखो! ये सारे पद माहात्म्यके रूपसु ही आ रहे हें, भावनाके रूपमें नहीं आ रहे हें. वाको सेवामें कोई ॲक्शन् नहीं हे. ॲक्शन्के रूपमें वो ही पद लिये हे जो लीलाके रूपमें आ रहे हे. पौढ़ाते बखतके, जगाते बखतके, पलनाके आदि पर उन पदन्में ये भावना करी जाय हे के अपन् जाकी सेवा कर रहे हें वाको ऐसो माहात्म्य हे. तेरे दस तरहके माहात्म्य हो सके हें पर हम जो सेवा कर सके हें वाहीकी भावनाकु उभारनो चाह रहे हें. अपने यहांकी आखी साधना-प्रणालीको रहस्य ये हे. या रहस्यकु महाप्रभुजीने बतायो हे. या दानकु महाप्रभुजीने दियो हे या अर्थमें दाता बड़ो हे. वा अर्थमें दाता बड़ो नहीं हे के दानसु दाता बड़ो हे पर वा दानमेंसु क्या लेनो के वा दानको दुरुपयोग न हो जाय. दान लेवेवालेको सत्यानाश न हो जाय.

मैं अक्सर एक बात केहतो रहू हूं के भरतपुरके राजा अपने महलके ऊपर खड़े हते. वा समय कोई गरीबने आके नीचे हल्ला मचायो के "तुम मौज मार रहे हो और हम दुःखी हें." वा राजाने ऊपरसु ही सिक्कान्की एक बोरी वाके सरपे दे मारी. वा गरीबको सर ही फट गयो. तो दान कैसो देनो? ऐसो देनो के वाको माथा ही फट जाय के ऐसो देनो के वाको माथा काम करतो हो जाय! ऐसो दान महाप्रभुजीने नहीं दियो हे के माथा ही फट जाय. ऐसो दियो हे के सदाके लिए सारी समस्याको समाधान आ जाय. वा अर्थमें दाता बड़ो हे. कितनो अंश देवे लायक हे वो सिलॅक्शन् देवेके अर्थमें नहीं पर लेवेवालेकी कॅपेसिटीके अनुसार कियो हे.

वोही बात देखो प्रभुदासकी वार्तामें भी प्रकट हो रही हे के आपश्री प्रभुदासकु केह रहे हें के **"हां मैं तोकु कंठी देऊंगो"** पर रामदासकु केह रहे हें के **"नहीं, ये जीव मर्यादामार्गीय हे."** दान देवेमें कितने संकोची हें महाप्रभुजी. अपन् केह रहे हें के

"अदेय-दान-दक्षश्च महोदार-चरित्रवान्" (सर्वो.ना.१८) अदेयदानके दक्षकी कहां गयी महा-उदारता! रामदासकु क्यों नहीं दियो? क्योंके दाता बड़ो नहीं हे. दानके कारण दातामें बड़प्पन आ रह्यो हे. महाप्रभुजीकु दानकी समझ हे.

देखो, एक दूसरे उदाहरणसु समझाऊं. अपन् बीमार पड़ जायें और कोई भी आके अपनेकु कोई भी दवाई दे जाय वो एक और दूसरो के कोई अपनो ठीकसु डाइग्नोज़् करके दवाकी प्रकृतिकु देखके अपनो इलाज करे तो दोनोंन्मेंसु कौनसो ठीक? कौनसो दाता बड़ो?

जब अपन् जान नहीं रहे हें के आदमीको नेचर् कैसो हे, दवाईकी प्रकृति कैसी हे और दवाई दान दिये जा रहे हें ये केहके के दाता बड़ो. अरे भाई, मर जायगो आदमी. एक ही दवा कोईके लिए विष हो जाय, कोईके लिए अमृत हो जाय. वो महाप्रभुजीने डाइग्नोज़् कियो हे के कौनसो जीव, क्या देवे लायक हे! जैसे अच्युतदासजीकी वार्तामें आवे हे के ब्रह्मसंबंधके बाद अच्युतदासजीने पूछी के "महाराज! क्या आज्ञा हे?" महाप्रभुजीने कही के **"श्रीनाथजीकी सेवामें आओ"**. अच्युतदासजीने कही के "महाराज, सारो घर छोड़के आयो हूं अब मोसु श्रीनाथजीकी सेवा कैसे बनेगी? आप यदि प्रसन्न हो तो मोकु मानसी सेवाको दान करो." महाप्रभुजीने कही के **"जा तोकु मानसी दीनी."** और उनकु मानसी सेवा सिद्ध हो गयी. तनु-वित्तजाके बिना मानसी सिद्ध हो गयी, या अर्थमें अदेय-दान-दक्ष हें. प्रोसिजर् वाइज़् तो मानसी, तनु-वित्तजाके बाद सिद्ध होवे. महाप्रभुजी खुद केह रहे हें 'वचसा' पर कायासु अपनो चरणोदक दियो हे. वार्तामें आवे हे के महाप्रभुजीने अपनो चरणोदक दियो हे और मानसी श्रीनाथजीकी सिद्ध भयी हे, महाप्रभुजीकी नहीं. और इतनी जबरदस्त मानसी सिद्ध भयी के गुसांईजी उनसु पूछतें के "श्रीनाथजीकी सेवा ठीकसु हो

रही हे के नहीं?'' तब वो बताते के हां ठीक हो रही हे. वे खुद तो सेवामें जाते भी नहीं हतें. अदेय-दान-दक्षता महाप्रभुजीकी या अर्थमें हे. महोदार-चरित्रता महाप्रभुजीकी या अर्थमें हे. दानसु बड़े दाताके अर्थमें नहीं हे. अपन् वाकु खोटे अर्थमें घटित करे हें. ये सारो रहस्य या प्रभुदासकी वार्तामें देखें तो समझ आ सके हे.

महाप्रभुजीकु पता हे के ये पुष्टिजीव हे. ये पता होवेके बावजूद आप कितनी धीरज बरत रहे हें के उनकु ब्रह्मसंबंध दे दियो पर ठाकुरजी नहीं पधराये. चलो ठाकुरजी नहीं पधराये पर ब्रह्मसंबंधको मंत्र तो लिखके दे सकते हतें. बहोतनूकु एसो कियो हे पर वो भी नहीं कियो क्योंके उनकु पता हे के या तरहके झगड़ामें याकु अभी फसाऊंगो तो धोबीको कुत्ता न घरको न घाटको ऐसी स्थिति हो जायगी. या बाजु सेवा करनो चाहेगो और वा बाजु क्लेश होयगो सो दोनों बातनूको मेल ही नहीं खायगो. महाप्रभुजी सेवा पधराये बिना आगे पधार गयें करके महाप्रभुजीने उनके हृदयमें विरह जगायो हे. विरहसु समर्पण नहीं पर समर्पणसु विरह. कोईकु विरहसु समर्पण जगायो हे. वार्तामें ऐसे भी कई उदाहरण मिले हें. ये जो ट्रीटमॅन्टके फ्लक्चुएशन् हे वो डाइग्नोसिस्के आधारपे हे के कौनसी दवा याकु माफिक आयगी! एक दवा हाथमें आ गयी और वासु सबको इलाज करनो वो तो 'ऊंट वैद्यपनो' केहलावे हे. ''नीम-हकीम खतराए जान'' महाप्रभुजी ऐसे नीम-हकीम नहीं हें. वे तो बराबर बीमारीकु परखके दवा देवे हें. कैसे ये कर पायगो, क्या करेगो तो याकी भक्ति बढ़ेगी **''यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते.''** (भ.व.१) कोईकु कथा बतावें, कोईकु मंत्रसेवा बतावें, कोईकु ठाकुरजीकी सेवा बतावें, कोईकु तीर्थयात्रा बतावें, अंततः काहेके लिए? वो यालिए के जीव जो भी प्रकार अपनी साधना तरीके अपनावे वासु वाकी भक्ति, रुचि प्रेम आसक्ति और व्यसन में परिवर्तित होनी चहिये

मूल मुद्दा ये हे महाप्रभुजीको और याके डाइग्नोसिस् करवेके अर्थमें महाप्रभुजी एक्सपर्ट डॉक्टर् हें. वे बीमारीकु जान रहे हें, बीमारीकु जान रहे हें, दवाईकु जान रहे हें और स्वास्थ्यकी उनकु पूरी परिकल्पना हे के या जीवके स्वास्थ्यके लिए दवाईको अनुपात कितनो होनो चहिये. अधिक मात्रामें दवाईसु आदमी मर सके हे. कोईकु अमृतके कुंडमें डुबा दोगे तो वो मर जायगो और कोईकु जहर भी थोड़ो देते रहोगे तो वो दवाईको काम कर सके हे.

पर वो व्यक्ति जानकार होनो चहिये के याकु कितने हिसाबकी दवाई चहिये. दवाईकी अच्छी जानकारी हे और खूब दवाई भी दे रह्यो हे, दाता बड़ो हे पर ठीकसु डाइग्नोज् नहीं कर पा रह्यो हे. तो तो वो ''नीम-हकीम खतराए जान'' ही हे. महाप्रभुजी वा तरीकेके दाता नहीं हें. महाप्रभुजीकु पता हे के यामेंसु कितनो याकु देनो हे और जैसे आज-कल इन्स्टॉल्मॅन्ट् होवे हे ऐसे वो दान याकु कितने इन्स्टॉल्मॅन्ट्में देनो वो सारी कॅल्क्युलेशन् करके महाप्रभुजी दान दे हें. पहली किश्तमें केवल ब्रह्मसंबंध दियो. महाप्रभुजीके डाइग्नोसिस्की ब्यूटी देखो. क्योंके अभी जुड़्यो भयो हे रामदाससु तो पहली किश्तमें ठाकुरजी पधरावेकी खोटी धांधल नहीं करनी. केवल ब्रह्मसंबंध दियो. वाके कारण मनमें ये विरह उत्पन्न करायो के मैंने ब्रह्मह्मसंबंध लियो हे तो मैं तो सेवा करवेको अधिकारी हूं पर सेव्यकी सेवा तो मिली नहीं हे. तो मेरो अधिकार व्यर्थ जा रह्यो हे. कौनसे रूपमें **''प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहात् न प्रेष्यते वरे''** (अन्त.प्र.८) वामें एक प्रकारकी प्रौढ़ता लाये हें, वाकु मॅच्योर् बनायो हे तब वाको मन सेवा करवेके लिए तड़प रह्यो हे.

इन सब बातनूको विचार करे बिना 'दाता बड़ो', ऐसे एकतरफा वचननूकी झंडाबाजीसु वचनको अर्थ निरर्थक हो जावे और अन्यथा बोध होवे हे. या बातकी सावधानी हमें रखनी चहिये.

।। परिशिष्ट-२ ।।

।। सामग्री प्रदर्शनोत्सव* ।।

एक बार कहीं एक बैठकमें किसी उत्सव विशेषपर मैं आमंत्रित था. उत्सव तो आखिर उत्सव ही होते हैं. यदि मानवजीवनमें उत्सव न हो तो फिर जीने लायक क्या रह जायेगा? दरअसल हम उत्सवकी घडियों और उनकी अमिट स्मृतियोंमें ही तो जीते हैं. हमारे पुष्टिमार्गके उत्सव तो वैसे भी पुष्टउत्सव होता हैं. अतः उत्सवमें जीना तो अवश्य ही सौभाग्यकी बात है, परंतु हमारी श्रद्धा भी यदि केवल उत्सवोंमें ही जी पाती हो तो मैं समझता हूं कि हम उत्सवोंमें जी नही रहें किन्तु मर रहे हैं.

उत्सवों पर जैसे सर्वदा भीड टूटती है सो टूटी ही थी और मैं भी उस भीडमें शामिल था. खैर, खूब सामग्री आरोगाई गई. इतनी कि जितनी अन्नकूट कुनवारा और छप्पनभोग पर प्राप्त अरोगाई जाती है. संभवतः इन्ही तीनोंमेंसे कुछ था. परंतु नाम थोड़े ही मतलब रखता है! मतलब तो रखती है सामग्री क्योंकि सामग्री ही में तो सारे स्वाद होते है. नामोंमें भला क्या स्वाद हो सकता है? और इन नामों और नामोंवाली सेवाओं में रहा भाव तो आज पुष्टिमार्गकी सबसे अधिक बेस्वाद वस्तु है, उसे कोई भी चखना नहीं चाहता. कहा जाता है कि प्रभु 'भाव'के भूखे हैं और यही कारण है कि पुष्टिजीव होनेके कारण हमने प्रभुसुखका विचार करके भाव तो कबका अरोगा दिया है. हमारे पास अब प्रभुके भावको अरोग जानेसे केवल बच गई हैं सामग्री जिसे उनके सामने धर-धर कर हम अरोग रहे हैं. भावका स्वाद भगवान् तो जानते ही हैं

* श्रीकृष्णदास मेघनजीकी वार्ताप्रवचनमें इस आलेखका संदर्भ उद्धृत किया होनेसे, 'वल्लभ विज्ञान' नामक मासिक, सप्टेम्बर् १९६९के अंकमें प्रकाशित आलेखका यहां संकलन किया हे.

फिर हम क्यों न सामग्रीका स्वाद चखें? यही कारण है कि भगवान्के प्रसादके रूपमें हमें भाव नहीं मिलता. किन्तु न मिले इससे क्या अन्तर होगा? क्योंकि सामग्री जिसमें सभी स्वाद हैं सभी परिमाण हैं, दोनासे कूट तकके, और सभी प्रकार है, एकसे छप्पन तक के, वहतो मिलती है. ओह! क्षमा करिये. आप कहेंगे कि यह क्या असंगत बात छेड़ रखी है. किन्तु आज हम सभी जब सिद्धान्त एवं व्यवहार की विसंगतिके नग्न उदाहरण हैं तो फिर असंगत बात भी उतनी असंगत नहीं लगनी चाहिये. आप कहेंगे कि असंगत बात करना बुद्धिमत्ताका लक्षण तो नहीं हैं. तो क्या भावहीन अन्नकूट, कुंडवारा और छप्पनभोग अरोगानेवालें हम पुष्टिमार्गियोंमें पुष्टिबुद्धि अब भी बची रह गई है क्या?

परन्तु मैं तो आपसे एक बैठकमें हुए एक मनोरथकी बात करना चाहता था. हाँ मनोरथ तो एक ऐसी वस्तु है कि जिसकी कोई अन्य गति ही नहीं, सिवाय इसके कि उसे ठाकुरजी पर बलात् लाद दें. ''मनोरथानाम् अगतिर्न विद्यते'' आप पूछेंगे 'बलात्' क्यों? तो इसका भी एक रहस्य है और वह यह कि हमारे मनोरथमें प्रभु बिराजना नहीं चाहते और हम हैं कि उन्हें जबरदस्ती बिरजवा देते हैं. संभवतः आप प्रश्न करेंगे कि मुझे कैसे ज्ञात हुआ कि प्रभु बिराजना नहीं चाहते. तो मैं आपसे ही पूछता हूं कि बताईये आपके मनोरथ मात्रसे भला प्रभु क्यों छप्पनभोग, कुंडवारा आदि अरोगेंगे? आप शायद सोचेंगे कि मैं पुष्टिमार्गके सिद्धांत समझता नहीं या फिर भूल गया हूं. पर दरअसल बात यह नहीं क्योंकि हम अब पुष्टिमार्गीय कहाँ बचे हैं? हम तो अब सभी मरजादी मोडा हो गये हैं. कहेंगे कि मरजादी मोडा तो पुष्टिमार्गमें ही होता हैं मर्यादामार्गमें नहीं. देखिये आप सीधासा व्याकरण नहीं समझते, क्योंकि मरजादीका मतलब होता है-जो मर्यादामें रहता हो. अब आप ही कहिये भला मर्यादा और भाव का क्या संबंध? मर्यादा तो

मर्यादामार्गमें होती है और पुष्टिमार्गमें तो भावकी प्रधानता होती है मर्यादाकी नहीं. किन्तु संभवतः आप अब भी जिद्द कर रहे हैं कि हमारे यहाँ तो सारी बातें रीत और मनोरथ भावसे ही होती हैं मर्यादावश नहीं. हमारे पुष्टिमार्गमें भावकी प्रधानता है. यहाँ यह नहीं कि शास्त्र कहना हो "फलं समर्पयामि" तो फल रख दिया और "जलं समर्पयामि" तो जल रख दिया. यहाँ तो सब कुछ भावसे ही रखा जाता है.

परन्तु.....

बात यों थी कि एक दिन बहुत बड़ीसी भीड हजारोंकी संख्यामें पूरे रास्तेमें ठसा-ठस भरी हुई कहीं जा रही थीं. वे भी उसमें सम्मिलित हो गये. बहुत दूर जाने पर समझमें आया कि कहीं मंदिरमें किसी मनोरथके दर्शन खुले हुए हे. मंदिरके अंदर जाने पर ज्ञात हुआ कि छप्पनभोगके दर्शन खुले हुए है. कुछ आश्चर्य हुआ कि जब चारों ओर अन्नकी इतनी कमी है कि सैकडों लोग भूखे मर रहे हैं, बेचारे इतना पीडित एवं उपेक्षित हैं कि अपना धर्म भी बेच रहे हैं. क्योंकि उन्हें कमसे कम धर्म परिवर्तन करने पर बूंदी मोहनथाल ठोर मसूक आदि नहीं तो रूखी-सूखी रोटीका उपाय तो अवश्य मिल जायेगा. अपने धर्ममे गरीबों एंव शोषितों की सम्हाल लेनेवाला कोई नही हैं. हृदय गद्‌गद् हो उठा यह सोच कर कि ऐसे विकराल अवसर पर और इतने मंहगाईके जमानेमें कौन ऐसा भगवदीय होगा जो सर्वस्वसमर्पणपूर्वक भगवान्‌के विभिन्न मनोरथ कर रहा है? स्वयं सेवकोंके मार्गदर्शन, एवं झापटीयाँओंकी झपटके बीचमें प्रभुसुखके आनंदका खयाल करते हुए और भीडकी धक्का-मुक्कीकी बेवकूफीको सहन करते हुए प्रभुके सामने पहुंचे तो प्रभुसे पूछा "इस महान अनुग्रहका क्या वर्णन किया जा सकता है कि ऐसे विकराल कालमें भी आप जीवसे सर्वस्वसमर्पण करवा कर छप्पनभोग आरोग रहे हैं. और 'भक्तमनोरथपूरकता' जता रहे हो!"

प्रभुने उत्तर दिया "नहीं आज मैंने एक भी सामग्री नहीं अरोगी. क्योंकि पुष्टिपद्धतिसे निवेदित नहीं की गई." उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ कि कैसे जीव हैं! इतना कहना भी याद नहीं रखते कि "प्रभु इतनी सारी सामग्री आप महाप्रभुजीकी कानीसे अरोगना" अन्यथा ऐसी कानी तो प्रभु तोड़ते भी नहीं. किसने धुप-दीप की होगी, किसने पट बंद किये होंगे. उसीसे पूछते तो मालूम पड़ता. पर भीड़ भी तो एक बुरी बला है कि टिकने ही नहीं देती. विचार उठते तो भीड़के कारण कहींसे कहीं खिसकना पड़ा. कोई उपाय नहीं था कि किससे पूछें! अब वेष भी तो ऐसा नहीं था कि कोई खास दरकार करनेको तैयार होता ताकि अंदर घुसनेका मौका मिल सकता. फलतः उन्हें एक उपाय खोजना पड़ा और वह यह कि पूछ-ताछ करके पता लगाया जाये कि यह मनोरथ किसने कराया, क्यों कराया और कैसे कराया है?

मालूम हुआ कि यह मनोरथ तो छप्पनभोग कमेटीका है. छप्पनभोग कमेटी क्यों बनी और कैसे यह मनोरथका विचार हृदयमें आया? तो जवाब मिला कि आज-कल मनोरथोंकी ऋतु चल रही है. इसने पचास हजार रूपया लगा कर और उसने सवा लाख रूपया लगा कर मनोरथ किया तो यह आवश्यक था कि कोई एक मनोरथ यहाँ इस मंदिरमें भी होना चाहिये था. फलतः बड़े-बड़े सेठियाँओंकी एक कमेटी बनानी पड़ी कि किसी तरह चंदा माँगा जाये और कुछ नहीं तो इसीलिये कि जो यह थोकबंध माल दूसरेको छुटकमें बेचता या खरीदता हो तो उसी संबंधके कारण कुछ न कुछ चंदा तो देना ही पडेगा. यदि सौ-सौ रूपिया भी सौ जनोंसे माँगे तो दस हजार रूपिया तो यों ही एकत्रित हो सकते हैं. और बाकीके रूपिये पर्चे छपवा कर कि छप्पनभोग होने जा रहा है, रूपया-दो-रूपया, घीका डब्बा, आटा, शक्कर जो भी सेवा कर सकते हो करो.

वे सोच रहे थें कि खूब प्रभुकी लीला है कहाँ तो लक्ष्मीके

साक्षात् पति और कहाँ रूपया-दो-रूपयोंके चंदे पर लड्डू अरोगनेकी नौवत.

उन्होने सोचा कि क्या कहीं इन सभी लोगोंने स्वधर्मका ही तो त्याग नहीं कर दिया! पर बाह्याडंबरसे ऐसा भी दिखलाई नहीं पड़ा. अन्तमें एक बड़े सेठ, जिन्होंने खूब चंदा दिया था, उनका रूप लेकर पुनःगये. इस बार भीड़का त्रास अधिक नहीं सहना पड़ा क्योंकि शीघ्र ही बुला लिये गये. भेट करने पर मुखियाजी बीड़ा देने आये तब पूछा, मुखियाजीने जवाब दिया कि इतनी सारी सामग्री सजाकर धरनेकी (ठाकुरजीकी ओर नहीं किन्तु दर्शनार्थियोंकी ओर) भागदौड़में पुरानी रीतका खयाल किसको रहता है कि प्रभु किसकी कानीसे अरोगते हैं और कैसे नहीं. मुखिया बोले—और वैसे तो सामग्री ही बनानेवाले सब कौनसे हृदयसे वैष्णव थे जो पुरानी रीत निभती. ये तो सभी छप्पनभोगके लिये भाड़े पर भुलाये गये थे सो अपसरमें नहानेसे पहले कंठी दिला दी गई थी. वह कंठी भी इनके पगार चुकानेके बाद और इतनी सब सामग्री बनानेकी मेहनत पसीना और अन्य घी आदिकी दुर्गन्धके कारण तोड-फेंक दी जायेगी.

उन्होंने पूछा "पर इतनी सामग्री क्यों धरते हो?" मुखियाजीने जवाब दिया "हम क्या जाने, कमेटीसे पूछिये, महाराजश्रीसे पूछिये. और फिर छप्पनभोगमें इतनी भी सामग्री नहीं आयी तो छप्पनभोग ही क्या? आप पुष्टिमार्गमें अभी नये-नये आये हुए लगते हो!!!" मुखियाजीने कहा.

उन्होंने कहा "पर मेरे पुष्टिमार्गमें तो कोई ऐसी मर्यादा नहीं थी कि भगवान्की सेवा, भीख चंदा परचा समाधानी जैसी व्यापारिक प्रणालीसे चलाई जाये. मेरे पुष्टिमार्गमें तो भावकी प्रधानता थी. यहाँ तो स्पर्धा अनुकरण और थोथी मर्यादा, जिनको न शास्त्रका आधार

प्राप्त है और न भावका. शायद यह कोई नया मर्यादामार्ग तो पुष्टिमार्गके नाम पर नहीं चल निकला! अन्यथा सर्वस्व समर्पणको आदर्श सेवा और मनोरथ का इस व्यापारिक धर्म भ्रान्तिसे क्या संबंध हो सकता है?

मुखियाजी भी चकरा गये कि ये सब असंबद्ध क्या बात हो रही है! अरे; इस असंबद्धताके प्रयोगसे मुझे स्मरण हो आया कि मैं तो आपको एक बैठकमें हुए मनोरथकी बात सुना रहा था.

हाँ, तो बात यों हुई कि उन बैठकमें सैकड़ों आदमी मनोरथके दर्शन करने आये हुए थें. वह बैठक भी तो गाँवसे दूर जंगलमें थी. तीन-चार दिनोंके सतत मनोरथोंकी अनियमितितामें दिनभर भूखे रह कर जब प्रसाद मिलता था तो हम लोग खूब खाते थे और फिर चारों औरके जंगलमें जूठी पत्तलोंका अंबार और फिर यत्र-तत्र लोग जो शौचके लिये खुले मैदानका प्रयोग कर रहे थें, अतः बैठकके चारों और बहुत गंदगी हो गई थी. आसपासके गांवकी कुछ औरतें वहां बकरी चराती हुई आयी. वे गंदगीसे त्रस्त हो कर आपसमें बात करने लगी "क्या इनका धर्म खूब खाने-पीने एवं गंदगी फैलाने का ही है?"

मैं वहीं पासमें खडा था. मुझे ज्ञात था कि आसपासके इलाकों में अन्नाभावसे पीड़ित जनताको अन्यधर्मी अन्नकी सहायता पहुंचा रहे थें. हम उस वक्त किन्तु **'सामग्री-प्रदर्शनोत्सव'का** आनंद ले रहे थें.

महाप्रभुजीने संप्रदायकी स्थापना दैवी जीवोंमें भक्तिके प्रचारके लिये की थी. क्या **'सामग्री-प्रदर्शनोत्सव'**से शुद्ध प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रचार होता है?

॥ अमृतवचनावली ॥

(१/क) "पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोर्वधनधरसों पूछें जो "महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी... सो हम कौनको अधिकार देके बीगार करें? तासों आपु कहो ताको अधिकारी (ट्रस्टी) करें. तब श्रीगोवर्धननाथजी कहे जो "हमहु कौंन जीवको बिगार करें? जो कोई अधिकार लेयगो (ट्रस्टी बनेगो) ताको बिगार होयगो! तासों तुम एक काम करों जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाकों अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाको गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो."

(श्रीगोवर्धननाथजी, ८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता, प्रसंग-१०)

(ख) सो एक दिन एक वैष्णवने किसोरीबाईकों कछू सामग्री दीनी हती. तब किसोरीबाईने सिद्ध करिके श्रीठाकुरजीकों भोग समर्प्यो. ता दिन श्रीठाकुरजी आरोगवेकों पधारे नाहीं. तब किसोरीबाई मनमें बहोत खेद करन लागी. तब श्रीठाकोरजी बोले जो तेनें मेरेलिये सामग्री क्यों लीनी? सो हम कैसे आरोगे?

भावप्रकाश : यामें यह जताये जो औरकी सत्ता-सामग्री अपने श्रीठाकोरजीकों आरोगावनी नाहीं. और कछू वैष्णवपेतें ले के श्रीठाकुरजीकों विनियोग न करावनो. सो श्रीठाकुरजी अंगीकार न करें.

(२५२ वै.वार्ता, किसोरीबाई वा.प्र.२)

(२) जो कटोरी (गहने) धरिके सामग्री आई सो तो भोग श्रीठाकुरजी आप ही के द्रव्यकुं आरोगे सो आप ही को भयो. जो श्रीठाकुरजीको द्रव्य खायगो सो मेरो नाहिं अरु मेरो सेवक भगवदीय होयगो सो देवद्रव्य कबहूं न खायगो जो खायगो सो महापतित होयगो. ताते वा प्रसादमेंते भोजन करिवेको अपनो अधिकार न हतो याकेलिए गोअनूकों खवायो अरु श्रीयमुनाजीमें पधरायो. यह सुनिके सब वैष्णव चुप होय रहे.

(महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य. घरुवार्ता-३)

(३) ...श्रीआचार्यजीको वैष्णवने आई कही, "महाराज! श्रीद्वारकानाथजी वैभव

सहित पधारे हैं." ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाड़े हते! (तब) श्रीगोपीनाथजी कहें "लक्ष्मी सहित नारायण पधारे हैं!" तब श्रीआचार्यजी कहे तब श्रीआचार्यजी कहें "वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो है? (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे, तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नाश जायगो". तब श्रीआचार्यजी कहें "हमारो मारग तो ऐसोई है."

(**श्रीगोपीनाथप्रभुचरण,** ८४ वैष्णव वार्ता, दामोदरदास संभलवारेकी वार्ता).

(४/क) धनादिकी कामनाकी पूर्तिकेलिये जो शास्त्रविहित श्रवण-कीर्तन-सेवा आदि किये जाते हैं उनको कर्ममार्गीय समझना चाहिये अपनी आजीविका चलानेकेलिये धनोपार्जनके रूपमें जो हैं उनको तो खेती-बाड़ी जैसे व्यवसायकी तरह 'लौकिक कर्म ही कहना चहिये (धर्म-भक्ति सर्वथा नहीं). मलप्रक्षालानार्थ गंगाजलका उपयोग करनेवालेको उसके मलकी सफाईसे अधिक गंगास्नानका फल मिलता नहीं है. इतना ही नहीं ध्यान देनेलायक बात यह है कि गंगा जैसी पवित्र नदिके जलका ऐसा घृणित कार्यकेलिये उपयोग करनेके कारण वह पापी बनता है इसी तरह प्रभुकी सेवा-कथाके माध्यमसे पैसे कमानेवालेको सेवा-कथाका कोई भी (धार्मिक-भक्तिमार्गीय) फल तो प्राप्त नहीं ही होता है प्रत्युत ऐसे अधम आचरणके कारण वह पापका ही भागी होता है.

(**श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण.** भक्तिहंस)

(४/ख) तब श्रीगुसांईजी आपु कहे : "जो हम कौनसे जीवको कहें, जो कौनसे जीवको बिगार करें! सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारनो तो तत्काल है! तासों श्रीगोवर्धनधरको अधिकार (ट्रस्टीपद) कौनकों देय? कौनको बिगार करें?...पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्धनधरसों पूछें जो "महाराज! कृष्णदासकी तो देह छूटी... सो हम कौनको अधिकार देके बिगार करें? तासों तुम एक काम करो जो अधिकारको दुसाला ले सबके आगे कहो (जो) जाको अधिकार करनो (ट्रस्टी बननो) होय सो दुसाला ओढ़ो. तब जो आयके कहे ताकों देऊ. सो जाकों गिरनो होयगो सो आपु ही आयेगो".

(**श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण,** ८४ वैष्णव वार्ता, कृष्णदासकी वार्ता प्रसंग-१०)

(५) अपने सेव्य-स्वरूपकी सेवा आप ही करनी और उत्सवादि समयानुसार अपने वित्त अनुसार करने वस्त्रभूषण भांति-भांतिके मनोरथ करी सामग्री करनी.

(**श्रीगोकुलनाथप्रभुचरण** २४ वचनामृत)

(६) यहां भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें सेवोपयोगी स्थानके रूपमें निज घरको विधान उपलब्ध होयवेसूं, अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवा छोड़के दूसरी जगह (अर्थात् हवेलीनूमें, जैसे आजकल, भेट-सामग्री पधराके नित्य या मनोरथनकी झांकी कर लेनो वैष्णवनूने पुष्टिमार्गमें परमधर्म मान लियो है वैसे) भगवत्सेवा करवेवालेनूकुं कभी भक्ति सिद्ध नहीं हो सके हे.

(**श्रीवल्लभात्मज-श्रीबालकृष्णजी,** भक्तिवर्धिनीव्याख्या-२)

(७) जब सन्तदासको सगरो द्रव्य गयो तब श्रीठाकुरजीकी सेवामें मंडान श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों राखे और श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते चौबीस टका पूंजी करि कोडी बेचते. सो श्रीठाकुरजीकी पूंजीमेंते तो कासिदको दियो न जाई सो कमाईको टका दिये. तब इनकी मजूरीको राजभोग न भयो सो महाप्रसाद हू न लियो. टकाके चूनको न्यारो भोग धरते सो राजभोग जानते, महाप्रसाद लेते, ओर नित्यको नेग बहोत श्रीठाकुरजीके द्रव्यसों होतो ताते आपुनी राजभोगकी सेवा सिद्ध न भई (जाने). कासिदको दिये सो नारायणदासको लिखें जो "तुम्हारी प्रभुतातें एक दिन राजभोगको नागा पर्यो जो मेरी सत्ताको भोग न धर्यो!" या प्रकार सन्तदास विवेकधैर्याश्रयको रूप दिखाये. विवेक यह जो श्रीगुसांईजीको हूंडी पठाई-आपुनी सेवा न भई-राजभोगको नागा माने, धैर्य यह जो श्रीठाकुरजीके द्रव्यमेंते खान-पान न किये. आश्रय यह जो मनमें आनन्द पाये-दुःखक्लेश न पाये.

(**श्रीहरिराय महाप्रभु,** भावप्रकाश ८४ वैष्णवनकी वार्ता-७६)

(८) पारिश्रमिकके रूपमें वित्त दे के कोई दूसरेके द्वारा सेवा कराई जावे तो चित्तमें अहंकार तो बढ़े ही है परन्तु ऐसी खरीदी भई सेवासु चित्त भगवानूमें कभी चोंट नहीं सके है. भगवत्सेवार्थ कोई दूसरेसूं पारिश्रमिकके रूपमें धनादिक लिये जावेपे तो, जैसे पंडा-पुरोहितनूकुं यज्ञ-यागादिको फल नहीं मिले है परन्तु यजमाननूकुं ही मिले है वेसे ही सेवाकर्ताकी सेवा

निष्फल बन जाय हे शंका: यजमान जैसे दक्षिणा दे के पुरोहितनूके द्वारा यज्ञयाग करा लेवे है वैसे ही भगवत्सेवा (आजकल जैसे पुष्टिमार्गीय हवेलीनूमें वैष्णवगण गुसांई-मुखिया-भीतरिया-समाधानीकी बटालियनसूं करवा लेवे हें वा तरह:अनुवादक) करा लेवेमें क्या बुराई है? समाधान: या शंकाको ये समाधान जाननो जो कर्ममार्गमें ऐसो करनो विहित होवेसुं पुरोहितनूसूं कर्म सम्पन्न करा लेनो आपत्तिजनक नहीं है. भक्तिमार्गमें, परन्तु, या तरहसूं भगवत्सेवा करा लेवेको कहीं विधान उपलब्ध नहीं होयवेसूं कोई दूसरेकुं धन दे के सेवा करानो अनुचित ही हे. भक्तिमार्गमें तो भगवदुक्त प्रकारसूं (निज घरमें निज परिजननूके सहयोगद्वारा निजी तन-मन-धनसूं ही भगवत्सेवा करनी चहिये.

(**गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण,** सिद्धान्तमुक्तावली विवृतिप्रकाश-२)

(९) लौकिक अर्थकी इच्छा राखिके जो भगवद्भजनमें प्रवृत्त होय सो सर्वथा क्लेश पावे हे. इतने कछू भेट-सामग्री मिलि जाये ऐसे लाभकेलिये पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो पूजादिकमें प्रवृत्त होय सो 'पांखड़ी' ओर 'देवलक' कह्यो जाय हे. तासूं लाभपूजार्थ सिवाय जामें निषेध नहीं हे ऐसी रीतिसूं "मेरो लौकिक सिद्ध होय" ऐसी इच्छासूं जो भजनमें प्रवृत्त भयो होय सो 'लोकार्थी' कह्यो जाय है.

(**नि.ली.गो.श्रीनृसिंहलालजी महाराज,** सिद्धान्तमुक्तावली-टीका श्लोक १६-१७)

(१०) जो श्रीवल्लभकुल हैं वे तो आपुने सेव्यस्वरूपपें कैसो स्नेह राखत हैं जो एक ठौर द्रव्यकी ढेरी करो और दूसरी ठौर श्रीठाकुरजीकों पधरावो तो श्रीवल्लभकुल वा द्रव्यकी ओर देखेंगे हु नाहीं अरु श्रीठाकुरजीकों अतिस्नेहसों पधराय लेंगे. परि जो या कलिको जीव है वाकुं तो द्रव्य बहुत प्रिय है. तासों वो तो श्रीठाकुरजी सन्मुख हु नाहीं देखेगो अरु केवल वैभवकुं देखेगो अरु मोहित होय जायेगो.

(**नि.ली.गो.श्रीमट्टुजी महाराज,** ३२ वचनामृत वचनामृत-५)

(११) श्रीउदयपुर दरबारकुं आशीर्वाद! याके द्वारा सूचित कियो जावे हे कि चल-अचल सम्पत्तिके आर्थिक तथा स्वामित्वकी व्यवस्थाके बारेमें योग्य व्यक्तिनूकी एक सलाहकार समिति नियुक्त कर ली गई हे सेवा आदि

विषयनूमें पुरातन तथा प्रवर्तमान प्रणालिके अनुसार काम कियो जायेगो ओर यदि पुरातन परम्पराको बाध न होतो होयगो ओर समिति कोइ तरहके सुधारकी इच्छा रखती होयगी तो ऐसे सुधार भी स्वीकारे जायेंगे. ओर श्रीठाकुरजीको द्रव्य अपने व्यक्तिगत उपयोगमें नहीं वापर्यो जायेगो जेसी कि परम्परा आज भी हे ही ओर याकुं निभायो जायेगो. तो भी मेरे पूर्वजनूके समयसूं चले आ रहे मेरे स्वामित्वके हक्क वा ही तरह कायम रहेंगे.

(**गोस्वामी तिलकायत नि.ली.गो.श्रीगोवर्धनलालजी महाराज, श्रीनाथद्वारा,** डेक्लेरेशन मिति भाद्रशुक्ला पञ्चमी वि.सं.१९४८=ता.५-९-१८९३)

(१२)...या ही तरह अपने यहां जो सन्मुखभेंट धरी जाय हे वो भी देवद्रव्य होवे हे; और वा सामग्रीकुं काममें नहीं लियो जाय है. श्रीगोकुलनाथजी और श्रीचन्द्रमाजी के घरमें आज भी ये नियम पाल्यो जाय हे. वहां जो सन्मुखभेट आवे हे, वाकुं कीर्तनीया-महावनीया ले जावे हे. वो वल्लभकुलको श्रीयमुनाजीको पंडा हे. दूसरो कोई वाको अनुकरण करे तो वो अनुचित है...हम श्रीनाथजीके सामने जो सन्मुख भेंट धरे हैं वो श्रीमहाप्रभुजीकी पादुकाजीकुं घरें हैं फिर भी वो आभूषणनूमें वापरी जावे है, सामग्रीमें नहीं. सन्मुखभेंट धरवेमें बहोत अनाचार होवे है. या तरहसूं आयो द्रव्य 'देवद्रव्य' बने हे...वाकुं लेवेवालेकी बुद्धि बिगड़े बिना नहीं रहे है.

(**नि.ली.गो.श्रीरणछोड़लालजी महाराज, राजनगर,** वचनामृत.४८४-८७).

(१३) महाराजकुं जो आमदनी वैष्णव आदिनूसूं होवे हे वामेंसूं घरखर्चाके रूपमें महाराज ठाकुरजीकी सेवाको खर्चा निभावें हें. ठाकुरजीकेलिये चल या अचल सम्पत्ति अलगसूं निकालके वामेंसूं ठाकुरजीकी सेवाको खर्च निभायो नहीं जावे हे. ठाकुरजीके वैभवको, नेगभोगको, आभूषण-वस्त्र आदिको खर्च महाराज स्वयं अपनी आमदनीके अनुसार निभावे हें... ठाकुरजीके सन्मुख भेंट धरी नहीं जा सके... ठाकुरजीकी भेंट देवमन्दिरमें भेजनी पड़े हे महाराज वा भेंटकुं अपने उपयोगमें ला नहीं सकें.

(**नि.ली.गो.श्रीवागीशलालजी महाराज, अमरेली,** श्रीवागीशलालजीके आम-मुखत्यार:"अमरेलीहवेली व्यक्तिगत है या सार्वजनिक" मुद्देपर

सन्१९०९-१०में गायकवाडी बड़ौदा राज्यकी कोर्टमें दी गई जुबानी)

(१४) जैसे अपने पूर्वपुरुष स्वयं अपने धर्मके सत्यस्वरूप तथा शुद्धाद्वैतसिद्धान्त कुं पूर्णतया समझके वैष्णवधर्मको यर्थाथ उपदेश लोगनूकुं देते हते; और मध्यवर्ती कालमें जो सम्पत्ति आदिके कारणनूसूं हमने बहोत हद तक छोड़ दिये हें; या कारणसूं अधिकांश लोगनूमें साधारण सेवा और केवल वित्तजा भक्ति की ही रूढ़िके अनुसार जानकारी बच गयी हे.

(**पञ्चमगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी, कामवन** मुंबईके वैष्णवनूकुं लिखित पत्र:'आश्रय' अप्रिल ८७ के अंकमें प्रकाशित)

(१५) वकील: यदि कोई भी पुष्टिमार्गीय मन्दिरमें वैष्णव श्रीठाकुरजीकी सेवा और नेग-भोग केलिये और श्रीठाकुरजीकी सेवाकुं निभावेकेलिये; भेंट आदि दे के वित्तजा सेवा करते होंय और वा मन्दिरमें तनुजा सेवा भी करते होंय तो वो "मन्दिर पुष्टिमार्गीय नहीं होवे" ऐसे आपको कहनो हे?

पू.पा.महाराजश्री: पुष्टिमार्गीय वैष्णवनूकेलिये स्वतन्त्रतया तनुजा या वित्तजा सेवा करवेकी कोई प्रक्रिया नहीं हे. और ऐसी सेवा की जाती होय तो वाकुं साम्प्रदायिक मन्दिर नहीं कह्यो जा सके.

(**नि.ली.गो.श्रीव्रजरत्नलालजी महाराज सुरत** "नड़ियादकी हवेली वैयक्तिक हे या सार्वजनिक" विवादमें पुष्टिमार्गके विशेषज्ञ साक्षीके रूपमें दी जुबानी)

(१६) हमारा प्रमुख सिद्धान्त है 'असमर्पित त्याग'. उत्तम उपाय तो यही है कि घरमें जो भी रसोई बने वह प्रभुको भोग धरके बादमें ही महाप्रसाद लिया जाय.... जहां तक असमर्पितका त्याग नहीं होगा वहां तक बुद्धि अच्छी नहीं हो सकती. सानुभावता कब सिद्ध हो सकती है? जब हमारी बुद्धि निर्मल हो... आज हम हीर (घरमें बिराजते सेव्य प्रभु) को परख नहीं सकते. सच्चे हीरेको जौहरी ही परख सकता है. स्थिति क्या है कि हम जूठे हीरेको सच्चा मानकर उसीके पीछे (हवेली-मन्दिरोंमें) दौड़ लगा रहे हैं. श्रीमहाप्रभुजीने तो निधिरूप सच्चा हीरा हमको दिया है. भगवान् गीतामें कहते हैं कि "दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमेश्वरम्". भगवान्को पहचाननेकेलिये तो दिव्यता प्राप्त होनी चाहिये. दिव्यता ही आत्मबल है.... अतः

मेरा तो आप लोगोंसे साग्रह अनुरोध है कि आत्मबल प्राप्त करनेकेलिये अपना कुछ दैनिक नियम बनाईये. षोडशग्रन्थके पाठका नियम लीजीये.

(**द्वितीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा,** श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत ७, पृष्ठ.१२४)

(१७/क) और जब जनरल पब्लिक ट्रस्ट है तब ठाकुरजीकुं गोस्वामीके सम्बन्धसूं पृथक् करके, ठाकुरजीकुं सब सम्पत्ति अर्पण करके अर्थात् भेंट करके रिलीजिअस एंडॉमेन्टके रूपमें भये वे ट्रस्ट हैं. ऐसी अवस्थामें इन ट्रस्टनसूं जो नेग-भोग चलायो जावे है, वो देवद्रव्यसूं चलायो जा रह्यो है. देवद्रव्यको उपभोग करनेवालो अन्तमें देवलक ही होवे है. श्रीमदाचार्यचरणने प्रभुकी सोनेकी कटोरी गिरवी रखके जब भोग अरोगायो तब आपने वा द्रव्यसूं समर्पित सारोको सारो प्रसाद गायनूकुं खवा दियो. ये है साम्प्रदायिक सिद्धान्त. या प्रकारके आदर्शरूप सिद्धान्तनूको जा (सार्वजनिक मन्दिर-हवेलीकी) प्रथासूं विनाश होवे, आचार्यनूकुं देवलक बनायो जाय, वा प्रथाकुं जितनी शीघ्र सम्प्रदायसूं हटा दी जाय, उतनो ही श्रेय यामें गोस्वामिसमाज तथा वैष्णवसमाज को निहित है.

(१७/ख) भगवत्सेवा सम्प्रदायकी आत्मरूप प्रवृत्ति है. आचार सेवाको अंग है, सेवाके अनुकूल आचारको पालन कियो जानो चहिये. आचार-पालनकुं प्रमुखता देके भगवत्सेवाको त्याग भी उचित नहीं है. भगवत्सेवा जैसे भी बने (अपने घरमें) करो...गुरुघरनूमें मत भेजो...यदि हम भगवद्द्रव्यकुं पेटमें डालेंगे तो वो अपराध है. ग्रन्थनूके अध्ययनके प्रति हमकुं समाजकुं आकृष्ट करनो चहिये.

(**नि.ली.गो.श्रीदीक्षितजी महाराज, मुंबई-किशनगढ़** (१७/क)''आचार्यो-च्छेदक ट्रस्ट प्रथासे पुजारीपनकी स्थापना घोर सिद्धान्तहानि एवं घोर स्वरूपच्युति'' लेख.पृष्ठ.७, १७/ख.लेख 'श्रीवल्लभविज्ञान अंक ५-६ वर्ष १९६५में प्रकाशित वक्तव्य)

(१८/क) वैष्णवनूके पास जो भी परम पदार्थ है वाको अस्तित्व आजके ही दिनको आभारी है. कालकी भीषणता और परिस्थितिकी विषमता के अत्यन्त विकट युगमें श्रीमत्प्रभुचरणनूके दिव्य सिद्धान्तनूके ऊपर अटल रहवेपर

ही जीवमात्रको ऐहिक और पारलौकिक कल्याण हो पावेगो. अन्याश्रयके त्यागकी भावनापे जगत्के जीव दृढ़ रहें तो वैष्णव-हवेलीनूके वैभवके कारण जो वैष्णव घरसेवाकुं भूल चुके हते, संयोगवशात् उन हवेलीनूमें श्रीके दर्शन आज बन्द भये हैं यासुं अब वैष्णवनूके घर पुनः भगवत्सेवासूं किलकिलाते हो जायेंगे. ये लाभ सम्प्रदाय और सम्प्रदायीन् केलिये मामूली नहीं रहेगो. ईश्वरेच्छा अनाकलनीय होवे है. मोकुं तो श्रद्धा है के या कठिन परीक्षामें हम सभीनूको श्रेय ही सिद्ध होवेवालो है.

(१८/ख) मेरे अनुयायीनूकुं दो प्रकारकी दीक्षा दउं हूं. प्रथम कंठी बांधनी तथा दूसरी ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा. कंठी-बांधनी साधारण वैष्णवनूकुं ही दी जावे हे तथा ब्रह्मसम्बन्ध विशेषरूपसूं उन अनुयायीनूकुं, जो सेवामें विशेषरूपसूं आगे बढ़नो चाहे हें. पहली दीक्षाकुं 'शरण-दीक्षा कहें हैं तथा दूसरी दीक्षाकुं 'आत्मनिवेदन कहें हैं. शरणदीक्षासूं वैष्णव सिर्फ नामस्मरण करवेको ही अधिकारी बने है तो सेवावाले वैष्णवकुं ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा लेवेके बाद ही अधिकार मिले हे. ब्रह्मसम्बन्ध लेवे वालो वैष्णव अपने घरमें ही सेवाको अधिकारी होवे हे... हम स्वरूपकी सेवा नन्दालयकी भावनासूं करें हें. यालिये हम सातोंके सात पुत्रनूके घर 'घर' ही कहलावे हैं ओर हमारे घरकी सृष्टि 'तीसरे-घरकी-सृष्टि' कहलावे है.

(१८/ग) श्रीआचार्यचरणके सिद्धान्तोमें भगवत्सम्बन्ध और भगवत्सेवा को ही प्रधानता दी गयी थी. बादमें, परिलक्षित होता है कि, उसमें भी कुछ अन्तर आ गया.... श्रीआचार्यचरणके और श्रीप्रभुचरणके, सेवक हम देख सकते हैं कि सभी प्रकारके हैं. ऐसा नहीं है कि अमुक विशिष्ट व्यक्ति ही भगवत्सेवाकेलिये योग्य होता है और अमुक परिस्थितिमें ही भगवत्सेवा हो सकती हो ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है. अनेक प्रकारके जीव भगवत्सेवा करते थे. उनमें स्मशानवासी वेश्या आदिसे लेकर अच्छे विद्वान् ब्राह्मण भी थे आजके समयमें मुझे प्रतीत होता है कि हम उन चरित्रोंको भूल कर पीछेसे मुख्य बन गये ऐसे केवल भावात्मक रूपको ले कर बैठ गये हैं कि जो आज भी वैष्णवोंमें प्रचलित है.... मैं मानता हूं कि चरित्रोंका विचार करनेमें सिद्धान्तोंकी आवश्यकता होती है.

(**तृतीयगृहाधीश नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज, कांकरोली** (क) श्रीमत्प्रभुचरण प्राकट्योत्सव=ता.२४-१२-४८के दिन मुंबईके पुष्टिमार्गीय

वैष्णवनूकी सभामें अध्यक्षीय प्रवचन. (ख) बयान:मूर्तिबा कार्या.सहा.कमि. देवस्थानविभाग. खंड.उदयपुर एवं कोटा बजरिये कमिशन मु.कांकरोली.फाईल संख्या.१-४-६४. श्रीद्वारकाधीशमन्दिर दिनांक ७।११।६५. (ग) श्रीमद्वल्लभ अने श्रीहरिरायजी जीवनदर्शन भाग-२, वचनामृत २०मुं पृष्ठ.१४६,१४९).

(१९) आज मोकुं अपने हृदयके उद्गार कहवे दो, मेरो हृदय जल रह्यो हे मन्दिरनूमें मात्र द्रव्यसंग्रहकी प्रवृत्ति बच गई हे; ओर वोही अनर्थनूकी जड़ है. ऐसे मन्दिरनूके अस्तित्वसूं कोई लाभ नहीं है. हमारो सम्प्रदाय सामुहिक नहीं वैयक्तिक है. सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक अवश्य है परन्तु सार्वजनिक नहीं. "करत कृपा निज दैवी जीवनपर" या उक्तिमें 'निज शब्दको प्रयोग कियो गयो है. दैवीजीव कहीं भी हो सके हैं परन्तु सार्वजनिक रूपसूं नहीं. आज हम 'पुष्टि'को नाम लेवेके भी अधिकारी नहीं हैं!... आजको हमारो जीवन चार्वाक-जीवन हो रह्यो हे. क्या हम आज जा प्रकारको सम्प्रदाय हे वाकुं जिवानो चाहें हैं? यदि सच्चे सम्प्रदायकुं चाहो हो तो स्वरूपसेवा घर-घरमें पधराओ एवं नामसेवापे भार रखो... भक्तिकी प्राप्ति स्वगृहमें सेवा करवेसूं ही होयगी. आजके इन मन्दिरनूसूं कोई लाभ नहीं है क्योंकि इनमें द्रव्यसंग्रहकी प्रधानता आ गयी है; ओर जहां द्रव्य इकट्ठो होय है वहीं अनर्थ हो जावे है. आज सम्प्रदायको विकृत स्वरूप याके कारण ही है.

(**नि.ली.गो.श्रीकृष्णजीवनजी महाराज, मुंबई-मद्रास** 'वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष.१९६५)

(२०/क) जैसे स्वरूपसेवा स्वार्थबुद्धिवश और लौकिक कार्य समझके नहीं करवेकी श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है, वैसे ही नामसेवा भी वृत्त्यर्थ नहीं करनी चहिये, ऐसी आज्ञा श्रीमहाप्रभुजी निबन्धमें करें हैं... वृत्त्यर्थ सेवा करवेसूं प्रत्यवाय (दोष) लगे है. जैसे गंगा-जमुना जलको उपयोग गुदाप्रक्षालनार्थ नहीं कियो जा सके है, वैसे ही सेवाको उपयोग भी वृत्त्यर्थ नहीं करनो चहिये.

(२०/ख) तन और वित्त प्रभुकेलिये वापर्यो जाय तो मन भी प्रभुमें अवश्य लगे ही है अतएव श्रीवल्लभने उपदेश कियो है के "तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा". मानसी जो परा है वो सिद्ध करनी होय तो तनुवित्तजा सेवा आवश्यक

है. तन और वित्त कहीं एकत्र लगायो जाय तो चित्त भी वहां दिन-रात लग्यो रह सके है. दलालीको व्यवसाय करवेवालेके व्यवसायमें केवल तनसूं श्रम कियो जावे है. परन्तु वामें वित्त स्वयंको लगायो नहीं जावे है अतएव बजारके भावनूकी घट-बढ़में दलालकुं तनिक भी मानसिक चिन्ता होवे नहीं है... कोई बच्चाको पिता केवल ट्युशन फी देके समझ ले है के बच्चा परीक्षामें पास हो ही जायेगो. इन तीनोंकुं फलप्राप्ति होवे नहीं है क्योंकि तनुजा-वित्तजा दोनों नहीं लगी. अब तनुवित्त दोनों लगावेवालेके चित्तप्रवण होवेको उदाहरण देखें: एक दुकनदार दुकान और माल की खरीदीमें पूंजी लगाके व्यापार शुरु करे सुबहसूं रात तक वहां उपस्थित रहके जब तन भी व्यापारमें लगावे है तो या कारणसूं दिनरात वाकुं व्यापारके ही विचार आते रहे हैं : अच्छी तरह व्यापार कैसे करूं कैसे व्यापार बढ़े... अतः पुष्टिमार्गमें प्रभुमें आसक्ति सिद्ध होवेकेलिये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया समझायी गयी है कि भावपूर्वक भक्तकुं तनुवित्तद्वारा सेवा करनी चहिये.

(**नि.ली.गो. श्रीगोविन्दरायजी महाराज पोरबन्दर :** (२०/क) 'सुधाधारा पृ.११४. (२०/ख) 'सुधाबिन्दु पृ.७३)

(२१) "अति धन्यवादार्ह हे कि आपने इतनी महेनत करके सम्प्रदायके सिद्धान्तनूकुं कोर्टमें समझाये"-"हमारो यामें पूरो सहयोग रहेगो तनमनधनसे...हमारे सभी चि.बालक या कार्यमें सहयोग करवेकुं तैयार हें".

(**नि.ली.गो.-श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज,** जामनगर, : गो.श्याम मनोहरजी(-पार्ला-किशनगढ़ कुं भेजे दि.२६-१०-८६ और ७-११-८६ के पत्रनूमें).

(२२/क) ट्रस्ट हवेली-मन्दिर यानि पुष्टिभावोंकी मौत :

भगवान्-स्वधर्म पूंजीसे बंधकर नहीं चलते; वे श्रद्धा और प्रेमपरवश होकर चलते हैं. आज जो (मन्दिरों-हवेलियोंके) ट्रस्टोंकी या न्यांसोकी प्रणाली चल रही है वह पूजीवादकी एक अभिनव दास्तां है जिसमें भगवान्, गाय, गुरु और धर्मानुयायिओं पर एकछत्र साम्राज्य करनेकी लालच समायी हुई है. इस तरहसे आदर्शका जामा पहने हुए इस धनलिप्सा और धनिकों की दास्तांमें वह प्रेम नहीं है जो एक अकिंचन भक्तके "रहिये मेरे ही महल अनत न जैये..." इस आत्मीयता भरे मीठे बैनोंमें झलकती

है. यह प्रेमभरा अनुनय है और आजका ट्रस्टी और सत्ता भगवान्‌को पूंजी या सत्ता के जोर पर यह कहते हैं कि "इस स्थानसे जरासा भी नहीं हिलना, ध्यान रखना, मैं तुम्हारा व्यवस्थापक, ट्रस्टी हूं, चाहो या न चाहो, तुमको मुझपर भरोसा करना ही होगा, समझे!" लोग समझते हैं कि यह धर्मरक्षाका ही एक सर्वश्रेष्ठ रूप है, किन्तु... इसमें भी प्राणोंकी उतनीही असुरक्षा है जो मौतसे कम नहीं...वल्लभाचार्यने ऐसे जकड़े हुवे ईश्वरको दामोदर माननेसे भी इंकार कर दिया.

ठाकुरजीको ट्रस्टमें पधरानेवालोंने ठाकुरजीको बेच दिया है :

...अच्छी तरह सोचो कि ऐसी कौन माता होगी जो अपने लड़केको धनकी लालचमें बेच दे; या कोई प्रेमी कभी भी प्रत्यक्ष तो क्या सपनेमें भी ऐसा करना तो दूर रहा, सोच या देख भी नहीं सकता, इस विषयमें एक कहानी याद आती है...एक बार रुपये पैसेवाली बांझ औरत (आधुनीक दर्शनीया वैष्णव और ट्रस्टी) ने एक गरीब (गोस्वामी गुरु) का बच्चा (ठाकुरजी) खिलानेके लिये लिया. कुछ दिनों बाद बच्चेकी मांने जो गरीब थी बच्चा मांगा तो अमीर औरतने कहा कि ये तो मेरा ही बच्चा है, तेरा नहीं है. जो तुझसे हो सके वह करले. बैचारी गरीब मां...न्यायकी मांग करने लगी...मगर सभी (वैष्णव,आमजनता,सरकार) लोग उस गरीबके खिलाफ गवाही देने चले आये.

इस तरह धनने ईमान खरीदा, भगवान् खरीदा और उस उन्मुक्त बालककी गुंजती किलकारियां हमेंश-हमेंश के लिये चुप हो गई. लोगोंने कहा कि अब भगवान् बोलते नहीं, हंसते नहीं, खेलते नहीं हैं. किन्तु यह आशा उससे की जा सकती है जो जीवित हो, किसीके प्यारमें बन्धा हो. फिर उस खूबसूरत बच्चेकी नुमाईश और प्रदर्शन करने लगा, जैसे बेबी मिल्कके डिब्बेका चित्र या मोडेलका चित्र होता है.

ट्रस्टीओं द्वारा की जाती सेवा पूतनाके प्रेमके समान है :

रोज यह सोचा जाने लगा कि इससे क्या आमद हुई, कितनी बिक्री हुई. और सभी व्यवस्थापक इसकी निगरानी करने लगे. जब कोई आता देखने तो उसे दुलार किया जाता. लोग समझते हैं कि यह प्यार है, भक्ति है. मगर था तो वह व्यवसाय ही, जिसका रूप पूतनाके प्रेमकी भांति सच्चाईको छिपा गया और भोली यशोदाने लाल उसे खिलाने

दे दिया.

मन्दिर-हवेलियां दुकान बन चुके हैं :

कितनी बिक्री हुई इसका हिसाब रखा जाने लगा धर्म और धर्मस्वरूप यह बालक भगवान् जो प्यारसे भक्तोंके लिये भोला बन गया था. लोगोंने उससे फायदा उठाया और कह दिया - यह सार्वजनिक ईश्वर है. उस सर्वशक्तिमानको स्वार्थका साधन बना दिया और जगन्नियन्तापर धननियन्ता शासन करने लगे. हालत यह हुई कि कौन उसको खिलाये-पिलाये? वह तो सार्वजनिक था!

मन्दिर-हवेलियोंके ठाकुरजी जड़ बन चुके हैं :

द्वारकाधीशको भी यह छूट थी कि वह विदूरके घर साग खा सकता था किन्तु यह तो नितान्त निक्रिय बन गया, केवल दिखावा मात्र!

...क्या यह सिद्धान्त किसी प्रियतमके लिये प्रियतमा या माता को मान्य होगा? किन्तु यह आज मान्य है और मान्य करना होगा. केवल पैसेकेलिये अपना दिल नहीं, दुनियाका दिल बहेलानेको, वारांगनाकी भांति, जिसमें हृदय नामकी कोई वस्तु रह नहीं सकती और है तो बह मानी नहीं जाती. सभीका अधिकार है उसपर, जैसे वह सम्पत्ति हो, जो चाहें खरीदें, जो चाहे प्रयोगमें लायें, जैसा चाहे वैसा करे! उसको करना ही होगा. कैसी अनोखी है यह भक्ति और प्रेम की परिभाषा! फिर भी स्वतन्त्रताका घोष किया जाता है! क्या यह ही वह भक्ति है जिसे श्रीवल्लभ "महात्म्यज्ञानपूर्वक सुदृढ सर्वतोधिक स्नेह" कहते हैं? आज इस भक्तिका माहात्म्य ये ही है कि किस भगवान्‌के यहां कितनी आमद होती है!

ट्रस्ट मन्दिर पुष्टिप्रभुके लिये जेलखाना :

...अब कोई प्यारसे यह नहीं कह सकता कि मेरा बालक देरसे सोया है, जल्दी मत जगाना. सूरदासका पद भगवान्‌को जगानेकेलिये दुलार नहीं रहा, न कलेउके पदमें ममताका अनुनय है; यह तो कम्पलसरी ब्रेकफास्ट है जिसे समय पर कैदीकी तरह ईश्वरको करना पड़ता है. मानो एक जेलखानेमें उठने या खाने की घंटी बजी हो! ठाकुरजी बिक रहे हैं; मनोरथी-दर्शनार्थी भक्त नहीं ग्राहक हैं.

...श्रीवल्लभाचार्यने जीवनमें अपने कलेजेके टुकडे अपने आराध्यको कभी दूर नहीं होने दिया. आज वो बिक रहा है धनिकोंके हाथों और

जकड़ा है सरकारी शिकंजेमें, पब्लिक् पोलिसीके अंदर, और अब उसे म्युझियमकी शोभा बनानेका समय निकट आ रहा है.

धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है :

बेचारे धर्म और भगवान् की दशा किसी कोल्गर्ल्से भी बदतर है...भगवान्की सुंदर विनिन्दितमुक्ता-दंतपंक्ति बगला भगतोंको देखकर खिल जाती है. सदानन्द निरानन्द होकर इन ईमान खरीदनेवालोंके हाथों खुल्लेआम बेचा जा रहा है...सबको सहारा देनेवाला स्वयं बेसहारा होकर बैठा है अपने धनिक ग्राहकोंकी प्रतीक्षामें!

हवेली-मन्दिरमें देवद्रव्यका प्रसाद खाना मतलब नरककी टिकिट कटवाना :

धर्मशास्त्रमें जिस बुद्धिमान् ब्राह्मणको देवलकवृत्तिसे अधम माना गया है...आज उस देवलकवृत्तिका धन चटकारे लेकर वैष्णवसमाज खा रहा है. नाथद्वारेमें क्या चिज स्वादिष्ट है...ये ही विवेचन करता है...किन्तु मेरा कर्तव्य क्या है यह कभी नहीं सोचता. श्रीनाथजीमें अब धनिकोंका साम्राज्य है.

...नाथद्वारामें आजकल पैसा अधिक आ रहा है, क्योंकि वहां इन धनिकोंका साम्राज्य है. इनके दलाल श्रीनाथजीकी महिमा बढ़ाते हैं...गरीबोंकेलिये ठहरनेवाला भगवान् अब धनिकोंकेलिये ठहरता है.

श्रीवल्लभके आदर्शोंके स्मशान जैसें मन्दिर-हवेलियां :

भगवन्नाम भागवतसे अस्पतालोंकेलिये करोड़ोंकी रकम जमा होती है, और जामनगरमें आदर्श स्मशान भी है, किन्तु यहां तो स्मशानसे भी आदर्श गायब होता जा रहा है! शायद आदर्शका स्मशान है यह ट्रस्ट और सरकारी देवालय.

मन्दिरका प्रसाद खाया नहीं जा सकता है :

...वल्लभमतमें ये सिद्धान्तत गलत है ओर ऐसे देवस्थानोंका चढावेका प्रसाद भी नहीं खाया जा सकता. क्योंकि वहां देवलकवृत्ति ही प्रधान है.

दर्शन-मन्दिर धर्मप्रचारका माध्यम नहीं हो सकते :

जहां तक भगवत्स्वरूप या मूर्तिका प्रश्न है, धर्मप्रचार उनसे सम्बन्धित नहीं है और न उसे उचित कहा जा सकता है. क्योंकि भगवान्ने धर्मकी व्यवस्थाकेलिये वेदव्यासादि अनेक ज्ञानावतार और अंशावतार धारण करके

ही धर्मरक्षा की है. आजकी (सार्वजनीक हवेली-मन्दिरकी) व्यवस्था आचार्योंचित और धार्मिक या भारतीय ही नहीं है तब वल्लभाचार्यसम्मत होनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता...हमारा इस विषयमें सुझाव है कि एक अलग व्यवस्था...करनी चाहिये जिससे वल्लभसिद्धान्तोंकी रक्षा हो सके. यदि ऐसी व्यवस्था नहीं कि जाती तो देवद्रव्य होता है. जिसका सेवन करनेसे आचार्य स्पष्ट कहते हैं कि नरकपात होगा.

नकली बैठके :

बैठकोंकी भावगंगा तो अब घरबैठे ही मनुष्यको पवित्र करने अपनी उत्ताल तरंगोसे सारे घर-बारको ही सराबोर करने लगी है!...८४ बैठकोंसे काम नहीं चला तो अब महाप्रभु श्रीवल्लभको मुसलमानोंके खेतोंमें अपनी झारी और अन्य चिन्ह प्रकट करनेको विवश होना पड रहा है!

("हमारी धार्मिक स्थितिका वर्तमान स्वरूप एवं भविष्यकी व्यवस्थाहेतु प्रतिवेदन" दिनांक. २५।२।८१)

(ख) श्रीवल्लभाचार्यने सेवाको खरीदनेकी बात नहीं कही है कि खरीद आओ रूपये देकर. नहीं! 'तनुवित्तजा'पदका अर्थ ही यह है कि वह समस्त पद है. जहां तन लगे वहीं धन लगे तब ही सेवा हुई. परन्तु धन लगे और तन न लगे तो सेवा हुई नहीं कहलाती है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.५९)

(ग)..."सेवाऽपि कायिकी कार्या" यह नहीं कि पैसे दे दिये. पैसे देकर घरमें विवाहिता पत्नीको नहीं लाया जाता है, वैश्याको लाया जाता है. वेश्यासे घर नहीं बसता है यह स्पष्ट है. अतः साफ बात है कि भगवत्सेवा और वरण में पति-पत्नीका दृष्टान्त देते हैं कि जिनमें आत्मीय सम्बन्ध है. (प्रथमेशवाक्सुधा-१, पृ.७४)

(घ) भेंट भी आचार्यके सन्मुख ही होती है. प्रभुके सन्मुख भेंट नहीं होती है. देवलकवृत्तिसे बचनेकी विधि और वैदिक व्यवस्था को सम्हालकर रखना चाहिये अन्यथा बुद्धि बिगड़ेगी. ऐसा करनेसे पतन होता है, और हुवा है. (वहीं पृ.१७१)

वस्त्र-अलंकारोंमें मन अधिक जाता हो तो ऐसा साहित्य रखनेकी आवश्यकता नहीं है. ऐसा करनेसे लौकिक बठता है और धर्मभावना नष्ट

होती है...अतः वैभव बढ़ानेकी श्रीगुसांईजीने ना कही थी. और श्रीमहाप्रभुजीने नावको डुबोकर पुरुषोत्तमको ही घरमें पधराया था. (वहीं पृ.१८०)

(ङ) धर्म की परम्परा प्रदर्शनपर आधारित नहीं है पर एक यथार्थ जीवनका उज्वल पक्ष है...कुनवारा और अन्य मनोरथों...का रूप आगे चलकर महाप्रभु श्रीवल्लभकी आचार-परम्परा और सम्प्रदायकी मर्यादा को आहत करनेवाला होगा जिसकी आज कल्पना भी की नहीं जा सकती है. (वहीं पृ.१९७)

(नि.ली.गोस्वामी श्रीरणछोडाचार्यजी प्रथमेश.)

(२३/क) प्रश्नः'देवद्रव्य कायकुं कहे हैं? 'देवद्रव्य'को मतलब देवको द्रव्य. ऐसो द्रव्य या पदार्थ जो देवकुं ही उद्देश्य बनाके अर्पण कियो गयो होवे वाकुं 'देवद्रव्य कहे हैं. याही प्रकार गुरुकुं उद्देश्य बनाके अर्पण किये गये द्रव्यकुं 'गुरुद्रव्य' कह्यो जाय है....मन्दिरनमें ठाकुरजीके सन्मुखमें भेंट धरे जाते द्रव्यकुं और ट्रस्टकी ऑफिसमें आते द्रव्यकुं तो स्पष्ट शब्दनमें 'देवद्रव्य' कह्यो जा सके है; और वा द्रव्यसूं सिद्ध होती सामग्रीमें भगवत्प्रसादी होवेके बाद महाप्रसादपनो तो आवे है परन्तु वाके साथ वामें देवद्रव्यपनो भी रहे ही है. याही कारण वैष्णवनकुं ऐसे महाप्रसादकुं देवद्रव्य समझके ही व्यवहार करनो चहिये. ऐसे महाप्रसादकुं लेवेमें देवद्रव्यको बाध तो रहे ही है.

(२३/ख) मन्दिरके स्थलके फेरबदलके बारेमें श्री गो.पू.१०८ श्रीबालकृष्णलालजीने कह्यो कि पुष्टिमार्गमें सार्वजनिक मन्दिरकी परम्परा नहीं है यामें व्यक्तिगत स्वरूप निजी स्वरूप की ही बात है; और याही कारण पुष्टिमार्गमें सेवाप्रकार देवालयके प्रकार जैसो नहीं है. मन्दिरको निर्माण भी घर जैसो होवे है कहीं भी ध्वजा-शिखर नहीं होवे है वैष्णव भी घरमें ही सेवा करे है तथा वाकुं 'मन्दिर ही कहे है...

(नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी महोदय, सुरत, (क)'वैष्णववाणी अंक.३, वर्ष मार्च १९८३.(ख)'गुजरात समाचार अंक २५-५-९३में प्रकाशित)

(२४) पुष्टिमार्गकी आज उपेक्षा होती जा रही है. उसकी परम्परा ही अब टूटती जा रही है. इसके मूलमें यदि कुछ है तो वह है आजकी साधन-सम्पत्ति. वही हमारे संस्कार बिगाड़ रही है. अभी भी जिस घरमें

अलौकिक (प्रभु) सेवा होगी वहां पुष्टिमार्ग जरूर निभेगा. श्रीमदाचार्यचरणके मतानुसार गृहसेवा और अपने माथे बिराजते ठाकुरजीका अति स्नेहसे जतन करना ही सच्चे संस्कारका मूल है... श्रीगुसांईजीके समयमें छप्पनभोग जैसे मनोरथोंकी शुरुआत करनेके समय (उनमें) केवल लौकिकता ही बढ़ेगी ऐसी स्पष्ट सूचना दी गयी थी... आजकल... मंदिरोंका उपयोग यश-किर्ती प्राप्त करनेके लिये होने लगा है. मंदिरोमें प्राधान्य मनोरथीका होने लगा है. श्री(ठाकुरजी), गुरु तथा सेवाभावना का उपहास होने लगा है. जबसे मार्गीय सिद्धान्तोंका उपहास होने लगा है तबसे मंदिरकी उसके संचालकोंकी वृत्ति ही पलट गई है. आडंबर और यश को पुष्ट करनेकेलिये... दर-दर भटकनेकी स्थिति पैदा हो गयी है... इन सबका सच्चा उपाय इस कलिकालमें अपने सन्तानोंको जरूरी संस्कार अपने घरसे ही दिये जायें ये ही है.

...मंदिरोंका सम्पूर्ण व्यापारीकरण होने लगा है... सम्पत्ति... प्राप्त करनेकी लालच बढ़नेसे प्रभु(स्वरूपसेवा)को भी हम व्यापार स्वरूपमें परिवर्तित करने लगे हैं.

(जुलाई-२००७, पृ.६)

ठाकुरजीकी सेवा चोरकी तरह करनी चाहिये... सेव्यस्वरूपका मैं सेवक हूं उसका ढिंढोरा पीटना या उसका प्रदर्शन करना वह भी जीवके दैन्यमें विक्षेप उत्पन्न कर सकता है.... अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीकी सेवामें भी इतनी गुप्तता जरूरी है. "प्रीत हियेंमें राखिये प्रकट करे रस जाय" की रीतिसे तुम्हारे प्राणप्रेष्ठ तुमको जिस रसकी प्राप्ति करातें हैं उसे कभी भी प्रकट नहीं किया जा सकता है.

(सप्टेंम्बर-२००४, पृ.७)

आजतो श्रीनाथजी-नाथद्वारा, चंदबावा-कामवन और अन्य ठाकुरजीके दर्शन करते ही अपने माथे बिराजते ठाकुरजी भुला जाते हैं. पुष्टिमार्गमें तो 'श्रीजी'का अर्थ ही अपनें माथे बिराजते ठाकुरजी होता है. जिसमें 'तिरु'का अर्थ श्री और 'पति'का अर्थ नाथ (यानि श्रीनाथ) ही होता है. अर्थात् अपने घरमें बिराजते ठाकुरजीमें ही अपने सर्वस्वका दर्शन होना चहिये. उनको आरोगाया मतलब समस्त जगतको प्रसाद लिवा दिया ऐसा भाव सिद्ध होना चाहिये. यहां तो उससे उलटी गंगा बह रही है. अपने सेव्य ठाकुरजीमें सभी निधिस्वरूपोंके दर्शन होनेके बदले अब तो अरे,

वहां तक कि जीवमात्रमें अपन अपने ठाकुरजीका दर्शन करनेका विचार कर रहे हैं! और फिर बुद्धिकी चतुराई भी वापर रहे हैं कि सभीमें ठाकुरजीका अंश है इसलिये घरमें प्रभुकी सेवा करें या अन्योंकी करें एक ही बात है!! अतः अन्यसेवामेंसे सन्तोष लेना शुरु किया. इससे शरीर, पैसा, कीर्ति सबकी रक्षा हो और ऊपरसे परम भगवदीय कहलाने लगें!!! (सप्टेम्बर-२००७, पृ.७)

(**पंचमगृहाधीश.नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी महाराज,** कामवन-विद्यानगर, वैष्णवता-'सांचे बोल तिहारे', प्रकाशक: पं.पी.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज)

(२५/क) हम श्रीवल्लभाचार्यजीकी आज्ञाको पालन कहां कर रहे हें? अपने यहां गृहसेवा कहां (रह गयी) है? केवल मन्दिरनूमें दर्शनसूं क्या लाभ है? श्रीमहाप्रभुजीकी आज्ञा है "कृष्णसेवा सदा कार्या" . यदि श्रीमहाप्रभुजी मन्दिरकुं मुख्य मानते तो अपनी तीन परिक्रमानूमें अनेक मन्दिर स्थापित कर देते. श्रीगुसांईजीने श्रीगिरधरजीकुं सातस्वरूपके मनोरथ करते समय या प्रकारकी चेतावनी दी थी. मन्दिरस्थापन करते समय उनकुं डर हतो के घरमेंसूं ठाकुरजी मन्दिरमें पधार जायेंगे. मेरे पिताजीने कल (उपर्युद्धृत वचनमें) जो कह्यो वो अक्षरशः सत्य है तुम अपने घरनूमें ठाकुरजीकुं पधराओ और सेवा करो.

(२५/ख) पुष्टिमार्गीय प्रणालिकाके अनुसार ट्रस्ट होनो उचित नहीं है. श्रीआचार्यचरणने प्रत्येक ब्रह्मसम्बन्धी जीवकुं आज्ञा दी है "गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः" (भक्तिवर्धिनी) अर्थात् गृहमें रहके स्वधर्माचरण करनो चहिये गोस्वामी बालक भी आचार्य होवेके बावजूद वैष्णव भी हैं. अतः आचार्यश्रीकी उपरोक्त आज्ञाकुं पालनो उनको भी कर्तव्य है... अतः मेरो तो माननो यही है के आचार्यचरणके सिद्धान्तके अनुसार वैष्णवनूकुं स्वयंके घरमें श्रीठाकुरजीकी सेवा करनी चहिये और धर्मग्रन्थनूको पठन-पाठन करनो चहिये. नहीं के मन्दिरनूमें जाके... ट्रस्ट तो पुष्टिमार्गीय प्रणालिकासूं संगत होवेवाली बात नहीं है प्रत्युत अपनी प्रणालीको भंग करवेवाली बात है.

(**नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीशजी महाराज दहिसर-मुबई,** क-'वल्लभविज्ञान'. अंक ५-६ वर्ष १९६५, ख-'नवप्रकाश अंक ८ वर्ष ८)

(२६) क्योंकि श्रीनाथजी स्वयं वाके भोक्ता हैं किन्तु वैष्णव-वृन्द तथा सेवकगण भी वा महाप्रसाद लेवे तकके अधिकारी नहीं हैं. यह आचार्यचरणके इतिहाससूं प्रत्यक्ष प्रमाणभूत है वाके महाप्रसाद लेवेको केवल गायकुं ही अधिकार है. अन्यथा वा देवद्रव्यके उपभोग करवेसूं निश्चय ही अधःपतन है... सब प्रकारके दान-चढ़ावा व वसूल वसूली करवेको उल्लेख कियो गयो है, वो भी सम्प्रदायके सिद्धान्तसूं नितान्त विरुद्ध है अपने सम्प्रदायकी प्रणालीके अनुसार जो अपने सम्प्रदायके सेवक हैं, उनकोही द्रव्य गुरु-शिष्यके सम्बन्धसूं लेके सेवामें उपयोग करायो जा सके है. सम्प्रदायमें सब प्रकारके दान-चढ़ावानूको उपयोग सेवामें नहीं कियो जाय है; ओर कदाचित् कहीं कियो जातो होय तो वो सम्प्रदायके नियमनूसूं विरुद्ध होवेके कारण बन्द कर देनो चहिये.

(**सप्तमगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीघनश्यामलालजी, कामवन** "श्रीनाथद्वारा ठिकानेके प्रबन्धकी दिल्ली-योजनाकी आलोचना ता.१-२-५६")

(२७/क)...ब्रह्मसम्बन्ध लेके सेवा करवेसूं प्रत्येक इन्द्रियनूको भगवानूमें विनियोग होवे है... मन्दिर-गुरुघर केवल उपदेशग्रहण करवेकेलिये हैं सेवा अपनकुं अपने घरनूमें करनी है.

('वल्लभविज्ञान'अंक ५-६ वर्ष १९६५)

(ख) आज बहुत घरोंमें सेवा होती है, पर क्या हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि यह सेवा वास्तविक सेवा है? क्या आजकी सेवा "चेतस्तत्प्रवणं सेवा" (चित्तका प्रभुमें प्रवण हो जाना वह सेवा है) का अक्षरशः सार्थक स्वरूप है?

वस्तुतः हम खुद वल्लभवंशज गोस्वामी भी यह दावा नहीं कर सकते हैं कि आज हम वास्तविक सेवा कर रहे हैं. यह कहनेमें मुझको लेशमात्र भी संकोच नहीं हो रहा है, क्योंकि मैं दम्भका संरक्षण करना नहीं चाहता हूं, अतः स्पष्ट है कि यदि हम गोस्वामीओंमें सेवाकी और श्रीमहाप्रभुजीद्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तोंके पूर्ण परिपालनकी क्षमता होगी तो ही हमारे अनुयायी स्वयं सेवा और सिद्धान्त के परिपालनमें सक्षम हो पायेंगें, अन्यथा नहीं. क्योंकि हम गोस्वामी और वैष्णव एक ही तत्त्वके दो प्रकार हैं. वल्लभकुल बिन्दुसृष्टि है तो वैष्णव नादसृष्टि है. इस स्थितिमें श्रीमहाप्रभुजी

और श्रीगुसांईजी प्रभुचरण द्वारा की गयी आज्ञा वल्लभकुल और वैष्णव दोनोंकेलिये परिपालनीय है.

(पू.पा.गो.श्रीमथुरेश्वरजी महाराज, बडौदा-सुरत, पुष्टिबोध भाग.१-२,वि.सं.२०३४)

(२८/क) प्रश्न : आज चल रहे जो डिस्प्युट हैं वामें कितनेक सिद्धान्त चर्चित हो रहे हैं जैसे कि नये मन्दिर नहीं खोलने, ट्रस्ट-मन्दिर नहीं बनाने, ठाकुरजीके नामपे द्रव्य नहीं लेनो, ठाकुरजीके दर्शन नहीं कराने तथा बिना समजे-सोचे कोईकु ब्रह्मसम्बन्ध नहीं देनो, इन सब विषयमें आपको अभिमत क्या है?

उत्तर : देखो मन्दिरकी जहां तक स्थिति है तो ये बात सत्य है के पुष्टिमार्गीय प्रकारसुं मन्दिर तो मात्र एक ही है; ओर सब घरकी स्थिति हती ...आज मन्दिर जितने हैं अथवा जिन स्थाननकुं अपन मन्दिर समझे हैं वो स्थान... वाकु अपन मर्यादापुष्टि मन्दिर कह सके हैं पुष्टिमन्दिर नहीं पुष्टिको प्रकार तो मात्र गृहसेवामें ही है.

('आचार्यश्रीवल्लभ', ऑगस्ट१९९४,अंक.५, पुष्टिमार्ग-वर्तमान.प्रश्न-उत्तर.४,पृ.७)

(ख) आजसे डेढ़सो वर्ष पूर्व, श्रीमहाप्रभुके समयसे तब तक, पुष्टिमार्गमें भगवन्मन्दिर खोलनेकी प्रणाली नहीं थी. प्रत्येक वैष्णवके घर-घर भगवत्सेवा हो उसका आग्रह रखा जाता था. वैष्णव अपने घरमें श्रीठाकुरजीके स्वरूपको सेव्य कराकर पधराकर गुरुघरकी प्रणालिका अनुसार सेवा करते थे. (व्रज मोंहे बिसरत नांही, पृ.१४०-१४१)

(ग) खेतमें भरे हुवे जलको पी नहीं सकते... वो अनाज तो पैदा कर सकता है. वो अपने पेट भरनेका साधन मात्र करता है. वो किसी दूसरेके ओर उपकारका नहीं होता है... अपना पेट पालनेकेलिये भगवद्गुणगान करते हैं वो उस प्रकारके होते हैं कि जैसे खेतमें भरा हुवा पानी होता है. पद्मनाभदासजी... आचार्यचरणके निबन्धका श्लोक समझाने पर ही उन्होंने अपनी पौराणिक वृत्तिको छोड़ दिया!... अपने मकानमें बरतन धोनेके पनाले हैं उसमें जो जल जाता है वो एक गढ्ढेमें इकठ्ठा हो जाता है... वो पानी तो केवल गंध ही मारता है... भगवद्भाव होते हुवे भी जिनके

स्वभावमें दुःसंगके द्वारा दोष उत्पन्न हो जाता है ऐसे मनुष्य उस गंदे गढ्ढेके समान बन जाते हैं कि जिसमें पानी भरा हुवा तो होता है लेकिन वो पानी किसी उपयोगका नहीं होता. वो भरा हुवा पानी केवल दुर्गन्ध पैदा करता है... पांचवे (भगवद्गुणगान करके अपनी आजीविका चलानेवाले नीच वक्ताओंके भाव) गटरके समान दुर्गन्धयुक्त...अस्पृश्य होते है. (जलभेद प्रवचन, वड़ोदरा)

(तृतीयगृहाधीश पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज, कांकरोली-वड़ोदरा)

(२९) श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करे हैं के दुनियामें भटकते रहेते अपने मन-चित्त(कुं) श्रीठाकुरजीके सङ्ग जोडिके विनकी तनु-वित्तजा सेवा करनी. तनुवित्तकी सेवा अर्थात् स्वयं उपार्जित अपने धनसों अपने ही घरमें श्रीठाकुरजीकी अपने ही शरीरसों सेवा करनी सो.

(पू.पा.गो.चि.श्रीवागीशकुमारजी, वडोदरा-कांकरोली 'वल्लभीयचेतना', ऑक्टोबर१५ २००३,पृ.४)

(३०) जो घरमें रहकर प्रभुकी सेवा करते हैं वे स्वयं तो कृतार्थ होते ही हैं किन्तु उनके परिवारके परिजन भी कृतार्थ होते हैं.... सभी इन्द्रियसे अन्तःकरणसे भजनानन्दका अनुभव घरमें रहकर श्रीठाकुरजीकी सेवासे होता है.... इसलिये घरमें आचार्य श्रीगुरुचरणसे पुष्ट करके श्रीठाकुरजी पधराओ और समयको सेवामय बनाओ.... श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं तो घर घर नहीं रह जाता, वह प्रभुकी क्रीडाका स्थल बन जाता है... नन्दालयकी लीलाका स्थल बन जाता है.

...मुकुन्ददास...रामदास सांचोरा...किशोरीबाई...जीवनदास...इन महानुभावोंने...श्रीनाथजी तथा घरके श्रीठाकुरजीमें भेद नहीं समझा.

...श्रीठाकुरजी अपने निधि अर्थात् सर्वस्व हैं.... ऐसे पूर्णपुरुषोत्तम श्रीनन्दराजकुमारको श्रीमहाप्रभुजीने हमारी गोदमें पधराकर हमें भाग्यशाली बनाया है. यह अलौकिक निधि (धन) देकर हमें धन्य बनाया है. इससे बड़ा दूसरा कौनसा फल हैं!

...जो सांसारिक कामनासे श्रीठाकुरजीका भजन अर्थात् दर्शन स्मरण सेवा करता है उसे क्लेश ही हाथ लगता है.... इसी तरह जो अपने

माथे श्रीठाकुरजी घरमें बिराजते हैं उन्हें हम चाहे जैसे नये-नये पुष्टिमार्गीय मनोरथ करके सामग्री सिद्ध करके लाड़ लड़ा सकते हैं परन्तु यह अधिकार किसी दूसरे ठिकाने थोड़ी मिल सकता है. अतः "घरके ठाकुरके सुत जायो नन्ददास तहां सब सुख पायो".

श्रीनाथजीको भी देवालयकी लीला छोड़कर नन्दालयकी लीला करने हेतु श्रीगुसांईजीके घर पधारना पड़ा. "व्याजं लौकिकमाश्रित्य श्रीविट्ठलेशगृहे अगमत्". अतः श्रीनाथजीका यह पाटोत्सव ही मुख्य माना गया है जो फाल्गुन कृष्ण सप्तमीको आता है.

अतः घरके ठाकुरजीका स्वरूप समझना बहुत आवश्यक है. कोई पत्नी अपने पतिकी सेवा न करे, उसके गुणगान ही करती रहे... तो क्या पति सन्तुष्ट होगा? इसी प्रकार... जो सेवा न करे, कृष्ण-कृष्ण गुणगान करते रहते हैं, परन्तु सेवा स्वधर्मसे विमुख रहते हैं वे हरिके द्वेषी हैं (विष्णुपुराण) सेवासे सेव्यको सन्तोष मिलता है यही वैष्णवका स्वधर्म है.

(**पू.पा.गो.श्रीगोकुलोत्सवजी महाराज, इन्दौर-नाथद्वारा,** २५२ वैष्णव वार्ता, खंड-२ की भूमिका पृ.१५-३६)

(३१/क) गो.श्रीहरिरायजी : जरा ध्यानसे सुनें.... "तत्र अयम् अर्थः लाभपूजार्थयत्नस्य उपधर्मत्व-देवलकत्वादि" स्पष्ट सुनें, "सम्पादकत्वात्"... लाभ-पूजार्थ यत्न करता है जो सेवा करके, जब वो लाभ-पूजार्थ प्रयत्न करता है तो वो उपधर्म हुवा; देवलकत्व आदि जो दोष हैं वो उसमें प्रविष्ट होंगे ...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : अर्थात् यह खास ध्यानमें रखना कि जिस स्वरूपकी भावप्रतिष्ठा की गयी हो उस स्वरूपकी भी लाभ अथवा पूजा केलिये यदि सेवा की जाती है तो सेवा करनावाला देवलक(पापी बन रहा है...

गो.श्रीहरिरायजी : और उपधर्मत्व होता है... और ये निषिद्ध है...

गो.श्रीश्याममनोहरजी : इस स्थितिमें गुरु अपने लाभ अथवा पूजा केलिये शिष्यसे कुछ भी ठाकुरजीकेलिये मांगता है तो वह... शास्त्रनिषिद्ध होनेसे... दान होनेसे देवद्रव्य होनेसे उपयोग करने योग्य नहीं होता है.

गो.श्रीहरिरायजी : हां बिलकुल... ये तो बिलकुल स्पष्ट है... 'स्ववृत्तिवाद'से भी स्पष्ट होता है.

('पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा विस्तृत विवरण पृष्ठ १६४,१९३)

(ख) श्रीमदाचार्यचरणने "तत्सिद्धयै तनुवित्तजा" यह कहा है. कारणके दो अलग अलग व्यक्ति तनुजा वित्तजा करते हैं तो मानसी सिद्ध नहीं होती... इसी अभिप्रायको समझानेकेलिये आचार्यचरणने 'तनुवित्तजा' यह समस्तपद कहा है...वेतनके रूपमें वित्त लेकर या देकर दो पुरुषों द्वारा की गई ऐसी तनुता-वित्तजा सेवाएं मानसीकी साधक नहीं होती यही अभिप्राय बतानेकेलिये तनुवित्तजा समस्तपद कहा गया है. अन्यथा तनुवित्तजा न कह कर तनुजा वित्तजा ही कहते... यदि दो अलग-अलग व्यक्ति तनुजा और वित्तजा करें तो दोनों सेवाओंकी एक संयुक्त अवस्था तनुवित्तजा नहीं बन पाती. अतएव मानसी सिद्ध नहीं होती.

(ग) जहां तक लाभपूजार्थत्वका सवाल है तो वह तो किसी भी कोटिका भक्त करेगा तो देवलक ही होगा...यदि कोई स्वलाभपूजार्थ दर्शन-मनोरथ-महाप्रसाद आदि करता है तो अवश्य देवलक है...**अन्यके घरमें, अन्यके वित्तसे, अन्यके ठाकुरजीके भोगका महाप्रसाद लेना घोर सिद्धान्तविरुद्ध है.**

(घ) अब रहा सबाल ट्रस्टकी इन्कम और प्रोफिट यानी आय और लाभ का, तो ट्रस्टके आय-लाभ हम नहीं लेते. उलटा भगवत्शास्त्रोक्त सर्वलाभोपहरण न्यायसे ट्रस्टका सारा लाभ भगवदर्थ या गो-ब्राह्मणार्थ लगा देते हैं.... हमारें प्रभुको नित्यनेगभोग हम स्ववित्तजासे अरोगाते हैं.

(ङ) पुष्टिमार्गीय वैष्णवके लिये श्रीभागवतकथा करके वृत्ति करना निषिद्ध है.

(**पु.सि.सं.शि.पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी महाराज, जामनगर,** अनिर्दिष्टपृष्ठसंख्याक 'तत्सिद्धयै तनुवित्तजा')

(३२) अपने सम्प्रदायमें इतनो अधिक सिद्धान्तवैपरीत्य हो गयो है कि गुजरातके एक गांवमें...अपने सम्प्रदायके ही दो मन्दिर हैं और मन्दिरनकी दीवार भी एक ही है; परन्तु...इतनो लोकार्थित्व समाजमें उत्पन्न हो गया है...सवेरो होते ही चन्द्रमाजीवाले वैष्णव बालकृष्णलालको जो मेवा होवे है वो चन्द्रमाजीमें ले जावे हैं और बालकृष्णजीवाले जो वैष्णव होवे हैं वो चन्द्रमाजीको जो मेवा और प्रसाद होवे है वाकु बालकृष्णलालजीमें ले आवे हैं! ऐसी जबरदस्त होंसातोंसी वैष्णवसमाजमें पैदा हो गई है के मानों एक-दूसरेके संग स्पर्धा करते होवें. ऐसो ईर्ष्या-द्वेषको वातावरण

जब सेवाके क्षेत्रमें उत्पन्न हो जावे तो वासूं बढ़के लोकार्थित्व ओर क्या हो सके है!... ऐसे सभी सिद्धान्तवैपरीत्यकी फज़ीहत यदि सर्वाधिक कहीं होती होय तो गुजरातमें होवे है. भागवतमें भी लिख्यो है के "गुजरे जीर्णतां गताः" भक्ति गुजरातमें आके बूढ़ी हो गई है. अन्धानुकरण बढ़ा हो तो वह गुजरातमें बढ़ा है... अतः सिद्धान्तकी सत्यनिष्ठा... और श्रीमहाप्रभुजीके पुष्टिसिद्धान्तों के सद्जागरणकी कहीं आवश्यकता है तो... गुजरातमें.

(**पू.पा.गो.श्रीद्विमिलकुमारजी, सुरत** "पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा दि.१०-१३जनवरी,९२. पार्ले-मुंबई विस्तृतविवरण" पृ.३१७-३१८)

(**३३**) प्रश्न : अपने सम्प्रदायमें मन्दिरकुं 'मन्दिर न कहके 'हवेली क्यों कह्यो जावे है?

उत्तर : सामान्यतया इतर हिन्दु-सम्प्रदायमें 'मन्दिर शब्द देवालयके अर्थमें प्रयुक्त होवे है परन्तु ऐसे देवालयके रूपमें मन्दिर जैसी संस्थाको पुष्टिमार्गमें अस्तित्व ही नहीं है. क्योंकि पुष्टिमार्गमें अपने माथे जो प्रभु पधराये जावे हैं वे प्रभुस्वरूप और उनकी सेवा हरेककु व्यक्तिगतरूपमें वाकी भावनाके अनुसार पधराये जावे हैं. स्वयंके श्रीठाकुरजीकी सेवा पुष्टिमार्गीय जीवको एकमात्र स्वयंको कर्तव्य बन जातो स्वयंको ही धर्माचरण है. पुष्टिमार्गमें सेवा सामुहिक जीवनको विषय नहीं परन्तु व्यक्तिगत जीवनको विषय है. जेसे लोकमें पत्नी अथवा माता को पति अथवा पुत्र की सेवा या वात्सल्य प्रदान करवेको वाको व्यक्तिगत धर्म उत्तरदायित्व और अधिकार होवे है. वा ही तरह जा सेवकके जो सेव्यस्वरूप होवे हैं वा सेव्यस्वरूपकी सेवा वाको व्यक्तिगत धर्म और अधिकार होवे है. सेवा कोई सार्वजनिक कार्य या सार्वजनिक प्रवृत्ति नहीं परन्तु सेवा तो स्वयंके आन्तरिक जीवनके साथ सम्बन्ध रखवेवाली बात होवेसूं स्वयंके जीवनकी स्वयंके घरमें की जावेवाली धर्मरूप प्रवृत्ति है... अतः इतर हवेलीनूकी तरह जैसे 'श्रीनाथजीको मन्दिर' शब्द रूढ़ हो गयो होवेसूं प्रयोग कियो जावे है. वस्तुतः तो सामुहिक दर्शन या सेवा जहां की जाती हो ऐसे अन्यमार्गीय सार्वजनिक-देवस्थान जैसो वो मन्दिर नहीं है.

(**पू.पा.गो.श्रीवल्लभरायजी महाराज, सुरत** 'पुष्टिने शीतल छांयडे पृ.सं.१५७-१५८)

(**३४**) श्रीमहाप्रभुजीने अलग-अलग मन्दिरनूकी प्रणाली खड़ी नहीं करी; परन्तु यामें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यकी एक दूरदृष्टि हती... प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय बननो चहिये... कोई मन्दिरके पड़ौसमें एक बहन रहे है वाकुं मन्दिरकी आरतीके घंटानाद सुनाई पड़े हैं. सेवा करवेकुं बैठी भई वो बहन ठाकुरजीके वस्त्र बड़े करके स्नान करावे जा रही हती ऐसेमें आरतीके घंटानाद सुनाई दिये. वो ठाकुरजीकुं वहीं वाही अवस्थामें छोड़के मन्दिरकी तरफ दौड़ गई. थोड़ी देरके बाद लौटके घर आई. अब विचार करो कि या तरहसूं कोई सेवा करे तो वामें आनन्द कभी आ सके है क्या? **यहां तो प्रत्येक वैष्णवको घर नन्दालय है.**

(**पू.पा.गो.सुश्रीइन्दिरा बेटीजी, वडोदरा** 'वैष्णवपरिवार अंक.जून ९०)

(**३५**) तनुजा सेवा और वित्तजा सेवा एक ही व्यक्ति करे तब कहीं जाकर वह मानसीको सिद्ध करती है. केवल तनुजा करली या केवल वित्तजा करली तो अहन्ता-ममता दूर नहीं होगी.... कैसे? मैं आपको एक उदाहरण देता हूं... जो घरसेवा करते हैं उनकेलिये तो को प्रश्न नहीं है. लेकिन यदि कोई वित्तजा सेवा करेगा तो समझ लीजीये कि उसने मन्दिरमें भेंट दी, मनोरथ किया. उसकी आप रसीद लेंगे... तब आप कहेंगे "मैने सेवा लिखायी है". आप कहते हैं "मैने सेवा लिखायी है" तब अहन्ता कहां दूर हुई? अब आप मेहताजीसे क्या मांगोगे? "ये मेरी रसीद है मेरा प्रसाद लाओ". तो देखीये अहन्ता-ममतामें हम और बंध गये. तो ऐसी सेवा संसारको दूर नहीं करेगी. संसारमें बांधेगी... केवल यदि हम वित्तजा करते हैं तो हमारे अहंकारको बढाते हैं. और अहन्ता दूर न होगी ममता दूर न होगी तो मानसी कैसे सिद्ध होगी? क्योंकि सभी बन्धनका मूल अहन्ता-ममता ही है.

(**पू.पा.गो.श्रीद्वारकेशलालजी महाराज, कामवन-सुरत** सिद्धान्तमुक्तावली प्रवचन भरूच जनवरी २००५)

(**३६**) पुष्टिमार्ग गुप्त है दिखावाकेलिये तो है ही नहीं, भक्त और भगवान् के बीच आन्तरिक सम्बन्ध दृढ करवेको मार्ग है... दोनोंके संबंध ऐसे होने चहिये कि कोई तीसरेकुं वाकी जानकारी न हो पाये. अपनो अपने भगवान्के

साथ क्या सम्बन्ध है याकुं दूसरे कोई व्यक्तिकुं जतावेकी आवश्यकता ही क्या है? प्रशंसा पावेकुं स्वयंकी महत्ता बढ़ावेकुं? ये तो सभी कुछ बाधक है.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी, अमरेली-कांदीवली** 'पुष्टिनवनीत' पृ.१२)

(**३७**) चित्त भगवत्प्रेममें परिपूर्ण होइ जाय, पूर्णतः भगवान्में लगि जाय, तन्मय अरु तल्लीन होइ जाय है. तब परासेवा होत है. याकों मानसी सेवा कह्यो जाय है. याके सङ्ग मनुष्यकों शरीरसों हु सेवा करनी चहिये... तनुजा सेवासों शरीरकी शुद्धि होत है. अहन्ता-अहंपनेंको नाश होत है. धनसों करी जाती सेवा 'वित्तजा'सेवा है. वासों ममता-मेरोपेनेंको नाश होत है. अहन्ता अरु ममता एक-दूसरेके सङ्ग जुडे भये रहत हैं तासों तनुजा अरु वित्तजा सेवा एकसङ्ग करनी चहिये यामें प्रधानता तनुजा सेवाकी है. केवल धन दे देवेसों सेवा होत नाहीं है वासों तो (चित्तमें) राजसी वृत्ति होत है.

(**षष्ठगृहाधीश पू.पा.गो.चि.श्रीद्वारकेशलालजी वडोदरा** श्रीमद्भगवद्गीता पुष्टिदर्शन पृ.१२५)

(**३८/क**) "श्रीमहाप्रभुजी वल्लभाचार्यजीके पुष्टिसम्प्रदायमें दो दीक्षाएं दी जाती हैं. दोनों दीक्षाओंका प्रयोजन और तत्पश्चात् कर्तव्य का भी विचार बहुत आवश्यक है. केवल शिष्येषणासे प्रेरित होकर शिष्य बनानेकेलिये दी जाती दीक्षासे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है. जो भगवत्सेवा करनेकेलिये तैयार नही है उसको कदापि ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनी नहीं चाहिये. परन्तु श्रीमहाप्रभुजीके सिद्धान्तोंमें यदि निष्ठावान् है तो उसे केवल नामदीक्षा लेनी चाहिये और अन्याश्रयका त्याग करके श्रीकृष्णका आश्रय दृढ करनेकेलिये प्रयत्नशील होकर नामसेवारत रहना चाहिये. परन्तु ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा लेनेके बाद श्रीकृष्णकी सेवा करनी अनिवार्य है.

श्रीकृष्णकी सेवा भी श्रीमहाप्रभुजीद्वारा दिखलाई गयी रीतिके अनुसार ही हो सकती है. अपने घरमें अपने परिवारके सदस्योंके साथ अपने ही द्रव्यसे भगवत्सेवा करनी चाहिये. किसीको द्रव्य देकर अथवा किसीसे द्रव्य लेकर की जाती सेवा वह भगवत्सेवा तो कदापि नहीं ही है परन्तु श्रीमहाप्रभुजीका

द्रोह होनेसे गुरु-अपराधसे ग्रसित बनाकर आरुढपतित बनाती है और इस भक्तिमार्गसे भ्रष्ट करती है. आजीविका चलानेकेलिये की जाती व्यावसायिक सेवासे तो चांडालके समान हीन देवलक बन जाते हैं. अतः भगवत्सेवा अपने घरमें अपने द्रव्य और तनसे ही की जा सकती है.

सेवाकी ही तरह भगवत्कथा-कीर्तन भी स्वयं अथवा निष्काम भगवदीयोंके साथ करने चाहिये. व्यावसायिक कथाकारोंको द्रव्य-दक्षिणा देकर अथवा लेकर करायी जाती कथा राखमें घी होमनेके तुल्य है. ऐसी कथा, पारायण, कीर्तन अथवा सप्ताह पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध हैं. अतः सेवा और कथा दोनों द्रव्य देकर अथवा लेकर करनेसे किसी भी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति किसी तरहके अलौकिक पुष्टिफलकी प्राप्ति स्वप्नमें भी नहीं हो सकती है. हां, बहिर्मुख अवश्य होते हैं.

(**ख**) "अमे तो राजना खासा खवास मुक्ति मन न आवे रे" व्रजाधिपका सेवन करनेवाले हम मुक्ति नहीं मांगते हैं फिर भी पुष्टिमार्गी वैष्णव भागवत सप्ताह बैठाकर अपने पितृओंको मोक्षके मार्गपर भेजते हैं! पितृमोक्षार्थ भागवत सप्ताह, कोई एकसो आठ! कोई एक हजार आठ!... अपने पितृ तो गोलोकमें जाते हैं! उनको वापिस मोक्षमें क्यों भेजते हो!... भागवत सप्ताह पूरी हो जानेके बाद माला पहेरामणी (सौराष्ट्रकी एक वैष्णव परम्परा) की जाती है और कहते हैं कि अब गोलोक धाम... अब गोलोक धाममें भेजना है मतलब यह हुवा कि पितृओंको यहां से वहां सिर्फ धक्के हि खिलवाने हैं! हमारा कोई ध्येय ही निश्चित नहीं है!! हमने श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थोंको खोला नहीं है उसका यह दुष्परिणाम है कि जिसे हमारे पूर्वजोंको भुगतना पड़ रहा है.

(**पू.पा.गो.चि.श्रीपुरुषोत्तमलालजी, जुनागढ,** श्रीयमुनाष्टक प्रवचन राजकोट २००६)

संयुक्तघोषणापत्र : सुप्रिमकोर्ट

...जहां तक सिद्धान्तके निश्चित स्वरूप या व्याख्या का प्रश्न है, हम सभी धर्माचार्य, हमारे सम्प्रदायके प्रवर्तक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य तथा परवर्ती अन्य भी मान्य सभी व्याख्याकारोंके सन्देहरहित विधानोंके आधारपर,

यह स्पष्टतम शब्दोमें घोषित करते हैं कि हमारे धार्मिक सिद्धान्त एवं परम्पराओं के अनुसार भगवत्सेवा, सेवास्थल, सेवोपयोगिसम्पत्ति, सेवाकर्ता (उपदेशक या अनुयायी) एवं सेव्य भगवत्स्वरूप का निजी अथवा पारिवारिक होना एक अनुल्लंघ्य धार्मिक अनिवार्यता है. अतः इनमेंसे किसीको भी सार्वजनिक बनाना सर्वथा धर्मविरुद्ध होनेसे एक घोर धार्मिक अपराध है.

...वाल्लभ सम्प्रदायके सिद्धान्तके अनुसार निजघरमें निजधनको तथा निज परिवारजनोंको भगवत्स्वरूपकी सेवामें उपयोगमें लाना ही आराधनाका वास्तविक स्वरूप है. ... अतः निजघरमें निजधनके विनियोग द्वारा तथा निजपरिवारके जनोंके सहयोग बिना की जाती आराधना, वाल्लभ सम्प्रदायकी आराधनाकी परिभाषाके अनुसार, आराधना ही नहीं है. ऐसी स्थितिमें हमारे घरोंमें आती जनताद्वारा हमारे सेव्य भगवत्स्वरूपके दर्शन करना या भेंट चढाना आदि आचरण आराधनाके अन्तर्गत मान्य क्रियाकलाप नहीं है.

...यदि निज घरमें न किया जाता हो तो ऐसे भगवद्भजनको पुष्टिमार्गीय परिभाषामें भगवद्भजन ही नहीं कहा जा सकता है. पुष्टिमार्गमें निजघरमें रहकर भगवद्भजन करनेके प्रकारके अलावा अन्य कोई प्रकार भगवद्भजनका है ही नहीं.

...भेंट धरे हुए धनसे भोग धरी हुई सामग्रीका प्रसादत्वेन ग्रहण हमारे यहां सर्वथा वर्जित है... सार्वजनिक मंदिरमें दर्शनार्थी जनताके प्रतिनिधिके रूपमें सेवा करनेकी प्रक्रियाको न तो वाल्लभ सम्प्रदायमें अवकाश है और न वैसा आचरण सिद्धांततः प्रशंसनीय ही है. भगवत्सेवाका अनुष्ठान न तो नौकरी और न धंधा के रूपमें किया जा सकता है.

...श्रीमहाप्रभु सभी पुष्टिमार्गीयोंको सैद्धान्तिक निष्ठा स्वधर्मानुसरणका सामर्थ्य तथा पारस्परिक सौमनस्य प्रदान करें. ... सभी पुष्टिमार्गीयके निजघरोंमें बिराजमान सेव्यस्वरूप सर्वदा निजी ही रहें, कभी सार्वजनिक न बन जायें "बुद्धिप्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु".

हस्ताक्षर कर्ता:

गो शरद अनिरुद्धजी (मांडवी-हालोल)
गो किशोरचन्द्र (मांडवी-जुनागढ)
गो अजयकुमार श्यामसुंदरजी (मद्रास)

गो मनमोहन (मुंबई)
गो श्यामसुन्दर मुरलीधरजी (बोरीवली)
गो हरिराय कृष्णजीवनजी (मुंबई)
नि.ली.गो.श्रीकृष्णचन्द्रजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)
गो वल्लभलाल श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो हरिराय श्रीगोविंदरायजी (पोरबंदर)
नि.ली.गो.श्रीव्रजाधीषजी श्रीकृष्णजीवनजी (दहिसर)
गो व्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
नि.ली.गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)
गो राजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो विजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो योगेश्वर मथुरेश्वरजी (वडोदरा-सुरत)
गो रघुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
गो देवकीनन्दनाचार्य (गोकुल-अमदावाद)
गो नवनीतलाल श्रीगोविंदलालजी (कामवन-भावनगर)
गो मुरलीमनोहर श्रीव्रजाधीशजी (दहिसर)
नि.ली.गो.श्रीमाधवरायजी श्रीगोकुलनाथजी (मुंबई-नासिक)
गो रमेशकुमार श्रीगोपीनाथजी (मुलुंड-नासिक)
गो कल्याणराय (कन्हैयाबावा (वीरमगाम-अमदावाद)
गो योगेशकुमार (मुंबई)
गो व्रजप्रिय मुरलीधरजी (बोरीवली)
गो नीरजकुमार श्रीमाधवरायजी (मुंबई-नासिक)
गो शरदकुमार (शीलूबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
गो चन्द्रगोपाल (चंदुबावा श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
नि.ली.गो.श्रीनृत्यगोपालजी श्रीकृष्णजीवनजी (मुंबई)

पत्रद्वारा सम्मति:

नि.ली.गो.श्रीबालकृष्णलालजी श्रीगोविंदरायजी (सुरत)
नि.ली.गो.श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (जामनगर)
पञ्चमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लभविद्यानगर)
नि.ली.गो.श्रीगोविंदलालजी (कोटा)

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी श्रीद्वारिकेशलालजी (मांडवी-हालोल)
गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)
गो.श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)
गो.श्रीविट्ठलनाथजी श्रीव्रजभूषणलालजी (चापासेनी-जूनागढ-जामनगर)
गो.श्रीहरिरायजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जामनगर)
गो.श्रीव्रजरत्नजी श्रीव्रजभूषणलालजी (नडीयाद-जामनगर)
गो.श्रीनवनीतलालजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जूनागढ-जामनगर)
गो.श्रीबालकृष्णजी श्रीव्रजभूषणलालजी (जेतपुर-जामनगर)

(**''महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यवंशज गोस्वामीओंका संयुक्त-घोषणापत्र''** १९८६ पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्त विवरण पृष्ठ.४९-७८, फोटोकोपी देखें : सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्तप्रकाशन, सन.२००८)

॥ सिद्धान्तवचनावलीके अंश ॥

कोई पुरुष कृष्णसेवामें तत्पर है कि नहीं, दम्भादि दुर्गुणोसे रहित है कि नहीं; और श्रीमद्भागवत पुराणके मर्मका विज्ञ है कि नहीं यह सर्वप्रथम देखना चाहिये और तभी किसी जिज्ञासुको ऐसे व्यक्तिमें गुरुबुद्धि रखकर उसके पास जाना चाहिये.

...ऐसे गुणोंसे युक्त गुरु बलवान् कलियुगके कारण न मिलें तो... स्वयं ही भगवत्सेवामें प्रवृत्त हो जाना चाहिये. पात्रापात्रका विवेक रखे बिना यदि नामदीक्षा प्रदान की जाती है तो भगवन्नामविक्रयका दोष लगता ही है जिसके कारण दीक्षादाता अपराधी बनता है.

...एक प्रकार सेवाका यह भी हो सकता है वह वित्त देकर किसी अन्य पुरुषद्वारा करा ली जाये; और दूसरा प्रकार यह हो सकता है कि वह सेवा किसी दूसरेसे वित्त लेकर की जाये. ऐसे दोनो प्रकारोंसे की जाती सेवाओंसे चित्त कभी कृष्णप्रवण हो नहीं सकता... वह...यदि किसी अन्य तनुजासेवाकर्ता (गोस्वामी-मुखीया-ट्रस्टी) को वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त देकर करायी जाती है तब वह वित्तजा सेवा हुई जो चित्तको राजसभाव = दर्प-दम्भादिसे युक्त बना देती है, पर कृष्णप्रवण नहीं बना पाती. यदि किसी अन्यसे वेतन-तनुजासेवामुल्य-के रूपमें वित्त ग्रहण करके तनुजासेवा

की जाती है तब पुरोहितोंको जैसे यज्ञ-यागका फल नहीं मिलता है वैसे ही दूसरेके वित्तसे तनुजा सेवा करनेवालेको भी कृष्णप्रवणतारूप फल कभी नहीं मिलता.

...जो अपने स्वजन हो और भक्त हो ऐसोंको ही श्रीठाकुरजीके दर्शन कराने चाहिये.

...११वां अपराध : अवैष्णवके समक्ष अपने घरमें बिराजते श्रीठाकुरजीका प्रदर्शन करना. फल : एक वर्षकी सेवा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित : श्री ठाकुरजीको पञ्चामृत स्नान कराना.

...३६वां अपराध : श्रीठाकुरजी (या श्रीभागवतजी या श्रीयमुनाजी) के नामसे (भेट, सामग्री, पोथीसेवा, या न्योछावर) मांगना. फल : सेवा सर्वथा निष्फल हो जाती है. प्रायश्चित : जितना मांगा या बटोरा हो उससे पांचगुना नैवेद्यका प्रभुको दान (न कि समर्पण) करना.

...आजीविका कमाने या यश पानेके लिये भी भजन (सेवा) करता हो तो उसकी क्या गति होगी?...वह व्यक्ति भी क्लेश ही पाता है ऐसा श्रीमहाप्रभुके वचनका साफ-साफ अर्थ है. न केवल उसे ऐहिक (पारिवारिक-समाजिक-साम्प्रदायिक) क्लेश ही होता है प्रत्युत उसके सारे पारलौकिक अधिकार एवं फल भी नष्ट हो जाते हैं ऐसे निषिद्ध आचरणके कारण...अत्यल्प भी ज्ञान हो वह तो ऐसा कुकृत्य नहीं कर सकता है.

...भक्तिवर्धिनी ग्रन्थमें घरमें सेवा करनेका विधान किया गया होनेसे यह सूचित होता है कि अपने घरमें बिराजते प्रभुकी सेवाको छोड़कर अन्य कहीं दर्शन-सेवा-कीर्तनादि करनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती है.

...भागवतका पाठ प्रयत्नपूर्वक किसी भी अन्य हेतुके बिना ही करना चाहिये. प्राण चाहे कंठमें क्यों न अटक जाये परन्तु आजीविकार्थ उसका उपयोग नहीं करना चाहिये. भागवतका आजीविकार्थ उपयोग न करके ओर जैसे भी अपना निर्वाह चले चला लेना चाहिये.

...मुख आदिके प्रक्षालनमें प्रयुक्त अपवित्र जलको एकत्रित करनेकेलिये भूमिमें जो गढ्ढे खोदे जाते हैं उनके जैसे निम्न गानोपजीवी होते हैं...इससे यह आशय प्रकट हुआ कि प्रक्षालनोच्छिष्ट गर्तपूरित जलकी तरह इन गानोपजीविओंका भाव सत्पुरुषोंके लिये ग्राह्य नहीं होता...पुराणकथासे आजीविका चलानेवाले पौराणिक भी ऐसे गायकोंके तुल्य होते हैं...

हे श्रीवल्लभ! आपके कहे हुवे वचनसे विपरीत जो कोई कुछ कहते हैं वे सभी भ्रान्त केवल अन्धतम नरकको पानेवाले सहज आसुरी जीव हैं.

(पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभामें विचारार्थ प्रस्तुत की गई सिद्धान्तवचनावलीके अंश, हस्ताक्षरोकी फोटोकॉपी देखें: सचित्र अमृतवचनावली, संयुक्त प्रकाशन, २००८)

सम्मतिमें हस्ताक्षर करनेवाले गोस्वामी महानुभाव :

गो.श्रीअनिरुद्धलालजी द्वारकेशलालजी (मांडवी-हालोल)
गो.श्रीकिशोरचन्द्रजी पुरुषोत्तमलालजी (जुनागढ़)
गो.श्रीकन्हैयालालजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)
गो.श्रीकृष्णकान्तजी कृष्णचन्द्रजी (इचलकरंजी)
गो.श्रीकृष्णकुमार श्रीरमणलालजी (कांदीवली-कामवन)
पंचमपीठाधीश्वर नि.ली.गो.श्रीगिरिधरलालजी (कामवन-वल्लविद्यानगर)
गो.श्रीगोपिकालंकारजी श्रीवल्लभलालजी (राजकोट-माणावदर)
चतुर्थपीठाधीश गो.श्री.देवकीनन्दनाचार्यजी (गोकुल)
गो.श्रीद्रुमिलकुमार मथुरेश्वरजी (वडोदरा)
गो.श्रीद्वारकेशलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-सुरत)
गो.श्रीनवनीतलालजी गोविन्दरायजी (कामवन-भावनगर)
गो.श्रीमथुरेशजी चन्द्रगोपालजी (विरमगाम-अहमदाबाद)
गो.श्रीमाधवरायजी मुरलीधरजी (वेरावल)
गो.श्रीरघुनाथलाल श्रीरमणलालजी (कामवन-गोकुल-पार्ला)
गो.श्रीरघुनाथजी रमेशकुमारजी (मुलुंड-नासिक)
गो.श्रीरवीन्द्रकुमारजी दामोदरलालजी (राजकोट-मांडवी)
गो.श्रीरसिकरायजी द्वारकेशलालजी (उपलेटा-पोरबन्दर)
गो.श्रीराजेशकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीवल्लभलालजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीवल्लभलालजी गिरिधरलालजी (कामवन-विद्यानगर)
गो.श्रीवल्लभलालजी देवकीनन्दनजी (गोकुल-अहमदावाद)
गो.श्रीविजयकुमारजी श्रीगोविंदलालजी (कडी-अमदावाद)
गो.श्रीविठ्ठलनाथजी लालमणीजी (कोटा-मुंबई)

गो.श्रीव्रजरायजी रणछोडलालजी (अहमदावाद)
गो.श्रीव्रजेशकुमार श्रीगोविंदलालजी (कडी-अहमदावाद)
गो.श्रीव्रजेशकुमार चन्द्रगोपालजी (कडी-अहमदावाद)
गो.श्रीशरदकुमार (शीलूबावा) श्रीमुरलीधरजी (पोरबंदर)
गो.श्रीमधुसूदनजी श्रीकृष्णचन्द्रजी (चेन्नई)

संयुक्तघोषणापत्र : अमदावाद

आज फेरि वो समय आयो है वासों हु कठिन समय आयो है. वा समय तो अन्यमार्गीय लोग मतनूकुं प्रस्तुत करिके भ्रम उत्पन्न करत हते. परि आज तो अपने सम्प्रदायके ही 'सुज्ञजन' श्रीमहाप्रभुजीकी वाणीको विपरीत अर्थ करि रहे हैं. लोगनूकूं पथभ्रष्ट करि रहे हैं. दैवीजीवनूके सङ्ग घोर अन्याय करि रहे हैं. तासों ही अभी महाप्रभु श्रीवल्लभाधीशके वंशज पुष्टिमार्गीय युवा आचार्यनूने एक 'संवादस्थापकमण्डल'की स्थापना करीके मुम्बईमें... चार दिवस पर्यन्त एक पुष्टिसिद्धान्त चर्चासभाको आयोजन कियो हतो... सभामें ३५ महानुभाव आचार्य उपस्थित हते २८ गोस्वामी आचार्य महानुभावनूने गो.श्रीश्याम मनोहरजी महाराश्री (किशनगढ-पार्ला)के 'सिद्धान्तवचनावली'के भावानुवादकुं सहमति दीनी हती... पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी व्रजभूषणलालजी महाराजश्री जामनगरवारेनूने पूज्य गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी महाराजश्रीके सङ्ग विनने करे भावानुवादके मुद्दानूपे चर्चा प्रारम्भ कीनी हती... समयके अभावके कारण चर्चा निर्णयपे पहुंच न सकी. परन्तु वर्तमान(में) कितनेक चर्चास्पद, संशयास्पद मुद्दानूकी स्पष्टता या चर्चामें प्राप्त भयी जो वस्तुत: एक बड़ी सिद्धि है. इतनो ही नहीं परन्तु नीचे बताये मुद्दानूके विश्लेषणमें पूज्य श्रीश्याम मनोहरजीके सङ्ग सहमत होयके पूज्य श्रीहरिरायजीने अपने सम्प्रदायकी उत्तम सेवा कीनी है:

१. पुष्टिमार्गीय सेव्यस्वरूप पूर्णपुरुषोत्तम स्वरूपसों ही बिराजे हैं, वे स्वरूप पाछें चाहे गुरुके सेव्य होवें के शिष्य (वैष्णव)के सेव्य होवें दोउ(स्वरूपन्)मेंतें कोउमें हु पुरुषोत्तमपनों न्यूनाधिक होत नाहीं.

२. पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त अनुसार कृष्णसेवा करिवेको स्थान गृह ही होइ सकत है सार्वजनिक (स्थल) नाहीं.

३. पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवाकु धनकी प्राप्तिको साधन बनानो नहीं चहिये.

४. देवलक (=भगवत्सेवाकु धनप्राप्तिको साधन अथवा आजीविकाको साधन बनायवेवारे) व्यक्तिकी सेवा निषिद्ध कक्षाकी होयवेसों (वो) सेवा करवे योग्य नाहीं है.

५. श्रीठाकुरजीके तांई काहु प्रकारके दान-भेंट मांगने अथवा स्वीकारने वो शास्त्रद्वारा निषिद्ध है इतनो ही नाहीं परि लाभ-पूजाके हेतुसों अपने लिये द्रव्य अथवा काहु वस्तुको स्वीकारनो वो शास्त्रकी दृष्टिमें ऋणानुबन्धी दोषकों उत्पन्न करिवेवारो होयवेसों बन्धनकारी है.

६. पुष्टिमार्गके सिद्धान्तानुसार श्रीठाकुरजीकुं निवेदन करे पदार्थनूको ही समर्पण होइ सकत है अरु समर्पित पदार्थनूको ही भगवद उच्छिष्टरूपमें प्रसाद लेइ सकत हैं श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें आयी भयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें ली नहीं जा सके है क्योंके श्रीठाकुरजीके लिये दान अथवा भेंट के रूपमें प्राप्त भये पदार्थ (द्रव्य)सों आयी सामग्रीकुं प्रसादके रूपमें पाछी लेवेसों 'दत्तापहार'को पाप लागत है.

७. सेवा तो शास्त्रको विषय है तासों सेवाके सम्बन्धमें शास्त्रसों श्रीमहाप्रभुजीके ग्रन्थनूसों ही सर्व निर्णय होइ सकत है अन्य काहु प्रकारसों नाहीं.

(''संयुक्तघोषणापत्रःअमदावाद'', मिति फ़ाल्गुन सुदि.७, श्रीवल्लभाब्द ५१४, दि.११ मार्च १९९२, देखें : पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा संक्षिप्तविवरण १९९३)

हस्ताक्षरः

नि.ली.गो श्रीव्रजरायजी-श्रीनटवरगोपालजी महाराज (अहमदाबाद)

पू.पा.गो.श्रीव्रजेन्द्रकुमारजी महाराज (अहमदाबाद)

च.पी.पू.पा.गो.श्रीदेवकीनन्दनजी (गोकुल)

पू.पा.गो.श्रीव्रजेशकुमारजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीराजेशकुमारजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीवल्लभलालजी महाराज (अहमदाबाद-कडी)

पू.पा.गो.श्रीजयदेवलालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीमथुरेशजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीकन्हैयालालजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

पू.पा.गो.श्रीहरिरायजी (कामा-अहमदाबाद-वीरमगाम)

उद्धृतवचनानुक्रमणिका

अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः...३१० (भ.व.८)
अत्ता चराचरग्रहणात्...१३६ (ब्र.सू.१।२।३)
अदूरे विप्रकर्षे वा...३१० (भ.व.८)
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते...१३ (भग.गीता.९।२२)
अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्र-दर्शनम्...२२३ (वि.धै.आ.५)
अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव...२७२ (वि.धै.आ.१४)
अभिमानश्च सन्त्याज्यः स्वाम्यधीनत्व...२२१ (वि.धै.आ.३)
अयम् आत्मा सर्वेषां भूतानाम्...२२ (बृह.उप.२।५।१५)
अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा...२७७ (वि.धै.आ.१५)
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः...२१४ (वि.धै.आ.११)
अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्य-भावनात्... (वि.धै.आ.८)
असन्नेव स भवति असद् ब्रह्म...९७ (तैत्ति.उप. २।६।१)
असमर्पित-वस्तूनां तस्माद्...३१६ (सि.र.४)
आपद्-गत्यादि-कार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा...२२२ (वि.धै.आ.४)
इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान्...३३ (भग.गीता ४।१-२)
उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः...२३३ (भाग.पुरा.१०।१४।१२)
एनम् उद्धरिष्यामि तदा मृदादेः...१२५ (त.दी.नि.प्र.२।२२८)
कथम् अयथा भवन्ति भुवि...२२ (भाग.पुरा.१०।८४।१५)
किम् आसनं ते गरुडासनाय...२८५ (त.दी.नि.मं.प्र.)
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी...५० (सि.मु.१)
कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दंभादिरहितं...११३ (त.दी नि.२।२२७)
कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना...१४९ (त.दी.नि.३।५।२५)
गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना...६९ (सि.र.८)
गृहं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं...३०४ (त.दी.नि.२।२५५)
गृहस्थितेः उत्कृष्टत्वं न भगवदीयत्वमात्रेण...२७३ (भाग.सुबो.३।१।६)
गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः...१० (भाग.पुरा.१०।३२।१-२६)

जानामि धर्मं नच मे प्रवृत्तिः...२३८ (पाण्डवगीता.५७)
जीवो जीवस्य जीवनम्...१३८ (भाग.पुरा.१।१३।४६)
ज्ञानी चेद् भजते कृष्णं तस्माद्...२८३ (त.दी.नि.१।१४)
ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता...१४२ (भग.गीता.३।१)
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिंतां...२८६ (नवरत्न-९)
तदा सेवा त्यक्तव्या...२१० (त.दी.नि.प्र.२।२४७)
तद्यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिंगा...७५ (बृह.उप.२।१।२०)
तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं...६३ (मुण्ड.उप.२।२।११)
तस्मात् सर्वात्मना नित्यं...२८२ (नवरत्न-९)
तस्माद् युध्यस्व भारत!...१४२ (भग.गीता.२।१८)
तद् गोपिकेशः स्ववदनकमले...१५५ (श्रीवल्लभाष्टकम्-४)
त्रिदुःखसहनं धैर्यम्...२०२ (वि.धै.आ.६)
दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे...२५४ (वि.धै.आ.१०)
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु...१४६ (भग.गीता.२।५६)
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया...१४४ (मुण्ड.उप.३।१।१)
धनं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत्...३०४ (त.दी.नि.२।२५६)
धर्म प्रोज्जितकैतवो अत्र परमो...३१ (भाग.पुरा.१।१।२)
न तु माम् शक्यसे द्रष्टुम् अनेनैव...१०९ (भग.गीता.११।८)
निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्याद्...३२८ (सि.र.५)
निष्प्रत्यूहं महान् भोगः प्रथमे...३३८ (से.फ.-४)
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या...१७१ (भग.गीता.९।२६)
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं...६२ (भग.गीता. १०।१२)
परं ब्रह्मतु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत्...६२ (सि.मु.३)
पितृ-प्रवर्तित-पथ-प्रचार-सुविचारकः...११४ (नामरत्ना.१२)
प्रतीकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन् नाग्रही भवेत्...२०२ (वि.धै.आ.७)
प्राप्तं सेवेत निर्ममः...२८२ (वि.धै.आ.१५)
प्रार्थिते वा ततः किं स्यात्...२१९ (वि.धै.आ.२)
प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहात्...३४३ (अन्त.प्र.८)

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः ...७२ (भाग.पुरा.१०।१८।५)
बीजदाढर्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा...५० (भ.व.२)
ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः...५१ (सि.र.२-३)
ब्रह्मा रुद्र त्यां कोण बापड़ा...२०९ (वल्लभाख्यान-१।८)
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा...७० (भग.गीता.४।२४)
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहम्!...६३ (भग.गीता. ११।५४)
भार्यादिः अनुकूलश्चेत् कारयेद्...३२० (त.दी.नि.२।२३२)
मया हताः त्वं जहि...१०९ (भग.गीता ११।३४)
मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं...६२ (भग.गीता. ९।१०)
मल्लानाम् अशनिः नृणां नरवरः...५,७ (भाग.पुरा.१०।४३।१७)
माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः...९२,१२६ (त.दी.नि.१।४२)
मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर् भोगश्च...२७४ (बा.बो.१७-१८)
यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् भूतेभ्यो...१४५ (बृह.उप.३।७।१५)
यत् करोषि यद् अश्नासि...२२ (भग.गीता.९।२७)
यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात्...३४२ (भ.व.१)
यथाकथञ्चित् कार्याणि कुर्याद्...२७९ (वि.धै.आ.१६)
यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिंगाः...७५ (बृह.उप.२।१।२०)
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः...१०८ (भग.गीता.४।७)
यद्यद् इष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः...१५१ (त.दी.नि.२।२३६)
यद्वै किञ्चन अनूक्तं तस्य सर्वस्य...११८ (बृह.उप.१।४।७)
यावद् देहाभिमानः तावद् वर्णाश्रमधर्माः...५४ (भाग.सुबो.३।२८।२)
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव...१३० (भग.गीता.४।११)
वन्दे श्रीकृष्णदेवम्...१४४ (भाग.सुबो.मंगला.१)
विक्षेपाद् अथवा अशक्त्या प्रतिबन्धादपि...२०३ (त.दी.नि.२।२४७)
विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति....२१४ (वि.धै.आ.१-२)
विहारशय्यासनभोजनेषु एको...२८३ (भग.गीता.११।४२)
वृष्णीनां वासुदेवो अस्मि पाण्डवानां...१०९ (भग.गीता.१०।३७)
शरणं गृहरक्षित्रोः...२६० (अम.को.३।३।४५०)

शिष्यस् तेऽहं शाधि मां त्वां...१०८ (भग.गीता.२।७)
शुद्धाश्च सुखिनश्चैव ब्रह्मविद्याविशारदाः...२१० (भाग.सुबो.१।१।३)
श्रवणायापि बहुभिः यो न लभ्यः...१३९ (कठ.उप.१।२।७)
श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि...१९ (सि.र.१)
समर्पणेन आत्मनो हि तदीयत्वं...३३७ (बा.बो.१८)
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योस्ति...११८ (भग.गीता ९।२९)
सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः...१४ (चतुश्लोकी.१)
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज...१७ (भग.गीता १८।६६)
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति...७० (सि.र.७)
सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिः...११ (भक्तिव.९)
स्वयमिन्द्रिय-कार्याणि...२३० (वि.धै.आ.८)
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं...१४२ (भग.गीता.२।३७)